अमृता प्रीतम की श्रेष्ठ रचनाएँ

अमृता प्रीतम

जन्म १९१९, गुजरांवाला। मातृभाषा पंजाबी। प्रथम रचना संग्रह १९३६ में प्रकाशित। लगभग तीन दशकों से पंजाबी के साहित्य सृजन क्षेत्र में प्रमुख स्थान। पंजाबी काव्य में आधुनिक दृष्टि भाव और शैली शिल्प की प्रवर्तिका। साहित्य अकादमी पुरस्कार द्वारा सम्मानित। साहित्य अकादमी की कार्यकारिणी समिति की सदस्या। अनेक देशों का साहित्यिक भ्रमण, 'नागमणि' पत्रिका की सम्पादिका, प्रकाशित कृतियां ५० के लगभग : १७ कविता संग्रह, १९ उपन्यास, ५ कहानी संग्रह, ३ लोकगीत संग्रह, २ यात्रावृत्त, १ आत्मकथा, १ निबंध संग्रह।

अमृता प्रीतम की श्रेष्ठ रचनाएँ

इमरोज़ के नाम

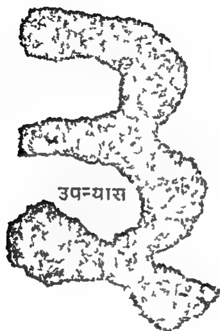
—अमृता प्रीतम

तीन उपन्यास | बारह कहानिया |

कविताएँ

तेरह लेख

विश्व प्रसिद्ध उपन्यासो के दस पात्र


उपन्यास

पिंजर

१९३५

मटमैला दिन था। खारी के टुकड़े पर बैठी पूरो मटर छील रही थी। उँगलियों में पकड़ी हुई फली के मुँह को खोलकर जब उस ने दानों को मुट्ठी में सरकाना चाहा, तो एक सफेद कीड़ा उस के अँगूठे पर लग गया।

जैसे एकाएक कीचड़ भरे गड्ढे में पाँव जा पड़ने पर एक सिहरन सी हो उठती है, वैसी ही सिहरन पूरो के सारे शरीर में दौड़ गयी। हाथ झटककर उस ने कीड़े को परे फेंक दिया और अपने हाथों को अपने घुटनों में भींच लिया।

पूरो के सामने मटर की फलियाँ, निकाले हुए दाने और खाली छिलके बिखरे पड़े रहे। उस ने जोड़े हुए घुटनों के बीच में से दायाँ हाथ निकालकर अपने कलेजे को थाम लिया। उसे लगा, मानो सिर से पाँव तक उस का शरीर मटर की उस फली की भाँति हो जिस के भीतर मटर के स्वच्छ दानों के स्थान पर कोई गन्दा कीड़ा पल रहा है।

पूरो को अपने शरीर के अंग-अंग से घिन आने लगी। उस का मन चाहा कि वह अपने पेट में पल रहे कीड़े को झटककर दे, उसे अपने शरीर से दूर झाड़ दे, ऐसे जैसे कोई चुभे हुए काँटे को नाखूनों में फँसाकर निकाल देता है, जैसे कोई धँसे हुए गोखरू को उखाड़कर फेंक देता है, जैसे कोई चिपटी हुई किल्ली को नोचकर अलग कर लेता है, जैसे कोई चिपटी हुई जोंक को तोड़ फेंकता है।

पूरो सामने दीवार की ओर देखने लगी। बीते हुए दिन एक एक कर के वहाँ से गुज़र रहे थे।

पूरो गुजरात ज़िले के एक गाँव छत्तोआनी के शाहों की बेटी थी—शाह जिन का साहूकार का काम कब का बंद हो चुका था, किन्तु फिर भी वह कहलाते शाह ही थे। समय के कुचक्र ने शाहों के उस घर का यह हाल कर दिया कि देग और कण्डाल जैसे उन के बड़े-बड़े बरतन भी बिक गये—वे बरतन जिन पर उन के पुरखों के नाम खुदे हुए थे। प्रति दिन की इस जीती जागती ग्लानि से बचने के लिए पूरो के पिता और चाचा अपना गाँव छोड़कर सियाम चले गये। वहाँ उन के दिन पलक मारते ही पलट गये।

उन दिना पूरा दौड़ती फिरती थी और उस की मा की गोद म एक लड़का था। उजड़े हुए शाहा का यह परिवार फिर अपने गाव छत्तोआनी आया। पूरा के पिता ने अपना गिरवी पडा हुआ मकान छुटवाकर अपने बाप-दादा के नाम की लाज रख ली। यद्यपि उस के पिता को नया मकान बनवाने में इस से भी कम पसे खरचने पड़ते पर उस ने अधाधुध लगाये हुए ब्याज की भी परवा न की और एक बार दात भीचकर अपने पूर्वजों के नाम का रक्षा कर ली।

अनाज चारा और अन्य वस्तुआ की ठीक-ठाक व्यवस्था कर के वह सियाम चले गये, किन्तु उन का मकान उन का नाम उन के पीछे गाव में रहता रहा। अगली बार जब वह अपने गाव लौटे उस समय पूरा पूरे चौदह वष की थी। उस से छोटा उस का एक भाई था उस से छोटी पूरो का ऊपर तले की तीन बहनें थी और अब के पूरो की माँ को छठी बार फिर किसी बच्चे की उम्मीद थी।

शाहो के उस परिवार ने गाव आकर पहला काम किया कि पास के गाँव रत्तोवाल म एक अच्छे खाते-पीते घर म पूरो के लिए लड़का देखा। पूरो की मा सोचता थी कि जब वह नहा धोकर उठगी तो बड़े चाव से पूरो का काज आरम्भ करगी। इस बार वह पक्की तरह सोचकर आय थ कि इस भार का उतारकर हा लौटेंगे।

पूरो का होनेवाली ससुराल में उन दिना तीन दुधार पशु थे और गाव में उन का मकान पहला था जिस के ऊपर की पक्की इटा की बरसाती बना हुई थी। मकान के माथे पर उन्होंने 'ओम' लिखवाया हुआ था। लड़का सूरत का अच्छा और बुद्धिमान दीख पड़ता था।

पूरो के पिता ने पाच रुपये और गुड की भेली देकर लड़का रोक लिया था। उन दिना गुजरात जिले में अदला-बदला के सम्बन्ध होते थे। जिस लड़के से पूरा की सगाई हुई उस लड़के की बहन का सगाई पूरा के भाई के साथ की गयी यद्यपि पूरो का भाइ उस समय मुश्किल स बारह बरस का था और उस की मँगेतर बहुत ही छोटी थी।

दो-दो बरस के अतर से ऊपर तले तीन लड़किया को जन्म देन के कारण पूरा की माँ का मन क्षुब्ध-सा हो गया था। अब जब कि उन के दिन फिर गये थे घर में मन भर खाने को था जी भर पहनने को था उस का मन करता था कि उस के फिर एक लड़का हो।

इस बार आकर पूरो की मा ने दूसरा काम यह किया कि विधि-माता की पूजा की। गाँव की कुछ स्त्रियों न पूरो के घर के आँगन में गोबर की एक गुड़िया बनायी, लाल चुनरी के किनारी लगाकर उसे उस गुड़िया के सिर पर उढ़ा दिया दो मासे साने की छोटी-सी नथ बनवाकर उस की नाक में डाली और सब ने मिलकर गाया

बिधमाता रुस्सी आवी ते मन्नी जावी
बिधमाता रुस्सी आवी ते मन्नी जावी।

उन के अपने गाँव में और आसपास के गावों में स्त्रियों की यह विश्वास था कि प्रत्येक बालक के जन्म के समय विधिमाता स्वयं आती है। यदि विधिमाता अपने पति से हँसती-खेलती आती है तो आकर झटपट लड़की बनाकर चली जाती है, क्योंकि उसे अपने पति के पास लौटने की जल्दी होती है। किन्तु यदि विधिमाता अपने पति से रूठकर आती है तो उसे लौटने की कोई विशेष जल्दी तो होती नहीं, वह आकर बहुत समय तक बैठती है और आराम से लड़का बनाती है। सो सब स्त्रियों ने मिलकर फिर गाना आरम्भ किया

विधमाता रस्सी आवी ते मनी जावी,
विधमाता रस्सी आवी ते मनी जावी।

विधिमाता शायद कहीं पास ही सुन रही थी, उस ने उन का कहा मान लिया। पन्द्रह-सोलह दिन बाद पूरो की माँ के लड़का हो गया। दाहा के दूर-पार के सम्बन्धियों को भी बधाइयाँ मिलने लगीं। चिन्ताजनक केवल एक बात थी, और वह यह कि लड़का तेलड़ था। तीन बहनों पर भाई हुआ था। पूरो की माँ को बड़ी चिन्ता थी, राम कर किसी प्रकार लड़का बच जाये, और बच जाये तो माता पिता को भारी न हो। विधिमाता को मनानेवाली स्त्रियाँ फिर एक बार इकट्ठी हुई और काँसी के एक बड़े-से थाल के बीच में बड़ा-सा छेद कर के लड़के को उस में से आर-पार निकाला, साथ में गाती रहीं

निग्ला दी धाड आयी,
निग्ला दी धाड आयी।

तीन लड़कियों के दल के बाद ईश्वर की कृपा से उत्पन्न हुए लड़के के सारे शगुन मनाकर अब सब को विश्वास हो गया कि लड़का बच जायेगा।

पन्द्रहवाँ वर्ष आरम्भ होते-होते पूरो के अंग प्रत्यंग में एक हुलार-सा आ गया। पिछले बरस का सारा कमीज उस के शरीर पर तंग हो गयी। पूरो ने पास की मण्डी से फूलोंवाला छींट लाकर नये कुरते सिलवाये। कितना सारा अबरक लगाकर चुनरियाँ तैयार कीं।

पूरो की सहेलियों ने उसे दूर से उस का मँगेतर रामचन्द दिखा दिया था। पूरो की आँखों में उस की छवि परी की पूरी उतर गयी थी। उस का ध्यान आते ही पूरो का मुँह लाल हो जाता था।

पूरो निःशंक होकर बहुत कम ही बाहर निकल सकती थी, क्योंकि पास के गाँववालों का इस गाँव में आना-जाना बहुत रहता था। उस की ससुराल के गाँववाले कहीं पूरो को देख न लें इस बात से पूरो बहुत डरती थी। और फिर यह गाँव बहुत कर के मुसलमानों का हो गया था।

कभी जरा दिन-ढले पूरो और उस की सहेलियाँ खेतों में घूम फिर आती थीं। कई बार पूरो अपने खेतों के पास से गुजरती हुई कच्चा सन के आसपास अटक रहती,

उन दिना पूरा दौडती फिरती थी और उस की मा की गोद में एक लडका था। उजडे हुए शाहा का यह परिवार फिर अपने गाव छत्तआनी आया। पूरा के पिता ने अपना गिरवी पडा हुआ मकान छुडवाकर अपने बाप दादा के नाम की लाज रख ली। यद्यपि उस के पिता को नया मकान बनवाने में इस से भी कम पैसे खरचने पडते, पर उस ने अन्धाधुन्ध लगाये हुए ब्याज की भी परवा न की और एक बार दात भींचकर अपने पूर्वजों के नाम की रक्षा कर ली।

अनाज, चारा और अन्य वस्तुओं की ठीक-ठीक व्यवस्था कर के वह सियाम चले गये किन्तु उन का मकान उन का नाम उन के पीछे गाव में रहता रहा। अगली बार जब वह अपने गाव लौटे उस समय पूरा पूरे चौदह वर्ष की थी। उस से छोटा उस का एक भाई था उस से छोटी पूरो की ऊपर तले की तीन बहनें थी और अब के पूरो की मा को छठी बार फिर किसी बच्चे की उम्मीद थी।

शाहों के उस परिवार ने गाव आकर पहला काम किया कि पास के गाव रत्तोवाल के एक अच्छे खाते-पीते घर म पूरो के लिए लडका देखा। पूरो की मा सोचती थी कि जब वह नहा धोकर उठेगी तो बडे चाव स पूरो का काज आरम्भ करेगी। इस बार वह पक्की तरह सोचकर आये थ कि इस भार का उतारकर ही लौटेंगे।

पूरो की होनेवाली ससुराल में उन दिनों तीन दुधार पशु थे और गाव में उन का मकान पहला था जिस के ऊपर की पक्की ईंटों की बरसाती बनी हुई थी। मकान के माथे पर उन्होंने ओम लिखवाया हुआ था। लडका सूरत का अच्छा और बुद्धिमान् दीख पडता था।

पूरो के पिता ने पाँच रुपये और गुड की भेली देकर लडका रोक लिया था। उन दिना गुजरात जिले में अदला-बदला के सम्बन्ध होते थे। जिस लडके से पूरा की सगाई हुई उस लडके की बहन की सगाई पूरो के भाई के साथ की गयी यद्यपि पूरो का भाई उस समय मुश्किल से बारह बरस का था और उस की मंगेतर बहुत ही छोटी थी।

दो दो बरस के अन्तर से ऊपर तले तीन लडकियो को जन्म देने के कारण पूरो की मा का मन क्षुब्ध-सा हो गया था। अब जब कि उन के दिन फिर गये थे, घर में मन भर खाने का था जी भर पहनने का था उस का मन करता था कि उस के फिर एक लडका हो।

इस बार आकर पूरो की माँ ने दूसरा काम यह किया कि विधि-माता की पूजा की। गाँव की कुल स्त्रियों न पूरो के घर के आँगन में गोबर की एक गुड़िया बनायी, लाल चुनरी के किनारा लगाकर उसे उस गुड़िया के सिर पर उढा दिया, दो माशे सोने की छोटी-सी नथ बनवाकर उस की नाक में डाली और सब ने मिलकर गाया

विधमाता रुस्सी आवी ते मन्नी जावी
विधमाता रुस्सी आवी ते मन्नी जावी।

उन थ अपने गाँव म और आसपास के गावो में स्त्रिया का यह विश्वास था कि प्रत्येक बालक के जन्म के समय विधिमाता स्वय आती है। यदि विधिमाता अपने पति स हँसती-खेलती आती ह तो आकर झटपट लडकी बनाकर चली जाती ह, क्योंकि उसे अपने पति के पास लौटने की जल्दी होती ह। किन्तु यदि विधिमाता अपने पति से रूठकर आती ह तो उस लौटने की कोई विशेष जल्दी तो होती नहीं, वह आकर बहुत समय तक बैठती ह और आराम से लडका बनाती ह। सो सब स्त्रियो ने मिलकर फिर गाना आरम्भ किया

विधमाता रस्सी आवी ते मन्नी जावी,
विधमाता रस्सी आवी ते मन्नी जावी।

विधिमाता शायद वहीं पास ही सुन रही थी, उस ने उन का कहा मान लिया। पन्द्रह-सोलह दिन बाद पूरो की माँ के लडका हो गया। गाहो के दूर-पार के सम्बन्धियो को भी बधाइयाँ मिलने लगी। चिन्ताजनक केवल एक बात थी, और वह यह कि लडका तेलू था। तीन बहनों पर भाई हुआ था। पूरो की मा को बडी चिन्ता थी, राम करे किसी प्रकार लडका बच जाये, और बच जाये तो माता पिता को भारी न हो। विधिमाता को मनानेवाली स्त्रियाँ फिर एक बार इकट्ठी हुई और काँसी के एक बडे-से थाल के बीच में बटा-सा छद कर के लडके को उस में स आर-पार निकाला, साथ में गाती रही

त्रिखलीं दी धाड आयी,
त्रिखलां दी धाड आयी।

तीन लडकियो क दल के बाद ईश्वर की कृपा से उत्पन्न हुए लडके के सारे शगुन मनाकर अब सब को विश्वास हो गया कि लडका बच जायेगा।

पन्द्रहवाँ वर्ष आरम्भ होते-होते पूरो के अग प्रत्यग में एक हुलार-सा आ गया। पिछले बरस की सारी कमीज़ उस के शरीर पर तग हो गयी। पूरो ने पास की मण्डी से फूलोंवाला छींट लाकर नये कुरते सिलवाये। कितना सारा अबरक लगाकर चुनरियाँ तयार की।

पूरो की सहेलियो ने उसे दूर स उस का मँगेतर रामचन्द दिखा दिया था। पूरो की आँखो में उस की छवि पूरी की पूरी उतर गयी थी। उस का ध्यान आते ही पूरो का मुँह लाल हो जाता था।

पूरो निशाक होकर बहुत कम हो बाहर निकल सकती थी क्योंकि पास के गाववालो का इस गाव म आना-जाना बहुत रहता था। उस की ससुराल के गाववाले कहीं पूरो को देख न लें इस बात स पूरो बहुत डरती थी। और फिर वह गाव बहुत कर के मुसलमानो का हो गया था।

बस कभी दिन ढले पूरो और उस की सहेलिया खेतो म घूम फिर आती थी। कई बार पूरो अपने खेतो के पास स गुजरती हुई कच्ची सडक के आसपास अटक रहती,

कभी कोई साग चुनने बैठ जाती, कभी किसी बेरी के पेड़ से लगकर खड़ी हो जाती, बेर गिराती, उन्हें चुनती और सहेलियों की बातों में लगाये रखती। वह सड़क उस की होनेवाली ससुराल को जाती थी।

मन ही मन वह सोचती, यदि उस का मँगेतर आज इधर से गुज़र जाये ! वह उस गुज़रते हुए एक बार देख ले ! पूरो का दिल उस सड़क के किनारे खड़े होते ही धक धक करने लगता। फिर सारी रात पूरो अपने युवा मँगेतर के स्वप्नों में मग्न रहती।

एक दिन पूरो की नयी जूती उस की एड़ी में बहुत लग रही थी। सहेलियों के साथ चलने यह पीछे रह रह जाती थी। पूरो और उस की सहेलियाँ खेतों में से होकर घर लौट रही थीं। साँझ का अन्धकार पिघले हुए सिक्के की भाँति चारों ओर बिखर गया था। लड़कियाँ खेतों की ढोल मेल चलती अब गाँव की पगडण्डी पर आ गयी थीं। यह पगडण्डी बड़ी चौड़ी और खुली हुई खाली भूमि पर होकर जाती थी और कहीं कुछ पड़ा, पीपल और झाड़ियाँ के साथ-साथ मानो उन की बाँह पकड़ पकड़कर आगे बढ़ती थी। सब लड़कियाँ आगे पीछे इसी पगडण्डी पर चली जा रही थीं। पूरो ज़रा पीछे रह गयी थी। दायें पाँव की एड़ी के पास एक बड़ा-सा छाला उभर आया था। पूरो ने तब जूती दोनों पैरों से उतारकर हाथों में ले ली और पाँव तेज़ी से बढ़ाने लगी।

लड़कियाँ पूरो से कहा करती थीं कि उस का दायाँ पैर बायें पैर से भारी था इसलिए उस के दाहिने पैर में जूता लगती था। इसी तरह पूरो का दायाँ हाथ भी बायें हाथ से भारी था। हाँ जी, चूड़ी पहनते हुए पता चलेगा कहकर लड़कियाँ पूरो को छेड़ा करती थीं। पूरो की आँखों के सामने आ गया मानो सच्चे हाथीदाँत की लाल चूड़ियाँ उस के हाथों में पहनायी जा रही हैं। पिछली बड़ी-बड़ी खुली चूड़ियाँ पहनाने के बाद आगे की छोटी चूड़ियाँ उस के दायें हाथ में फँस गया है। नाई ने तेल से उस के अँगूठे की हड्डी को मला और हाथीदाँत की लाल चूड़ी को उस के हाथ में ज़ोर से धकेलने लगा। पूरो को ख़याल आया, कहीं उस की हाथीदाँत की लाल चूड़ी उस के दाहिने हाथ में टूट जाये तो ! पूरो के कलेजे को एक धक्का-सा लगा। हाय ! यह शगुन कितना बुरा है ! उस की शगुन की चूड़ी, उस के सुहाग की चूड़ी उस के हाथों में क्या टूटे ! पूरो ने अपने दाहिने हाथ को तिरस्कार से देखा। भगवान ! उस का मँगेतर युग-युग जिये ! हज़ार लाख वर्ष जिये ! पूरो के हृदय ने कामना की। फिर पूरो को याद आया उस के गाँव में चूड़ा चढ़ाते समय एक लड़की की चूड़ी सचमुच टूट गयी थी। पास खड़ी हुई स्त्रियाँ राम राम कहकर भगवान से उस के पति की कुशल-याचना करने लगी थीं। फिर सुनार से सोने का एक पतला-सा तार टूटी हुई चूड़ी में पुरवाकर उस लड़की को फिर वही चूड़ी पहनायी थी मानो उन्होंने उस के पति की टूटी हुई जीवन डोरी को जोड़ लिया हो।'

पूरो इन्हीं शगुन-अपशगुन के विचारों में फँसी हुई थी कि बायें हाथ की ओर के पीपल के पीछे से एक व्यक्ति निकलकर पूरो के सामने खड़ा हो गया। पूरो के कलेजे पर मानो हथौड़ा-सा पड़ा। पूरो ने जल्दी से देखा, उस के गाँव का जवान लड़का रशीद उस के सामने खड़ा था। रशीद की आयु बाईस-चौबीस वर्ष की होगी। उस की भरी हुई जवानी उस के मुँह पर प्रत्यक्ष बोल रही थी।

पूरो ने देखा, रशीद की दोनों बड़ी-बड़ी आँखें पूरो के मुँह पर गड़ी हुई हैं। वह काँप उठी। उस के मुँह से एक हल्की-सी चीख निकली और वह रशीद के पास से बचती हुई भाग खड़ी हुई।

पूरो भागती भागती लड़कियों के साथ जा मिली। अब वह अपने घरों के पास पहुँच गयी थी। पूरो का सांस ठिकाने न था। इतना ही भला हुआ कि रशीद ने उस के हाथ न लगाया, रशीद ने उस से मुँह से कुछ न कहा।

'अरी, लड़का था या कोई शेर था!' सहेलियों ने उस से ठठोली की, किन्तु अभी तक पूरो की जान में जान नहीं आयी थी।

"शेर तो सिर्फ फाड़कर खा जाता है, कहते हैं कि अगर रीछ को कोई औरत अकेली मिल जाय तो वह उसे मारता नहीं, उठाकर ले जाता है। अपनी गुफा में ले जाकर उस को अपनी स्त्री बना लेता है।' सहेलियों में से एक ने यह बात सुनायी।

पूरो की जान फिर सूखने लगी। हाय, उस करमों जली का क्या हाल होगा जिसे रीछ अपनी स्त्री बना ले! यह सोच-सोचकर पूरो का रंग उड़ने लगा। पूरो को फिर रशीद की फटी फटी आँखें याद आ गयीं।

अब पूरो अपने घर पहुँच गयी थी। सहेलियाँ हँसती-बोलती आगे बढ़ गयीं।

दूसरे दिन जब पूरो और उस की सहेलियाँ खेतों में सीगरे तोड़ रही थीं, जल्दी से पूरो दो मुट्ठी सीगरे पास ही चलते हुए रहँट पर धोने ले गयी। छोटे छोटे सीगरों की डण्डियाँ तोड़कर दो चार सीगरे पूरो ने अपने मुँह में डाल लिये। तभी उस ने देखा कि पास के पेड़ के साथ रशीद खड़ा हुआ है। उस की टाँगों में से मानो किसी ने जान ही खींच ली। भय उस के मुँह पर छा गया।

"अजी डरती क्या हो? हम तो तुम्हारे चाकर हैं।' आज रशीद बोल उठा। उस के मुँह से शरारत टपक रही थी।

पूरो को ऐसे लगा जैसे अभी रशीद रीछ के चौड़े पंजे की भाँति उस के मुख पर झपट पड़ेगा, उस की लम्बी लम्बी उँगलियाँ रीछ के नाखूनों की भाँति उस की गरदन के चारों ओर फैल जायेंगी। फिर वह उसे खींचता हुआ ले जायेगा और फिर फिर ?

सौभाग्यवश पूरो ने देखा सामने से दो किसान चले आ रहे हैं। रशीद वैसे का वैसा ही खड़ा था। पूरो लाल टमाटरों से भरी हुई क्यारी के ऊपर से छलाँग मारकर जल्दी जल्दी पाँव फेंकती सहेलियों से जा मिली।

उस दिन पूरा बहुत निढाल सी रहा। सारे रास्ते लड़किया का हाथ पकड़ पकड़कर चलती रही। परछाइया से भी कॉप-कॉप उठती, जरा जरा सी खड़खड़ाहट से भी चौंक चौंक उठती।

पूरा ने न तो कुछ अपनी माँ को बताया न अपने पिता को। उस की सहेलिया कहती थी, भला यह भी मा-बाप से कहने की कोई बात है। जवान लड़किया को रास्ता चलते गोहदे सदा से ही ताकते झाकते आये है। मुँहजबानी कभी उन के गुलाम बनते है, कभी अपनेआप को उन का चाकर कहते है, ऐसे ऊल जलूल बकते हो आये है। वह बका करें, भौंका करें, भला कोई कुत्तो के भकने से डरकर सड़को पर चलना छोड देता है।

उस दिन उन के गाव में एक छह-सात बरस के लड़के को एक पागल कुत्ते ने काट खाया। गली मुहल्ले की स्त्रिया ने मिलकर लड़के के घाव पर लाल मिरचें बाध दी। मिरचो की तेजी से कुत्ते के दाँतो का जहर कट जाता है। पूरा ने जब यह खबर सुनी तो तुरत ही उस के मन में विचार आया कि वह लाल मिरचें कूटकर रशीद की आखो में झोक दे। जितना वह रशीद की आखो के सम्बन्ध में सोचती थी उतना ही उसे जहर चढता था।

सहेलिया पूरो की बाहें पकड़कर खीचती थी, पर पूरा को साहस न होता था कि वह खेतो की ओर जाये।

और फिर अब पूरा का विवाह भी दिन दिन पास आ रहा था। पूरा के पिता ने घी और मैदा इकट्ठा कर के घर में धर लिया था। पूरा की मा ने पीले रेशम से कढी हुई लाल फुलकारियो से लकड़ी का सदूक भर लिया था। सियाम से लाये हुए रेशमी जोडो से उस ने दहेजवाला सफेद ट्रक मुँह तक भर दिया था। चुनरिया की छोटी बाकटी चुन-चुनकर उस के पोरवे दुखने लगे थे। पिछली ओर का भीतरवाला कमरा, जहा उस ने पूरा के दहेज के लिए पीतल के इक्यावन बरतन जोड़े थे, झमाझम कर रहा था। उन दिनो देहातो में क्रोशिये के काम का बड़ा चलन था। पूरो ने क्रोशिये से बनाये हुए फूल जोड-जोडकर पलग की पूरी चादर बनायी थी। दुसूती के तार गिन गिनकर उस ने फूल काढ़ने सीखे थे। अपने हाथ से अपने दहेज के लिए डलिया और मूढे बनाये थे।

एक दिन पालक के नरम-नरम पत्तो को तोडकर पूरो ने साग काटा। पूरा की मा सुतली की बुनी हुई पीढी पर बैठी अपने लड़के को दूध पिला रही थी। पूरा ने मिट्टी की हडिया को बान के छोटे-से गुच्छे से अच्छी तरह माजा फिर साग को पानी से दो बार धोकर और उस में चने की दाल मिलाकर हँडिया को मुह तक भर दिया। हारे की मीठी मीठी आग पर दूध पड़ा कढ़ रहा था। पूरा ने चूल्हे में दो-चार छिपटिया लगाकर साग चढा दिया।

पूरो का विवाह अब बस बिल्कुल पास आ गया था। पूरा की मा को प्रतीक्षा

थी कि कौन जाने आज या कल पूरो की ससुराल से कोई नाप लेने ही आ जावे। पूरो कितनी सुंदर सुघड़ लड़की है! रोटी टुकड़ा तो वह आंगन में इधर से उधर चलते फिरते ही कर लेती है। पूरो की सहेलियाँ कहती थीं कि पूरो का जवानी भी तो भरपूर चढ़ी है। पूरो के गोरे निर्मल मुख पर आँख ठहरती न थी। पूरो की मां ने एक चाहत भरी दृष्टि से पूरो की ओर देखा शायद वह सोचती थी कि पूरो अब ससुराल चली जायेगी, पूरो के मायके का घर भाय भाँय करेगा। पूरो अपनी मां का दाहिना हाथ थी। माँ की आंखों में आँसू भर आये। हर बेटी की मां को रोना पड़ता है। बैठी-बैठी पूरो की माँ गाने लगी

लम्बी ते लम्बी नी कलेजे दे नाल माए
दस्सी ते दस्सी इक बात नी।
बाता ते लम्मीयाँ नी धीयाँ क्या जम्मिया नी,
अज्ज विछोड़ वाली रात नी।

पूरो की मां का कलेजा भर आया। पूरो चौके के छोटे-छोटे काम निबटाती हुई अपनी मां की आवाज सुन रही थी। पूरो के दिल में विछोड़े की एक हौल-सी उठी। पूरो की मां आगे गाने लगी

चरखा जु डाहनीया मैं छोपे जु पानीया मैं,
पिड़ियाँ ते बाजे मेरे खेस नी।
पुत्रा नू दित्ते उच्चे महल ते माड़िया
धीया नू दित्ता परदेस नी।

पूरो दौड़ी-दौड़ी आकर माँ के गले से लिपट गयी। मां बेटी दोनों रो पड़ी। हर लड़की का यौवन उसे अपनी मां से अलग कर देता है।

पूरो की माँ ने जी कड़ा किया। बेटी के कंधे पर प्यार किया। सन्ध्या समय का अन्धकार उन के आंगन में भी उतर आया था। पूरो की मां को याद आया कि दूसरी चीज चखाने को इस समय घर में कुछ भी नहीं थी, कौन जाने पूरो की ससुराल से कोई आदमी आता ही हो।

पूरो से उस ने कहा कि छोटी बहन की उँगली पकड़कर पास के खेतों में से चार भिण्डियां ही तोड़ ला। और चावलों की एक मुट्ठी और गुड़ की भेली डालकर मीठे चावल भी चढ़ा दे।

पूरो का दिल भी आज भर भर आता था। उस ने अपनी छोटी बहन का साथ लिया और बाहर चली गयी।

पूरो ने भिण्डियां तोड़ीं, दो-चार सीगरे तोड़े और उल्टे पांव छोटी बहन को साथ लेकर घर की ओर चली। लौटते समय पूरो को केवल यह विचार आ रहा था कि अब वह अपनी माँ से अलग हो जायेगी, अपनी बहनों से विछुड़ जायेगी अपने नन्हे-न्हे भाई से दूर चली जायेगी। वज्र के प्रहार के समान पूरो को एकाएक ख्याल आया,

यदि यहाँ रशीद मिल जाये तो ?

और वह पाँव उठाकर चलने लगी। "पूरो, दौड़ क्या रही है ?" पूरो की छोटी बहन का साँस चढ़ गया था।

पूरो के पीछे की ओर से एक घोड़ा दौड़ता हुआ आया। पूरो अभी पगडण्डी से हट भी न पायी थी कि न जाने घोड़ी या घुड़सवार कौन पूरो के दाहिने कन्धे से टकरा गया। पूरो गिरने ही लगी थी कि किसी ने उसे कन्धे से पकड़कर घोड़ी के ऊपर डाल लिया। पूरो की चीखें उड़ती हुई घोड़ी के साथ पल-पल दूर होता चली गयीं। उस की बहन खड़ी काँपती रह गयी।

न जाने वह घोड़ी कहाँ से आयी थी, उस का सवार कौन था, घोड़ी कितनी देर तक दौड़ती रही, पूरो अचेत थी।

पूरो को जब होश आया वह एक कमरे में चारपाई पर पड़ी थी। चारों ओर दीवारें थीं, सामने एक बन्द दरवाज़ा।

पूरो को सब कुछ याद आ गया। उस ने दीवारों से अपना सिर दे-दे मारा, उस ने दरवाज़े से अपना सिर दे दे मारा।

हार थक के पूरो चारपाई पर आ पड़ी। वह फिर अचेत हो गयी।

पूरो को जब होश आया, कोई उस के सिर में गरम घी मल रहा था। पूरो ने एक बार सोचा, शायद उस की माँ उस के सिरहाने बैठी हुई थी और पूरो को बहुत तेज़ बुखार चढ़ा था।

'ओ माँ !' पूरो के मुख से निकला।

'मेरी गलती माफ़ कर और एक बार होश में आ, पूरो !' किसी ने सिरहाने की ओर से कहा।

डरकर से, जलती हुई पूरो ने सिर उठाकर देखा, रशीद उस के सिरहाने बैठा था। पूरो की एक चीख निकली और वह मूर्च्छित हो गयी।

पूरो ने देखा, काली खालवाला एक रीछ उस के बालों में अपने पंजे फेर रहा है, पूरो एक गुफा में पड़ी है, वह सिकुड़ती जाती है, रीछ फैलता जाता है, रीछ ने अपनी बालोंवाली बाँहों में पूरो को लपेट लिया है।

पूरो ने आँखें फाड़-फाड़कर देखा, कोई उस के पैरों के तलवे मल रहा था। फिर किसी ने उस के कन्धों को दबाया। फिर किसी ने उस के मुँह में चुल्लू भर भर पानी डाला।

रीछ की गुफा या रशीद का घर ? पूरो के सिर में चक्कर आ रहे थे। फिर शायद पूरो सो गयी।

पूरो को अपनी माँ, अपना गाँव सभी कुछ याद था। बैसे उसे लगता था कि उस गुफा में पड़े पड़े उसे कई वर्ष हो गये हैं। रशीद की सूरत देखने की उसे आदत हो गयी थी। न रशीद ने उस से कभी कुछ कहा, न उस ने रशीद को बुलाया।

सोता हुई पूरो के मुँह में रशीद गरम किया हुआ गुड़ और घी चमचे से डाल देता था। कभी कुछ पूरो के गले के नीचे उतर जाता था, कभी धरा थूक डालती थी।

फिर पूरो ने साहस कर के दीवार के साथ पीठ लगायी और चारपाई पर बैठ गयी।

"मैं कहाँ हूँ?" पूरो ने पूछा।

"मेरे पास।" रशीद चारपाई के सामने स्टूल पर बैठा था। रशीद का मुख झुका हुआ था। आज उस की आँखें फट फटकर पूरो के मुख पर नहीं पड़ रही थी।

"तू मुझे यहाँ क्या लाया है?" पूरो का पूछने का साहस हुआ।

"फिर कभी बताऊँगा।" रशीद ने इतना ही कहा और उठकर बाहर चला गया। पूरो गुमसुम चारपाई पर पड़ी रहा।

इस समय कमरे का दरवाज़ा खुला हुआ था। पूरो ने देखा, बाहर एक छोटा सा दालान है, दालान के साथ ही एक छोटी-सी ड्योढ़ी है और फिर बाहर का दरवाज़ा।

पूरो कांपते-कांपते उठी। उस ने चारों ओर दीवारों को देखा। वह डर रही थी अभी इन दीवारों में से कोई निकल आयेगा, उस की बाँहें पकड़कर उसे चारपाई पर डाल देगा। किन्तु दीवारों में से कोई न निकला। पूरो बाहर के दालान में आ गयी।

आँगन के एक कोने में चूल्हे में आग बुझी हुई थी। पास ही एक हाँडी और तवा-परात बिखर पड़े थे। पानी का एक घड़ा भरा हुआ कोने में पड़ा था। पर कोई आदमी कहीं नज़र नहीं आता था।

पूरो कांपते पैरों से ड्योढ़ी में आयी, बाहर के दरवाज़े के पास आयी, फिर पीछे मुड़कर कोठरी की ओर देखा फिर दरवाज़े के पास आ खड़ी हो गयी।

पर मकान का दरवाज़ा पूरो के भाग्य की भाँति बन्द पड़ा था। पूरो ने बन्द दरवाज़े के साथ अपना सिर लगा लिया, पर दरवाज़े को न पूरो के झुके हुए सिर पर तरस आया न मुरझाये हुए चेहरे पर, न भीगी हुई आँखों पर।

पल्ले से मुँह पोंछकर पूरो दरवाज़े से लौट आयी। घड़े में से पानी का एक चुल्लू भरकर पूरो ने अपनी आँखों पर डाला। फिर पूरो को विचार आया कि वह दरवाज़ा पीटकर देखे शायद कोई अड़ोसी-पड़ोसी या रास्ता चलता उस की आवाज़ सुन ले।

पूरो ने आँगन की ऊँची-ऊँची दीवारों की ओर देखा फिर एक बार साहस जुटाकर दरवाज़े को पीटना आरम्भ कर दिया। पूरो ने दरवाज़े की दरज़ों के बीच से देखा, बाहर खुला मैदान ही मैदान था कोई मकान कोठरी दिखाई नहीं देती। पूरो सोच-सोचकर थक गयी न जाने वह किस जंगल में थी।

पूरो दरवाज़े के पास ही खड़ी हुई थी कि बाहर से दरवाज़ा खुला। रशीद ने भीतर आकर दरवाज़ा बन्द कर लिया और ताला लगा दिया। पूरो वहीं की वहीं

बैठ गयी।

"पूरो! क्या व्यर्थ में हवा में टक्करें मारती है! भीतर चल, कुछ अपने मुँह में डाल, तू ने दो दिन से कुछ नहीं खाया है।" रशीद ने खड़े-खड़े कहा। बस न उस ने पूरो का हाथ पकड़कर उसे उठाया, न उस की ओर आँखें फाड़ फाड़कर देखा।

"मुझ पर दया कर, रशीद! मुझे घर छोड़ आ।" पूरो उस के पैरों पर गिर पड़ी।

इस बार रशीद ने पूरो को अपनी लाठी जैसी जवान बाहों में उठा लिया और गठरी बनी हुई पूरो को कसकर अपने सीने से लगा लिया।

"मेरे दिल की आग कौन बुझायेगा?" रशीद ने हाथ-पाँव मारती हुई पूरो को अपनी बाहों में कसे रखा।

वह दिन भी बीत गया, वह रात भी बीत गयी। रशीद ने उस से फिर कुछ नहीं कहा। दरवाजा वैसे का वैसा बन्द था, रशीद वैसे का वैसा ही पहरे पर था।

रशीद उस घर से बाहर भी जाता। घण्टे दो घण्टे बाहर भी लगा आता। पूरो कैद रहती। फिर तारों की छाँह में पूरो का हाथ पकड़कर रशीद उसे घर से बाहर ले जाने लगा। पूरो ने देखा, उस घर के सिवा उस लम्बे चौड़े मैदान में और कोई घर नहीं था। रशीद के इस मकान के पास एक बहुत दूर तक फैला हुआ बाग था। शायद यह घर बाग के मालियों का घर हो। बाग में माली अवश्य होंगे, पर पूरो ने उन्हें कभी देखा न था, न उन की आवाज ही सुनी थी। न तो पूरो के दिन ही बीतते थे, न उस की रात ही काटे कटती थी। पूरो को केवल यही सन्तोष था कि रशीद ने उसे कोई बुरी भली बात नहीं कही थी। पूरो का मर्यादा अभी तक बची हुई थी। यह और बात थी कि रशीद पर न पूरो की प्रार्थनाओं का असर होता था, न पूरो की गालियों का।

पूरो के अपने अनुमान के अनुसार उसे कैद हुए पूरे पन्द्रह दिन हो गये थे।

एक दिन रशीद ने लाल रेशम का एक जोड़ा पूरो के सामने लाकर रखा। इस से पहले भी रशीद ने पूरो को बदलने के लिए दो जोड़े सूती कपड़े के लाकर दिये थे। पर इस बार रशीद ने लाल रेशम का जोड़ा पूरो के आगे रखते हुए कहा, "कल सवेरे नहा धोकर तैयार हो जाना, मौलवी आकर हमारा निकाह पढ़ देगा।"

पूरो का दिल धक से हो गया। जो अब तक नहीं हुआ है, क्या अब होकर ही रहेगा!

उस दिन पूरो फिर रशीद के पैरों पर गिर पड़ी।

"पूरो! होनहार होना कुछ नहीं। व्यर्थ मेरे सिर पर गुनाहों का बोझ न लाद। कसम है अल्लाह पाक की, मुझ से तेरा यह रोना नहीं देखा जाता।" रशीद ने मुँह परे कर के कहा।

पूरो की समझ में न आता था कि रशीद यदि ऐसा न्यायवान ही था, तो उस ने उस के सिर पर विपत्ति का यह पहाड़ क्यों डाल दिया?

"तुझे अपने अल्लाह की कसम है, रशीद। सच-सच बता, तू ने मेरे साथ ऐसी क्या की है?"

"पूरो! तेरा मेरा सम्बन्ध कोई पिछला लेना-देना ही है। अब तुझे इन बातों से क्या मिलेगा? जो हो गया सो हो गया। मैं तुझे सारी उम्र तकलीफ न होने दूँगा।"

पूरो हैरान थी, परेशान थी, यह कैसा आदमी है! "पूरो! हमारे शेखों के घराने में और तुम्हारे शाहों के घराने में दादा-पड़दादा के समय से एक वैर चला आ रहा है। तेरे दादा ने पाँच सौ रुपये में गिरवी रखे हुए हमारे मकान पर ब्याज दर-ब्याज लगाया था और कुर्की कराकर शेखों के घराने को घर से बेघर किया था। सिर्फ इतना ही नहीं, उस के मुंशियों-कारिन्दों ने हमारे घर की औरतों को बाल-कुवाल कहे और मेरे दादा की बड़ी लड़की को जबरदस्ती तेरे दादा के बड़े लड़के ने तीन रात घर में रखा। मेरे दादा के देखते-देखते यह सब हुआ। पर उस समय शेखों का घराना परे हुए गन्ने की भाँति था। सब खून के आँसू पीकर रह गये। पर मेरे दादा ने मेरे चाचा-ताऊओं को और मेरे पिता को कुरान उठवाकर कसम दिलवायी थी कि वे इस का बदला लेकर ही रहेंगे। उस की अगली पीढ़ी के समय बात सो गयी। अब जब तेरा ब्याह इसी गाँव में रचा जाने लगा, मेरे चाचा-ताऊओं के लहू में पुराना वल्ला खौलने लगा। उन्होंने मुझे कसम दिलायी, मेरे लहू को ललकारा और मुझ से कौल कराये कि मैं शाहों की लड़की को ब्याह से पहले किसी भी दिन उठा ले जाऊँ।" रशीद चुप हो गया।

पूरो धैर्यपूर्वक अपनी किस्मत की कहानी सुनती रही।

"पूरो! पहले ही दिन जब मैं ने तुझे देखा खुदा गवाह है, मुझे तुझ से इश्क हो गया। एक तो मेरा मुहब्बत का जोर, दूसरे मेरी पीठ पर सारा शेख घराना। मैं तुझे ले आया हूँ पर मुझ से कसम ले ले, मुझ से तेरा दुख नहीं देखा जाता।" रशीद ने कहा।

पूरो ने दोनों हाथों में अपना सिर थाम लिया।

'तेरी बूआ को मेरे ताऊ ने उठा लिया, पर रशीद! इस में मेरा क्या दोष? हाय! मैं कहीं की न रही!' पूरो का मुँह आँसुओं से भीग गया।

'यही तो मैं कहता था पर मेरे चाचा मुझ पर फिटकार करते थे।'

'तो रशीद! उन के उबाल के कारण तू ने मुझे मार डाला?' पूरो ने रोते रोते कहा।

'पूरो! मैं सारी उम्र तेरे आगे जग की नेमतें ला लाकर रखूँगा' रशीद ने भरे हुए गले से कहा, "मैं तेरे ताऊ की तरह नहीं करूँगा कि तीन रातों के बाद बेचारी औरत को धक्का दे दूँ।'

"रशीद! एक बार मुझे मेरी माँ से मिला दे।' पूरो को कहने के लिए यही मिला।

'आ नेभवख्त ! अब उस घर में तर लिए काई जगह नही । उन की बिरादरी का कौन हिन्दू फिर शाहा क घर का पानी पियेगा ! तू मर घर म पूरे पन्द्रह दिन रह चुकी ह।'

"पर मैं ने ता सिफ तेरे घर के अन्न पानी से मुँह लगाया ह मैं ' पूरा आगे कुछ न कह सकी पर जा कुछ पूरो कहना चाहती थी उस रशीद समझ गया।

"इस बात को कौन मानेगा, पूरो ! यह ता मेरी शराफ़त ह कि पहले मैं तेर साथ निकाह पढ़वाऊगा " रशीद ने नरम आखा से पूरो की आर देखा।

पूरो की आखा के सामने उस का मंगेतर फिर गया। अभी पूरो के तेल चढना था, पूरो ने 'माइएँ पहना' था, पूरो के हल्दी का उबटन मला जाना था पूरो का सच्च हाथीदाँत का लाल चूड़ा चढना था, पूरो को कौडिया वाल कलीरे छनकाने थे पूरो को रेशमी जाडे पहनने थे, पूरो के रूप चढना था पूरो का डाली में बठना था पूरो पूरो पूरो

पूरो निर्दोष था। वह कसे समझ लेता कि उस की मा का दिल पत्थर हा जायेगा, उस के पिता का दिल लोह का बन जायेगा वे अपनी बेटी को घर से निकाल देंगे उन के घर की दीवारें उसे अन्दर रखने स इनकार कर देंगी।

'मै जब लौटकर घर नही पहुची ता उस समय मरे माता पिता का क्या हाल हुआ होगा ! मरी बहन !' पूरो का वह समय याद आ गया जब हानी उस के सिर पर टूट पडी थी।

वे राते कलपते रहे ह उसी तरह जस मेरा दादा, मरा पिता मर चाचा मेरी बूआ के चले जाने पर रोये थे। पुलिस भी बहुत खाज खबर लगाकर हार गयी ह पर उन्हें भी कोई अता पता नही लग सका ह। और उन्हें पता लग भी कस सकता ह! पुलिस ने पूरा पाच सौ रुपया खाया ह।" रशीद अपनी हँसी न राक सका। तू तो जानती ही ह कि इस समय हमारा पल्डा भारी ह। सारा गाव मुसल्मानों का ह। कोई हिन्दू का बच्चा आख उठाकर हमारी आर देख नही सकता। यही गनीमत ह कि उन की जान माल सलामत ह। उन्हे अपनी जान प्यारी ह व कुछ बाल नही सकते। अगर वे हमारे घर की ओर उँगली भी उठाते ता हमारे आदमी उन्हें नहर भी पार करने न दते। रशीद ने कुछ हसकर कहा। शायद उस के दिल म पुराने बदले का आग धधक उठी थी।

पूरो को रशीद का मुख दखकर बडी घृणा हुई। उस का जन्म नष्ट हा गया। यह लोक गया, परलोक गया। शायद उस के माता पिता छत्तोआनी को अपनी पुत्री की बलि चढ़ाकर वापस सियाम लौट भी गये हा।

'क्या मेरे माता पिता सियाम चले गये ह ?' पूरो न तड़पकर पूछा।

'नही, अभा नही।' रशीद ने उत्तर दिया।

'मैं कहाँ रह रही हूँ ? अपने गाव से कितनी दूर ?' पूरो न उसी प्रकार पछा।

'तू अपने गाव के पिछली ओर माधाकिया के कुएँ के पार मेरे अपने बाग़ में है। पर शायद तू अपने गाव जाने का सपना देख रही है। अभी नहीं। जरा बात ठण्डी हो ले, छह महीने बीत जायें, वहां भी ले चलूँगा।" रशीद मुसकराने लगा।

पूरो चुप हो गयी। रशीद ने चावल के पुलाव की एक तश्तरी भरकर पूरो के आगे रखी। रशीद जब बाहर जाता था तब शायद किसी के हाथ अपने गाव से पकवान मँगवा लेता था। पूरो को कुछ पता न था।

उस दिन पूरो के मन में कुछ उधेड़बुन लगी रही। उसे डर था कहीं उस का साहस उसे जवाब न दे जाये इसलिए पूरो ने चावल के दो चार कौर अपने मुँह में डाल लिये। पानी भी घूँट घूँट कर के एक कटोरा पी लिया।

उस रात पूरो ने सारा साहस इकट्ठा कर के अपने मन को पक्का किया। रशीद के सिरहाने दरवाजे की चाबी रखी हुई थी। पूरो ने चुपके से उसे उठा लिया, दरवाजा खोला। उस का दिल धक धक कर रहा था कि रशीद अब जागा, अब जागा पर दुर्भाग्य से या सौभाग्य से कहीं रशीद की आंख न खुली।

बाहर रात के सन्नाटे को देखकर पूरो कांप उठी। एक बार उस का जी किया कि वह लौटकर रशीद के पास चली जाय। न जाने रात के अंधेरे में वह छत्तोआनी का रास्ता पा सकेगी या नहीं। कहीं रात के अँधेरे में वह रशीद से भी गये-बीते किसी आदमी के हाथ लग न पड़ जायगी, न जाने उस की क्या दशा होगी। पर पूरो को अपनी मां का चेहरा याद आ गया, पूरो को अपने पिता का मुखड़ा याद आ गया बहन भाई याद आ गये। पूरो ने झट ही एक पगडण्डी पर चलना आरम्भ कर दिया, शायद यही माधाकिया के कुएँ का रास्ता हो। डरती-डरती कांपती वह चलती रही।

रात का गहरा अंधेरा फट चला था। माधाकिया के कुएँ का रास्ता ठीक निकला। पूरो ने झुटपुटे अँधेरे में ही छत्तोआनी गाव का पिछवाड़ा पहचान लिया।

अब पूरो न इधर में थी न उधर में। उस ने अपनी बची हुई शक्ति को अपने पांवों में डाला। वह दौड़ने लगी।

पूरो ने छत्तोआनी गाँव को पहचाना, अपने घर की ओर मुड़ती हुई गली को पहचाना, अँधेरे में अपने घर की दीवारों को पहचाना।

पूरो ने दरवाजा खटखटाया। जैसे ही किसी ने भीतर से दरवाजा खोला, पूरो ड्योढ़ी में फर्श पर गिर पड़ी। वह अपनी शक्ति का अंतिम अंश भी खर्च कर चुकी थी। अब वह दौड़-दौड़कर हाँफ-हाँफकर दाई को छू चुकी थी। अब मानो पूरो की सम्पूर्ण शक्ति निःशेष हो चुकी थी।

पूरो की आंखों में अंधेरा छा रहा था। उस ने देखा, उस की मां उस का पिता, हाथ में दिया लेकर उस के पास खड़े हुए हैं। वह एक घायल पक्षी की भांति ड्योढ़ी में कच्चे फर्श पर सिसकने लगी। उस ने देखा, मां की आंखों से पानी की धाराएँ बह रही हैं। मां ने पूरो को उठाकर अपनी बाँहों में ले लिया। पूरो ने मां की

छाती स अपने सिर का ऐस त्गा लिया मानो उन के टूटे हुए सम्बन्ध फिर से जुड जायेंग। पूरा का माँ की चीखें निकल गयी।

लाग इकट्ठे हा जायेंगे।' पूरो के पिता ने अपनी स्त्री का कन्धा हिलाकर कहा। पूरा की मा ने अपने पल्ले के कोने का इकट्ठा कर के अपने मुँह में ठूँस लिया।

बेटा, तेरी किस्मत। अब हमारे बस का कुछ नही।' पूरा का अपने पिता का स्वर सुनाई दिया। वह अपनी माँ स चिपटी रही।

'अभी शेखा के यहा से लाग आ जायग और हमारे बच्चे बच्चे को घेर डालगे।'

मुझे लेकर सियाम चले चलो।' पूरा ने मा की छाती स मुँह जरा हटाकर बडे आग्रह क साथ कहा।

'हम तुमे कहा रखगे ? तुझे कौन ब्याह कर ले जायेगा ? तरा धम गया तरा जन्म गया। हम जो इस समय कुछ भी बाले तो यहाँ हमारे लहू की एक बूद भी नही बचेगी।

हाय, मुझ अपन हाथ स हा मार डालो।' पूरा ने तडपकर कहा।

बेटा! जनमत हा मर गयी हाती! अब यहाँ स चली जा। शेख आते ही हाग। तेर पिता तेरे भाई का कही पता भी नही मिलगा। वे सब का मार डालेंगे। मा न न जाने कस अपने दिल पर पत्थर रखकर यह बात कही।

पूरा का ध्यान आया, रशीद ने कहा था जो नेकबख्त अब उस घर म तेर लिए काई जगह नही। क्या रशाद ने सच ही कहा था ?

परा का एक बार मगेतर रामचन्द्र का ध्यान आया। क्या मगाई और क्या ब्याह ? क्या पूरो उस की कुछ न लगती था ? उस ने पूरा की बात भी न पूछी ?

फिर पूरा का जान का मन न किया। उस ने साचा, और सब रास्त ता बन्द ह शायद मौत का रास्ता खुला हा। वह उठकर बाहर का ओर चल दी।

न मा ने राका न पिता ने। पूरा चलती गयी। आत समय पूरा जीवन स भेट करने आ रही थी उस के हृदय में लालसा थी जान की माता पिता स मिलन का। बहुत डरती-काँपती आयी था। लौटत समय वह मृत्यु म भेंट करने चली थी। अब उस क मन म काई डर नही था, काई भय नही था। मृत्यु स बढ़कर काई उस का क्या कर सकता था।

पूरा निशब्द माधावियों में कुएँ की आर जा रही था। प्रभात का नवप्रकाश सब पगडण्डिया पर बिखरा हुआ था।

सामने स रशीद डग भरता चला आ रहा था। पूरा क पाव वही जम गय। मृत्यु ने भी पूरा पर अपना दरवाजा बन्द कर लिया था।

परा का लगा कि इन पन्द्रह दिना न उस के शरीर पर स सारा मास उतार लिया ह अब वह निरा पिंजर ह। उस का न काई आकृति ह न सूरत न काई मन,

न मरज़ी। रशीद ने आकर पूरो की बाह पकड़ ली। वह उस के साथ चल दी।

तीसरे दिन एक मौलवी आया। दो-तीन आदमी और आये। उन्होंने रशीद के साथ पूरो का निकाह पढ़वा दिया। फिर अपनेआप ही रशीद ने पूरो को बताया कि उस के माता पिता कुशलपूर्वक सियाम चले गये।

छत्तोआनी का नाम लेते हुए भी पूरो को चक्कर आने लगता। रशीद इस बात को समझता था। और फिर पूरो का छत्तोआनी ले जाना भी खतरे से खाली नहीं था। शायद रशीद सोचता था कि कहीं वहाँ के या आसपास के गावों के हिंदू भड़क न जायें, यद्यपि अब पूरा महीना होनेवाला था और किसी का साहस न पड़ा था कि एक शब्द भी बोल सका हो। और फिर दूसरे की आग में कौन कूदता है? यह तो पीढ़ियों के वैर थे किसी ने अपने मन में दबा लिये किसी ने निकाल लिये।

रशीद की मा या कोई बहन उस समय जीवित न थी। भाई थे, चाचा थे। रशीद ने पूरो से कहा कि वह उसे वहां से कोसों दूर अपने एक गाव सक्कडवाली ले जायेगा जहां दादा पोता के रिश्ते के एक भाई रहीम का जमीन थी। शायद उस की कुछ जमीन को भी अपनी इधर की जमीन से बदल ले।

अब पूरो होनी के हर धक्के के लिए तयार थी। जब सगे माता पिता ने ही धक्का दे दिया, तो अब गावों में ही क्या पड़ा था! यहां न सही वहां सही।

रशीद स्वय ही घर के बड़े की भाँति दो तीन ट्रक लाया फिर कुछ और सामान लाया, और फिर पूरो को साथ लेकर सक्कडवाली चल दिया। रास्ते में जैसे कोई आखें मीचकर चलता हो, ठीक उसी तरह रशीद के साथ-साथ चलकर पूरो नये गाव में आ गयी। नये गाँव में पहुँचते ही उन्हें एक अलग मकान मिल गया। शायद रशीद ने पहले ही रहीम से कह-सुनकर यह व्यवस्था कर ली थी। रहीम का घर उन के घर से काफी दूर था। फिर भी रहीम के घर की स्त्रिया उस से मिलने आयी। यह पहली बार थी जब पूरो का रशीद के सम्बंधियों में स्त्रियों से मिलने का अवसर पड़ा।

पूरो एक खोया हुई बछिया की भाँति उन के पास बैठा रहा। उन्होंने पूरो से बहुत पूछताछ न की। छोटी मोटी घर की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में ही पूछती रहीं।

रशीद पूरो को पूरो ही कहकर बुलाता। निकाह के समय पूरो का नाम हमीदा रखा गया था, वह अभी उस की जबान पर नहीं चढ़ा था।

एक दिन अचानक ही रशीद एक आदमी को घर ले आया। वह बाँहों पर स्त्रिया-पुरुषों के नाम गोदता था। उस दिन फिर पूरो का हृदय टीस उठा, परन्तु जब ही रशीद ने कहा, उस ने बाँह आगे कर दी और उस की बायी बाँह पर 'हमीदा' गहरे हरे रंग के अक्षरों में गोदा गया। रशीद भी उस दिन से उसे हमीदा पुकारने लगा। शायद यह सलाह रहीम के घरवालों ने दी थी।

पूरो अब हमीदा बन गयी। किन्तु अभी तक जब रात को वह सो जाती थी, उस के सपनों में उस की सहेलियाँ मिलती थीं सपनों में वह अपने माता पिता के घर खेलती-कूदती फिरती थी सब उसे पूरो ही पुकारते थे। दिन के प्रकाश में पूरो हमीदा बन जाती थी रात के अन्धकार में वह पूरो रहती। किन्तु पूरो सोचती थी वह वास्तव में हमीदा थी न पूरो वह केवल एक पिंजर थी, केवल पिंजर—जिस का कोई रूप न था कोई नाम न था।

पाँच-छह महीने बीते होंगे कि पूरो के पिंजर में एक नन्ही-सी जान फड़कने लगी।

वैसाखी का मेला

मटमैला दिन था। बीते हुए दिन एक एक कर के पूरो की आँखों के आगे से गुज़र गये। खारी के एक टुकड़े को अपने परों के नीचे लेकर पूरो पत्थर का बुत बनी हुई उन्हें देखती रही।

बाहर के दरवाज़े को खोलकर रशीद भीतर के आँगन में आकर खड़ा हो गया। पूरो को उस खड़का सुनाई ही नहीं दिया पूरो को उसे कोई आता दिखाई ही नहीं दिया। वह बैठी की बैठी रही। रशीद को शायद सचमुच ही पूरो से प्रेम था, वह चुपके से आकर पूरो के पास बैठ गया।

"क्या सोच रही है ?" रशीद ने अपनी एक बाँह पूरो के शरीर से सटा दी। पूरो आज अत्यन्त उदास थी, वह न हिल सकी न बोल सकी।

रशीद उसे दुलार करता रहा। फिर बहुत देर बाद पूरो ने कहा "आज मुझे ऐसा लगता है जैसे कोई मेरे भीतर मेरी अँतड़ियों को नोच रहा हो।"

रशीद हँसता रहा और पूरो के मन को ढाढस बँधाता रहा। फिर रशीद ने चूल्हे में बुझी हुई आग को सुलगाया और पूरो को पास बिठाकर वह खुद एक पतीले में बटेर भूनने लगा।

"न तू कहीं आती-जाती है न किसी से मिलती-जुलती है। ऐसे तो अच्छे भले आदमी का जी घबरा उठता है।" रशीद ने कुछ देर ठहरकर कहा।

"कहाँ जाऊँ ? मेरे लिए और जगह ही कौन-सी है ?" पूरो ने बुझे हुए मन से कहा।

"अब तू घर की मालकिन है और चार दिन में तेरे आँगन में एक जीव खेलने लगेगा। मेरे लिए न सही, उस के लिए ही सही तुझे अपने मन को छोटा नहीं करना चाहिए। उस बेचारे ने तेरा क्या बिगाड़ा है ?" रशीद को अपने होनेवाले बच्चे का ध्यान आ गया उस ने उसी की दुहाई देकर पूरो से यह आग्रह किया।

पूरो को फिर मटर की फली में से निकले कीड़े का ध्यान आ गया जिसे देख-कर जी मिचला उठे, जिस से पासवाले मटर के दानों को फेंक दिया जाये।

"ला, बटेरा के ममाले में थोड़े-से मटर डालने हैं।" रशीद ने पूरो के आगे बिखरे हुए मटर के दानों की ओर देखकर कहा।

"मटर तो सब पकी हुई है। अब मटरों की कौन-सी बहार है, अब तो वसाख चढ़नेवाला है।" पूरो जानती थी आज वह मटर नहीं खा सकेगी।

'हाँ, सच! कल तो बसाखी का बड़ा भारी मेला लगेगा।' रशीद ने सहज भाव से कहा।

"बसाखी बसाखी" पूरो के कानों में गूंजने लगा। वह परात में दो-तीन मुट्ठी आटा डालकर गूँधने लगी जिस से उस का मन बँट जाये।

'आज तो मेरा जी कर रहा है कि गुड़ डालकर सेवइयाँ बनायी जायें।" रशीद ने कहा। पूरो चुपके से भीतर से सेवइयाँ और गुड़ ले आयी।

उसी समय पूरो को एक बहुत पुरानी बात याद आ गयी। एक दिन पूरो की माँ बैठकर सूजी की सेवइयाँ तोड़ रही थी कि पूरो ने कहा, 'माँ, री माँ, मेरा तो मसान का तोड़ा हुई सेवइयाँ खाने को जी करता है।' इस पर माँ ने तुरन्त कहा था, 'हट, यह तो मुसलमान खाते हैं।'

यह बात याद आते ही पहले तो पूरो की आँखों में आँसू भर आये, फिर वह हँस पड़ी।

रशीद ने उस की हँसी का कारण पूछा, पूरो ने वह बात सुना दी। सुनाते सुनाते वह फिर रो पड़ी। रशीद लज्जित-सा बैठा हँसता रहा।

दूसरे दिन सवेरे जब पूरो सोकर उठी, गाँव में बैसाखी के ढोल बज रहे थे। पहले तो पूरो घर के काम-काज में लगी रही फिर वह छत पर चढ़कर दूर गाँव में लगा हुआ बसाखी का मेला देखने लगी।

दूर खड़ी परों का लोगों का एक विशाल समूह दिख पड़ रहा था। लम्बे-तड़ंग जाट कमर में कोरे तहमद बाँधे हुए हाथों में तेल से चमकायी हुई लाठियाँ लिये, और हृदय में उत्साह और उल्लास भर इधर से उधर आ-जा रहे थे। बहुत-से घोड़ियों पर चढ़े हुए थे, पीछे अपनी स्त्रियों को बिठाये आगे एक-दो बाल-बच्चों को भी लिये और बहुत-से थे जो बच्चों की उँगली पकड़े स्त्रियों को अपने पीछे लिये घूम रहे थे। कई बलिष्ठ नवयुवक अपने यौवन और बल के मद में चूर सीना ताने चल रहे थे, कुछ गाते जाते थे, कुछ बातें करते जाते थे। दूर परे मैदान में कुश्तियाँ हो रही होंगी जलेबियों के थाल लगे हुए होंगे गरम पकौड़ियों की महक दूर तक हवा में फैली हुई होगी। गुड़ के शक्करपारे, मैदे की मठरियाँ और मिठाइयों के ढेर के ढेर लोहे के चौड़े थालों में सजे हुए होंगे।

पूरो के मस्तिष्क में एक विचार उत्पन्न हुआ मानो किसी ने उस के सिर में

हथौड़ा दे मारा। उस की मां ने तीन लड़कियों के बाद इस बार पुत्र को जन्म दिया था और वह यह उस की पहली बैसाखी थी।

पूरो खड़ी थी, छत पर बैठ गयी। कौन जाने इस समय उस की माँ ने उस के छोटे भाई को पानी चखाया होगा। पास बहती हुई किसी नदी का पानी लेकर गुलाब के फूल को उस पानी में भिगाकर, उस के भाई के नन्हें गुलाबी होठों से लगाया होगा। फिर उस की माँ को बधाइयाँ मिली होंगी। और कौन जाने कौन जाने इस समय उस की मां को अपनी पेट की जायी पूरो की याद आ गयी होगी

पूरो की आंखों में आंसू भी आ-आकर थक चुके थे। वह दोनों हाथों में सिर को पकड़े बैठी रही।

युवा जाट लड़कों की एक टोली कानों में फूल अड़ाये हंसती गाती पर से गुज़र रही थी। उन में से कोई बोली गा रहा था

मूह ते बठी दातन करदी
चिट्टेयाँ दन्दा ने मारी
नी आपे तनूँ ले जाणगे
जिन्हा नूँ लग्गें पियारी
नी आप तनूँ ले जाणगे

'काश! कोई प्यारी लगनेवालियों के हाल तो देखे।" पूरो के मुंह से धीरे से निकल गया।

फिर पूरो के मन में एक विचार आया वह रशीद को ही प्यारी लगी, रशीद उसे आया। वह अपने मंगेतर रामचन्द को क्या प्यारी न लगी? उस ने तो उस की बात भी नहीं पूछी। वह तो रामचन्द को प्यारी लगना चाहती थी। रशीद को न तो उस ने स्वयं ढूँढा था न ही उस के माता पिता ने उसे चुना था।

जाट हंसते जा रहे थे कूदते जा रहे थे भंगड़ा नाचते जा रहे थे 'बोलियां गाते जा रहे थे

तेरे लौंग दा पज्जा लिशकारा
हालिया नूँ हल भुल्ल गये
तेरा भिज्जया परी दा लहँगा
पच्छों दियाँ पण कणियाँ
सानूँ कण्ड ना दस मुटियारे
ना राह राहे जाण वालीए

पूरो सोचती रही सब गीत सुन्दर लड़कियों के ही गुण गाते हैं सारे भजन सच्चे प्रेम का ही वर्णन करते हैं। क्या कभी ऐसे गीत भी बनेंगे जिन में मुझ जैसी लड़कियों के रुदन की कथा लिखी जायेगी? क्या कभी ऐसे भजन भी होंगे जिन का कोई भगवान ही न होगा?

चढ़ता जवानीवाली कुछ नवयुवतियाँ अपने यौवन की उन्ठ सरता में अपनी एक अलग टाली बनाकर मेले में चली जा रही थी। कुछ दूर पर जा रहे जाट लडके अपनी टालिया में से मुड मुडकर उन की ओर ताक झाक रहे थे, और हँस रहे थे। शायद उन मे हँसी मजाक कर रहे हा। पूरो सोचने लगी, यदि सब जवान लडकियो को यह लडके अपनी-अपना घाडिया पर उठाकर भाग जायें, फिर क्या हो? यदि ये इन लडकियो को उठाकर ले जायें

पूरो का बच्चा

भरी गरमी आ गयी थी। 'छिपटिया डालकर जलाये गये तदूर की भाँति धरती जल रही थी।

पूरो कभी बठती, कभी उठती कभी लेट रहती थी। आज उस का जी ठीक नही था। पल-पल पर वह पानी पी रही था। उस की पडासिन ने उस से कहा था, "जब भी हा आज नहा ले और अपना सिर भी धो ले फिर क्या पता रात का या सवेरे हा तेर घर कुछ हा जाये फिर तू कितने ही दिन उठने योग्य न रहेगी।"

रशीद ने देखा पूरो का रग शरीर में उठती पीडा क साथ साथ पूनी जैसा सफेद होता जा रहा था। रशीद को वह समय याद आ गया जब वह छत्तोआनी की कच्ची सडक से पूरो को अपने आगे घोडी पर बिठाकर भगा लाया था। उस समय भी पूरो का रग सफेद फिटकरी जसा हो गया था। उस समय पूरो की आत्मा में से चीखें उठ रही थी आज उस के रक्त माम में से।

रशीद ने रहीम के घर अपने खेता पर काम करनेवाला एक नौकर भेजा। पूरो को अकेली छोडकर जाने का उसे साहस न हाता था। जब रहीम की माँ पहुची, उस समय बढती हुई पीडा पूरो के मुख पर बल खा रही थी। आते समय रहीम की मा अपना गलीवाली उस रेशमा दाई को भी लेती आयी थी जिस ने रहीम की दाना स्त्रिया के दा-दो, तीन-तीन लडके लडकिया पदा हाने के समय मदद दी थी।

दाई ने आते ही एक पुरानी दरी फश पर डालकर उस पर पूरा का लिटा दिया। पूरो चारपाई की नरमाई को छोडकर कच्ची जमीन पर लेटी कराहने लगी।

रशीद बाहर दहली के पास खडा था। बन्द किये हुए भीतरी किवाड के अन्दर से पूरो की दाँतों म भिंची हुई लम्बी लम्बी हुकार रशीद को सुनाई देती रही। उस का मन कर रहा था, पूरा के शरीर म से बहुत नही ता कम से कम आधी पीडा निकालकर अपने में डाल ल। पूरा अकेली ही पडी कराह रही थी।

दाई नयी गोटवाले पखे से पूरा के मुख पर धीरे धीरे हवा करती रही। कितनी ही बार रहीम की मा ने घूँट घूँट कर के पूरा के मुँह में पानी डाला।

बाहर खड़े हुए रशीद ने तीन ज़ोर की चीख़ों के बाद बच्चे के टिटियाने की आवाज़ सुनी। उस के बाद पूरो के मुख से कोई आवाज़ न निकली। उस का कष्ट समाप्त हो चुका था। रशीद ने चैन की साँस लिया। उस का जी कर रहा था कि वह भीतर चला जाये। दाई तो शायद बच्चे की देखभाल में लगी होगी, वह जा कर पूरो को सँभाले। पूरो अभी तक उस के हाथों रोती ही रही थी, पूरो अभी तक उस के कारण कराहती ही रही थी। पर भीतर उस की चाची बैठी हुई थी और भीतर दाई बैठी हुई थी। जब तक वे उसे भीतर न बुलावें, भीतर जाना उसे बड़ी अभद्रता प्रतीत होती थी।

मिनट पर मिनट बीतते गये पूरो की फिर आवाज़ नहीं आयी। रशीद के दिल में घबराहट उत्पन्न हुई—पूरो जीवित तो है? उस की आवाज़ इतनी-सी भी क्यों नहीं आती?

इसी प्रकार आधा घण्टा बीत गया। दाई ने बाहर आकर रशीद से कहा "बेटा, बधाई हो लड़का हुआ है।

उस का क्या हाल है?" रशीद ने पूछा।

"ठीक-ठाक है बेटा! ऐसे ही जुनने बड़न हैं लड़के छत से तो गिर नहीं पड़ते।" दाई ने हौसले के साथ मुसकराकर कहा उस हौसले के साथ जिस से उस ने सैकड़ा स्त्रियों की पीड़ा को अपने हाथों पर झेला था।

जब रशीद अन्दर गया तो पूरो लेटी हुई थी। उस की आखें निढाल थीं। उस के पास ही एक सफ़ेद कपड़े में लपेटा हुआ उस का और रशीद का पुत्र पड़ा अँगूठा चूस रहा था।

रशीद का हृदय गर्व से भर उठा। उस ने पूरो पर विजय प्राप्त कर ली थी इस जुए में उस ने सारी की सारी पूरो को जीत लिया था। पूरो अब केवल उस की भगायी हुई रखैल ही नहीं थी वह अब केवल उस की घर में डाली हुई स्त्री ही नहीं थी, अब वह उस के पुत्र की माँ भी थी।

रहीम की माँ के कह अनुसार रशीद ने एक रुपया और गुड़ की भेली अपने पुत्र के ऊपर वारी। पूरो की उनींदी आखें खुलीं, उस ने रशीद को देखा।

'अब तू मुझ से क्या कहता है? मैं ने तुझे अपना आपा दिया मैं ने तुझे एक पुत्र दिया है अब मेरे पास बाकी क्या रह गया है?' मानो पूरो ने मूक जिह्वा से रशीद से कहा। फिर पूरो ने आखें मीच लीं।

गरम गुड़ और पिसे हुए बादाम कुछ चम्मच पीकर जब पूरो के शरीर में कुछ जान आयी तो उस ने देखा कि उस के बच्चे का नरम-नरम मुँह उस की बाह से लग रहा है। पूरो के शरीर में एक कपकँपी-सी आ गयी। उसे लगा कि एक नरम सफ़ेद कीड़ा उस के शरीर पर चढ़ रहा है। पूरो को घृणा-सी हुई। उस का मन किया अपनी बाहों से लगे हुए कीड़े का वह तोड़ डाले अपने पास से उसे दूर फेंक दे ऐसे

जम वाई चुभे हुए काटे का नाखूना म फंसाकर निकाल देता है, जमे काइ धँस हुए गाखरू का उखाडकर फेंक दता ह, जम काद चिमटी हुई किल्नी को नाचकर अलग कर दता ह, जस काइ चिपटी हुई जाक का ताड फेंकता ह

रहीम की माँ का इन के घर पूरे तेरह दिन रहना था। अभी पूरा के लडका हुए कवल चार दिन हुए थे।

पाचवें दिन पूरा क दूध उतरा। अब तक दाइ रुई की बत्तिया बनाकर लडके के मुँह में दूध दती रही था। आज उस ने लडके को पूरा के स्तन से लगा दिया।

लडका पूरो की गाद म पडा रहा। उस के शरीर से चिपटा रहा। पूरा न अपनी अँतडियों में एक खिचन-सी अनुभव की। उस का मन किया कि वह लडके का गले लगाकर फूट-फूटकर राये। लडका उस के अपने रक्त का बना हुआ खिलौना था, उस क ही माम का बना हुआ पुतला था। इस भरे-पूरे ससार म यह एक लडका ही उस का अपना था। वह अब कभी भी अपना माँ का मुख न देख सकेगी, वह अब कभी भी अपने पिता का मुख न दख सकेगी, वह अपने भाई बहना का भी कभी न दख सकेगी वह वह कवल अपने लडके का मुँह देखा करगी, जिस के रक्त म उस के अपने माता पिता का रक्त भी मिला हुआ था। उस के माता पिता उस ता ताडकर अलग फेंक गय, किन्तु अपने रक्त का कस अलग कर सकेंग जा कि पूरा के अग अग म रचा हुआ था, जा कि पूरा के घर उत्पन्न हुए लडक के रक्त म मिला हुआ था!

बच्चा पूरा का दूध पीता रहा। फिर पूरा का लगा यह लडका जबरदस्ती ही उस की नसा में स दूध खीच रहा है जबरदस्ती जबरदस्ती इस के पिता ने भी ता उस क साथ जबरदस्ती की थी। लडका भी ता अपन पिता का ही पुत्र था अपने पिता का रक्त था अपने पिता का माम था अपने पिता का रूप था। जबरदस्ती यह उस के शरीर म धरा गया था जबरदस्ती ही उस क पेट में पल गया था, और अब जबरदस्ती हा उस की नसा से दूध खीच रहा था

पूरा ने अपने माथे का छुआ। आग म पडी हुई इट की भाति उस का माथा गरम था। शायद उसे ज्वर चढा हुआ था पूरा के मस्तिष्क म एक विचार घूमने लगा, यह लडका उस लडक का पिता सब पुरुष जाति पुरुष पुरुष जो स्त्री क शरीर का कुत्ते की हड्डी की भाँति चूसते ह, कुत्ते की हड्डी का भाति चबाते ह।

लडका पूरा का दूध पीता रहा। पूरा का मन रहँट के डाला की भाँति भरता और खाली हाता रहा।

अनाथ

पूरा के गालमटोल लड़के का सब जावद कहकर पुकारते थे। पूरा उस सुतली की पलंगिया पर डालकर देखती रहती थी। टाँगें चला चलाकर वह अपने ऊपर की चादर उतार देता और उसे पैरों में रौंद देता। पूरा ने उस के पाँव में चाँदी की पतली सी पाजेब डाल रखी थी। जब वह टाँग मारता पाजेब की हल्की-सी छन छन पलंगिया पर सुनाई देती। लातें चलाते समय ज़ोर लगाने के कारण उस का मुँह लाल हो जाता और उसे हिचकियाँ आने लगतीं।

फिर पूरा उस के हाथों की ओर देखती। उस की हथेली वास्तव में बहुत ही गोरी थी, और हथेली के पीछे की ओर मांस इस तरह उभरा हुआ था कि पूरा को उस के हाथ बिल्कुल मोम के उस बबुए जैसे लगते थे जिसे छुटपन में उस ने सियाम से आते हुए कलकत्ते के एक बाज़ार में खरीदा था। पूरा ने उस बबुए का कपड़े से बुनकर एक कुरता पहनाया था छोटे मोतियों का एक धागे में पिरोकर उस बबुए को माला पहनायी थी। जावद के हाथ बिल्कुल उस बबुए के हाथों की भाँति थल थल करते थे। मोम का वह बबुआ शायद अभी तक नहीं टूटा होगा। पूरा सोचने लगती कभी-कभी काँच और मिट्टी की वस्तुओं का जीवन भी कितना लम्बा हो जाता है, शायद आज भी उस बबुए से पूरा की कोई बहन खेल रही होगी।

मुँह-अँधेरे ही पूरा खेतों में जाती। रशीद लड़के के पास बैठता। एक दिन अभी अँधेरा ही था, पूरा खेतों से लौट रही थी। गाँव के बाहर मुसलमानों के कुएँ पर उस ने हाथ पैर धोये और जब वह अपने घर को लौट रही थी उसे अपनी गली की एक लड़की कम्मो दिखाई दी।

शरद ऋतु की हल्की-हल्की ठण्ड थी। कम्मो पानी की बटलोई को पत्थर के एक छोटे-से घड़े पर रखकर खड़ी हो गयी थी। पूरा जब उस के पास से गुज़री कम्मो ने काँपते हुए हाथ से पानी की उस बटलोई को उठा लिया। शायद उस के कन्धे बटलोई का भार सहार न सके बटलाई कम्मो के कन्धे से गिरने लगी। बटलोई के नीचे टिकी हुई कम्मो की हथेली भार के कारण बीच से ही दोहरी होती हुई प्रतीत होती थी। दायें हाथ से बटलोई को सहारा देते हुए कम्मो के मुँह से निकला—*आ माँ!'*

पूरा के पाँव रुक गये। पूरा कम्मो के पास हो गयी। उस का मन किया, दस बारह बरस की इस लड़की कम्मो के कन्धे से बटलोई उतार ले। कम्मो उस के साथ साथ चलती जाये कम्मो जो पाँवों से नंगी थी जो सदा खद्दर के सुथने के पायँचे ऊपर को मोड़ रखती थी, जिस की धारियोंवाली कमीज़ के मोढ़े पर लगा हुआ पैबन्द कभी

उधड जाता था, कभी फिर लग जाता था, जिस की चुनरी के पल्ले सदा तार-तार होकर लटके रहते थे, जिस के बाल सन बान जमे गुच्छ और बिखरे रहते थे, और जिसे पूरो ने सदा दूर से ही देखा था। आज वह उस के पास जाकर उस के उन कन्धों पर से बटलोई उतार ले जिन कन्धों की हड्डियाँ पीतल का बटलोई से टकरा रहा थी।

"बडी देर हो गयी है ?" बरतन के भार से नीचे दबी कम्मो ने मानो पूरो से आज देर न होने का एक सहारा माँगा।

'अभी तो दिन भी नहीं निकला।" पूरो ने स्थिर स्वर में कहा।

न जाने लडकी में कुछ साहस आ गया, उस ने अपने कन्धों का भार फिर धरती पर रख दिया। बटलोई के मुँह में से कोई एक चुल्लू भर पानी छलककर कम्मो के कन्धों पर गिर पडा। घिसी हुई धारियोंवाली कमीज को पार कर के पानी की ठण्ड कम्मो के शरीर में फैल गयी। जाडे की ठिठुरन कम्मो के बदन में दौड गयी।

पूरो रुक गयी। कम्मो पूरो की ओर देखकर हँस पडी। एक घडी पहले वह देर हो जाने के डर से और बरतन के बोझ से सहमी हुई थी। पूरो ने कम्मो के मुख पर सदा वही भय का भाव देखा था। उस समय उस के चौडे होठों पर फैली हुई हँसी पूरो को ऐसी लगती जैसे कि उस लडकी को हँसना आता ही न हो वह यों ही अपने होठ मरोड रही हो मानो किसी का मुँह चिढा रही हो।

"कम्मो ! तू रोज इसी वक्त आती है ?" कम्मो की जो आवाजें पडती थी उन से पूरो को कम्मो का नाम मालूम हो गया था।

"लगता है, आज कुछ देर हो गयी है मुझे मार पडेगी।" कम्मो ने फिर बटलोई पर हाथ धर लिया। मानो समय का जिक्र ही उस के लिए डरावना हो गया हो। उस के मुख पर से उस की हँसी कच्चे रंग की भाँति उतर गयी और फिर वही पुराना भय का भाव उस के मुख पर आ गया।

"कम्मो ! वह तेरा कौन लगती है ?

"चाची।" कम्मो ने कहा और उस की बाँह बटलोई के भार के नीचे मुड गयी, कौन जाने उस बोझ के कारण या चाची के नाम से।

'[illegible] कहे तो मैं तेरी बटलोई ले चलूँ।" पूरो ने कहा, पर अपना हाथ आगे न बढाया। पूरो को इस बात का पूरा तरह ध्यान था कि लोग जानते थे कि उस का नाम हमीदा है—हमीदा—रशीद की पत्नी, और कम्मो एक हिन्दू लडकी था।

"बटलोई भ्रष्ट हो जायगी।' कम्मो ने निःशंक कहा।

"पानी तो भ्रष्ट नहीं होगा। मैं पानी को हाथ नहीं लगाऊँगी, तू जाकर बाहर से बटलोई माज लीजो।" कहते-कहते पूरो हँस पडी। कम्मो भी हँस पडी पर वह बटलोई उठाये रही।

दोनों अभी थोडी ही दूर गयी होंगी कि कम्मो का पैर मुड गया। गिरती हुई

वटलोई को पूरो ने थाम लिया, पर कम्मो कंकड़-पत्थरों पर गिर पड़ी। कम्मो के पैर में मोच आ गयी।

पूरो ने वटलोई धरकर कम्मो का पैर थामा। हथेली से कम्मो के पैर का टखने के पास मला। देखते-देखते कम्मो उठने योग्य हो गयी। पूरो वटलोई उठाकर उस के साथ-साथ चलने लगी।

'ओ माँ!' कहकर कम्मो रोने लगी। पूरो को लगा जैसे कम्मो अपने तमाम दुखों के लिए अपनी परलोकवासी माँ को उलाहना दे रही है।

'पत्थर पर के हमारे लिए छोड़ गये' पूरो ने कई बार कम्मो की चाची को कहते सुना था। कम्मो के माता पिता कोई न था। कम्मो का पिता तो "नाम" जीवित था, पर कहते थे उस ने शहर में कोई औरत रखी हुई थी। वह कम्मो की बात न पूछती थी और इसी कारण कम्मो का पिता भी उस से कोई वास्ता न रखता था। पूरो सोच रही थी जब माँएँ मर जाती हैं तब बाप भी पराये हो जाते हैं, सोचते सोचते उस का ध्यान अपने जीवन की ओर चला गया, माँ-बाप जीवित हों फिर भी पिता पराये हो जाते हैं, माँएँ भी पराया हो जाती हैं।

गाँव अब स्पष्ट दीखने लगा था। प्रकाश भी बढ़ गया था और उन की गली का मोड़ भी अब आ गया था। फिर रशीद का यह डर था कि कोई पूरो को वटलोई उठाये न देख ले। कम्मो ने जब वटलोई सँभाली, उस के पाँव काँप रहे थे। पूरो ने जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाये और कम्मो से अलग हो अपनी गली में मुड़ गयी।

उसी दिन दोपहर के समय पूरो का लड़का कुछ ज़िद कर के रो रहा था और पूरो उसे बहलाने में लगी हुई थी, जब दरवाज़ा खोलकर कम्मो उस के घर में आ गयी।

पूरो ने आगे बढ़कर कम्मो को अपने से चिपटा लिया। पूरो को लगा उस के पुत्र की अपेक्षा कम्मो को बहलाये जाने की अधिक आवश्यकता है, कम्मो जिस के आँसू पोंछनेवाला कोई न था।

कम्मो के आँसू पूरो की बाँह पर गिर रहे थे। पूरो के जी में वही विचार रह रहकर आ रहा था कि जैसे वह जावेद की माँ है वैसे ही कम्मो की माँ भी बन जाये — कम्मो ऐंठकर रोने लगे, वह उसे उठा उठाकर बिठाये, उसे गोद में ले लेकर फिर उसे चूमते न थके। वह जावेद की माँ है, वह कम्मो की माँ भी बन जाये, वह सब अनाथों की माँ बन जाये। वह एक अच्छी पुत्री नहीं बन सकी थी, वह एक अच्छी माँ बन जाये।

कम्मो हिन्दू थी और पूरो... पूरो एक मुसलमानी थी, यद्यपि अभी तक अपने आप को वह पूरो ही समझती थी। कम्मो पूरो के घर का कुछ खा नहीं सकती थी, पर पूरो का जी करता था कि कम्मो को अपने हाथ से कौर खिलाये, उसे अपने हाथ

पूरो ने फिर कम्मो का पैर मला हथेलियों से गरम गरम घी रगड़ा रुई से सेंक किया।

कम्मो घर जाने की जल्दी करने लगी। उस की चाची की लम्बी झाड़ उस की आखों में मलाम्बा की भांति फिर रही थी। कम्मो दुलाई निरांदनेवाली सुई लाने के बहाने चली आयी थी।

पूरो ने कम्मो को बादामवाला गुड़ खिलाया, और फिर दुलाई निरादनेवाली सुई भीतर से निकाल कर दी।

जाड़ा दिन दिन बढ़ रहा था। लोगो ने मोटे कपड़े पहन लिये थे। लोगों ने रुई भरवाकर काली छींट की फतूहियाँ सिलवायी थी। लोगो ने मोटे खेसों में अपने कन्धो को लपेट लिया था।

कम्मो अपनी आयु के वर्ष खाये जा रही थी। न उस के शरीर पर यौवन चढ़ता था, न ही उस के शरीर पर कभी नये वस्त्र दिखाई दिये थे। उस के नंगे पैर अब ठण्ड से ठिठुरने लगे थे।

पूरो ने कम्मो के लिए एक नयी जूती बनवायी, पर कम्मो के लिए अपने पैरों में उस जूती को पहनना आसान काम नहीं था।

बहुत सोच विचार के बाद कम्मो को वह जूती पहना दी गयी, और कम्मो ने अपनी चाची से कह दिया कि सामने ईख के खेत में पड़ी मिली है। चाची ने यह बात मानी तो नहीं—भला गाँव में ऐसी कौन होगी जो अपनी नयी जूती ऐसे फेंक आयी—पर वह कुछ बोली नहीं। कम्मो जूती पहनती रही।

किन्तु हर रोज़ तो नया चीज़ पड़ी नहीं मिल सकती। पूरो कम्मो की ठिठुरती हुई हड्डियों को देखकर रह जाती।

केवल रात्रि के अन्तिम प्रहर का अन्धकार यह बात जानता था कि पूरो कम्मो की एक-दो बटलोइयाँ उठाकर उसे मास ले लेने देती थी।

कम्मो दिन में एकाध फेरा पूरो के घर का लगा लेती थी—कभी बेलन में रुई साफ कर लेती, कभी चक्की में चने दल लेती, कभी हावनदस्ते में मसाला कूट लेती। पूरो उस का हाथ बटाता। चाची का आधा काम हो जाता। नन्हा बच्चा जावेद कम्मो से हिल गया था। कभी कम्मो न आती तो पूरो उसे छोटे लड़के का उलाहना देती। जहाँ तक कम्मो से बन पड़ता वह कभी नागा न करती।

अब पूरो और कम्मो माँ-बेटियों की भाँति एक दूसरे से लड़ लेती थी, दो सहेलियों की भांति एक दूसरे से चिपट चिपटकर बैठ जाती थीं।

कई बार पूरो का मन करता था कि वह कम्मो के लिए कुछ बनाये। कम्मो के सूखे हुए शरीर पर अब तक हल्का-सा उभार आने लगा था—कम्मो के पिचके हुए गालों पर गोलाई आ गयी थी। पूरो के घर आकर कम्मो अपने बाल सँवारती, पूरो चिकनाई का हाथ लगाकर कम्मो की मेंढियाँ करती।

एक दिन सवेरे मुह-अँधेरे कम्मो पूरा का पकडकर बेतरह रोने लगी। पूरो ने ध्यानपूर्वक उस की ओर देखा, कम्मो गन्ने की भाँति पेरी हुई जान पडती थी।

पूरो ने उसे अपने कलेजे से लगाया, उस का माथा चूमा—किन्तु कम्मो का रोना किसी प्रकार थमने में न आता था। आसुओ से उस की चुनरी भीग गयी थी, आँसुओ से उस के हाथ भीग गये थे।

"मेरी चाची कहती है जो तू अब उस के घर गयी तो मैं तेरा खून पी डालूँगी।" कम्मो ने कहा और पूरो की छाती से लगकर सिसक सिसककर रोने लगी। वह जी भरकर रोया, मानो पूरा उस का एक सहारा हो और उस से अलग करने के लिए कम्मो को कोई हाथ पकडकर खीच रहा हो।

"पर क्यो ? मैं ने क्या किया है ?" पूरो ने ठहरकर पूछा।

'चाची कहती है, सुना है वह घर से भागकर आयी है तू भी किसी दिन उस की तरह भाग जायेगी।' कम्मो ने रोना बन्द कर के कहा। प्रभात का प्रकाश उजला होने लगा था। पूरो टूटी हुई पूनी की भाँति हो गयी थी।

कटु सत्य

पूरो के हृदय पर एक के बाद एक चोटें पडती रही थी। उस का मन और मस्तिष्क इतने अल्प समय में ही कम से कम दस बरस बडे हो गये थे। पूरो की आयु बीस वर्ष से अधिक नही थी, किन्तु आयु उस जो कुछ नही सिखा सकता था वह उसे जीवन के कुठाराघाता ने सिखा दिया था। एक बुद्धिमान विचारक की भाँति पूरो गम्भीर हो गयी थी। पूरो का मन अपनी विलक्षण बात सोचता था बहुत कुछ सोचता था। किन्तु पूरो को अपने विचारो को व्यक्त करना न आता था। पानी के टकराने से जसे झाग उठते है और फिर पानी में समा जाते है उसी प्रकार पूरो के हृदय में उमगें उठती और विलीन हो जाती थी।

कभी-कभार पूरो रहीम के घर उस के घर की स्त्रियो के पास चली जाती थी। उन के पडोस की एक लड़की के पीले मुख से वह बहुत आकर्षित हुई थी। कई बार पूरो का मन करता कि उसे बुला ले। दुखी को दुखा ही पहचानता है। उस लड़की के म्लान मुख पर बडी बडी थकी हुई-सी आँखें थी जो पूरो की ओर कुछ ऐसे झुक पडती थी मानो उन्हें भी पूरो की आवश्यकता हो। होते-होते पूरो को पता लगा कि पिछले से पिछले साल इस लडकी का विवाह हुआ था। कोई कहता था कि उस पर भूत प्रेत था कोई कहता था उसे कोई भीतरी रोग था। न जाने उसे क्या हो गया था उस का शरीर बहुत दुर्बल हो गया था, उस का मुख पीला पड गया था।

पूरो ने इसी तरह आते-जाते उस लडकी से परिचय कर लिया, और उस

परिचय का उस की मां के जरिये से अपने सम बुनवाकर बढ़ा लिया। उस लड़की को सब तारो पुकारते थे।

कुछ दिना बाद पूरो ने सुना, तारो को कई बार दौरे भी पड जाते हैं। उन दिनों तारो अपने मायके आयी हुई थी। अब उसे अपनी ससुराल जाना था। पूरो ने सुना, हर बार अपनी ससुराल जाते समय तारो का इसी प्रकार होता था, और जितनी बार वह अपनी ससुराल से लौटकर आती थी उस के शरीर का मास पहले से भी कम होता था, हर बार उस के शरीर की हड्डियां पहले से भी अधिक निकली हुई होती थी।

देखनेवाले अपने मन में समझते थे कि बस दो-तीन फेरों की बात और है फिर और सूखने के लिए उस के शरीर पर मास रह ही नहीं जायेगा फिर और दुखने के लिए उस की हड्डियों में जान ही न रह जायेगी। किन्तु मुह से कोई कुछ न कहता था, न ले जानेवाले ससुरालवाले कुछ कहते थे न भेजनेवाले मायकेवाले कुछ बोलते थे।

एक दिन तारो बिलकुल अकेली बैठी हुई थी। पूरो उस के पास जाकर बैठ गयी। पहले भी कई बार उस से थोड़ी बहुत बातचीत कर चुकी था, आज उस से बातें करने के लिए बैठ ही गयी।

"तारो! कोई सयाना तो बताता होगा तुझे क्या हुआ है?"

"कुछ भी नही।"

"किसी ने नब्ज़ तो देखी होगी?"

"वैद्यवाले मुरब्बे और अर्क की बोतलें पीते खाते मैं थक गयी हूँ।"

"तारो, कुछ तो बता, क्या अपनी जान की गाहक बनी है?"

"अच्छा है धरती का कुछ भार हल्का हो जायेगा, बहन! तू क्या चिन्ता करती है?"

"धरती पर तो न जाने कितना भार पड़ा हुआ है, तेरे न रहने से कितना कम हो जायेगा। अपनी माँ से पूछकर देख जिस ने तुझे अनेक कष्ट झेलकर पाला है।"

"पाला होगा" तारो ने बेपरवाही से कहा, "दो चार दिन रो धोकर अपने आप चुप हो जायेगी। वह कौन सी सुखी है!"

"पर ऐसी क्या बात है मां से कह तुझे कुछ दिन और न भेजे।"

"फिर क्या फर्क पड़ जायेगा! जसी यहाँ हूँ, वैसी वहाँ।"

"हां लड़कियों को कोई कितने दिन रख सकता है।"

"लड़कियां, हूँह" और तारो बड़बड़ाकर चुप हो गयी। तारो के मन में न जाने क्या उलझन पड़ी हुई थी, न जाने वह क्या कहना चाहती थी, पर कह न पाती थी।

"लड़कियों का क्या है मां-बाप चाहे जिस के हाथ में उस के गले का रस्सी पकड़ा दें।" तारो ने थोड़ी देर ठहरकर कहा।

"वहाँ का पानी अच्छा है ?' पूरो ने पूछा।

अच्छा न भी हो तो भी अच्छा ही है। तारो ने उत्तर दिया।

'हो सकता है तुझे वहाँ का पानी माफिक न आया हो।" पूरो ने बात को चलाये रखने के लिए कहा।

"लड़कियों को सदा पानी माफिक आता है।' तारो ने कुछ ऐसा कहा कि पूरो उस के मुख की ओर देखती रह गयी।

तारो मैं तेरी अपनी ही हूँ, तू कुछ बताती क्यों नहीं ?' पूरो ने इस अपनेपन से कहा कि तारो का हृदय खुल गया।

'बहन, मैं क्या बताऊँ ! लड़कियों को भगवान ने कुछ कहने योग्य जबान ही नहीं दी।'

'ठीक है तारो।'

'माँ बाप के पास मर लिए काई जगह नहीं है क्योंकि किसी भी लड़की के लिए माँ-बाप के पास जगह होती ही नहीं, और मेरे पति के पास भी मेरे लिए जगह नहीं है क्योंकि उन के दिल और घर में एक और औरत बसी हुई है।'

है ! तारो, क्या तेरे आदमी का पहले ब्याह हो चुका था ? तो फिर तेरे माँ बाप ने तुझे वहाँ क्यों दे दिया ?'

'उन्हें पहले खबर नहीं थी और न ही उस का पहले ब्याह हुआ था। उस ने तो बस एक औरत को घर में रखा हुआ है।

पर उस के माँ-बाप को तो खबर होगी ?

जानते सभी थे। वह औरत उन की जात की नहीं है नीच जात की है। उस के माँ-बाप कहते थे कि बहू घर में अपनी ही जात की आनी चाहिए।

पर उन्होंने यह न सोचा कि परायी बेटी का क्या हाल होगा ?

दूसरे के दुख की कौन परवा करता है, बहन ! फिर वे लोग कहते हैं कि रोटी देते हैं कपड़ा देते हैं, खुला हाथ है फिर किस बात का दुख है ?

"जैसे औरत को केवल रोटी और कपड़ा ही चाहिए ?' पूरो ने कहा।

मेरे हृदय में आग सी धधक उठती है। तू नहीं देखती सब देखते हैं। पूरो दो बरस हो गये हैं रोटी और कपड़े के लिए मैं उसे अपना शरीर बेचती हूँ देख मैं वेश्या हूँ देख मैं वेश्या हूँ कहते-कहते तारो गिर पड़ी, उस की मुट्ठियाँ भिंच गयीं उस की आँखें ऊपर चढ़ गयीं उस का शरीर लकड़ी के फट्टे की भाँति अकड़ गया।

पूरो डर गयी। तारो के घर में उस समय और कोई नहीं था। पूरो यह न जानती थी कि उसे क्या करना चाहिए। वह डर रही थी घबरा रही थी। वह तारो की टाँगें दबाने लगी, उस के कन्धे दबाने लगी उस के तलवे सहलाने लगी।

तारो को होश आ गया।

"तू मुझे हाथ मत लगा मैं वेश्या हूँ, तू देखती नहीं तू देखती नहीं " तारो

ऐसा ही बातें कर रही थी।

पूरो सोच रही थी कि अभी इसे होश नहीं आया है कि इतने में तारो की मा आ गयी।

'हाय रे, मैं क्या करूँ, एक तो हमें हमारी किस्मत ने मार डाला, अब इस की बात मार डालेगी।" तारा की माँ निढाल-सी होकर बठ गयी। पूरो चुप रही।

'इस ने और इस के भाई ने तो हमारी जान हलकान कर रखी है। लाहौर कालिज में पढ़ने क्या गया है बहन को भी पढ़ा पढ़ाकर बिगाड़ दिया है। देख, कैसी ऊलजलूल बातें करती है।" तारो की माँ ने फिर दुखपूर्वक कहा।

'अम्मा, जुल्म भी तो बेचारी पर बहुत ही हुआ है।' पूरो ने कहा।

बेटा! हम ने लड़की दे दी हमारा मुह बन्द हो गया। हम अब क्या बोल सकते है! वह अच्छी तरह रखे या दुख दे, मर्द की जात है।" तारो की मा ने कहा।

"मेरे मुह पर ताला डाल दिया गया, मेरे पैरों में बेड़ी डाल दी गयी, उस का क्या बिगड़ा। भगवान ने उसे बन्धन में न डाला। उसे बाधने के लिए भगवान जनमा ही नहीं। सारी रस्सियां भगवान ने मेरे पैरों में ही डाल दी।' तारो की मुट्ठियां भिंच गयीं उस की टांगें फिर अकड़ गयीं। उस की माँ ने उस के मुँह पर पानी के छीटे मारे, चुल्लू भर भरकर उस के मुह में पानी डाला।

पूरो ठक-सी हो गयी थी। आज उस ने पहली बार अनुभव किया था कि लड़कियां इस तरह भी सोच सकती हैं, लड़कियां इस तरह भी बोल सकती है। वैसे तो पूरो के मन में भी गुबार उठा करते थे पर उन्हें व्यक्त करना उसे न आता था।

'यह धोखा है, निरा धोखा है। मेरा ब्याह नहीं हुआ, तुम सब झूठ बोलते हो! तुम ने मुझे क्या पकड़ रखा है? परे हटो 'और बेसुध तारो अपने पैरों को धरती पर पटकने लगी।

"तारा, होश में आ। कैसी बातें मुह से निकालती है! कोई सुनेगा तो क्या कहेगा! वह तेरा पति है जरा मुह में लगाम दे, ऐसे न बोल।' तारा की माँ ऐसे कह रही थी मानो बेसुध पड़ी तारा को झिड़क रही हो, वैसे उस की आंख भर आयी थी।

तारो की चेतना कभी लौट आती थी, कभी वह फिर अचेत हो जाती थी।

"वहां जाकर ऐसा पागलपन मत बखेरना। अपनी जीभ को ठिकाने रख। वह समझे या न समझे ईश्वर तो गवाह है कि वह तुझे ब्याह कर ले गया है। तारा की माँ कह रही थी।

मां, ईश्वर ने अगर मेरे ब्याह की गवाही दी है तो झूठी गवाही दी है। माँ, मेरा ब्याह नहीं तारो पागलों की भांति छत की लम्बी-लम्बी कड़ियां को। और देखने लगी। पूरो तारो के चेहरे की ओर देख रही थी, तारा जा कि सब कुछ कहने के बाद भी विवाह के इस महान असत्य से मुक्त न हो सकती थी, वरन उस की आयु

के दिवस बड़ा द्रुत गति से जीवन के सत्य असत्य का पीछा छानते आगे बढ़ते जा रहे थे।

गाधूलि की वला थी। पूरा हृदय पर बोझ लिये हुए उठ खड़ी हुई। पूरो का मन मानो इस भर-पूर ससार से एकाएक उचाट हो गया।

पिछले कुछ दिनों स पूरा अपने घर की दीवारो से परच गयी थी। रशीद की छोटी छोटी ठठोलियो ने, घर के छोटे-बडे कामकाज ने, और सब म अधिक जावद की तोतला बोली ने मानो पूरो के उचाट मन को पतले-पतले धागो स लपेट लिया था। उस का मन कुछ टिक गया था। आज तारो की बावली बातो ने जसे पूरा के मन पर लिपट कई धागो का तोड दिया। उस का मन विकल हो गया। रात का रोटी टुकडा करते समय उसे नमक मसाले का अदाज भी भूल गया दाल गुलभत्ता हो गयी, रोटियाँ कच्ची-पक्की रह गयी।

आगे के दिना म भी उस की उदासीनता में कुछ अतर न पडा। फिर न जान उस ने क्या-क्या सकल्प धारण कर लिये। वह दिन में एक बार भोजन करने लगी। पहर रात रहते जाग उठती ध्यान करती और घण्टा अपना आँखें और कान बन्द किये रहती मानो उस न ससार स अपना चित्त हटा लिया हो।

पूरो का नीद कम हो गयी। उस का खाना कम हो गया। धीरे धीरे उस ने अपने लिए सूखे छानस में नमक डालकर केवल एक रोटी पकानी आरम्भ कर दी। उस रोटी में न वह घी चुपडती न ही उस दूध या दही के साथ खाती। उसी एक रोटी के सहारे वह पूरा दिन काट लेती। कुछ ही दिनो मे पूरो की आखो के नीचे नीले-नील हल्के पड गये, उस का सारा शरीर कान्तिहीन हो गया।

इधर कुछ दिनो से रशीद भी बातचीत म पूरो का मन बहलान म अधिक व्यस्त हो गया था। रोजा और नियम व्रत आदि का लेकर वह हँसी ठठोला करता पूरो के मन को पलटने की चेष्टा करता और प्यार भी पहले स अधिक करने लगा था। किन्तु रशीद के सारे जतन विफल रहे। पूरो के मन और मस्तिष्क पर रशीद के प्रयत्नो का कोई प्रभाव न पडा। पूरो के आचार-व्यवहार म कोई अन्तर न आया।

प्रतिदिन के इस बरताव के बाद मानो अब रशीद का हृदय बुझने लगा था। दिन दिन उतरता हुआ पूरो का मुँह रशीद स देखा न जाता था। उस के घर म मानो वीरानी ने अपने पर जमा लिये थे। रशीद के चेहरे पर भी एक वेदनापूर्ण मौन दीख पडने लगा था। दोनो प्राणी घर की, समाज की शरीर की दीवारो म घिरे हुए थे पर दोनो के बीच जसे अब एक भीत खडी हो गयी थी।

पूरो के यहा एक भैंस थी। वह नियम स दूध जमाती दही रिडकती। रशीद के खेतो म काम करनेवाले जब पशुओ के लिए चारा लेकर आते, तो पूरो उन को और उन के बच्चों को गिलास भर भरकर लस्सी देती ऊपर स मक्खन के पेड भी डाल देती थी। पूरो के मुह में कुछ न पडता। रशीद का मन भी खाने-पाने स हट-सा गया

था। घर के चूल्हे में आग जलती अवश्य थी, पर घर की बोलचाल पर और जीवन की हरियाली पर जैसे कोहरा जम गया था।

जावेद के भोले मुख पर भी जैसे अपने माता पिता के उदास मुख की परछाई पड़ गयी थी। जावेद के लिए भी कोई विशेष लाड़ न था, यद्यपि पूरो उस के सारे काम नियम से करती थी और रशीद उसे दिल से प्यार करता था।

एक रात माने-साने रशीद को ज्वर हो गया। उस का शरीर जलने लगा। सवेरे जब पूरो ने रशीद के माथे पर हाथ रखकर देखा तो रशीद का बहुत तेज़ बुखार चढ़ा हुआ था।

गांव के हकीम की दवा शुरू हुई। रशीद को ज्वर आये तीन दिन हो गये थे। जब हकीम ने शंका प्रकट की कि रशीद को शायद मियादी बुखार हो गया है।

रशीद की बीमारी ने पूरो के नेम धरम और वैराग्य को अपनी ओर खींच लिया। पूरो दवा-दारू देती रशीद के शरीर को दबाती चौके चूल्हे को सम्भालती थी। जावेद का मुंह उतरा हुआ दीख पड़ने लगा। दुपहरी चढ़ जाती, जावेद के मुंह पर फिटकार बरसने लगती किन्तु पूरो को उस की सुधि लेने का अवकाश न मिलता था। और कई रातें बीत गयीं। कई दिन बीत गये पर रशीद का बुखार न हटा।

'पूरो! मेरा गुनाह बख्श दे। मेरा कुसूर माफ कर। पूरो पूरो रशीद ने बुखार की तेज़ी में कहा। रात्रि का तीसरा पहर था। पूरो घबरा उठी। इतने दिनों की लगातार चिन्ता और रातों के जागरण ने उसे पहले ही थका डाला था। वह उठकर घबराई हुई सी रशीद की खाट के पास बैठ गयी। रशीद के माथे पर हाथ फेरती रही, रशीद के पैर दबाती रही पर रशीद को अपना होश न था।

"अच्छा पूरो, मैं चलता हूं पूरो मेरी रूह ' और रशीद टूटे-फूटे शब्द बोलता रहा। पूरो का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।

'बस कर रशीद मेरे घावों पर नमक मत छिड़क। पूरो ने शांत स्वर में कहा। पर रशीद को बिलकुल होश न था, वह उसी प्रकार अस्पष्ट शब्द बोलता रहा। कोई-कोई बात पूरो की समझ में आ जाती और कई बातें रशीद के कण्ठ से उठकर उस के होठों पर ही शेष हो जाती।

प्रलय-सी काली अंधकारमय रात थी। पूरो घर में अकेली थी, पर उसे ऐसा लग रहा था मानो वह इस विशाल संसार में अकेली हो। रशीद के सिवा उस के घावों पर फाहा रखनेवाला और कौन था!

पूरो ने रशीद के माथे पर घड़े के ठण्डे पानी में भिगो भिगोकर पट्टियां रखीं। उस का माथा चूल्हे की ईंट की भांति गरम था। वह पट्टियां भिगाती रही। कटोरे का पानी मिनटों में ही एक काढ़ा-सा बन गया। पूरो ने पानी बदला। उस की आंखों से आंसू ढुलक-ढुलककर रशीद के माथे पर गिरते रहे।

सवेरे पौ फटने तक, न जाने पानी की ठण्डक के कारण या आंसुओं के गीलेपन

से, रशीद का ज्वर उतर गया। उस का शरीर धुल गया था। उस का बहुत आराम की नींद में बदल गया।

जब रशीद की आँख खुली उसे अपना शरीर हल्का-सा प्रतीत हुआ। आज उस के माथे में पीड़ा की धारें नहीं थी। रशीद ने आराम का एक लम्बा साँस लेकर करवट बदली। पूरो रशीद के सिरहाने की ओर ज़मीन पर बैठी-बैठी चारपाई का सहारा लिये सो गयी था। उस के एक हाथ में अभी तक कपड़े की पट्टी थी और पाँव के पास पानी का कटोरा पड़ा हुआ था।

पूरो को देखकर रशीद का जी भर आया। उस ने उस के चेहरे की ओर देखा। उस का उतरा हुआ मुख नींद में डूबा हुआ था।

अपनी बीमारी और पूरो की टहल रशीद के मन में एक उथल-पुथल-सी मचा रही थी। पूरो के मुख से और कपड़े की पट्टियों से रशीद ने भली भाँति जान लिया कि बीती रात कितनी कठिन रही होगी। रशीद ने अपना कमज़ोर-सा दाहिना हाथ उठाकर पूरो के सिर पर धर दिया। पूरो के बिखरे हुए बालों में रशीद की उंगलियाँ घूमती रहीं। उस की उँगलियाँ पूरो के बालों को उस के माथे को धीरे धीरे छूती रहीं। पूरो का सारा शरीर निद्रा की गोद में मग्न था। रशीद की आँखों के कोनों से बुन्द-बुन्द कर आँसू बिस्तर पर पड़ते रहे। रशीद एक विचित्र से आनन्द का अनुभव करता हुआ जागता रहा।

रशीद ने पूरो के शरीर पर तो पूर्ण अधिकार कर लिया था पर उस की यह कामना थी कि वह पूरो की आत्मा पर भी पूर्ण अधिकार प्राप्त कर ले। पूरो का उदास रहना उसे खाये जाता था। इस समय पूरा तोड़ी हुई तरनी की डण्डी की भाँति रशीद की चारपाई से लगी सी रही था।

रशीद में शक्ति नहीं थी पर उस के हृदय में यह भाव आ रहा था कि वह पूरो को अपने कलेजे से लगा ले। पिछले कुछ दिनों की घोर उदासी के कारण रशीद का हृदय अत्यन्त पीड़ित था। इस समय रशीद को पूरो के मुख पर स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि पूरो के तन मन में रशीद के सिवा और कुछ नहीं था। रशीद ने अपनी बाँह और आगे बढ़ाकर पूरो के गले से लगा दी। शायद बाँह कुछ ज़ोर से लिपटी पूरो जाग गयी। वह काँप उठी। पर रशीद ठीक था उस का ज्वर उतर चुका था वह बड़ी निढाल आँखों से पूरो को देख रहा था।

रशीद को खाट पर पड़े पूरे दस दिन हो गये थे। उस का ज्वर उतर गया था। वह बहुत ही दुबला हो गया था पर उस का मन बहुत उल्लसित था। पूरो ने अपना सम्पूर्ण प्रेम रशीद की ओर मोड़ लिया था। रशीद के पास बैठ-बैठकर पूरो ने दिन रात एक कर दिये थे। पूरो जावेद को बना सवारकर रशीद के पास बैठा देती थी। उस ने जावेद को कितने ही छोटे छोटे शब्द बोलने सिखा दिये थे। जावेद रशीद के पास-पास घुटनों चलता उस की नकल करता था माँ के सिखाये हुए शब्दों को तोड़-तोड़कर

बोलता था। रशीद का मन उत्फुल्ल था शरीर फूल की भाँति हल्का था। वह मन ही मन अपनी बीमारी को दुआएँ देता था। उस के आगन में खुशी दुगुनी तिगुनी होकर लौट आयी थी।

पूरो का मन करने लगा कि वह सचमच भूल जाये कि रशीद ने उस के साथ बुरा किया था। वह रशीद को बहुत प्यार करने लगे। रशीद उस का पति था, रशीद उस के पुत्र का पिता था। बस यही एक सत्य था और सब कुछ झूठ

एक और पिंजर

अगले कुछ दिनो में रशीद ने एक दो फेरे अपने गाव छत्तोआनी के लगा लिये थे। उस के भाई के साथ जा साझे में उस की जमीन थी, उस का अनाज दाना लेकर रशीद ने बेच लिया था। पर पूरो जिस दिन से सक्कड़वाले आयी थी, उस दिन से उस ने गाव के बाहर पाँव नही धरा था। कभी रशीद कुछ कहता तो पूरो हँसकर कह देती, 'मैं न अपनी मरजी से इस गाव में आयी थी, न अपनी मरजी से इस गाँव से जाऊगी।

जावेद अब दौड़ता फिरता था। रशीद वसे ही शुरू से स्वभाव का नरम था, पूरो को वैसे ही वह बहुत प्यार करता था, पर जावेद पर उस का अपार स्नेह था। जावेद को चूमते, प्यार करते वह अघाता नही था। जावेद,अब कुछ-कुछ तुतलाकर बोलने लगा था। अब्बा-अब्बा कहता रशीद की टाँगा से चिपट जाता था।

पूरो चूल्हे को चिकनी मिट्टी से पोतती तो जावेद दौडा दौडा आकर गीली मिट्टी को थपकने लगता, पूरो के बने हुए चूल्हे को बिगाड जाता। पूरो लस्सी में नमक मिला कर पीने लगती ता जावेद हल्दी और मिरच उस के लस्सी के कटोरे में डाल देता। जावद किवाडा के पीछे छिप जाता, रशीद उसे ढूँढता रहता। जावेद की इन छोटी छोटी क्रीडाओ से, उस की हँसी से रशीद मक्ई के दाने की भाति खिलता रहता।

एक दिन एक स्त्री 'घुग्घू घोडे' लेकर गलियो में बेचता फिर रही थी। जावेद ने मिट्टी के छोटे छोटे खिलौना को और सरकण्डे के झुनझुना को देख लिया। लगा पूरो का पल्ला खीचने। पूरो न मुट्ठी भर अनाज और पुराने कपडे देकर घुग्घू घोडे ले लिय। वह अभी गली म ही बठी थी कि दूर स दौडता हुई एक पागल औरत गुजरी।

स्त्रियो ने दौडकर अपने बच्चे छिपा लिये, दरवाजे बन्द कर लिये, छोटे अनजान बालक चीखने चिल्लाने लगे। पगली के शरीर पर पिण्डलियो जितनी ऊँचा एक सलवार था गले में कोई कपडा न था। उस का रग शायद धूप से झुलस गया था या फिर था ही काला। उस के सिर पर बालो की उलझी हुई धूल-सना लटें थी। जान पडता था मानो जब से वह जनमी थी, कभी नहायी नही थी। अपनी टागा को वह अजीब तरह मरोडती थी बाँहों को वह अजीब तरह फैलाती थी, चलते हुए भी दौड़ता हुई लगती

थी। उस के मुख की ओर देखते ही उस की डरावनी हँसी में बिखरे हुए दाँतों की ओर दृष्टि जाती थी। उस के सूखे हुए जले हुए शरीर से उस की आयु का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता था। बस एक पिंजर था जो दौड़ता फिरता था।

पूरो देखती खड़ी रही। पगली दौड़ती हुई आयी और खिलौने बेचनेवाली कुँजड़िन के छाज में से अपनी दोनों मुट्ठियाँ 'घुग्गू घोड़ों' से भरकर भाग गयी। उस की डरावनी चीखती हुई-सी हँसी की आवाज दूर तक गली में गूजती रही।

पगली सारा-सारा दिन घूमती रहती खेतों में फिरती रहती, क्यारियों में-से भी कुछ खोदकर खा लेती। कभी-कभी स्त्रियाँ एक दो रोटियाँ बैठी हुई पगली के आगे डाल देतीं वह उन्हें चबा जाती। कभी-कभी स्त्रियाँ कोई फटा-पुराना कुरता उसे पहना देतीं, पगली खिलखिलाकर हँसती। कुरता पहने रहती, फिर उस के बटन तोड़ डालती, फिर किसी दिन कुरते को दाँतों से फाड़ देती। फटी धज्जियाँ उस के गले में लटकी रहतीं। फिर पगली उन धज्जियों को भी खींच खींचकर अपने शरीर से दूर कर देती। कभी-कभी अपने शरीर पर से सब कुछ उतार फेंकती। स्त्रियाँ फिर कोई फटी-पुरानी सलवार, कोई फटा-पुराना कुरता उसे पहना देतीं।

पगली अब गाँव सक्कड़वाली में जैसे रच-बस गयी थी। उसे प्रति दिन देखने की सब को आदत-सी पड़ गयी थी। कभी-कभी गाँव के छोटे-छोटे लड़के उस के पीछे लग जाते तालियाँ बजाते पगली को दौड़ाते और खुद उस के पीछे-पीछे दौड़ते। फिर रास्ता चलता कोई सयाना आदमी उन्हें झिड़क देता। लड़के उस का पीछा छोड़ देते।

नन्हे बालकों ने हठ करना छोड़ दिया। माताएँ उन्हें पगली का डरावा देतीं थीं 'पगली पकड़कर ले जायेगी।' रोते हुए बच्चे सहमकर चुप हो जाते थे।

पगली किसी पुआल के नीचे पड़ रहती। कभी कोई पानी का प्याला उस के पास धर जाता, कभी कोई रोटी के टुकड़े उस के सिरहाने रख देता। किसी दयालु ने एक फटा हुई रजाई एक पआल के नीचे धर दी थी। पगली रात को नियम से वहाँ जाकर पड़ रहती थी।

पगली बस दौड़ती थी और हँसती थी। किसी के बच्चे को कभी कुछ भला बुरा नहीं कहती थी, किसी की चीज वस्तु को कभी हाथ नहीं लगाती थी। जमीन पर गिरे हुए रोटी के टुकड़ों को उठा लेती जमीन पर पड़ी हुई वही किसी खाने की चीज को चाट लेती थी।

कुछ ही दिनों में सब ने देखा और पूरो ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि पगली का नंगा पेट उभरता आ रहा है। सारे गाँव की स्त्रियाँ जैसे लाज के मारे गड़ रही हों। पगली न कुछ बोलती थी, न कुछ बताती थी।

पगली का शरीर दिन दिन भरता जा रहा था।

गाँव की स्त्रियों का जी करता था कि वह पगली के शरीर को ढककर रखें। वह उसे किसी तहखाने में डाल दें। पगली की समझ में कुछ न आता था। वह पहले

की ही भाँति हँसती रहती थी, वह वैस ही दौडती रहती थी।

एक दिन कुछ आदमियों ने मिलकर पगली को गाव के बाहर ले जाकर छोड दिया। अँधेरा गहरा हो गया था। उस रात किसी ने पगली को नही देखा। सब सोचने लगे कि पगली अब इस गाव से गया। आँख से दूर दिल से दूर, अब वह किसी दूसरे गाव चली जायेगी।

दूसरा दिन अभी आधा भी न बीता था कि पगली ठीक पहले की भाति गाव की गलियों में दौड रही थी। वह ठीक पहले की ही भाति खेतो म हस रही थी।

"वह कैसा पुरुष था! वह अवश्य ही कोई पशु होगा जिस ने इस जैसी पागल स्त्री की यह दुदशा बना दी!" सब स्त्रियाँ त्राहि त्राहि करती थी। उन का जी पगली के ध्यान से मिचला उठता था।

'जिस के पास न सुन्दरता था न जवानी थी, मास का एक शरीर, जिसे अपनी सुध न थी, जो केवल हड्डियों का एक जीवित पिंजर। एक पागल पिंजर था चीलो ने उस भी नोचनोचकर खा लिया' सोच सोचकर पूरो थक जाती थी।

पगली का पेट दिन दिन बढता जा रहा था।

पिंजर मे पिंजर

यही रात के पिछले पहर का अँधेरा था जिस म पूरो नियमपूर्वक खेतो को जाया करती थी। पूरो अभी बाहरवाली पगडण्डी पर आयी ही थी कि एक पेड के तने के पास उसे एक मनुष्य की आकृति-सी गिरी दीख पडी। पूरो काप उठी। पर वह ऐसे कच्चे जिगरे की औरत नही थी। धीरे से वह गिरे हुए शरीर की ओर बढी। पूरो के लिए उसे पहचानना कठिन नही था। पगली एक पत्थर की मूर्ति की भाति निश्चल उस पेड के नीचे पडी हुई थी। उस के परो के पास एक नवजात बच्चे का शरीर था जिस की नाल अभी उस की ऑवल के साथ जुडी हुई थी।

पूरो एक लम्बी सास खीचकर रह गयी। उस की आखो के आगे अँधेरा आ गया। फिर उसे उस कुछ सुध न रही।

पूरो की रीढ की हड्डी म एकाएक कम्पन दौड गया। वह उलटे पाव दौडकर रशीद को बुला लायी।

पूरो ने एक फटी हुई चद्दर का टुकडा पगली के शरीर पर डाल दिया। फिर रशीद ने पगली की नाडी टटोली। नाडी भी टोहने की आवश्यकता नही था, पगली के मुख पर मौत की मुहर स्पष्ट लगी दीख पडती था। बालो की एक लट उस के माथे पर जम गयी थी।

प्रकृति अपनी पूरी धडकन के साथ पगली के बालक म धडक रही थी। बालक

के मुँह म उस का अपना दाहिना अगूठा पडा हुआ था।

"या अल्लाह! रशीद के मुख से निकला और चाकू स उस ने बालक की नाल को काट दिया।

पूरो ने बालक को अपने सिरवाले पल्ले में लपेट लिया, और फिर दोनो जीव घर को लौट गये।

प्रात काल की धुप की भाँति यह खबर सारे गाव म फैल गया। जो स्त्रियाँ आटा गूध रही थी, उन के हाथो से परात छिटक गयी। जो रोटी बनाने जा रही थी, वे बलते तन्दूर छोड छोडकर पूरो के घर आती और बालक को देख देख जाती थी।

रुई के गाले जसे चिटटे और निर्मल बालक को पूरो ने नहलाकर एक खटोली म लिटा रखा था। कुनकुने दूध म कपडे का छोटा-सा टुकडा भिगा भिगाकर पूरो ने उस के होठो से लगाया। बालक पूरी चतनता से दूध की बूदे चूसने लगा। जावेद अपने घर आये छोटे-से पाहुने को झुक झुककर देखता था।

'रब तेरा भला कर!' 'तेरे बच्चे जिए!' 'बडा पुण्य किया ह!'—गाँव की स्त्रियाँ आ-आकर कहती, अनाथ बालक पर दया करने के लिए शाबाशी देती और लौट जाती।

दो चार आदमियो ने मिलकर पगली के शव को ठिकाने लगा दिया।

अँधेरा हो चला था। पूरो बच्चे के काम-काज में लगी हुई थी। रशीद न लालटन की बत्ती साफ कर क उसे जलाया। बालक न अपनी मोटी मोटी चतन आखो से लालटेन की ओर देखा। अभी उस की कच्ची दृष्टि टिकती नही थी। फिर उस का ध्यान किसी दूसरी ओर हो गया।

पूरो विचारो में डूब गयी।

सोचने लगी, कसा था वह मर्द जिस ने पगली के काले कलूटे कंकाल को हाथ लगाया! क्या एसा पगली की मरजी स हुआ या उस के साथ जोर-जबरदस्ती की गयी! उस मर्द को कभी भूल से भी ध्यान न आया कि उस न पगली पर कितना भारी अत्याचार किया है! उस मर्द को कभी अपने बालक का भी ध्यान न आया जिसे उस ने पगली के पास धरोहर के रूप म रखा था!

शायद पगली यह जानती ही न होगी कि उस के घर एक बालक का जन्म होगा। प्रसव की पीडा उस ने कसे सही होगी! उस पर किसी दाई को दया न आयी। रात के अँधेरे म वह चीखती रही होगी! खुली हवा के झोंके उस के शरीर में शूल मारते रहे होंगे! ठण्डी भूमि पर पडी वह बिलखती रही होगी! परन्तु प्रकृति के कठोर नियम में बँधा उस का बालक दिन पूरा होने पर अपनेआप दुनिया म आया होगा भूमि पर गिर पडा होगा, और पीडा स निचुडी हुई पगली की जीवन डोर टूट गयी होगी!

फिर पूरो सोचने लगी—पगली को जीकर भी क्या लेना था! वह अपने बालक की क्या देख रेख कर सकती थी! अच्छा हुआ उस की जान छूट गयी। उस का

वालक कितना सुन्दर है ! टो-मो हड्डियों क
वाल्क पल गया । कभी मो-मो आँगे ह
का एक छोटा-सा रूप ! न जाने ग्स का
सोचते-सोचते पूरा ऊँघ गया।
रशीद उस भगाये ले जा रहा है।
न्नि रक्कर रशीद न पूरो का घर म
गलिया म घूमने लगी है।
फिर एक न्नि एक प की छाया में
नक्ल सूरत बिल्कुल जावे का सा है।
लिए रो रहा है, पर पूरो के दूध उतर
कापकर पूरो जाग उठी।
रो रहा था। उस ने उस उठाकर
मुख की ओर देखा, वह अभी
फिर उस ने डरते डरते बाहर
तब उस छोड़कर नहीं गया था और
वह अपने घर में सही-सलामत था।
घुँघराले वालोवाला सुन्दर पुत्र था।
घुट घुटकर बातें किया करता था
परिवार और बढ़ गया था।
दिया था। उस ने मुसकर
फिर उस ने उठकर
पूरो का दूध पिया था, और उस का
ने यह सुना हुआ था कि
छोटे बच्चे को अपने स्तन म लगा
तीन दिन में वा
देखकर अचरज करती थी।

जुड़ हुए उपलों में जम
रही था पगली हिन्दू
देखत-देखते उन्होंने हिन्दू
जस किल्ला

इतना काम
गये। पहले
ी नहीं कर
ा सिर फाट
ार मुह पर
ा धुआ मिल
द उस की
ब्वा अच्छी
ा लड़का ले
।
। हड्डिया
का किया
आवें अब
आवें घूमती
आयी ? वह
रते। पूरे छह
मा में से दूध
या था और अपने
ा होकर यह विचार
अजा। पूरो के होठों पर
ा बीड़ा तो उस ने उठाया
ान करेंगे
येगी। वहा उन के सवालों
माम लेगी पर रशीद न

पूरी भी छोटे लड़के को कलेज से लगाये मकान की भीतरी कोठरी में बैठा रहती थी। फिर भी बातें दीवारों को भेदकर उस के कानों में पड़ जाती थीं।

पहले तो एक-दो हिन्दू घरों में बैठकें होती रहीं।

यह बात पक्की है कि पगली हिन्दू थी।" कोई कहता।

हम ने अपने कानों से सुना है, वह लालामूसे के एक अच्छे घराने की लड़की थी, अच्छी भली थी। जब उस की सौतन ने उसे मुरदे की राख खिला दी, बस तभी से वह पागल हो गयी।' कोई कहता।

सुना है उस के घरवालों ने उसे दरवाजा में बन्द कर के रखा, पर उस के भाग्य में तो दरबदरी लिखी थी।' कोई कहता।

अजी यह तो कोरी बातें हैं। मैं ने खुद उस की बाँह पर ओम खुदा हुआ देखा है।' कोई धरती पर हाथ मारकर कहता।

"अन्धेर है, यारो, हमारे देखते-देखते मुसलमान हमारी आंख में धूल झोंक गये।

' धिक्कार है हम पर, हिन्दू बालक को उन्होंने मिनटों में मुसलमान बना लिया

' छोड़ो भी यारो, न जाने वह लड़का किस की बला है, किस की नहीं, हम उस पिल्ले को कहां बांधते फिरेंगे।' कोई जना बीच में यह भी कह देता।

नालायक! सवाल इस समय धरम का है। इस तरह तो कल वह सारा गांव मुसलमान बना लेंगे और तू उन का मुंह देखता रह जायेगा।' एक दो व्यक्ति एक साथ ऊँचे स्वर में बोल उठते।

कमरे की हवा ऐसी हो जाती मानो बन्द दरवाजों में वह घुट गयी हो।

लड़के को हम वापस लायेंगे देखते हैं कौन हमारा हाथ पकड़ता है।

' असल में यही चार पैसों की बात है न? महरी को चन्दा इकट्ठा कर के दे देंगे वह लड़के को अपनेआप पाल लेगी।' कोई जोश के साथ अपनी जगह से जरा आगे सरककर कहता।

'ऐसे गये-बीते तो नहीं सारा गांव मिलकर क्या एक लड़के को न पाल सकेगा?

' कौन कह सकता है कि लड़का भी पगली की तरह गूँगा बहरा निकलता है या बीच में फिर कोई कह उठता।

' फिर क्या हुआ बड़ा होकर धर्मशाला में झाड़ू लगा दिया करेगा। दो रोटियाँ ही खायेगा न!

फिर वह एक-दूसरे के साहस पर साधुवाद करते प्रसन्न होते।

पहले महरी से तो पूछ लो।' कोई कहता।

लो देखो। क्या वह न रखेगी? पहले चादर को जूती उस के सिर पर रखेंगे,

फिर उस से बात करेंगे।"

"अरे भई, लडके का क्या ह। धमशाला में तो ढोर डगर का ही इतना काम ह मुफ्त में काम करनेवाला मिल जायेगा।'

"अजी, अभी इस की बिसात ही क्या ह लडका पल तो जाये। पहले उस का "

"अरे, तुम लोग मरे क्या जाते हो! धरम के नाम पर इतना भी नही कर सकते तो अन्धे कुएँ में कूद मरा।'

"तुम्हारे खेत का पानी कोई अपने खेत में लगा ले तो तुम उस का सिर फाड देते हो, आज तुम्हारा हिन्दुआ का लडका वह उठा कर ले गये हैं तो तुम्हारे मुह पर ताला पड गया ह।'

कमरे की हवा ऐसी हो जाती, मानो उस म पत्थर के कोयले का धुआँ मिल गया हो।

अब जब रशीद अपने खेतो को जाता तो पास से गुजरते हुए हिन्दू उस की ओर कन्खी आखो से देखते। रशीद अपने ध्यान म मस्त चला जाता।

एक-आ बार उस ने बातो-बातो में पूरो से कहा कि भई, गाव की हवा अच्छी नही ह हमें इस झगडे में पडकर क्या लेना ह! बात लम्बी हो जायेगी। वे लडका ले जायें अगर उन की यही मरजी ह। जो लडके के भाग्य म होगा हो जायेगा।

पूरो कहती तो कुछ न थी पर उस का मन व्याकुल हो उठता था। हड्डियो के एक छोटे-से पिंजर को दिन रात कलेजे से लगाकर उस ने छह महीने का किया था। अब वह भी जावद की भाँति गोलमटोल निकलता आता था। उस की आखें अब पूरो को पहचानने लगी थी, जिधर जिधर पूरो जाती उधर उधर उस की आखें घूमती थी। वह रशीद को देखकर बाहें फैलाने लगा था

फिर पूरो सोचती, पहले दिन ही हिन्दुआ को उस की सुधि क्या न आयी? वह उसे ले जाते पाल लेते उसे माँ की-सी गोद देते, उस पिता का-सा स्नेह देते। पूरे छह महीने पूरो ने रातें जागकर काटी थी, जीरा फाक-फाककर अपनी नसा में से दूध उत्पन्न किया था, उस का मल धो धोकर अपने नाखून घिसा लिये थे।

फिर पूरो को ध्यान आता था कि उस ने लडके को शहद चटाया था और अपने पडोस के मुसलमानो के घरो में पजीरी बाँटी थी कि लडके का बडा होकर यह विचार न आये कि उस के जन्म पर किसी ने उस का कुछ न किया।

एक दिन गाव के प्रमुख हिन्दुओ ने रशीद को बुला भेजा। पूरो के होठो पर पपडी जम गयी। पूरो सोच म पड गयी। बच्चे को पालने का बीडा तो उस ने उठाया था पर वे लोग रशीद का बुरा भला कहेंगे, रशीद का अपमान करेंगे

पूरो कह रही थी कि वह भी रशीद के साथ जायेगी। वही उन के सवालो की जवाबदार था। वह स्वय जाकर उन से लडके की भीख माग लेगी पर रशीद न

गीली हो गयी थी। पूरा कहता थी, लड़का जरूर भूख से बिलख रहा होगा, तभी तो उस की छातियां से दूध की धार बह रही थी।

रात को पूरो के यहाँ न किसी ने कुछ पकाया न किसी ने कुछ खाया।

जब जावेद सहज स्वभाव से पूछता अम्मा! हमारे काके को कहाँ ले गये हैं? या 'अम्मा! हमारा काका कब आयेगा? तब पूरो और रशीद निरुत्तर-से जावेद की ओर देखकर रह जाते, लज्जित-से सिर झुकाकर चुप हो जाते।

पूरो की आंखों के आगे कम्मो का मुख फिर जाता, उस की आंखों के आगे रह रहकर लड़के का मुख आता। पूरो सोचने लगी वह टूटे हुए फूलों को क्या अपने गले से लगाकर रखती है? टूटी हुई कलियों पर पानी छिड़क छिड़ककर उन्हें क्या हरा करती है? सभी पराये थे। उस का अपना कोई न बन सकता था। रशीद का मुख उसे अच्छा लगने लगा एक रशीद ने ही उस का साथ निबाहा था। यद्यपि सब से सम्बन्ध छुड़वानेवाला भी वही था फिर भी वह उस का अपना था उस के जावेद का पिता था।

तीन दिन बीत गये। चौथे दिन सारे गांव में एक ही चर्चा चल रही थी 'लड़का नहीं बचेगा लड़का तो मरने को पड़ा है लड़के का बुरा हाल है बस दो घड़ी का मेहमान है जो दूध की घूंट उस के अन्दर जाती है वैसी की वैसी ही बाहर निकल जाती है।'

पूरो दीवारों से लग लगकर रोती थी। उस के स्तन दूध इकट्ठा हो जाने के कारण अकड़ने लगे थे और उधर वह बच्चा था कि दूध न मिलने के कारण उस का मुँह सूख गया था। लड़के के मुंह और स्तन के दूध के बीच बड़ी दूरी पड़ गयी थी।

"लड़के का दूध छुड़ा दिया है लड़के की आह पड़ जायेगी।

"अगर लड़का मर गया तो गाँव भर पर 'साडसती' आ जायेगी।"

मैं तो अपने आदमी से कहती हूं कि भले आदमी वहां और जहां से लड़का लाये हो वहीं छोड़ आओ।

'हम तो आप बाल-बच्चेदार हैं किसी की आह अच्छी नहीं होता।

मेरा मर्द ही आप मनमानी करता है मैं तो पहले ही मना कर रही थी कि परायी आग में कूदकर तुम क्या लोगे!

"कहते हैं कल रात महरी ने लड़के को ठंडा दूध पिला दिया। बस तब से ही लड़का कुछ का कुछ हो गया।

'भला भैंस का दूध इतने छोटे बालक को पच सकता है! लड़के को उल्टियाँ आने लगी।

नहीं, जी, नहीं लड़का हुमक उठा है। जब से हुआ उसी का मुंह देखता रहा, अब और किसी से परचे तो कैसे परचे!

बेचारा बज्रवान है!

गाँव की हिन्दू स्त्रियों के मुँह पर यही बातें थीं। पूरो आहट लेती थी, चौंक चौंक पड़ती थी। उस का जी करता था कि वह दौड़ी-दौड़ी धर्मशाला चली जाये, उन लोगों से विनती करे कि इस तरह किसी जीव को न मारो। लड़के को मेरी झोली में डाल दो, वह ठीक हो जायेगा।

पर पूरो का साहस न होता था, उस के पैर न उठते थे। पूरो को आशा नहीं थी कि मजहब के पत्थर जैसे कान उस की विनती सुन लेंगे।

उस के अगले दिन भी कोई बात न हुई।

फिर अचानक ही रशीद के मकान के आँगन में दो-तीन आदमी आकर खड़े हो गये।

'यह लो, इस की जान तुम्हारे हवाले करते हैं, बच सके तो बचा लो।' और उन्होंने एक सफेद कपड़े में लिपटे हुए पीले, प्राय निर्जीव बालक को रशीद के हाथों में थमा दिया।

एक बार तो रशीद के मन में आया कि वह कसकर एक थप्पड़ उन के मुँह पर मारे मेरी छह महीने की सेवा के लिए तुम मुझे चार ठीकरे देते थे, अब उस के पर कफ़न में लपेटकर मेरे हवाले करने आये हो! जाओ, जहाँ मरजी आये ले जाओ।

पूरो का उल्लसित मुख देखकर रशीद सब कुछ पी गया।

एक सप्ताह के भीतर ही सारे गाँव ने देखा कि लड़का पूरो के आँगन में अच्छा-भला खेल रहा था।

रत्तोवाल

रहीमे की बुढ़िया माँ की आँखें दिन दिन खराब होती जा रही थीं। रहीमे की एक पत्नी सात महीने की अबोध बालिका को छोड़कर मर गयी थी, दूसरी पत्नी की अपनी सास से कम बनती थी। रहीमे की माँ अपनी आँखों को और भी रोती थी। अभी तक वह चौके के सब काम कर के चलती थी कई कात कातकर उस ने दरियों से टंक भर दिये थे, महीन सूत कात कातकर उस ने दुतहिया और चौतहिया से घर भर दिया था। अभी तक वह अपने बुड्ढे हाथों से अनाज फटक लेती थी आटा पीस लेती थी, कपास बेल लेती थी, सुबह के समय मथानी लेकर दही बिलोने बैठ जाती थी। फिर भी उस की बहू बुराइयाँ निकालती रहती थी। बुढ़िया सोचती थी कि जो वह आँखों से मोहताज हो गयी तो उसे कोई मिट्टी के ठीकरे में भी पानी न देगा।

रहीमे की माँ को यही चिन्ता दिन रात सताती थी। एक दिन उस ने पूरो से बिनती करते हुए कहा कि जो वह कोई पन्द्रह दिन के लिए उस के साथ चली चले तो वह अपनी आँखों का इलाज करवाकर देख ले, कौन जाने उस की सुनवाई हो जाये।

"अम्मा ! वह सयाना कहां रहता है ?" पूरो ने पूछा।

'सयाना नहीं है, बेटा ! एक बावली है, उसे पीरों का वरदान है। कहते हैं कि उस के पानी से रोज सवेर नमाज पढ़कर आंख धोने से कुछ ही दिनों में आंख भली चंगी हो जाती है। सुना है कि कइयों की बन्द आँखें भी वहाँ जाकर खुल गयी। बावली की मिट्टी भी आंखों को लगाते हैं।'

"अम्मा ! वह बावली है कहां ?'

"रत्तोवाल गांव में है। एक साई वहां रहता है, आये गये मरीजों के लिए उस ने वहाँ बावली के पास तम्बू लगवाये हुए हैं।

पूरो के कानों में मानो किसी ने सलाख भोंक दी। रत्तोवाल रत्तोवाल छत्तोआनी के खेतों में खड़े होकर जिस रत्तोवाल को जाती हुई कच्ची सड़क वो पूरो चाव से देखा करती थी, जिस सड़क पर से कोई पूरो को लेने के लिए घोड़ी पर चढ़कर आनेवाला था जिस सड़क पर से गाँव के चार कहार पूरो की डोली ले जानेवाले थे। रत्तोवाल रत्तोवाल

पूरो के पांवों से वह पथ मला न हुआ था पूरो की आंखों ने वह गांव देखा न था। पूरो को एक भूला हुआ नाम स्मरण हो आया रामचन्द रामचन्द

पूरो के भीतर से एक धुआँ-सा उठा, उस के मन में उलाहने उठने लगे, एक बार उस का मुख तो देख लूँ कैसा है एक बार उस का गांव तो देख लूँ कैसा है

'अच्छा, अम्मा ! मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।' पूरो के मुख से अनायास ही निकल गया। फिर लज्जित सी होकर पूरो उस के मुख की ओर देखने लगी। पूरो को लगा मानो रहीम की माँ ने उस के हृदय की बात जान ली हो।

'साई तेरे बच्चे जियें तू दूधों नहाय पूतों फले। रहीम की मां के हृदय से आशीर्वाद निकलने लगे। कौन जाने उस के मन में यह कामना उत्पन्न हुई क्या ही अच्छा होता जो मेरी बहू भी ऐसी ही मीठी बोल सकती !

'अम्मा ! जावेद के अब्बा को तुम मना लेना, मैं नहीं कहूँगी। पूरो ने लजाते हुए कहा।

ले देख ! वह तो मेरा बेटा है कभी इनकार कर सकता है ! मेरा खातिर चार दिन दुख-सुख से काट लेगा। रहीम की माँ ने अपनापा दिखाते हुए कहा।

पूरो भली भाँति जानती थी कि रशीद उस की बात को कभी नहीं टालता, पर रशीद के सामने रत्तोवाल का नाम लेना ही बस कठिन था।

उस रात पूरो के मन में परस्पर विरोधी विचार उत्पन्न होते रहे 'वह मेरा कौन लगता है ? मैं तो उस की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखूँगी। पराया मर्द मुझे उस के गांव से क्या लेना वह गाँव में रहता है तो रहा करे, अम्मा अपना इलाज करायगी, फिर हम लौट आयेंगे। तेरा ही मन उस के लिए उमग रहा है, उस को तो भूले सपने की भाँति कभी तेरा ध्यान भी न आया होगा

पूरो सोचती, उस गाव में जाकर रात पड़ते ही उस के भीतर जैसे कोई सोयी हुई कब्र का खोदगा। उस के भीतर जम कोई गड मुरदा को उठायेगा। इन सपनो को उतारने से क्या लाभ? वह रत्तावाल नही जायेगी। वह रत्तावाल के रास्ते से ही न गुजरेगी।

परा हां या ना कुछ न कहती थी।

जावद अपने पिता को न छोडता था। रशीद ने उस साथ न भजा। दोनो स्त्रियो को पहुँचाने के लिए रहीम के यहाँ का एक पुराना काम करनेवाला अशरफ साथ गया। पूरो छोटे लडके को साथ ले गयी।

अशरफ अगले फट्टे पर इक्केवाले के साथ बैठ गया। सारा सामान पीछे रखकर पूरो और अम्मा आमने सामने फट्टो पर बैठ गयी। इक्के के पहले हिचकोले से ही पूरो का लडका उस की गोदी म सो गया। आगे बैठ हुए अशरफ ने पूरो के लडके को उठा लिया। इक्का रत्तावाल की सडक पर चला जा रहा था।

घोडे की टापो की आवाज जैसे पूरो के सिर पर हथौडा चला रही थी। पूरो ने अपना माथा इक्के की बाह से लगा लिया। वह ऊँघ गयी थी। सजी हुई डोली में चादी के झब्बेवाला एक गाव-तकिया सिर के नीचे रखे हुए पूरो लेटी हुई थी। चूडे के बोझ से उस की बाहें कठिनाई से उठती थी। हवा के एक झोके से डोली का परदा जरा सरक गया। उस मद्धिम-से प्रकाश म उस ने देखा, पूरो के हाथो पर मेहँदी खूब खिली हुई थी। कितनी सारी मेहँदी थी पूरो की सहेलियो ने कितनी सारी थोप दी थी! यह कहार कितने बुरे ह न जाने कैसे चलते ह। डोली में बैठे-बैठे पूरो की कमर दुखने लगी थी डोली म हिचकोले भी कैसे आते ह! पूरो के गुँदे हुए सिर से उस का पल्ला सरक गया। पूरो ने हाथ उठाकर पल्ला ठीक किया। हाथ में पहने हुए आभूषणो की छन-छन सारी डोली में गूँज उठी। पूरो का जी बैठा जा रहा था। कल से उस से कुछ खाया नही गया था। पूरो की मा ने मठरियो की एक डलिया उस की पालकी म डाल दी थी, पूरो का मन किया कि मठरी का एक टुकडा मुँह में डाल ले उस का जी ठिकाने नही आ रहा था

अम्मा पूरो का कन्धा पकडकर हिला रही थी "ठीक दुपहरी सिर पर आ गयी, एक-दो कौर तो मुह में डाल ल।

इक्केवाले ने इक्का खडा किया हुआ था। रास्ते म एक छोटे-से गाँव के पास खाने पीने के लिए वे लोग रुके थे पूरो कापकर जाग उठी। न कोई डोली थी, न आभूषण थे न मेहँदी था न चूडा था। पूरो इक्के के पिछले फट्टे पर अम्मा के सामने बैठी हुई थी।

पूरो ने रास्ते के लिए घी का हाथ लगाकर परांठे बनाकर रख लिये थे। अम्मा ने वही गठरी खोली। अशरफ को चार पराठे दिये, इक्केवाले को दिये, खुद लिये, पूरो के आगे धर दिये।

पूरा के गले से कौर नहीं उतरता था। परांठे के घी में पूरो को मिचलाहट-सी आती थी।

"थोड़ा ही रास्ता रह गया है, जल्दी से निपटा लें। रात को घोड़ी को सांस दिलाकर मुझे सवेरे ही लौटना है।" इक्केवाला कह रहा था। फिर सब सवारियाँ बस ही इक्के में बैठ गयीं। पूरो ने अपना माथा इक्के की बांह से लगा लिया। पूरो ने रात भर जागकर आने का सब सामान असबाब बांधा था, उस रात भर का उनींदा था।

डोली फिर हिचकोले खाने लगी। रत्तोवाल का रास्ता खत्म होने में न आता था। एकाएक तेज बाजा और शहनाइयों की आवाज बहुत ऊँची हो गयी। डोली के इधर उधर बाजे बज रहे थे। पूरो ने समझा रत्तोवाल आ गया है। बाजे और जोर से बजने लगे, लड़कियाँ गीत गा रही थीं, एक स्त्री ने उसका घूँघट उठाया, फिर किसी ने एक छोटा-सा बालक उसकी गोदी में डाल दिया। बालक अपरिचित गोदी में आकर रोने लगा, स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस रही थीं, वह बालक का शगुन कर रही थीं।

अम्मा उसके कंधे को हिला रही थी, "आज तुझे बड़ी नींद आ रही है, देख लड़का रो रहा है।"

पूरो फिर घबराहट लेकर जागी। इक्के के पिछले फट्टे पर बैठी हुई अम्मा उससे बात कर रही थी।

"हमारे पास से इतना भारी बरात गुजरा है, मारे बाजे ही बाजे बज रहे थे, आप की आंख नहीं खुली?" अशरफ कह रहा था।

तुझे सास ने उस ने लड़का पकड़ाया, वह भी तू ने पकड़ लिया, फिर भी तेरी नींद नहीं टूटी। कहते कहते अम्मा हँसने लगी।

इक्का रत्तोवाल के निकट पहुँच गया था। जब बावली के पास जाकर सब लोग इक्के से उतरे तो सामने ही साईं का घर दिखाई दिया। तम्बुओं की जगह अब साईं ने दो-तीन कच्ची कोठरियाँ बनवा दी थीं जिन में दूर पार के आये हुए मुसाफिर रहते थे। बावली की मिट्टी, बावली का पानी आंखों को लगाते थे, मनोकामना पाते थे।

साईं ने इन नये मुसाफिरों को एक कोठरी दिखा दी। अशरफ ने सब सामान गठरी-पोटली कोठरी में रखा और अम्मा को लेकर साईं के पास चला गया। पूरो ने कोठरी में पड़ी हुई चारपाई पर खेस बिछाकर लड़के को लिटा दिया। फिर वह दरवाजे पर खड़ी होकर सामने खेतों के पार गांव के घरों की ओर देखने लगी।

— मैं रत्तोवाल आ गयी, मुझे किसी ने बुलाया नहीं, मुझे एक भी आदमी लेने न आया, किसी ने भी शहनाई न बजायी, किसी ने भी गाना न गाया, किसी ने भी मेरे हाथों में चूड़ी न पहनायी, एक भी कौड़ी मेरे हाथों में न छनकी, मेहंदी की एक पत्ती भी मेरे हाथों पर न लगी।

गांव के बाहर इस बावली पर बड़ा सन्नाटा था। पूरो का जी उड़ा जाता था।

उस का मन करता था कि वह दौड़कर उस गाँव में चली जाये, यहाँ से भाग जाये। रह रहकर पूरो के मन में विचार उठता कैसे लोग हैं इस गाँव के! कोई उस से नहीं कहता, 'बैठ जाओ' कोई उस से नहीं कहता, जीती रहो! कोई उस से नहीं कहता

फिर पूरो कुछ समझी। पूरो को लगा वह कुछ पागल होती जा रही है। कभी वह पागलों की भांति गाँव की गलियों में न दौड़ने लगे, कभी वह अपने कपड़े न फाड़ डाले, कभी वह चिल्ला चिल्लाकर बोलने न लगे

शाह ने अम्मा को बताया कि उन्हें वहाँ पूरे तरह दिन रहना पड़ेगा। उन का नौकर अगले दिन वापस अपने गाँव सक्कड़वाली चला गया। आटा-दाल वे अपने साथ ले आयी थी। पूरो और अम्मा अपनी रोटी खुद पकाती थी। वैसे यदि कोई चाहे तो शाह की दरगाह से भी भोजन पा सकता था।

पूरो ने गाँव की ओर मुख न किया। फिर गाँव के बारे में पूरो किस से पूछती और क्या पूछती? दिन पर दिन बीतते जा रहे थे। गाँव में वह जाती भी तो किस बहाने? यदि किसी चीज की आवश्यकता होती थी तो शाह के नौकर-चाकर वहीं ला देते थे। यह सोचकर पूरो का दिल व्याकुल हो उठता था कि वह गाँव की दहलीज तक आकर लौट जायेगी पर गाँव न देख सकेगी। पूरो के मन में आता था कि किसी न किसी तरह से वह जाकर सारा गाँव देख आवे उस का घर भी देख आवे उसे भी देख आवे पर उसे कोई न जान सके फिर पूरो सोचती, पूरो को क्या मालूम होगा कि उस का घर कौन-सा है, वह किसी से पूछे भी तो क्या, फिर घर को भीतर से कैसे देखेगी फिर पूरो सोचती, उस के घर को देखकर भी क्या लेना है उस का उस घर से सम्बन्ध ही क्या है क्या उस के मन में ऐसी बात उठनी है

पूरो का जी ठिकाने न आता था। एक के बाद एक कर के दिन बीतते जाते थे। बैठे-बैठे पूरो को एक भूला हुआ गाना याद आ गया

जसे आये सय टुर चल्ले
साडे आयाँ दा कदर नयी
हाय रब्बा साडे आयाँ दा खबर पयी।

कितनी ही बार पूरो की आँखों में आँसू भर-भर आते, वह उन्हें पी जाती। रल्ले को अम्मा के पास लिटाकर वह खेतों में घूम आती।

पूरो सोचती एक बार देखूं तो पहचान तो लूं।

फिर पूरो सोचती, इतने वर्ष हो गये हैं कौन जाने कैसी सूरत हो गयी हो। अगर मेरे पास से भी गुजर जाये तो मैं क्या पहचान सकूंगी।

खेतों में किसानों से कभी-कभी पूरो पूछ लेती, 'भाई! ये खेत किस के हैं, दो गाजर लेनी थीं हम तो मुसाफिर हैं।' किसान कभी किसी का नाम लेते, कभी किसी का, रामचन्द का नाम कोई न लेता।

अगले दिन किसी ने सचमुच रामचन्द का नाम ले लिया। पूरो के पाँव ऐसे हो

गये मानो धरती में गड़ गये हों।

पूरो का सिर चकराने लगा। उसे लगा वह उसी मिट्टी पर गिर पड़ेगी, वह उसी मिट्टी पर मिट्टी हो जायगी।

पूरो उसी कीकर के नीचे खड़ी की खड़ी रह गयी। उस के पैरों में से जैसे किसी ने शक्ति खींच ली हो। उस के पैर जैसे जमकर बर्फ के ढेले बन गये हों। उस मिट्टी ने जैसे पूरो को जकड़कर अपनी लपेट में ले लिया हो।

पूरो को जान पड़ा वह खड़ी की खड़ी अनार का पेड़ बनकर उग आयी थी जिस के लाल अनारों को जब भी कोई तोड़ने लगता वह अंगार बनकर धरती पर गिर पड़ते। उस के लाल अनारों को जब भी रामचन्द तोड़ता, अनार के लाल दाने लहू की बूंदें बनकर उस के कुरते पर गिर पड़ते और उस अनार के पेड़ में से एक आवाज सुनाई देती

मैं वृक्ष उगी होई आं

मैं न मुगन्धी मोयी हां।

किसान ने तोड़े हुए चारे का गट्ठर बनाकर सिर पर धर लिया। पूरो का ध्यान टूटा। उसे याद आया कि जो राजकुमारी अनार का पौधा बनकर उगी थी उस की कहानी उस ने जब छोटी थी सुनी थी। पर अभी तक न राजकुमारी बनी थी, न अनार का पौधा।

'शाम आ रही है' — कहते हुए किसान ने चारे का गट्ठर लेकर कुएं की ओर चल दिया।

पूरो की आंखों से आंसू बहने लगे। रामचन्द जब पूरो के पास से गुजरा उस की आंख पूरो की ओर उठी। पूरो का मुंह आंसुओं से भीगा हुआ था।

पूरो को न कीकर की ओट होना याद रहा न अपने दुपट्टे से आंसू पोंछ लेना। शायद आंसुओं के बहने के कारण उसे रामचन्द का मुंह भी दिखाई नहीं दे रहा था।

'तुम कौन हो बीबी? तुम्हें क्या हुआ है?' रामचन्द के पैर रुक गये।

पूरो कुछ न बोल सकी।

'तुम्हें कोई तकलीफ है बीबी?' पूरो के कानों में फिर रामचन्द की आवाज आयी। पूरो की जीभ जैसे किसी ने पीछे खींच ली थी वह मूर्ति की भांति खड़ी रही। पूरो के मन में बाढ़-सी उठी पर उस के मुंह से एक शब्द भी न निकला।

रामचन्द ठिठक गया। उस ने इधर उधर देखा। शायद वह किसी किसान को सहायता के लिए बुलाता। उसी समय पूरो के पैरों में शक्ति लौट आयी और वह चुप की चुप गुम-सुम खेतों से बाहर चली गयी।

पूरो चुपचाप आकर अपनी कोठरी में पड़ रही। उसी शाम सक्करआली से अशरफ आ गया था। अगले दिन तड़के ही उन सब को अपने गांव लौटना था।

उस रात पूरो की आंख न लगी। एक शब्द भी मैं ने उस से न कहा पूछता

था, तुम कौन हो, बीबी ? मैं उसे क्या बताती मैं कौन हूं ! मेरी व्यथा को बालक कौन बता सकता है ! कभी सोते उठते बैठते उसे मेरे रोते हुए मुख का ध्यान आयेगा तो वह सोचेगा कि वह कौन थी फिर कौन जाने उसे कोई बिसरी हुई कहानी याद आ जाये उस की मरी हुई पूरो उसे याद आ जाये फिर शायद उस की आँखों में दो-एक आँसू गिर पड़ें !' फिर पूरो सोचती यदि मैं भी उस राजकुमारी की भाँति अनार का पौधा बन सकती, उस के खेतों में उग आती, वह मेरे अनारों को तोड़ता, फिर मैं अनारों में से बोलती न जाने यह सब किस युग की बातें हैं आजकल तो कोई मनुष्य पौधा नहीं बनता '

रात का पिछला पहर अभी भोर नहीं बना था कि जैसे किसी ने पूरो का हाथ पकड़कर उसे चारपाई से उठा दिया। पूरो बाहर खेतों को चल गया। रात के अँधेरे में भी पूरो ने उस जगह को पहचान लिया, उस कीकर को पहचान लिया जहाँ कल साँझ को रामचन्द उस के सामने खड़ा था। झुककर पूरो ने उसी स्थान पर से उस के चरणों की धूल उठा ली और अपनी आँख बन्द कर के एक चुटकी अपनी आँखों से लगा ली।

आँखों से लगे हुए पूरो के दोनों हाथ किसी ने अपने हाथों में ले लिये। पूरो ने चौंककर देखा, रामचन्द उस के सामने खड़ा हुआ था।

"क्या तू पूरो है ? रामचन्द पूछ रहा था, "सारी रात यही एक नाम मेरे दिमाग में चक्कर लगाता रहा, सच-सच बता तेरा नाम पूरो है ?'

पूरो का हृदय कहता था वह रामचन्द के पैरों पर गिर पड़े वह जी भरकर रोवे और कहे कि वह पूरो है चीख चीखकर बताये कि वह पूरो है वह उसी की पूरो है जिसे लेने उसे घोड़ी पर चढ़कर जाना था जिस के साथ उस की भाँवर पड़नी थी ! यह वही पूरो है जिसे उस के घर डोली चढ़कर आना था वही पूरो है, पूरो

पूरो की जीभ को आज भी किसी ने खींच लिया। पूरो एक भी शब्द न बोल सकी। रामचन्द के हाथों से उस ने अपने हाथ छुड़ा लिये। पूरो वैसे की वैसी, गुमसुम, वहाँ से लौट चली।

"जो तू पूरो है तो मुझे एक बार बता जा।' रामचन्द ने पूरो के पीछे तेज कदम बढ़ाते हुए कहा, 'मैं सारी रात इन खेतों में घूमता रहा हूँ। पता नहीं क्या मेरा दिल गवाही देता था तू फिर आयेगी, मेरा दिल गवाही देता है तू पूरो है।'

"पूरो तो कब की मर चुकी है।' न जाने कैसे पूरो के मुँह से निकल गया। उस ने पीछे मुड़कर भी न देखा वह आगे बढ़ती गया।

अम्मा ने बावली के सांप को मिठाई का चढ़ावा चढ़ाया। अम्मा और उस के बाकी साथियों से लदा हुआ इक्का धूप चढ़ने से पहले सकरदुआली की सड़क पर पड़ गया।

एक आग

एक एक कर के कई दिन बीत गये दिन दिन कर के महीने, और महीना महीना कर के कई बरस बीत गये।

दूध की भरी हुई बाल्टी को जब पूरो चूल्हे पर काढ़ने के लिए रखते समय मुख से कपड़े जाते और सारा दिन जलने के लिए कण्डों में धीमी धीमी आग सुलग जाती, तब पूरो को लगता कि उस की छाती की भीतर वाली तह में कोयले की एक चिनगारी पड़ी हुई है जिस से न जाने कितने दिनों से उस के अन्तस्तल में कुछ आग सी सुलग रही है।

कभी पूरो सोचती कि आजकल उस का खाया पिया उस की छाती पर ही धरा रहता है। उसे अपने गले में कुछ अड़ा हुआ मालूम होता। दो-तीन बार बासी पानी के साथ उस ने चुटकी भर भरकर अजवायन भी फाकी थी। कभी पूरो सोचती, मेरे अन्दर गरमी हो गयी है उस ने तीन चार दिन कच्ची लस्सी के कटोरे भर भरकर पिये। कभी पूरो सोचती थी कौन जाने माँ का जी कैसा हो। पता नहीं क्या उस के मन में ऐसे विचार उठते थे।

इन्हीं दिनों एक दिन जब रशीद घर आया उस का मुंह इतना उतरा हुआ था मानो वह महीनों का रोगी हो।

रशीद ने घर में कुछ न कहा। पूरो से बातें करता रहा जावेद से मदरसे की बातें करता रहा, छोटे लड़के के साथ हँसता-खेलता रहा। खाना खाते समय पूरो रशीद के मुख को देखती रही। उसे लगा मानो कौर रशीद के गले से नीचे नहीं उतर रहा है। पानी के घूँट के साथ रशीद ने कुछ कौर नीचे उतार लिये। रशीद के मन की दशा पूरो से छिपी न रह सकी।

पास-पास पड़ी हुई चारपाइयों पर लेटने के बाद पूरो ने रशीद के जी का हाल पूछा।

"आज मेरे गाँव से एक आदमी आया था हमारे अपने खेतों पर काम करता है। रशीद ने एक पल चुप रहकर कहा।

छत्तोआनी से ?'

हाँ।'

'फिर ?

"वह कह रहा था कि हमारी कटी हुई फसल के ढेर लगे हुए थे मानो अनाज ढेरों का ढेर पड़ा हुआ था

फिर ?

"किसी ने रातोरात आग लगा दी।"

"हूं!"

'सारी फसल में से एक दाना भी नहीं बचा।'

"किसी ने जान-बूझकर लगायी ?"

'शक तो ऐसा ही है।'

"ऐसा कौन था ?

'वह आदमी कह रहा था आग की लपटों से सारा आसमान लाल हो गया था।'

'फिर अब ! हमारा जो हिस्सा था सो तो था ही वे बेचारे क्या करेंगे ?' उन बेचारों से पूरो का अभिप्राय रशीद के भाई उस के चाचा-ताउओं से था जिन का फसल में साझा था।

रशीद चुप हो गया। पूरो भी जैसे सोच में पड़ गयी। बच्चे तो सो गये थे पर रशीद और पूरो की आंखों में नींद नहीं थी।

'पर दूसरे का घर फूंककर किसी को क्या मिला ? पूरो ने कई बार रह रहकर अपने मन में सोचा। रशीद चुप रहा। पूरो देखती रही, कभी रशीद दायीं करवट लेता है कभी बायीं करवट लेता है फिर सीधा लेट जाता है। कभी-कभी वह अपनी आंखें मीचकर भी लेटा रहा पर नींद उस के पास न फटकती थी। कई बार उठकर रशीद ने पानी भी पिया।

"लड़के को अलग चारपाई पर लिटा दे मुझे आज इस के पास नींद नहीं आती। रशीद ने कहा।

जावेद सदा अब्बा के पास सोता था और छोटे लड़के को पूरो अपने पास सुलाती थी। पहले कभी रशीद ने यह बात न कही थी। पूरो को आश्चर्य तो हुआ पर उस ने चुपचाप जावेद को उठाकर अलग चारपाई पर लिटा दिया।

फिर भी कितना ही समय बीत गया। रशीद करवटें ही बदलता रहा, पर नींद उस की आंखों के पास न आयी।

'एक उड़ती उड़ती बात सुनी है पता नहीं, सच है या झूठ!' रशीद ने लेटे लेटे कहा।

'क्या ?' पूरो ने चौंककर पूछा।

रशीद फिर चुप हो गया मानो वह अपने मन में निर्णय कर रहा हो कि वह बात पूरो को बतानी चाहिए या नहीं।

रशीद बड़ी देर तक चुप रहा। पूरो अपनी चारपाई से उठकर रशीद की चारपाई पर जा बैठी।

'सुना है कि गांव में एक अपरिचित जवान आया था। वह किसी से बहुत मिला-जुला नहीं। गांव के लोगों को शक है कि शायद वह वह तेरा भाई था।'

'मेरा भाई ?' पूरो मानो अनायास बोल उठी।

'कुछ कहा नहीं जा सकता। मुझे तो गाँव गये भी कितने दिन हो गये हैं। यह जो आदमी आया था, वह यह सब बातें बता रहा था।' कहकर रशीद फिर चुप हो गया।

पूरो के सिर में जैसे चक्कर आने लगे।

मेरा भाई ? मेरा भाई अब जवान हो गया होगा। मुझे उस की सूरत देखे दस-बारह बरस तो हो ही गये हैं। कौन जाने अब देखने में कैसा लगता हो। उसे अचानक देख लूँ तो शायद पहचानूँ भी नहीं। मुझे सोचने लगा होगा। नौ-दस बरस का तो वह जाने का हाल आया। पूरो के मन में अनेक विचार उठने लगे।

रशीद ने उसे केवल इतना और बताया कि पूरो के पुराने मकान के सम्बन्ध में उस ने किसी आदमी से पूछा था कि यह घर किस का है, पर अपने सम्बन्ध में अपने मुँह से उस ने किसी को कुछ नहीं बताया। लोगों को केवल शक ही है। किसी ने अपने कानों से कुछ नहीं सुना।

'क्या सचमुच वह गाँव आया होगा ? उसे मेरा ध्यान आया होगा, उस की बहन, उस की अपनी बहन, उस की सगी माँ-जायी बहन !' पूरो के मन में उथल-पुथल होने लगी। उस की आँखों में आँसू आ गये।

फिर उसे आग लगने का दुख भूल गया। जले हुए गेहूँ की राख में से माँ-जाये भाई-बहनों का स्नेह चमकने लगा। प्रेम की एक उजली चिनगारी उस के हृदय में चमकने लगी।

कौन जाने उस ने आग लगायी हो, शायद अपने अरमानों, दिल का गुबार निकालने के लिए इस प्रकार बदला लिया हो! उस का जवान कलेजा न जाने कितना धड़का होगा। कौन जाने इस बहन के दुख का ध्यान व्याकुल करता हो। मैं एक बार उस का मुँह देख लेती! कौन जाने मेरे भाग्य में क्या लिखा हुआ है! ऐसे ही पूरो सोचती रही।

फिर उस के मन में विचार आने लगा। एक घड़ी पहले पूरो का सम्बन्ध उन के साथ था जिन का सब अन्न जलकर राख हो गया था, और एक पल बाद पूरो का व्यवहार उन के साथ हो गया था जिस ने शायद उस अन्न का अम्बार राख कर दिया था।

'आग लगानेवाला कहीं वह हो न हो! कहीं आग किसी और ने लगायी हो और लड़-झगड़े में यह बदनाम न हो!' पूरो का दिल बहुत दुखा। कुछ भी हो यह धन भाई का कुछ भी था। यह मानती थी कौन जाने उस के भाई के हृदय में दुख और प्रेम की कोई आग जल रही हो, उसी जलती आग में से उस ने एक चिनगारी फेंक दी हो। शायद उस के भाई को यह भी पता न होगा कि आग लगानेवाला ही नहीं रहता।

पूरो निढाल होकर अपनी चारपाई पर लेट गयी। विचार उस के मन में डूबते-उतराते रहे।

जब पूरो की आँख लगी—उस के सामने आग ही आग लगी हुई थी नीचे धरती पर घास के तिनकों से लेकर पीपल की-सी ऊँचाई तक सब कुछ जल रहा था। फिर पूरो ने सपने में देखा एक सुन्दर नवयुवक आग की ऊँची उठती हुई लपटों के पास बैठा अपने हाथ ताप रहा है।

पूरो चौंककर जाग उठी। पूरो का जोड़-जोड़ दुख रहा था।

पूरो को लगा, इतने दिनों से उस की छाती में जो धुकधुकी-सी लगी हुई थी, जिस के लिए वह कभी अजवायन फाकती थी कभी कच्ची लस्सी पीती थी, आज उस में से लपटें निकल निकलकर उस के शरीर को जला रही थीं। पर पूरो की समझ में नहीं आता था कि इस आग से उस के शरीर को सेंक लग रहा था या कि उस के भाई के स्नेह की ज्योति उद्दीप्त हो रही थी।

१९४७

जिस तरह खरबूजा फाँक-फाँक हो जाता है, उसी प्रकार शहरों में, गाँवों में मनुष्यों से मनुष्य फटते जाते थे।

जैसे हवा के साथ उड़-उड़कर धूल आती है, वैसे ही आसपास के कसबों से खबर आती थी। आदमी पर आदमी मारे जा रहे हैं घर के घर जल रहे हैं। पड़ोसी को पड़ोसी मार रहा है। राह चलते को राह चलता तलवार के घाट उतार जाता है। लोगों की जान सुरक्षित नहीं थी उन का माल सुरक्षित नहीं था।

पूरो सब कुछ आँखों से देखती थी, कानों से सुनती थी। उस के अपने गाँव में और आसपास के गाँवों में भी लोग लोहा इकट्ठा कर रहे थे लोहे पर शान धर रहे थे, अपने घरों की छतों पर ईंटें इकट्ठी कर रहे थे, भाले और बरछियाँ सँभाल सँभाल-कर अपनी कोठरियों में रख रहे थे।

'यहाँ हमारा अपना राज होगा, यहाँ हमारी हुकूमत होगी' हरेक यही कहता था। 'यहाँ हम हिन्दू का बीज भी रहने नहीं देंगे' लोग चौराहों पर खड़े हो-होकर कहते थे।

कभी ऐसा होते भी सुना है। पूरो बार बार सोचती। 'भला इतनी सृष्टि जायेगी कहाँ?' पूरो रह रहकर सोचती।

"लोगों को झूठमूठ एक जनून आता है" पूरो कहती "चार दिनों की आँधी है, आयेगी और चली जायेगी।"

पर लोग थे कि मानो पागल हो गये थे बस बुरी-बुरी बातें ही करते थे। कहीं

से भा भली खबर न आता था। फिर पूरा ने सुना शहरों में गलियाँ लहू से भर गया हैं, बाजार के बाजार मुरदों से पट गये हैं सडती हुई लाशों से बदबू उठने लगी है उन्हें कोई जलाता फूँकता नही, कोई उन्हें दबाता-गाडता नहीं। लोग कह रहे थे, इतन मुरदों की सडांध से थोड़े दिनों में बीमारी फैल जायगी।

फिर उस वर्ष का पन्द्रह अगस्त बीत गयी। गाँव में ढोल बजे, चाँद और तारा वाले हरे रंग के झण्डे लगे। प्रतिदिन मसजिद में लोग इकट्ठे होने थे। गाँव के हिन्दुओं के मुख पर मानो किसी ने हल्दी फेर दी थी।

फिर पूरो ने सुना कुछ शहरों में सीमाएँ बना दी गयी थी। इन के एक ओर मुसलमान रह गये थे दूसरी ओर सारे हिन्दू चले गये थे। फिर पूरो ने सुना उधर दूसरी ओर से मुसलमान मरते-कटते चले आ रहे थे बहुत-से वहीं मर गये थे, बहुत-से रास्ते में खत्म हो गये थे बहुत-से इधर पहुँचकर मर रहे थे।

पूरो के कान सुन-सुनकर जमे फटे चले हो।—पूरो ने सुना मुसलमान हिन्दुओं की लडकियों को और हिन्दू मुसलमानों की लडकियों को उठाकर ले गये हैं। कइयों ने उन्हें अपने घरों में डाल लिया है कइयों ने उन्हें जान से मार डाला है और कइयों को वह नंगा कर के गलियों और बाजारों में घुमा रहे हैं।

गुजरात जिले के उन गाँवों में जो पूरो के गाँव के आस-पास लगे हुए थे सब से पीछे उपद्रव हुए। पूरो के अपने गाँववाले, उस की अपनी बिरादरीवाले पूरो के अपने रशीद को छोडकर, रशीद के सारे सम्बन्धी-कुटुम्बी भी, वहशी बन फिरते थे। पूरो को साहस न होता था और न रशीद के बस की बात थी कि किसी को कुछ समझावें-बुझावें।

उन के आस पास के गाँवों के हिन्दू भागने लगे। उन की गायें अपने खूँटों से बँधी रह गयी, उन की भैंसें भी भीं डकारने लगी—उन के भरे भराये घर पीछे छूट गये, उन के खेत मालिकों का मुँह ताकते रह। वे रातोंरात भागते वे गाँवों की सीमा पर मारे जाते वह बीसियों नाम चलने रहने के बाद मरे हुए मिलते।

पूरो के गाँव के सारे हिन्दू अपनी एक बडी हवेली में चले गये थे। यदि कोई खिडकी या दरवाजा खोलकर बाहर आ जाता तो तुरत मृत्यु उसे अपने झपेटे में ले लेती थी। कहते थे कि हवेली में उन्होंने अनाज इकट्ठा किया हुआ था। कोई हिन्दू बाहर दिखता नहीं था। कोई हिन्दू स्त्री बाहर झाँकती नहीं थी।

पूरो के गाँव में केवल मुसलमान रह गये थे। गाँव में हिन्दू पशुओं की भाँति हवेली में फँसे हुए थे। एक दिन उस के गाँववालों ने मिलकर हवेली पर हमला किया। उन्होंने निश्चय किया था कि वह हवेलीवालों का नाम मिटा देंगे। उन्होंने बन्द घरों के ताले तोड डाले, अलग अलग घरों के मालिक बन बैठे। यदि कभी रात बिरात कोई हवेली से नीचे उतरता, अगले दिन पूरा गाँव में उस की लाश पडी देख लेती थी।

एक दिन उन्होंने न जाने किस तरह हवेली के दरवाजों और खिडकियों पर तेल

टाला और तेल से भीगे हुए दरवाजा और खिड़कियों में आग भी लगा ली थी, जब हिंदू मिलिटरी व ट्रक उन के गाँव म पहुँच गये।

हवेली के भीतर मे आग की लपटा जितना ऊँचा चीखें भी निकल रही थी जब कि मिलिटरी ने आग बुझायी और भीतर स आदमी निकाले। उन घबराये हुए लागा का उन्होंने लारिया में बठा दिया। आधे जले हुए तीन आदमा भी निकाले गये जिन के शरीर मे चरबी बह रही थी, जिन का मास जलकर हड्डिया स अलग-अलग लटक गया था। कोहनिया और घुटना पर म जिन का पिंजर बाहर को निकल आया था। लागा के लारियो म बठते-बैठते उन तीना ने जान ताड दी। उन तीना का लाशा का वही भूमि पर फक्कर लारिया चल दी। उन के घरवाले चीखत चिल्लाते रह गये, पर मिलिटरी क पास उन्हें जलाने फूँकने का समय नही था।

पूरो का गाव खाला हा गया था। पराया कौम का काई आदमी भी बाकी नही रह गया था। केवल तीन लाशें हवेला क बाहर पडी हुई थी जिन क पिंजर पर बचे हुए मास का दिन म ही गाँव के कुत्ता और कौवो ने नोच लिया था।

पूरो की आँखा में जस किसी ने सीसे के ककड डाल दिये हा। एक दिन पूरो ने दस बारह मनचले नवयुवको का एक नगी जवान लडकी को अपने आग कर के, दोनो हाथा मे ढोल-डमके बजाते अपने गाँव क पास से गुजरते देखा। न जाने वे किस गाव से आये थे और किस गाव का चले गये।

पूरा का लगता माना इस ससार में जीना दूभर हा गया हा माना इस युग म लडकी का जन्म लेना ही पाप हो।

उसी दिन सध्या के समय पूरो का गन्ने क खेत में छिपी हुई एक लडकी दीख पडी जिसे रात के घोर अन्धकार में वह अपने घर ले आयी।

उस लडकी ने पूरा को बताया कि पास के गाँव में एक कम्प खुला हुआ था जहाँ गाव के हिंदू इकट्ठ हा गये थे और प्रतीक्षा कर रहे थे कि मिलिटरी उन्हें यहाँ स निकालकर कब दूसरी आर हिंदुस्तान ले जायेगी। इस आर की फौज कम्प की रखवाला करती थी। पर प्रतिदिन रात का कुछ मुसलमान धारी छिपे आकर कम्प की जवान लडकियो को उठाकर ले जाते थे और अगले दिन तडके ही उन्ह वापस छोड जाते थे।

उस लडकी ने पूरो को बताया कि पूरी नौ रातें हा गयी थी उसे रोज रात को नये-नये लागा के घरा म जाना पडा था। पिछली रात वह किसी प्रकार अपने ले जाने वाले को धोखा दकर भाग गयी थी। दौडते दौडते वह इस गाव म आ पहुँची थी। जब सुबह के समय उजाला हाने लगा तब वह निश्चय न कर सकी कि किधर जाये। उस ने दिन का सारा समय ईख के खेत में लुके छिपे पडे रहकर बिताया

पूरा यह सब सुन सुनकर विक्षिप्त-सी हा गयी थी। उस से और न सुना जाता था। पूरो को जस इन बाता का विश्वास न होता था। पूरो ने उस लडकी का अपने

घर की पिछली कोठरी में रख लिया। वहाँ पूरा के घर का गेहूँ पड़ा था, भूसा का लदी भूसा पडा हुआ था।

दूसरे दिन दो आदमी दौड़े-दौड़े आये। उन्होंने सारे गाँववालों से पूछा कि किसी ने एक लड़की देखी है? व गाँववालों के आँगना में भी झाँक-झाँककर देख गये, पर लड़की का कुछ पता न चला।

पूरो के मन में कई प्रकार के प्रश्न उठते पर वह उन का कोई उत्तर न सोच सकती। उसे पता नहीं चलता था कि अब इस धरती पर जो कि मनुष्य के लहू से लथपथ हो गयी थी पहले की भाँति गेहूँ की सुनहरी बालियाँ उत्पन्न होंगी या नहीं इस धरती पर जिस के खेतों में मुरदे पड़े सड़ रहे हैं अब भी पहले की भाँति मक्की के भुट्टों में से सुगन्ध निकलेगा या नहीं क्या ये स्त्रियाँ इन पुरुषों के लिए अब भी सन्तान उत्पन्न करेंगी जिन पुरुषों ने इन स्त्रियों की अपनी बहनों के साथ ऐसा अत्याचार किया था?

हिन्दुस्तान जाता हुआ एक काफिला पूरो के गाँव के पास आकर रुका। पुरुष और स्त्रियाँ, झुण्ड के झुण्ड पैदल चलते थे। बैलगाड़ियों में उन्होंने बच्चों को भर दिया था। कुछ सिपाही काफिले के आगे थे और कुछ पीछे। यात्रियों की आँखें भारी हो गयी थीं। रास्ते की धूल दुर्देव की भाँति उन के मुँह सिर पर मँडराकर अब वहीं जम गयी थी।

पूरो के गाँव पहुँचते-पहुँचते काफिले को रात पड़ गयी। उसे वहीं रुकना पड़ा।

पूरो का चित्त व्याकुल था। उसे रह रहकर एक ही विचार आता कि वह सड़क रत्तोवाल से आती है इस काफिले में अवश्य उस का रामचन्द होगा एक अन्तिम भेंट बस एक बार अन्तिम बार उस के बाद वह इस देश में ही नहीं रहेगा उस के बाद फिर कभी भी वह उस का कुशल न सुन सकेगी उस के बाद फिर कभी भी उस के गाँव की हवा भी इस ओर न आयेगी

काफिले वाले अपने बचे-खुचे गहने और रुपये देकर रास्ते के गाँवों के लोगों से अनाज मोल लेते थे। गाँव के कुछ स्त्री-पुरुष जाकर उन से सौदा कर लेते थे और पहरेवाले सिपाहियों की देख रेख में अपना मक्की-बाजरा सोने के भाव बेच देते थे। इसी बहाने जाकर पूरो ने काफिले पर एक नजर मारी

पूरो ने काफिले में बैठे हुए रामचन्द को देखा। रामचन्द ने रत्तोवाल के खेतों में खड़ी हुई आँसुओं से भीगे मुँहवाली पूरो को पहचाना।

रत्तोवाल के खेतों में पूरो का मुँह उस के डूबते हुए साहस ने बन्द कर दिया था, आज उस का मुँह पास खड़े हुए पहरे के सिपाहियों ने बन्द किया हुआ था। पूरो कुछ कह न सकी।

"तुम्हें अनाज-दाना कुछ चाहिए? उस ने रामचन्द की ओर मुँह करके कहा।

"हाँ", रामचन्द की आँखें पूरो के मुख पर से न हटती थी, शायद अब भी वह उस पहचानने की चेष्टा कर रहा था।

"अच्छा, रुपये तयार रखना, मैं रात को पहुँचा जाऊँगी।" पास खड़े हुए सिपाही की ओर देखकर पूरो ने फिर रामचन्द की ओर देखा और फिर लौट आयी।

पूरो ने रशीद से कहा कि उसे घर में छिपी हुई लड़की को काफिले में पहुँचाना है और वह आटे और मिट्टी के पुरवे में रखे हुए घी को कपड़े में बाँधकर और लड़की को साथ लेकर रात के अँधेरे में सोये हुए काफिले की ओर चल दी।

दिन दिन भर चलने से लोग थके हुए पड़े थे। हर समय का भय चाहे चमगादड़ की तरह उन के सिर पर मँडरा रहा था पर फिर भी वे घोड़े बेचकर सोये हुए थे।

'मैं रात को पहुँचा जाऊँगी।' रामचन्द के कानों में पूरो की आवाज़ शाम से ही गूँज रही थी। रामचन्द रात की निस्तब्धता में किसी के पैरों की आहट ले रहा था।

सिपाही घूमकर पहरा दे रहे थे। पूरो पंजों पर चलकर काफिले में आ पहुँची।

सिर से गठरी उतारकर उस ने रामचन्द के आगे रख दी, और लड़की से बैठ जाने को कहा।

'तू पूरो ही है न?' आज भी रामचन्द ने वही रत्तोवाल के खेतोंवाला प्रश्न किया।

अब भी पूछना बाकी है? पूरो ने उलाहने से कहा। अपने जीवन में रामचन्द का उस का यह पहला और अन्तिम उलाहना था। रामचन्द ने सिर झुका लिया।

मेरे माता पिता की कोई खबर? पूरो ने एक गहरा श्वास लेकर पूछा।

"वे तो जब से ब्याह कर के गये हैं लौटे ही नहीं पर ' रामचन्द कहते-कहते रुक गया।

'ब्याह? किस का ब्याह?" पूरो ने पूछा।

"तेरे खो जाने के बाद उन्होंने एक रात चुपचाप तेरी छोटी बहन के फेरे मुझ से कर दिये और तेरे भाई के साथ मेरी बहन के फेरे हो गये। तब से वे गाँव नहीं लौटे हैं। आजकल सियाम ही हैं। पर ' रामचन्द कहता-कहता रुक गया।

"मेरी बहन फिर तो वह भी काफिले में होगी?' पूरो के लिए रामचन्द के साथ उस की बहन के ब्याह की बात बिलकुल नयी थी।

"नहीं, पिछले दिनों तेरा भाई आया था वह अपनी औरत को मायके छोड़ गया था और बहन को अपने साथ ले गया था। जो वह यहाँ होती तो वह भी ।" रामचन्द की आँखों में आँसू छलछला आये।

'वह भी क्या हुआ किसे " पूरो की समझ में न आया था।

"पता नहीं लगा, किस समय मेरी बहन का उठाकर ले गये। जब हम घर से निकले वह साथ थी। मैं बुढ़िया माँ को पीठ पर उठाये काफिले म आया हूँ तब तक वह मेरे पीछे-पीछे चली आ रही थी। पर अब काफिले में नहीं ह ' रामचन्द ने गले ■ जोर से निकलने की चेष्टा करते हुए स्वर को रोक रोककर कहा। उस को रुलाई आ रही थी, पर उस ने अपनी पगडी को अपने मुँह म डाल लिया। 'मेरा माँ न पीट पीटकर अपने शरीर को नीला कर लिया ह।' रामचन्द ने कहा।

पूरो की अँतडियों में एक ऐंठन-सी पडने लगी।

'कोशिश करना, कुछ पता लग जाय। न जाने जीती ह या मर गयी।' रामचन्द ने फिर से कहा।

अँतडियों म उठती हुई पीडा के कारण पूरो कुछ बोल न सकी।

"उस का नाम लाजो ह ?' पूरो को याद आया। अपनी सगाई के समय उस ने अपने भाई की मगेतर का नाम सुना था।

'हाँ उस की बाह पर भी उस का नाम गुदा हुआ ह।' रामचन्द ने बताया। सिपाही घूम घूमकर पहरा दे रहे थे। सोये हुए लोगो के बीच में बठे हुए रामचन्द और पूरो धीरे धीरे बातें कर रहे थे।

इस बेचारी को मैं तुम्हे सौंपने आयी हू। इस अपने काफिले में ले जाओ। हिन्दुस्तान जाकर पता कर लेना जो इस के मा-बाप मिल गये तो पूरो ने लड़की की बाह रामचन्द के हाथ म पकडा दी।

मेरा भाई यहाँ आया था, चाहती थी उसे एक बार देख लेती ' पूरो ने अपनी कामना प्रकट करते हुए कहा।

'पिछले दिनो जब तुम्हारे छत्तीआनावाले खेतो में आग लगी थी, याद ह रामचन्द कह रहा था।

'आग ? हाँ आग लगी थी। क्या यह बात सच ह कि मेरे भाई ने ही आग लगायी था ?' पूरो को उस दिन ध्यान आ गया जब रशीद ने एक अफवाह सुनायी थी।

हा उसी ने आग लगायी थी। तेरा तो उसे पता मालूम नहीं था कि तू कहा रहती ह। गुस्से म आकर उस ने रशीद के खेत जला डाले।'

पूरो को रोमाच हो आया। उस का भाई अब जवान हो गया था उस के हृदय में बदले की ज्वाला धधक रही थी उस के दिल म बहन की याद थी। साथ ही उसे उस दुर्घटना की याद आयी उस के भाई की स्त्री गुम हो गयी थी किसी ने उसे जबरदस्ती उठा लिया था न जाने वह किस हाल में थी वह उस के रामचन्द की बहन "

मुझे यहा सक्कडआली के पते से चिट्ठी लिखना अपना पता भी लिखना जो लाजो का कुछ पता लगा तो मैं लिख भेजूंगी पूरो ने कहा।

रात का अँधेरा हल्का होता जा रहा था। सिपाही काफिलेवालो को जगा रहे

थे। काफिले को आगे बढना था। पूरो उठ खडी हुई।

पूरो ने रामचन्द को हाथ जोडे। वह कुछ बोल न सकी।

पूरो ने काफिले से बाहर पाव धरा ही था कि एक सिपाही ने उस पर लाठी तान ली, "तू कौन है? कहा चली है?"

"मैं अनाज बेचने आयी थी।"

"कितने का बेचा है? पैसे दिखा।" सिपाही ने चिल्लाकर कहा।

पूरो ने चादर में हाथ डालकर अपनी चादी की बाक उतार ली और सिपाही को दिखाकर तेज कदमो से गाव को लौट गयी।

सिपाही ने शायद यह न सोचा कि हिन्दू चादी के आभूषण प्राय कम ही पहनते है, इस औरत को अनाज के बदले चादी की बाक कहा से मिल गयी!

पूरो की भाभी

रात को चारपाई पर पडे-पडे पूरो छत के काले शहतीरो को देखती रहती। पूरो का मन उन लोगो की बन्द कोठरियो के चक्कर लगाता रहता जिन के भीतर लोगो ने औरो की लडकिया, बहनो और स्त्रियो को जबरदस्ती डाल रखा था। उन्ही में एक लाजो होगी। लाजो, रामचन्द की बहन, उस की अपनी भाभी! लाजो का अनदेखा मुख पूरो की आखो के आगे आ जाता था टूटे हुए पत्ते जैसा मुँह, झडे हुए पत्ते जैसा चेहरा।

पूरो सोचती थी, लाजो ब्याही हुई है शायद उस के कोई बाल-बच्चा भी हो। उस के दिल पर न जाने क्या-क्या बीता होगा उस के शरीर पर क्या गुजरी होगी। न जाने वह इस समय कहा है! मैं उसे कैसे खोजूँ? मैं उसे कैसे पहचान सकती हूँ? उस दिन ईख में छिपी हुई वह लडकी लाजो ही निकल आती, मैं उसे काफिले में मिला आती मैं उसे रामचन्द के हवाले कर आती

पूरो ने सब बात रशीद को बतायी और उस के पाव पर गिर पडी।

"जैसे भी हो मुझ पर दया करो। मैं ने सारी उमर तुम से कुछ नही माँगा। मुझे लाजो का पता ला दो, जैसे भी हो" पूरो की आखो के आसू नहा रुकते थे। रशीद ने पूरो से प्रतिज्ञा की कि वह अपनी ओर से कोई कसर न रहने देगा।

रशीद बहुत सोचने के बाद इसी निश्चय पर पहुँचा कि हो न हो लाजो है रत्तोवाल में ही। वह घर से अपने भाई के साथ निकली, पर काफिले में मिली नही। काफिले में इकट्ठे होनेवाले लोगो की आपाधापी में ही वह किसी के हाथ पड गयी होगी।

रशीद ने रत्तोवाल के दो चक्कर लगाये, पर वह लोगो के मकानो में कैसे झाँक

सकता था। उस ने गाव का जितनी ही दुकाना म सौदासुल्फ खरीदा, पर उसे लाजो का कोई सुराग न लगा। इतना उस ने अवश्य सुन लिया था कि गाव के कुछ लडका ने जाते हुए काफिले में से दो-चार लडकियों का उठा लिया था। रशीद को पूरा विश्वास था कि लाजो भी उन्ही में ह।

उस गाववाले रशीद से परिचित नही थे, न ही उस गाव म रशीद का काई सम्बधी रहता था। वह किस के पास चार दिन रहता, जिस से वह गाँव के हाल चाल लेता।

पूरो न रशीद के साथ एक चाल निकाली। धानलीवाले साइ को वह जानते थे। वे दोनो बच्चा का लेकर साइ की एक कोठरी म जा टिके। वसे भी दिन रात की चिता के कारण पूरो की आखें धुन्धी-सी रहने लगी थी। पूरो रोज सवरे नमाज पढकर बावली के जल से अपनी आखें धोती साइ को मिठाई चढाती और दिन में सारे खेसा की गठरी बाधकर गाव में बेचने चला जाती।

उस समय गाव के मद खेता पर होते गाव की स्त्रियां घरा में अपनी गृहस्थी के काम-काज म लगी होती। पूरो हर घर में जाकर पूछती। पूरो खेसों क दाम इतने अधिक बताती थी कि उस का सौदा कठिनाई से पटता था। वसे भी गावो में लोगा के पास अपनी ही बनायी हुई दरियां और खेस बहुतर होते ह फिर उन्हें लूटमार स भी बहुत कुछ मिल गया था। पूरो से खरीदने की किसी को आवश्यकता न थी पर पूरो ढीठा की भाति उन के आगनो में जा बठती भीतर-बाहर झाकती स्त्रिया का बाता म लगा लेती गाव की लूटमार की बातें छेड देती उन से हँस-हँसकर पढती कि किस के हिस्से क्या-क्या आया था। फिर हिदुआ के छोड हुए मकाना की बात छेड देती। पूरो रामचन्द का घर पहचानती न थी, पर गाववालो से बातचीत कर के उस ने रामचन्द के मकान का पता लगा लिया था। रशीद और पूरो को शक था कि हा न हो जिस ने लाजो का उठाया ह उस न शायद लाजो के मकान का भी सँभाल लिया है। पूरो ने उस मकान का भी एकाध फेरा लगाया, पर हर बार एक बुढिया उस बाहर की ड्योढी से ही लौटा देती थी, कह देती थी कि हमें कुछ नही लेना ह।

जसे कोई किसी के घर में जबरदस्ती घुसता ह, वसे ही एक दिन पूरो भी उस मकान के आगन में चली गयी।

'अम्मा, तुम लेना कुछ नही, पर देख ता लो। मैं तुम स देखने के दाम तो नही मागती।" और पूरो ने खेसा की गठरी धरती पर धरकर खेस इधर-उधर बखेर दिये। आगन में उस बुढिया के अतिरिक्त और काई नही था।

"अल्ला खर करे! मुझे एक घूट पानी पिला दो, सवरे से प्यासी हूँ।' पूरो ने साहस कर के बुढिया स कहा।

"अरे, पानी छाड तू लस्सी पी ले पर जो तू चादर और खेस बेचना चाहती ह तो किसी शहर जा। वहा न लोग सूत कातते ह, न कपडा बुनते ह। गावा में किस

क पास खसा का घाटा ह।" बुढ़िया ने पूरो का सलाह दी और भीतर कोठरी की ओर मुख कर के उस ने आवाज दी, 'जा नेकबख्त, एक कटोरा लस्सी तो भर के ले आ।"

पूरा का जी धड़कने लगा। भीतर से आनेवाली लड़की का चेहरा सचमुच टूटे हुए पत्ते की भांति था, कटे हुए पख की तरह था। पूरा का माथा ठनका, हो न हो यही लाजो ह।

जब तक पूरो का लाजा के किसी जगह होने का शक नहीं पड़ा था, तब तक उस के मन म एक लगन थी कि कहीं लाजा दीख जाये। जब उसे शक पड़ गया था कि लाजा उसी घर मे ह पर अब उस की समझ में न आता था कि अपनी शका का समाधान कस कर।

"यह तुम्हारी लड़की ठीक तो ह?" पूरो ने बुढ़िया से बड़ी सहानुभूति स कहा, और लड़की के हाथ से लस्सी का कटोरा ले लिया।

'ठीक ही ह एसे ही कुछ बुढ़िया ने बात आयी-गयी कर दी।

"थोड़ा नमक देना लस्सी में मिला लूँ। पूरो ने लस्सी का एक घूँट भरकर कटोरा हाथ म लिये रखा।

लड़की ने चुपचाप नमक लाकर पूरा के आगे रख दिया। उस के हाथ स नमक लेते समय पूरो ने उस की एक उँगली को दबाया। नवयुवती ने जरा चौंककर पूरो की ओर देखा पर न तो उस क होठों पर हँसी की रेखा आयी न उस के मुह से कोई शब्द ही निकला। लड़की इख के छिलके की भांति पेरी हुई दीख पड़ती थी।

पूरा को और भी विश्वास हो गया कि यह लड़की लाजो हो या न हो, पर कोई जबरदस्ती भगायी हुई लड़की अवश्य ह। घर के सम्बन्ध म पूरा को पता लग गया था कि यह रामचन्द का घर था। और पूरो का यह भी पक्का विश्वास होता जाता था कि हो न हो यही लड़की लाजा ह।

लस्सी पीकर कटोरा धरती पर रखते हुए पूरो ने उस युवती की बाह पकड़ ली।

'इधर आ, मैं तेरी नाड़ी देखूँ। रग तो तेरा हलदी जसा हो रहा ह।" कहते कहते पूरा ने एक हाथ से उस की बाँह पर से कुरता जरा पीछे को हटा दिया। नवयुवती की बाह पर हिन्दी में उस का नाम गुदा हुआ था लाजो। फिर भी वह कुछ न बोली चाली। उस क होठों पर पूस माघ क कोहरे की भांति चुप्पी जमी हुई था।

"कोई गण्डा तावीज दे न! लड़की घर स परच जाये। लड़के से भी कुछ नहीं बोलती चालती। बुढ़िया ने उन्नाम मुख से कहा।

पूरा को स्वय का सँभालना कठिन हो रहा था, फिर भी उस ने जल्दी से उत्तर दिया, 'मेरे पास जमा जन्तर ह उस से यह कुछ ही दिनों में मकई क दाने की

भाँति गिर उठगी।"

"तू जो मांगेगी तुझ दूंगा, मुझे वह जन्तर ला दे।" बुन्या ने पूरो की चादर पकड़ ली।

"यह कौन बड़ा बात है, मैं कल ही ले आऊँगी। अल्ला ने चाहा तो "

कहते-कहते पूरो ने खेसों की गठरी बांध ली। नवयुवती गूँगे-बहरे बुत की भाँति उस की ओर देख रही थी।

खेसों की गठरी के भार से आज पूरो की कमर टूटती जा रही थी। बड़ी कठिनाई से पूरो अपनी बावलीवाली कोठरी में पहुँचा।

'अब आगे, तू जाने तेरा काम जाने।' पूरो ने रशीद को सारी बात बताकर कहा।

कोई ऐसा यत्न करें ' रशीद सोचने लगा।

'जब मुझे घोड़ी पर उठा लाया था वैसे ही अब भी हिम्मत कर " पूरो ने रशीद के एक चुटकी ली और हँस पड़ी।

फिर पूरो और रशीद ने कई युक्तियाँ सोची, पर कोई भी उन्हें जँचती नहीं थी। रशीद कहता था कि यहाँ से उसे भगाकर ले जाना तो कठिन नहीं है पर उसे आगे कैसे पहुँचायेंगे?

पूरो के मन में एक विचार आया जो अब तक कभी न आया था—मेरे माता पिता ने मुझे अपनी बेटी को तो वापस कबूल नहीं किया क्या अब अपनी बहू को स्वीकार कर लेंगे? उन्होंने यदि वापस लेने से इनकार कर दिया तब क्या होगा?

रशीद ने पूरो को बताया कि उन की सरकार की ओर से सूचनाएं निकली हैं कि जबरदस्ती ले जायी गयी लड़कियों को खोज-खोजकर लौटा दो क्योंकि उन के बदले में दूसरी ओर से इसी प्रकार खोजी हुई लड़कियाँ मिलेंगी। लड़कियों के माता पिता उन्हें वापस ले लेंगे।

पूरो के हृदय में एक कसक सी उठी, उस की बार दुनिया के सब धर्म उस के रास्ते में कांटे बनकर बिछ गये थे, उस के माता पिता ने उसे स्वीकार नहीं किया उस के ससुरालवालों ने उसे स्वीकार नहीं किया। आज सब मजहबों के मान टूट चुके थे, आज

अपने विषय में सोचना पूरो ने छोड़ दिया। वह लाजो के सम्बन्ध में सोचने लगी।

वह रात पूरो ने तारे गिन गिनकर काटी। सवेरा होते ही वह इस टोह में लग गया कि लाजो के घरवाली बुन्या अपने बेटे के लिए रोटी लेकर खेतों को कब जाती है। उस ने फिर दो एक कोरे खेस सिर पर रखे और कपड़े के एक टुकड़े में थोड़ी-सी राख बांधकर चल दी।

लाजो के घर के भिड़े हुए दरवाजे को अपने हाथों से खोलते समय पूरो ने

सारे पीर-फकीरों का ध्यान किया। एक समय से भूले हुए देवी देवता उसे स्मरण हो आये। पहले प्राय रब और खुदा का नाम लेते समय पूरो कहा करती थी कि रब उस का सौतेला पिता था और खुदा की वह सौतली बेटी थी कोई भी रब या खुदा उस के दुख दर्द की परवा न करता था। पर आज पूरो के हृदय पर एक प्रकार का भय छा गया, पूरो ने झिझकते हुए किसी भी रब रहीम से प्रार्थना की कि किसी प्रकार लाजो से आज उस की भेंट अकेले में हो जाये।

पूरो को लाजो के घर पहुँचते-पहुँचते भी दोपहरी का समय हो गया। बुढ़िया अपने बेटे का रोटा देने गयी हुई थी। लाजो अकेली ही आँगन में बिना बिछावन की खाट पर पड़ी थी।

"अम्मा कहाँ है?" पूरो ने आँगन में पैर धरते ही पूछा।

'खेत गयी है।' लाजो ने फल की खेस बेचनेवाली की ओर देखकर कहा। लाजो के हृदय में समवाली की ओर नया जागा हुआ आकर्षण उस के मुख पर स्पष्ट दीख पड रहा था। लाजो उठकर खाट पर बैठ गयी।

एक क्षण में ही पूरो को लाजो की मुखाकृति में अपनी माँ, अपनी बहन और अपनी भाभी के मुख दीख पड़े। वह उस के गले से चिपट गयी।

पूरो को लगा कि वह रो उठेगी इतने जोर से कि उस का रोना दीवारों को फाड़ देगा उस का रोना खेतों को पार कर जायेगा उस का रोना गाँवों को लाँघ जायेगा, उस का रोना शहर से भी आगे निकल जायेगा उस का रोना

पूरो ने अपने रोने को गले के बाहर न निकलने दिया।

'तू लाजो है मेरी भाभी' पूरो ने अपने हृदय में उठते हुए तूफान को दबाकर कहा।

"तू पूरो है?" लाजो ने जरा उस की छाती से हटकर उस का मुख देखा। पर लाजो ने पूरो को पहले कभी न देखा था जो अब पहचानती, फिर भी लाजो को पूरो का मुख बिल्कुल उस के भाई जैसा ही लगा, अपने पति जैसा लाजो के हृदय में एक लाज-सी उत्पन्न हुई मानो वह अपने पति के मुख की ओर आँख उठाकर न देख सकती हो लाजो पूरो की गोद में गिर पड़ी।

लाजो के अन्तरतर में उस समय जो कुछ बीत रहा था, शायद वह पूरो की नसों में प्रवेश करता जा रहा था। पूरो को कुछ भी पूछने की आवश्यकता न थी। पूरो ने लाजो को कलेजे से लगाये रखा।

"कोई आ जायेगा, लाजो! मेरी बात सुन।" पूरो को बोलते समय का ध्यान आया। लाजो की सिसकियाँ न रुकती थीं, उस की साँस ठिकाने न आती थी।

"वह कब तक लौट आती है?" पूरो ने पूछा।

"मुझे कुछ पता नहीं। मुझे अपने पास ले चल।" लाजो सोची न होती थी पूरो की गोद को न छोड़ती थी।

"तुझे लेने तो आये ही हैं, और क्या करने आये हैं ! मेरी बात सुन।" पूरो ने लाजो को कन्धे से पकड़कर उठाया।

'हाय, मुझे ले चल !'

"पर तू सँभलकर बैठ, बाई आ जायेगा।"

'मुझे लेकर भाग चल। मैं सारी उमर तेरी बाँदी बनकर रहूँगी।'

'पागल न बन ! ऐसे भागकर मैं कहाँ ले जाऊँ? मेरी बात तो सुन।'

'हाय ! मैं मर जाऊँगी, मैं यहीं तड़प-तड़पकर मर जाऊँगी।' लाजो रोये जा रही थी। पूरो को डर था कि बात भी न होने देगा और बुढ़िया आ जायेगी। पूरो ने अपने पल्ले से लाजो का मुँह पोंछा और समझा-बुझाकर उसे चुप कराया।

'कभी तो घर से बाहर निकलती है?'

'नहीं।'

'पर सबर तो खेतों को जाती होगी !'

'वह साथ होता है।'

'आज सवाग से अमावस है। आज रात को जो तू बाहरवाले कुएँ के पास आ सके तो वहाँ तुझे रशीद घोड़ी लिये तैयार मिलेगा।

लाजो जैसे काँप गयी। रात को अकेले कुएँ के पास पहुँचना उसे अत्यन्त कठिन लग रहा था। फिर वह रशीद को भी नहीं जानती थी। और यदि किसी ने देख लिया तो फिर किसी की जान भी सलामत न थी।

'मैं घर से बाहर कैसे निकलूँगी?'

'रात को जब सब सो जायें तब दीवारें लाँघकर निकल आना।"

'वह तो दारू भी पीता है। रात को जब नशे में होगा तो चार घूँट ज्यादा दे दूँगी, पर बाहर के आँगन में बुढ़िया...'

'बुढ़िया कुछ अफ़ीम उफ़ीम नहीं खाती?'

'मैं ने तो खाते नहीं देखा।'

'एक बार जो तू वहाँ पहुँच जाय...'

'पर वहाँ... मैं उसे जानती भी तो नहीं। जो वहाँ पर तू मिल जाये..."

'वह तो रातोंरात पंडा मार लेगा और जो मैं भी साथ हुई तो फिर तो हम दोनों ही रह जायेंगी।

'मैं ने तो उसे कभी देखा ही नहीं।

'तू मुझ पर भरोसा कर। तेरी तसल्ली के लिए यह कर दूँगी। यह ले मेरे हाथ की यह अंगूठी उस के हाथ में पड़ी होगी, देख लीजो।

'आज रात दाव न लगा तब...'

'फिर कल रात। वह पूरी तीन रातें तेरी राह देखेगा।'

'गली में से आहट आ रही है, शायद बाई आ रहा है।

पूरा खाट से उठकर नीचे बैठ गयी। खाट के पताने खेसा को रखकर पूरा ने पल्ले में बँधी हुई राख की पुड़िया को देखा कि यदि बुढ़िया आ जाये तो उसे वह जन्तर और भस्म दे सके।

पर बुढ़िया अभी नहीं आयी थी।

'जा तू मुझे इस जन्तर के बहाने रोज किसी बावली या कुएँ पर ले जाय और फिर एक दिन ।' लाजो ने अपना स्वर पहले से भी धीमा कर लिया।

'इस तरह मेरे ऊपर पूरा शक हो जायेगा। मैं चाहती हूँ कि वह तुझे लेकर गाँव से निकल जाये और मैं बाद में भी दो तीन दिन गाँव में फेरा लगाती रहूँ। मेरे ऊपर कोई उँगली न उठा सके।

'मुझे डर लगता है कहीं कोई रास्ते में ही न पकड़ ले।'

"फिर जो किस्मत में लिखा है वह तो होगा ही। आगे कौन-से करम सीधे हैं ?

'पर मैं सारी उमर तेरे ऊपर भार बन जाऊँगा।"

"यह बातें फिर करेंगे इन के लिए यह समय नहीं है। मेरी सलाह है कि मैं अब चलूँ यही अच्छा है। आज बुढ़िया मुझे न देख ले।'

हाय! मुझे भी ले चल। पूरा उठने लगा तो लाजो बच्चों की भाँति उस से चिपट गयी। पूरा ने दरवाजे की ओर देखते हुए लाजो को कसकर अपनी छाती से लगा लिया और बोला, 'आज रात आधी रात को कल पर मत डालना।' और फिर वह खेसा को सँभालकर घर से बाहर निकल गयी।

बान की खाट पर लाजो दोनों पैर पसारकर लेट गया। आज उसे अपने शरीर के अंग-अंग में एक प्रकार की प्रफुल्लता का अनुभव हो रहा था। फिर जैसे लाजो को मकान की दीवारों में से आवाज आती सुनाई दी 'आज रात आधी रात को ।' लाजो ने दालान की एक एक ईंट को देखा। यहीं मेरा घर था। यहीं मैं पैदा हुई, यहीं पली। यहीं मैं बड़ी हुई। इस घर से मेरी डोली निकली। यहीं लौटकर मैं मायके आयी। सब इस घर से चले गये पर मेरा मुरदा यहीं पड़ा रहा। मैं अपने ही घर में परदेसी बन गयी। इसी घर ने मुझे पैदा किया, इसी घर ने मुझे खा लिया। लाजो घर की चहारदीवारी को देखने लगी। 'इन दीवारों को भी लाज न आयी इन्होंने मेरा सत्यानाश होते देखा, इन्होंने मेरा सर्वनाश लुटती देखी, पर आज, आज रात आधी रात को सभी दीवारें टूट जायेंगी, सभी चौखट गिर पड़ेंगी मैं ।'

बुढ़िया बाहर का भिड़ा हुआ दरवाजा खोलकर आँगन में आ गयी थी।

'वह अच्छे समय गयी है।' लाजो ने मन ही मन कहा।

'आज वह खेसावाली आनेवाली थी अभी आयी तो नहीं ?' बुढ़िया ने आते ही यह पहली बात पूछी और हाथ की साग भाजी का बरतन धरती पर रखकर लाजो वाली खाट की पट्टी पर बैठ गया।

खेसावाली का नाम सुनकर लाजो के मुख पर एक चमक सी आ गया। लाजो

ने सिर हिलाकर कहा "नहीं।" और फिर सोचने लगा, 'पूरो को यह कैसे पता लगा कि मैं यहां रह रही हूं ? वह मुझे क्या ढूंढ़ने आया ? वह किस गांव में रहती है ? मैं ने उस से कुछ भी न पूछा। पूछने का समय भी कहां था। — आज रात, आधी रात का... फिर यह ध्वनि लाजा के कानों में उठकर उस के कानों में ही समाने लगी।

मैं ने कहा, एक मुट्ठी साठ डालकर बटलोई में चावल चढ़ा दे। मैं तो थक गयी। कहते-कहते बुढ़िया चारपाई पर निढाल हो गयी।

जिस प्रकार अंतिम बार के काम को कोई जल्दी जल्दी निबटाता है, उसी प्रकार लाजा ने उठकर साठ बीन, चावल धोने और चूल्हे में दो चार लकड़ियां लगाकर खिचड़ी पकने धर दी। पहले प्रायः बुढ़िया आटा गूंधती थी, पर आज स्वयं ही लाजा ने आटा छाना और गूंध लिया।

आज का दिन टूटे हुए जूते की भांति घिसता ही जाता था। मुश्किल से कर के रात आयी। आज जब बुढ़िया का लड़का घर आया तो लाजो को बहुत कड़वाहट न लगी। पहले रोज जब लाजो उस देखती थी, उसे लगता था मानो मकड़ा ठीकरे उस के माथे पर टूटने लगे हों।

बटलोई में कड़छी घुमाते हुए आज तीन बार लाजा के हाथ से कड़छी छिटकी। दो बार उस के हाथों से बेलन छूट छूट गया। एक-दो बार तो उस के हाथ से कांसे का कटोरा भी छूट गया।

ढंग से काम कर। एक-दो बार बुढ़िया ने खिजलाकर कहा।

'आंखें हैं कि बटन ! बुढ़िया के बेटे ने भी उसे टोका।

पर आज लाजो को बुढ़िया का एक बोल भी कुबोल न लग रहा था। बुढ़िया के बेटे की बात आज जैसे वह सुन ही नहीं रही थी। उसे लग रहा था मानो घर का सब माल-असबाब भी आज बुढ़िया और उस के बेटे का मुंह चिढ़ा रहा हो।

लाजा में आज अपूर्व साहस आ गया था। न उसे किसी का डर लगता था, न उस के मन में कोई चिंता आती थी। बस एक निश्चित समय, जो निकट और निकट आता जा रहा था। अभी रात पड़ जायेगी, अभी सब सो जायेंगे और जैसे साबुन लगे हाथ में से चूड़ी निकल जाती है, वह इस घर से निकल जायगी।

पहले लाजो जलती-कुढ़ती उठकर शराब की बोतल बुढ़िया के बेटे के आगे लाकर धर देती थी, पर आज लाजा स्वयं ही भीतर से वह शराब की बोतल निकाल लाया जो बुढ़िया के बेटे ने इलायचियां डलवाकर दुगुना आंच की खिंचवायी थी और पुरानी और तेज होने के कारण अलग रखी हुई थी।

बुढ़िया का बेटा सोच रहा था, आज लाजा ने साठ की खिचड़ी भी मलाई जैसी बनायी है, आज लाजो दारू की बोतल भी स्वयं निकाल लायी है, आज लाजा खुश है आज... ।

बुढ़िया नपकियां ले रही थी।

"आंगन में ठण्ड हो गयी है, मैं ने तेरी खाट भीतर डाल दी है, जा भीतर जाकर लेट।" लाजो ने घर की मालकिन की भांति बुढ़िया से कहा। एक बार बुढ़िया ने आखें फाड़कर लाजो की ओर देखा।

'आज तो इस के दिन ही पलट गये हैं। आज तो मैं इसे जंतर पहनानेवाली थी यह तो पहले ही असर हो गया दीखता है।' बुढ़िया ने अपने मन ही मन सोचा और भीतर जाकर लेट गयी।

रात का अंधकार पल-पल गहरा होता जा रहा था। बुढ़िया का बेटा शराब में धुत होकर लाजो की बाहें खींच रहा था।

रात का पहला पहर कब का बीत गया था। बुढ़िया का बेटा शराब में धुत होकर खाट पर सो रहा था।

उस घर की दीवारों ने, उस घर की कड़ियों ने जहां पहले इतने परिवर्तन देखे थे, उस आधी रात को यह भी देखा कि लाजो दबे पांव ड्योढ़ी का दरवाजा खोलकर उस घर की देहली से बाहर निकल गयी।

लाजो थोड़ी दूर चलती, उसे डर लगता, शायद कोई उस के पीछे-पीछे आ रहा है, किसी ने उसे कन्धे से पकड़ लिया है, किसी ने उस गरदन से नाप लिया है। जाड़े की आधी रात की ठण्डे में भी लाजो के माथे पर पसीने की बूंदें आ गयी थीं।

यद्यपि अमावस की रात थी फिर भी आकाश पर छिटके हुए तारों का प्रकाश भी लाजो को तीखा लग रहा था। अपने घर की दीवार लांघने के बाद अगले घरों के रास्ते पर चलते हुए लाजो एकाएक ठिठक गया। लाजो ने गरदन घुमाकर अपने घर की लम्बी दीवार की ओर देखा। कोहरे की भांति सारी गली में चुप्पी जमी हुई थी। फिर भी लाजो ने गली का सीधा रास्ता छोड़कर घरों के पिछली ओर वाला लम्बा रास्ता पकड़ लिया।

घरों की पंक्ति समाप्त हो गया। बाहर के कुएं तक पहुंचने के लिए एक लम्बा चौड़ा मसान पड़ता था। यहां लाजो के नंगे पैरों से एक कम्पन उठकर उस के माथे की नसों में फैल गया। लाजो ने पीछे मुड़कर कब्रों की भांति मौन हुए घरों को देखा। अभी तक प्रलय नहीं हुई थी, अभी तक कब्रों में से कोई मुरदा नहीं उठा था। लाजो को अपनी सांस की आवाज भी सुनार की धौंकनी की भांति सुनाई दे रही थी। पर लाजो के पास विचारों में डूबने के लिए समय ही कहां था। लाजो ने एक बार तारों के धुंधले प्रकाश को देखा और मसान में आगे बढ़ गया।

लाजो के दिल का एक यह धड़का था कि मैदान में से जाते समय उसे दूर से कोई भी देख सकता था। लाजो के शरीर पर कपड़े भी कुछ सफेद हो थे उस मैले अंधकार में अपने कपड़ों की सफेदी से भी डर लग रहा था। पर अब तो लाजो ने पूरा मसान पार कर लिया था। उस ने घूमकर पीछे देखा। सारा मसान खाली था। कुएं की ओर देखते ही लाजो का जी घबरा उठा। कुएं पर कोई नहीं था। रशीद नहीं

न सिर हिलाकर कहा, "नहीं।" और फिर सोचने लगा, 'लाजो को यह कैसे पता लगा कि मैं यहाँ रह रहा हूँ? वह मुझे क्या ढूँढने आयी? वह किस गाँव में रहती है? मैं ने उस से कुछ भी न पूछा। पूछने का समय भी कहाँ था।—आज रात आधी रात को' फिर यह ध्वनि लाजो के कानों में उठकर उस के कानों में ही समाने लगा।

मैं ने कहा, एक मुट्ठी माठ डालकर खटाई में चावल बना ले। मैं तो थक गयी। कहते-कहते बुन्धिया चारपाई पर निढाल लेट गयी।

जिस प्रकार अन्तिम बार के काम को कोई जल्दी जल्दी निपटाता है उसी प्रकार लाजो ने उठकर माठ वाले चावल धोने और चूल्हे में दो चार लकड़ियाँ लगाकर खिचड़ी पकने धर दी। पहले प्रायः बुन्धिया आटा गूँधती थी पर आज स्वयं ही लाजो ने आटा छाना और गूँध लिया।

आज का दिन टूटे हुए जूते की भाँति घटता ही जाता था। मुश्किल से घर के रात आयी। आज जब बुन्धिया का लड़का घर आया तो लाजो को बहुत घबराहट न थी। पहले रोज जब लाजो उस देखती थी उसे लगता था मानो मकड़ा टाँककर उस के माथे पर टूटने लग हो।

रसोई में कलछी घुमाते हुए आज तीन बार लाजो के हाथ में कलछी छिटकी। दो बार उस के हाथों से बेलन छूट छूट गया। एक बार तो उस के हाथ में काँसे का कटोरा भी छूट गया।

'ढंग से काम कर।' एक बार बुन्धिया ने खिजलाकर कहा।

आँखें हैं कि बटन! बुन्धिया के बेटे ने भी उसे टोका।

पर आज लाजो को बुढ़िया की एक बात भी खयाल न आ रहा था। बुन्धिया के बेटे की बात आज जैसे वह सुन ही नहीं रहा थी। उसे लग रहा था मानो घर का सब माल-असबाब भी आज बुढ़िया और उस के बेटे का मुँह चिढ़ा रहा हो।

लाजो में आज अपूर्व साहस आ गया था। न उस को डर लगता था, न उस के मन में कोई चिन्ता आती थी। बस एक निश्चित समय जैसे निकट, और निकट आता जा रहा था। अभी रात पड़ जायेगी अभी सब सो जायेंगे, और जैसे साबुन लगे हाथ में से चूड़ी निकल जाती है, वह इस घर से निकल जायेगी।

पहले लाजो जलती-कुढ़ती उठकर शराब की बोतल बुन्धिया के बेटे के आगे लाकर धर देती थी पर आज लाजो स्वयं ही भीतर से वह शराब की बोतल निकाल लायी जो बुढ़िया के बेटे ने स्लायचियाँ डलवाकर दुगुनी आँच की खिंचवायी थी और पुरानी और तेज होने के कारण अलग रखी हुई थी।

बुन्धिया का बेटा सोच रहा था आज लाजो ने माठ की खिचड़ी भी मजे की जमी बनायी है आज लाजो दारू की बोतल भी स्वयं निकाल लाया है आज लाजो खुश है आज ।

बुन्धिया झपकियाँ ले रही थी।

'आंगन में ठण्ड हो गया है, मैं ने तेरी खाट भीतर डाल दी है, जा भीतर जाकर लेट।' लाजा ने घर की मालकिन की भांति बुढ़िया से कहा। एक बार बुढ़िया ने आँखें फाड़कर लाजा की ओर देखा।

'आज तो जैसे दिन ही पलट गये हैं। आज तो मैं उस जन्तर पहनानेवाली थी यह तो पहले ही असर हो गया दीखता है।' बुढ़िया ने अपने मन ही मन सोचा और भीतर जाकर लेट गयी।

रात का अन्धकार पल-पल गहरा होता जा रहा था। बुढ़िया का बेटा नशे में धुत होकर लाजा की बाहें खींच रहा था।

रात का पहला पहर कब का बीत गया था। बुढ़िया का बेटा नशे में धुत होकर खाट पर सो रहा था।

उस घर की दीवारों ने, उस घर की कड़ियों ने जहां पहले इतने परिवर्तन देखे थे उस आधी रात को यह भी देखा कि लाजा दबे पांव ड्योढ़ी का दरवाज़ा खोलकर उस घर की दहलीज़ से बाहर निकल गयी।

लाजा थोड़ी दूर चलती उसे डर लगता शायद कोई उस के पीछे-पीछे आ रहा है, किसी ने उस के कंधे से पकड़ लिया है, किसी ने उस की गरदन से नाप लिया है। जाड़े की आधी रात की ठण्ड में भी लाजा के माथे पर पसीने की बूंद आ गयी थी।

यद्यपि अमावस की रात थी फिर भी आकाश पर छिटके हुए तारों का प्रकाश भी लाजा को तीखा लग रहा था। अपने घर की दीवार लांघने के बाद अगले घरों के रास्ते पर चलते हुए लाजा एकाएक ठिठक गयी। लाजा ने गरदन घुमाकर अपने घर की लम्बी दीवार की ओर देखा। बाहर की भांति सारी गली में चुप्पी जमी हुई थी। फिर भी लाजा ने गली का सीधा रास्ता छोड़कर घरों के पिछली ओर वाला लम्बा रास्ता पकड़ लिया।

घरों की पंक्ति समाप्त हो गयी। बाहर के कुएँ तक पहुंचने के लिए एक लम्बा चौड़ा मसान पड़ता था। यहाँ लाजा के नंगे पैरों में एक कम्पन उठकर उस के माथे की नसों में फैल गया। लाजा ने पीछे मुड़कर कब्रों की भांति सोते हुए घरों को देखा। अभी तक प्रलय नहीं हुई थी अभी तक कब्रों में से कोई मुरदा नहीं उठा था। लाजा को अपनी सांस की आवाज़ भी सुनार की धौंकनी की भांति सुनाई दे रही थी। पर लाजा के पास विचारों में रुकने के लिए समय हो नहीं था। लाजा ने एक बार तारों के धुंधले प्रकाश को देखा, और मसान में आगे बढ़ गयी।

लाजा के दिल को एक यह धक्का था कि मसान में से जाते समय उसे दूर से कोई भी देख सकता था। लाजा के शरीर पर कपड़े भी कुछ सफ़ेद हो थे उस गहरे अंधकार में अपने कपड़ों की सफ़ेदी से भी डर लग रहा था। पर अब तो लाजा ने पूरा मसान पार कर लिया था। उस ने घूमकर पीछे देखा। सारा मसान खाली था। कुएँ की ओर देखते ही लाजा का जी घबरा गया। कुएं पर कोई नहीं था। शायद नहीं

आया जब वह कहीं भी न रही। गाँव लौटने का विचार लाजा के लिए असह्य था। उस ने कुएं का एक चक्कर लगाया, मानो अपने मन में धार लिया हो कि यदि अब इस संसार में उसे कोई जगह न मिला तो वह इसी कुएँ में डूब जायेगा।

चादर में स्वयं को लपेटे हुए एक व्यक्ति पास की झाडियों में से निकला—

वहन क्या तू लाजा है? उस व्यक्ति ने लाजा के पास आकर चादर में से अपना मुँह निकाला।

भाइ मेरी निशानी दिखा दे। लाजा ने रशीद की ओर एक दृष्टि देखा। रशीद के चेहरे पर मानो करुणा की मोहर लगी हुई थी। लाजा का चित्त स्थिर हुआ। रशीद ने अपने हाथ की अंगूठी लाजा के आगे कर दी।

तुझे पहुंचाकर कल या परसों पूरी को ले जाऊंगा बच्चे उसी के पास हैं। रशीद कुए के धेरे से उतरकर झाडियों के पीछे बंधी हुई घोडा खोल लाया।

या अल्ला! रशीद ने एक बार कहा और लाजा को बांह का सहारा देकर घोडे पर बठा लिया।

घोडी को पहली एड लगाते ही रशीद को वह समय याद आ गया जब उस ने पूरो को छत्तोआना के कच्चे रास्ते में उठाकर अपनी घोड़ी पर डाल लिया था। रशीद आज हैरान था उसे फिर एक बार अपना घोडी दौडाना पडा। गाव की एक और नवयुवती फिर एक बार भगानी पडी। जवानी का वह उत्साह आज रशीद की बाहों में नहीं था। पर रशीद सोच रहा था पूरो को उठाने के बाद ज्यों-ज्यों वह अपनी घोडी दौडाता जाता था मनो भार का एक पत्थर जैसे उस की आत्मा पर बैठता जाता था। कई वर्षों से वह बोझ उस की आत्मा पर पड़ा रहा था। आज ज्यों-ज्यों रशीद की घोडी रत्तोवाल की सीमाओं को दूर छोडता जाता थी रशीद को लगता था कि उस की आत्मा पर पडा वह सारा बोझ सरकता जा रहा है। घोडी को मानो पंख लग गये थे।

हमीदा

भोर के फटने हुए प्रकाश के साथ ही लाजा के गुम हो जाने की खबर गाव भर में फल गयी। अभी दही में मथनियां पडी ही हुई थी कि हर घर में लाजा की चर्चा होने लगी।

आसपास के गावों में किसी हिन्दू का नाम निशान तक नहीं था, और कोई मुसलमान यह काम क्या करता! लोग हैरान-परेशान थे।

प्रकाश जल्दी जल्दी बढ़कर चमकी हुई धूप बन गया था। उपलों के चूल्हों में दाल पक चुकी थी स्त्रियाँ अभी तन्दूर गरम कर रही थीं जिन में से जलती हुई

छिपटियों की सुगन्ध और धुएँ की लपटें निकलकर सारे गाव पर छा रही थी। तभी पूरो ने गाव में प्रवेश किया।

आज लाजो के घर का दरवाज़ा किसी मृत पशु के मुँह की भाँति खुला हुआ था। पूरो ने जब उस घर के दरवाजे के भीतर पैर धरा, आगन मे बिखरे हुए रात के जूठे बरतनों पर मक्खियां भिनक रही थी। पूरो ने देख लिया कि आज सवेरे से किसी ने कुछ खाया पिया नहीं है।

"अरी, तू ने कहीं उस कलमुँही को देखा?" बुढ़िया के माथे पर इतना तेवरिया चढ़ा हुई थी कि जान पड़ता था जैसे किसी ने मिट्टी की हाडी उस के माथे पर फोड डाली हो।

"कौन अम्मा?" पूरो ने अपने सिर पर से खेस उतारकर आगन में धरते हुए पूछा।

"अरी, वही चाण्डाल, अल्ला उस से समझे।" बुढ़िया ने फिर अपनी सारी घृणा अपने माथे के बलों में भरकर कहा।

"हाय हाय, कौन? वह कहाँ है?"

"वही जल्जाना तो भाग गयी है।"

"हाय-हाय, किस के साथ? मैं तो उस के लिए जन्तर और भस्म लेकर आयी हूँ।"

"चूल्हे में जायें जन्तर और भसम! उसे तो न जाने जिन ले गये या भूत।"

"क्या कहती हो अम्मा! गाव में कौन है जो ले जायेगा! बाहर खेतों में गयी होगी, आ जायेगी अभी।"

"लो सुनो! खेतों में गयी है! धूप सिर पर आ गयी और..."

"पर अम्मा! वह कोई रोटी का टुकडा तो नहीं जिसे कौए उठा कर ले गये।"

"यही तो मैं कहती हूँ। क्या जाने किसी कुएँ में डूब मरी है, क्या जाने किसी जोहड में गिर पड़ी है। मैं तो पहले दिन से ही उस पर भरोसा नहीं करती थी। पर यह लड़का ही उस के चोचले किया करता था, कहता था, अम्मा! अब यह कहाँ जायेगी, इस का कोई सगा न पराया...।"

"क्या, अम्मा! उस के मा-बाप किस गाव के है?"

"भाड़ में जायें माँ-बाप। मैं ने तो पहले दिन ही कहा था, ऐसे परायी इटा से घर नहीं बसते। पर उस का तो दिल जो आ गया था, बुढ़िया की कौन सुनता था! ले अब तुझ से क्या छिपा है, सारा गाँव जानता है, यह हिन्दुओं की बेटी थी। जब गाँव से हिंदू भागने लगे, यह लड़का इसे वहीं से ले आया। अल्ला जानता है मैं तो पहले दिन से ही कह रही हूँ बेटियाँ-बहुएँ सब के होती हैं। अल्लादित्ता नाहक इस पाप की गठरी उठा लाया है। न जाने कौन-से दिन यह पाप सिर से उतार सकेंगे।"

"अच्छा, यह बात थी! तभी, अम्मा, वह घेरी हुई लगती थी। पर भागकर

जायेगी कहा ? यहाँ उस का कोई आसपास का तो ह नही। कौआ स बचगी चील म फँसेगी। म समझती हूँ वह किसी कुएँ-खाइ म गिर गिरा पडी ह, चाहे वह जानकर मरी है, या फिर उस की ऐसे ही आयी हुइ थी।

हम पर से कलक ता हटा। पर लडके ने मेरी जान खा रखी ह। कहता ह तू अधी थी जो तुझे पता न लगा वह काई चिडिया का बच्चा ता नही ह जा किसी ने उसे अपना जेब में डाल लिया।

"पर अम्मा वह पहले भी कभी घर क बाहर अकेली जाती थी ?

कहा ! उसे क्या मरों के पास जाना था। पहल पहले ता जब मैं ल्टक को रोटी दने जाती थी ता बाहर से ताला लगा जाता थी। फिर लडके न भी कहा और मैं ने भी साचा कि यह बेचारा आयेगा कहाँ ! जा किसी क सिर पर आठा पहर सवार रहो ता उस का जी घर म भी नही लगेगा। वह दोपहर का दो घडा क्षा घडी बस घर में अकेली रहती थी। कल भी मैं राटी दकर आयी हूँ अच्छी भली यहा बठी हुई थी। मोठ डालकर रात का खिचडी बनायी बथुए का साग पतीले में पकाया रोटियाँ सेंकी हम मा बटा का खिलायी खुद खायी फिर मेरी चारपाई भीतर डाल गयी कह अम्मा आँगन में अब ठण्ड हो गयी ह लडके ने जरा दारू पी फिर म ता सा गयी। फिर पता नही क्सी होना किस समय हो गयी। सबर उठी हू तो मैं ने आवाजें दी पर कोई हो तो बोले

"मैं ने कहा कुएँ-जाहड दिखवाये ह या नही ? वह किसी क साथ निकल जानेवाली ता दिखायी नही देता थी।'

जाना भी किस क साथ था। बुढिया ने अपन सिर का अपने घुटना पर रख लिया।

बडे अचरज की बात ह। मास की बोटी ता थी नही कि कुत्ते बिल्ली न उस मुँह में डाल लिया। गाव तो तुम ने ढुँढवा लिया हागा ?

"हाँ सवेरे से गाव का एक एक आदमी यहा आ चुका ह। लोगा न चप्पा चप्पा भूमि छान मारी ह। इस समय ता मेरा अल्लादित्ता और गाव क कुछ लडक कुएँ पर गये हुए ह। जा कही मरी हुई की लाश भी मिल जाय ता लडके के मन में यह तो न रह जायेगा कि न जाने कहा गयी। लडक का जान सलामत रहे, औरतें और बहुतेरी

अब तक पूरो क मुख पर दुख और शोक क भाव उतरत चढ्त रहे थ अब दा-तीन आदमा बाहर से आ गय।

हम तो सारे कुएँ-खाई देख आय ह उस की ता कही हड्डी-पसली भी नही मिलती। कहकर तीना आगन में पडा खाटा पर बठ गये।

"खाये अपने मा-बाप को ! तू म क्या अपनी जान का राग लगा लिया ह ! उठा लिया हागा भूत प्रेता ने। बुढिया ने अल्लादित्ता की आर मुख कर के बडे प्यार स

कहा। पूरो ने समझ लिया, यही अल्लादित्ता है।

पूरो को लाजो का उतरा हुआ चेहरा याद आ गया, और उसे लगा कि मानो लाजो का मुँह उस चिड़िया के पिंजर की भांति हो जो इस गलीज चील के पंजों में कई दिन तक फँसी रही हो।

"मेरी समझ में तो वह रात बिरात उठकर बाहर गयी है, और उसे कोई जानवर उठा ले गया है।" उन में से एक ने अल्लादित्ता की ओर मुँह कर के कहा।

"यहां तो कोई गीदड़, लोमड़ी भले ही फिरता हो, और इस गांव के पास कौन-सा जानवर आया होगा!" दूसरे ने पास बैठे हुए कहा।

"हमारी तरफ से चोर ले गये ले जायें। तू उठकर दो कौर तो मुँह में डाल।" बुढ़िया ने अपने पुत्र को दिलासा देने के लिए कहा और उठकर रोटी टुकड़े का प्रबन्ध करने लगी।

"अच्छा, अम्मा! अल्ला तेरे जी को शान्ति दे, मैं चलती हूँ।" पूरो ने खेसों की बँधी-बँधाई गठरी सिर पर उठा ली।

"मैं ने कहा तू कौन है?" अल्लादित्ता ने पूरो की ओर घूरकर देखते हुए कहा। अब तक पूरो को गांव की ही कोई स्त्री समझते हुए अल्लादित्ता ने ध्यान नहीं दिया था, पर खेसों की गठरी उठाते हुए उसे देखकर अल्लादित्ता ने उस से घुड़क-कर पूछा।

"यह कौन है! खेस बेचती है और कौन है!" पास से ही बुढ़िया ने उत्तर दिया।

"मैं ने पहले तो तुझे कभी नहीं देखा गांव में?" अल्लादित्ता ने सन्देह-पूर्वक पूछा।

"कितने दिनों से तो बेचारी यहाँ बेचती फिरती है!" बुढ़िया ने फिर लड़के को डांटते हुए कहा।

"पर तू किस गांव से आयी है?" अल्लादित्ता ने पूरो की ओर मुख कर के कहा।

"दो बालक मेरी गोदी में हैं, गांव में घूम घूमकर दो-चार पैसे कमा लेता हूँ।" पूरो का मन कर रहा था कि किसी प्रकार पंख लगाकर वहाँ से उड़ जाये। क्या वह गांव में रह गयी? रात को वह भी साथ चला जाता तो कौन उस का पता लगा सकता था!

"पर तू हिन्दू है कि मुसलमान?" अल्लादित्ता का सन्देह अभी तक दूर नहीं हुआ था। उस के दोनों साथी मुसकराने लगे।

"क्या भाई क्या सलाह है? क्या अब इसे घर में डालोगे?" अल्लादित्ता के एक साथी ने उसे चुटकी काटते हुए कहा।

"क्या कहते हो, भाई! मैं यहाँ हिन्दू कहाँ से आयी?" और पूरो ने परे पड़ी

हुई जूती का अपने पाँव में अन्दाया और गठरी सँभालकर बाहर जाने लगा।

'हिन्दू का नाम उस के माथे पर तो लिखा हुआ नहीं होता। अल्लादित्ता फिर जोर से कहा।

"तेरा तो भाई शक दूर ही नहीं होता यह देख मेरा नाम हमीदा है। और पूरो ने दहलीज में खड़े-खड़े अपना बायीं बाँह पर गुदा हुआ नाम दिखा दिया।

'जा, भई जा इस का तो सिर फिरा हुआ है।' बुढ़िया ने कहा।

मुझे अगर कुछ पता चला तो मैं खुद जाकर बताऊँगी, अम्मा! कहते-कह पूरो तेज कदमों से गली में हो ली। बावलीवाली कोठरी में पूरो ने अपने दोनों बाल छोड़े हुए थे। जावेद अब सयाना हो चला था वह छोटे लड़के को बहलाये रखता था।

पूरो ने वह रात घड़ियाँ गिन गिनकर काटी। दूसर दिन सवेरे रशीद लाजो सक्कडआली अपने घर छोड़कर पूरो के पास लौटकर आनेवाला था। वही रात रत्तोवा में पूरो का अन्तिम रात था। पूरो सारे गिनती दोनों बालकों को लेकर चारपाई प पड़ रही।

आज रत्तोवाल में पूरो की सारी मनोकामनाएँ पूरी हो गयी थी। पूरो क पिछली बार रत्तोवाल आने का ध्यान आया खेतों में क्यारियों में अपना घूमना या आया। फिर अन्तिम दिन रामचन्द के खेत में मिलना याद आया पिछली बार पू ने रामचन्द के खेत देखे थे इस बार पूरो ने रामचन्द का वह घर वह आगन भी दे लिया जिसे देखने की लालसा उसे बर्षों से थी। पूरो सोचने लगी इस घर में उस क घर की बहू बनकर आना था इस घर में उस की बहन ब्याह कर आयी। इस घर उस का भाई बरात लेकर आया पर उस ने इस घर का मुँह कब देखा जब कि इ घर में घरवालों की छाया भी शेष न रही। इस घर के जबड़ों में उस ने केवल लाज का पिंजर देखा शुक्र है लाजो की कैद अब खत्म हो गयी थी। पूरो फिर सोचने लगी आज तो वह स्वयं ही उस घर के पिंजर में फँसी हुई थी हमीदा नाम ने उ बचा लिया।

पता नहीं किस समय पूरो की आँख लगी और रात का अन्धकार धीरे धी सवेरा बन गया।

सक्कडआली में

आने-जाने का पूरा डेरा कर के रशीद रत्तोवाल आया और पूरो को लेकर सक्कडआल लौट गया।

लाजो की दोनों बड़ी-बड़ी आँखें मानो बन्द दरवाजे पर ही लगी हुई थीं, उस ने पूरो के पहुँचने के पहले ही खटाक से बन्द दरवाजा को कुण्डा खोल दिया। रशीद

ने एक ताला बाहर से लगा दिया था जिस से गाव के लोगो को शक न पडे। ड्योढी का दरवाजा अन्दर से बन्द कर के पूरो, लाजो और रशीद अपने मकान की सब से पिछली कोठरी मे एक बार तो ऐसे बैठ गये मानो शेर से डरे हुए हिरनो की डार को कोई नयी खोह मिल गयी हो।

लाजो और पूरो—दोनो को लगा मानो वे साथ खेली हो साथ पली हो दो एक दूसरे की आत्मा हो, पर समय के फेर के कारण वर्षो के लिए बिछुड गयी हो और आज किसी तूफान के बाद, किसी आधी के बाद दोनो फिर अपनेआप मिल गयी हो, वर्षो के विरह और जीवन की कहानियां दोनो के होठो पर जमकर रह गयी हो। दोनो ही अपनी-अपनी कहने को व्याकुल थी दोनो ही एक दूसरे की सुनने को व्याकुल थी।

खाने-पीने से निबटते निबटते दिन अच्छी तरह चढ गया था। रशीद यह बात समझता था कि दोनो को अकेले में बैठकर एक दूसरे से अपने दिल की कह-सुन लेनी चाहिए। वास्तव मे आरम्भ से ही रशीद दिल का खोटा नही था। वह सोचता था, पूरो के साथ उस के कुछ लेने देने के हिसाब थे, नही तो वह इतना बुरा आदमी नही था कि रास्ता चलती किसी की शरीफ बहन-बेटी को जबरदस्ती अपने घर मे डाल लेता। पूरो को अपनी स्त्री बना लेने के बाद रशीद ने कभी आख उठाकर किसी की बहन-बेटी को नही देखा था।

दोनो बालको को लिटाकर दोनो जनी भीतरवाली कोठरी में खाट डालकर लेट रही। रशीद उस दिन साथ के बरामदे में सोया।

"रत्तोवाल का काफिला इसी गाव से गुजरा था।" पूरो ने ही बात चलायी।

"तू ने देखा था?" लाजो और पूरो अभी तक मिलकर नही बैठ सकी थी। लाजो को कुछ पता न था कि पूरो ने उसे कहा और कैसे ढूँढ निकाला।

"मैं तेरे भाई से मिली थी, तभी तो मुझे तेरा पता लगा।

"हू?

"हा। और काफिले के दिनवाला रामचन्द का मुख पूरो की आखो के सामने आ गया।

"तू ने उसे कैसे पहचाना? तू ने तो उसे कभी देखा भी न था।" लाजो के मन मे अनेक बाते उठ रही थी कैसे पूरो की उस के भाई के साथ सगाई हुई थी, कैसे उस के भाई का विवाह रचा जानेवाला था, कैसे फिर पूरो एकाएक गुम हो गयी थी फिर पूरो की छोटी बहन उस के भाई को ब्याही गयी थी।

"मैं ने उसे एक बार पहले भी देखा था।" पूरो ने रत्तोवाल के खेतोवाली बात लाजो को सुनायी। पूरो ने यह भी बताया कि उस समय तक उसे यह पता न था कि रामचन्द उस का बहनोई बन चुका है।

"मुझे कभी भी कोई खैर-खबर नही मिली। केवल जिस दिन काफिला इधर से गुजरा मर हुआ को भी लोग याद करते है, उन के नाम से श्राद्ध खिलाते है, कभी

कभी घर में कोई मेरा नाम भी ले लेता होगा ?" पूरो का गला भर आया।

लाजो ने उसे बताया कि उस का पिता दो साल हुए मर चुका था, उस की माँ कई बार उस का नाम ले-लेकर रो लेती थी।

"मेरी मा के करम, बेटी भी उस की जीते जी मर गयी और वह भी।" पूरो ने कहा, और पूरो और लाजो दोनों रोने लगीं।

बूचड़खाने की गायों की भाँति दोनों अपनी चारपाइयों की पट्टियों से लगी पड़ी रहीं।

"तू जब वहा जायेगी, मेरी माँ से मिलेगी तो उस से कहना कि एक बार मुझ जीती का मुँह तो देख ले," पूरो ने और भी रोकर कहा।

"म... मैं वहाँ कहाँ जाऊँगी?"

"तू अपने घर जायेगी, अपने पति के पास, अपने भाई के पास।"

"मैं तो जीती मर चुकी हूँ, मुझे अब कौन कबूल करेगा?"

"नहीं, लाजो, मैं अपने जीते यह अन्याय न होने दूँगी। तू अपने घर जायेगी। तेरा इस में क्या दोष है?"

"पर तेरा ही क्या दोष था? तुझे आज तक घरवालों ने न बुलाया!"

"मेरी बात और थी, लाजो।"

"तेरी बात और कैसे थी? तू क्या अपनी मरजी से आयी थी? तू भी तो..."

"हाँ, लाजो! पर तब मैं अकेली थी। मेरे माँ-बाप को साहस न हुआ कि वे लोगों की बातें सुन सकें, और उन्होंने अपनी ममता को अपने से अलग तोड़कर फेंक दिया। अब किसी एक को नहीं, सब के कलेजे पर लगा है।"

"नहीं, पूरो! मेरी किस्मत अच्छी होती तो पहले ही मेरे साथ यह अत्याचार न होता। मैं जानती हूँ मुझे कोई लेने नहीं आयेगा।"

"मैं कहती हूँ, तेरे भाई का पत्र जरूर आयेगा। हम तेरा पता देंगे और वे तुझे लेने जरूर आयेंगे। अच्छा यह तो बता, मेरा भाई देखने में कैसा लगता है?" पूरो ने लगाव से पूछा।

लाजो को अपने पति का ध्यान आ गया। वह कैसे उस का मुख देख सकेगी, वह कैसे घरवालों के सामने पड़ सकेगी—लाजो सोचने लगी। पर उस के दिल में सोना विश्वास था कि उसे लेने कोई नहीं आयेगा। वैसे मन के लड्डू वह चाहे जितने मन में फोड़ ले।

"नहीं लाजो! कोई न कोई तुझे लेने जरूर आयेगा। आज किसी को किसी से शिकायत नहीं। सब अपनी बेटियों-बहनों को ले जा रहे हैं। रशीद कहता है उधर से भी ढूँढ-ढूँढकर लोग अपनी स्त्रियों को वापस ला रहे हैं, कइयों के तो बच्चे भी हो गये हैं।" और फिर दोनों की दोनों गुमसुम होकर स्त्रियों की इस विवशता पर विचार करने लगीं।

लाजो सोचने लगी, आज तक उस के घर कोई बाल-बच्चा नही हुआ था, पता नही उस में क्या दोष था। आज यही दोष उसे फला, नही तो न जाने उस की क्या दुर्दशा होती।

"जहा वे एक के लिए रोते ह, अब दो के लिए रो लेंगे। म वही नही जाऊंगी, पूरो! मैं क्या मुंह लेकर जाऊंगी! मैं तेरे बालकों की टहल कर के रोटी खा लूंगा।"

"ऐसे क्यो कहती ह, लाजो! मेरे घावों पर नमक मत छिड़क। यह तेरा अपना घर ह। पर लाजो! वे तुझे जरूर ले जायेंगे। मैं सारी दुनिया का वास्ता देकर उन्ह मना लूंगी।

पूरो ने लाजो को अपनी बाहो म कस लिया।

"तू अपने घर मजे में है, पूरो?

"रशीद का पीठ-पीछा ह। पहला गुनाह जो उस ने किया सो तो किया, पर उस के बाद उस ने मुझे कभी बुरा भला नही कहा। वह मेरे साथ न होता तो मैं तुझे खोजकर कैसे ले आती?

'मुझे ले आने म उस ने अपनी जान बड़ी जोखिम में डाली। जो कही उस राक्षस का पता चल जाता तो वह मेरी हड्डिया को फूंककर ही पानी पीता"

'वे कहाँ फूंकने ह, बावली! वे लोग तो गाड़ देते ह।'

'कुछ सही पर पूरो कही वह इस गाव का पता तो नही लगा लेगा? मेरा तो जी डरता है, कही तुम्हारा बसा हुआ घर न उजाड़ दे।'

"अभी तक तो उन्हें तेरी परछाई का भी पता नही लगा है! और पूरो ने लाजो के खो जाने के बाद बुनिया और बुनिया के बेटे से अपने मिलने की सारी बात कह सुनायी।

"पहले भी इसी पिछली कोठरी म कई दिन तक मैं ने एक हिंदू लड़की छिपा कर रखी थी। किसी को उस की हवा तक न लगने दी। फिर उस दिन मैं उसे काफिले में छोड़ आयी। तुझे भी यहा भीतर चोरी-चोरी रखूंगी ताकि गाँव में कही कुछ बात न उड़ जाय। जिस दिन खत-पत्र आ गया तुझे चुपके से ले जाकर लाहौर छोड़ आयेंगे। किसी को कानोकान खबर भी न होगी।

'और जो उन का पत्र न आया'

"मेरा दिल गवाही देता ह लाजो! तेरा भाई अवश्य पत्र डालेगा।'

हिचकोले

दिन पर दिन बीतते गये, भोर होता, साँझ होती। न लाजो की खबर घर के बाहर निकली, न लाजो के घरवालो की कोई खोज-खबर आयी। बस पूरो और लाजो हर

घड़ी साथ रहती थी। रात को जब उन की आँखों में नींद घुल जाती, दोनों की आँखों में सपने ही सपने बिखर जाते थे। मुँह अँधेरे उठकर वे बातें करने लगतीं, सपनों के शकुन-अपशकुन विचारतीं। कभी उन का मन चक्कर में पड़ जाता, कभी उन का मन स्थिर हो जाता। कितनी ही बार लाजो बालकों की भाँति चूल्हे में से कोयला निकालकर धरती पर लकीरें खींचने बैठ जाती। कभी शकुन शुभ निकलता कभी अशुभ। कभी बातें करते लाजो की आँखों से आँसुओं की धाराएँ बह निकलतीं कभी वह पूरो के बच्चों के साथ खेलकर अपना जी बहला लेती। बस लाजो के मन में प्रायः निराशाजनक बातें ही उठा करती थीं। उसे आशा नहीं थी कि कभी कोई उस की खबर लेगा। पर पूरो के मन के अन्दर से न जाने कौन बढ़ावा देता था कि किसी दिन चुपके से कोई आ पहुँचेगा किसी दिन अचानक ही कोई खत-पत्र आ जायगा लाजो के दिन फिर जायेंगे। पूरो ने अपनी ओर से लाजो का आतिथ्य-सत्कार करने में कोई कसर न उठा रखी थी। वह सोचती थी कि लाजो थोड़े दिनों के लिए धरोहर के रूप में उस के पास है फिर शायद वह उस से कभी न मिल सकेगी, उसे कभी न देख सकेगी। सभी के मुख भी उस समय केवल लाजो की मुखाकृति में ही दीख पड़ते थे। कौन उस के घर रहने के लिए आयेगा, कौन उस से मिलने के लिए आयेगा! उस के अपने सम्बन्धियों में से लाजो ही उस के घर की प्रथम तथा अन्तिम अतिथि थी।

दिन के प्रकाश में लाजो ने कभी ड्योढ़ी न लाँघी थी। रात के अन्धकार ने लाजो का भेद बड़े ही ध्यान से सुरक्षित रखा था। पर गाँव के शकिये ने तीन पत्तोंवाला झाड़ भी उस के आँगन में न फेंका।

लाजो और पूरो के मुख पर चिन्ता की रेखाएँ दीखने लगीं। लाजो के मन को केवल एक यह सन्तोष अवश्य था कि पूरो और रशीद ने कभी उसे जी छोटा करने न दिया। पर सारा सारा दिन छिपे हुए दुबके हुए लाजो सोचती कि पहाड़ जैसी उमर उस के सिर पर लटक रही है, कब इस प्रतीक्षा के दिन पूरे होंगे!

पूरो का किसी के यहाँ बहुत आना जाना नहीं था। लाजो पिछली कोठरी में ही उठती-बैठती थी। दोपहर को कभी-कभी दोनों जनी बाहर का कुण्डा लगाकर चरखा कातने बैठ जाती थीं। दिन बीत जाता था, पर सोचें खत्म होने में नहीं आती थीं।

जाड़ा बीत चुका था। फागुन भी बीतने को था। पानी में ठण्ड न रही थी। एक दिन ढलती दोपहरी के समय जब रशीद ड्योढ़ी लाँघकर घर आया तो लाजो और पूरो को देखते ही उस की आँखें डबडबा गयीं।

सहमी हुई दोनों उस के पास आयीं। कई मिनट तक वह कुछ न बोल सका। लाजो को लग रहा था, कोई उस के कलेजे को बाहर खींच रहा है। उसे एक यही डर था कि कहीं रत्तोवाल की बुनिया और उस के बेटे को लाजो का पता लग गया है वे उसे जबरदस्ती घसीटकर ले जायेंगे पता नहीं पूरो पर क्या बीते।

रशीद चारपाई की पट्टी पर बैठ गया, कुरते की बाँह में दोनों आँखें पोंछकर

उस ने लाजो की पीठ पर प्यार से थपकी दी। उस के हाथों में वही प्रेम था जो एक बुजुर्ग पिता को लड़की को ससुराल भेजते समय होता है। रशीद का दिल भर आया था। उस ने अपने मन को स्थिर कर के कहा, "आज रामचन्द आया है।"

"यहां ?" लाजो और पूरो एक साथ बोल उठीं।

हां, साथ में हिन्दुस्तान पुलिस के कुछ सिपाही हैं, कुछ पाकिस्तान के। लोग इसी तरह गांवों और शहरों में खोयी हुई लड़कियों को ढूंढ रहे हैं। रामचन्द मुझे अकेले में भी मिला था।" रशीद कह रहा था।

"सचमुच मुझे लेने आये हैं ?" लाजो के मुख से अकस्मात ही निकल गया, पर फिर वह स्वयं ही लज्जित-सी हो गयी।

"पगली कहीं की, और वह यहां क्या करने आये हैं ?" रशीद ने कहा।

पूरो अभी तक चुप बैठी थी। उसे अपने अन्तस्तल में एक अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव हो रहा था, क्योंकि उस का विश्वास सत्य सिद्ध हुआ था। वह जानती थी रामचन्द आयेगा, वह जानती थी उस की भाभी अपने ठिकाने पहुंच जायेगी। लाजो तो व्यर्थ ही दिल हार बैठती थी। जिन दिनों रशीद भी निराश-सा हो जाता था, पूरो के मन में मानो कोई गवाही देता था कि रामचन्द अवश्य आयेगा। सो आज वह दिन आ गया था। रामचन्द सचमुच ही आ गया था।

"क्या अकेला आया है ?" लाजो ने पूछा।

रशीद समझ गया कि लाजो के इस प्रश्न का क्या अर्थ है। बोला "हां, अभी तो अकेला ही आया है। पर तू चिन्ता न कर। तेरे घर के सब के सब तुझे सिर-आंखों पर बिठलाकर ले जायेंगे।"

लाजो के मन को कुछ सन्तोष हुआ।

"तेरा नाम सुनकर, तेरी खबर सुनकर रामचन्द रोता ही रहा, उस के आंसू किसी तरह थमते न थे। उसे देखता था तो मेरा जी भी भर भर आता था।" रशीद की आंखें फिर भर आयीं। लाजो और पूरो रोने लगीं।

"मैं ने उन्हें अच्छी तरह समझा-बुझा दिया है। आज तुझे यहां पर इसी तरह दे देने से सारे गांव को खबर हो जाती। कौन जाने बात रत्तोवाल तक भी पहुंच जाती। मैं ने उन से कहा है, तुम वापस लाहौर चलो, मैं लड़की को लेकर लाहौर पहुंचता हूं, वहां तुम्हारे हवाले कर दूंगा।"

यह अच्छा किया। पूरो ने कहा।

"हम वहां आज से पांचवें दिन पहुंचेंगे। तब तक वह अमृतसर से पूरो के भाई को भी बुला लेंगे। मैं ने सोचा, एक बार पूरो भी अपने भाई से मिल लेगा।" रशीद लाजो की पीठ पर प्यार से हाथ फेरता हुआ कह रहा था।

पूरो की बिंधी हुई रुलाई निकल गयी। लाजो ने पूरो की गोदी में सिर रखकर उसे अपने से चिपटा लिया। दोनों एक-दूसरे में खोयी हुई थीं, दोनों एक-दूसरे के दुख

की साझादार हो गयी थी, दोनों के आँसू आपस में मिल गये थे।

लाहौर का रास्ता मुश्किल से डेढ़ दिन का था। यहाँ से चलने में अभी पूरे तीन दिन रहते थे।

अगले दिन पूरो ने वेसन मँगवाया, इकट्ठा किया हुआ भैंस का मक्खन निकाला, बादाम और मेवा डालकर पूरो दिन भर लड्डू बनाती रही। जैसे लड़कियों को ससुराल विदा करते समय दिया जाता है, पूरो ने एक रेशमी जोड़ा निकाला। लाजो को वह बार बार अपने गले से लगाती, बार-बार उस से मिलकर रोती।

तीसरे दिन दाना वालों का साथ लेकर पूरो, लाजो और रशीद मुँह-अँधेरे ही गाँव से निकलकर रेलगाड़ी पर सवार हो गये।

पिछले चार दिनों से पूरो के हृदय में अनेक प्रकार के विचार उठते रहे थे, उस की रातें सोचते-सोचते बीती थीं। पूरो अपने मन में निश्चय करती, मैं लाजो से कहूँगी, मेरी माँ से जाकर यह कहना, मेरी माँ को जाकर यह बताना, उस से कहना एक बार मुझ जीती का मुँह तो देख ले... सोचते-सोचते पूरो का गला भर आता, सोचते-सोचते पूरो को कहने के लिए बहुत कुछ सूझता, सोचते-सोचते फिर पूरो के मुँह से एक बात भी न निकलती थी।

लाजो को अपने भाई और अपने पति का मुख देखना बड़ी ही अचरज की बात जान पड़ती थी, ऐसी ही जैसे कोई मरकर अगली दुनिया में बिछुड़ हुए लोगों से मिलने की आशा रखता हो। यद्यपि लाजो को अपने घरवालों से बिछुड़े हुए पाँच छह महीने ही हुए थे, उस को लगता था कि वह एक बार मरकर इस धरती पर जीवित हो गयी है।

सारे रास्ते रशीद का मन हिचकोले खाता रहा।

एक घड़ी

पुलिस के पहरे में जब वे मिले, लाजो से अपनी पलकें उठाये न उठती थीं। पूरो ने अपने भाई के मुख की ओर देखा। मिलन की इस एक घड़ी के एक ओर चिरकाल का बिछोह था, मिलन की इस घड़ी के दूसरी ओर असीम बिछोह दृष्टिगोचर हो रहा था। किसी के भी आँसू थमने में न आते थे।

मरद मानसों का जिगरा भी टूट गया था। होनी का जो यह पहाड़ उन पर टूट पड़ा था उस के आगे किसी का किसी से कुछ पूछना न रह गया था। रो रोकर उन्होंने अपने हाथ भिगो लिये, रो रोकर उन्होंने अपने कपड़े भिगो लिये।

'सुनना जी! कभी भूल से भी लाजो का निरादर न करना।' सब से पहले पूरो बोली।

लाजो के पति का मुँह नीचा था, लाजो के भाई का मुँह नीचा था।

'पूरो हमें लज्जित न कर।' लाजो के भाई ने कहा।

लाजो का पति कुछ न बोल सका। शायद वह कुछ सुन भी न सका था। आज उस ने केवल अपनी खोयी हुई पत्नी ही नहीं देखी थी बल्कि अपने होश सँभालने से पहले की खोयी हुई अपनी बहन को देखा था। वर्षों से उस के हृदय में एक आग सुलगती रही थी जिस की एक चिनगारी उस ने रशीद के खेत में लगा दी थी जिस से सब कुछ जलकर राख हो गया था। अनेक वर्षों से वह उस राजकुमारी की कहानी के सम्बन्ध में सोचता रहा था, जिसे एक दैत्य चुराकर ले गया था और फिर पूर्व देश का एक राजकुमार उसे अपने जादू के तीरों से बल से छुड़ाकर लाया था। छुटपन में उस ने कई बार साधु-सन्तों से जादू के वह तीर मांगे थे। बड़े होने पर पूरो के ध्यान से वह व्याकुल हो उठता था। आज वर्षों की खोयी हुई पूरो उस की आँखों के सम्मुख खड़ी थी। इस घड़ी वह भूल गया था कि रशीद ने उस की पत्नी को बचाया है, इस घड़ी उसे केवल यही याद था कि रशीद उस की बहन को उठाकर भाग गया था।

पुलिस की लारी तैयार हो गयी। हिन्दुस्तानी पुलिस के सिपाहियों ने आवाज दी, 'उधर जानेवाले हिन्दू एक ओर हो जायें, लारी तैयार है।'

रामचन्द ने रशीद को बार-बार अपने गले से लगाया और बार-बार कहा, 'भाई तेरी बड़ी कृपा है, मैं तेरा उपकार कभी नहीं भूलूँगा।' रशीद के मुख पर यह उपकार करने का प्रसन्नता तो थी, पर उस की आँखें लाजो को बचाने के बाद भी लज्जित थीं। उसे पूरो को उठाकर भगा लाना याद आ रहा था। फिर भी उसे लग रहा था कि उस के सिर पर चढ़ा हुआ ऋण कुछ न कुछ कम हो रहा था।

आवाज फिर आयी 'उधर जानेवाले हिन्दू एक ओर को हो जायें।''

पूरो ने वह रेशमी जोड़ा और बेसन के लड्डुओं की गठरी लाजो के हाथ में थमा दी, लाजो को कसकर अपने गले से लगाया और फिर अपने भाई से अन्तिम बार मिलते हुए उस के गले से लिपट गयी।

'पूरो!' पूरो का भाई केवल इतना ही कह सका और उस ने पूरो की बाँह को कसकर पकड़ लिया।

''मेरी बात सुन, इस समय' पूरो के भाई ने साहस कर के कहा। पूरो अपने भाई की बात समझ गया। पूरो के मन में भी एक बार रोष उत्पन्न हुई जो मैं इस समय कह दूँ मैं एक हिन्दू स्त्री हूँ तो मुझे अवश्य ही वह इन सब के साथ लारी में बिठाकर ले जायेंगे। मैं भी लौट सकती हूँ, मैं भी लाजो की भाँति देश की हजारों लड़कियों की भाँति

पूरो की आँखों में रोके हुए आँसू उभर आये। उस ने धीरे से अपने भाई के हाथ से अपनी बाँह छुड़ा ली और परे खड़े हुए रशीद के पास जाकर अपने लड़के को उठाकर अपने गले से लगा लिया।

न बोली।

करीब आधे घण्टे के बाद कुमार ने मेज से सिर उठाया। जब वह बहुत थक जाता तो उस के माथे पर एक नाडी उभर आती। इस नाडी का कसाव उस की आँखें भी महसूस करतीं। उस ने एक मिनट आँखें बन्द कीं, और फिर माथे की नाडी को अपनी पोरों से सहलाते हुए उस ने अल्का की ओर देखा, "कॉफी का एक प्याला मिलेगा?

अलका ने स्टूल पर रखे हुए प्याले को उठाया और कमरे से सटे हुए छोटे बरामदे में चली गयी। रसोई कुछ दूर पडती थी, इसलिए कुमार ने चाय बनाने का सामान बरामदे में रख छोडा था। चूल्हे पर पानी रखकर अल्का ने प्याले की ठण्डी कॉफी को गिरा दिया और प्याला धोने लगी।

गरम कॉफी का प्याला लेकर अलका जब लौटकर कमरे में आयी तो कुमार मेज पर के कागज को ध्यान से देख रहा था।

'आज इतनी खुशबू कहाँ से आ रही है?' कुमार ने इस तरह पूछा जैसे वह खुशबू को नजर गडाकर ढूँढ रहा हो।

अल्का ने भी तसवीर की ओर गरदन घुमायी, और फिर तसवीर की लड़की के बालों में टँगे हुए फूलों की ओर देखती हुई कहने लगी, 'इन फूलों से आ रही होगी।'

अलका के हाथ से कॉफी का प्याला पकडते हुए कुमार खिलखिलाकर हँस पडा, 'अभी मैं ने अपना होश इतना नहीं खोया कि कागज पर बनाये हुए फूलों में से मुझे खुशबू आने लगे।'

अल्का चुप सी रही। उस ने दीवान के पाये के पास पडी हुई चौकी की ओर देखा जैसे कह रही हो कि इतना होश जरूर जाता रहा है कि कमरे में पडे हुए ताजे फूल अभी तक दिखाई नहीं दिये थे। ये फूल अल्का ने सुबह आते ही कमरे में लगा दिये थे।

'ओह...' कुमार ने होश में होने का दावा वापस ले लिया और कॉफी का गरम घूँट भरते हुए कहने लगा, 'पर यह आदत नहीं डालनी चाहिए थी।'

'कैसी आदत?'

'कॉफी की आदत... फूलों की आदत...'

'और?'

'पैसे की आदत... शोहरत की आदत... औरत की आदत...'

'और अपने आप की आदत?"

"क्या मतलब?

'अपने-आप की आदत भी नहीं डालनी चाहिए। कभी किसी माइकेल ऐंजेलो को माइकेल ऐंजेलो रहना चाहिए और कभी उसे बाजार के एक कोने में बैठा हुआ हलवाई भी बन जाना चाहिए। कभी नमक-तेल बेचनेवाला बनिया और कभी पान

बीडी बेचनेवाला ''

कुमार हँस दिया, "तुम समय नहीं पाया हो अल्का ! एक अपने-आप की आदत भर के लिए बाकी कोई आदत नहीं डालनी चाहिए। मैं सोचता हूँ कि अपने-आप की पूरी आदत केवल तभी पड सकती है जब आदमी बाकी आदतों से मुक्त हो जाये।"

"यह मैं मानती हूँ। पर मेरे विचार में शोहरत और औरत में बहुत फर्क होता है।

"किसी आदत और आदत में कोई अन्तर नहीं होता मैं एक बार "

"चुप क्यों हो रहे?"

"तुम्हारी जगह अगर कोई दूसरी लडकी होती तो मैं शायद चुप रहता। किसी को भी कुछ बताने की मुझे कभी जरूरत नहीं पडी। जरूरत अब भी कोई नहीं। पर शायद बताने में कुछ हरज नहीं। तुम मुझे गलत समझोगी।'

"मुझे भी खुद पर भरोसा है।"

"मैं यह बताने चला था कि एक बार मुझ में ऐसी भूख जगी कि मैं कई दिन सो न सका। वह सिर्फ जिस्म की भूख थी, एक औरत के जिस्म की भूख। पर मैं किसी भी औरत के साथ अपनी जिन्दगी के साल बाँधने के लिए तैयार न था, कभी भी तैयार नहीं हो सकता। इसलिए कुछ दिन मैं ऐसी औरत के पास जाता रहा जो रोज़ के बीस रुपये लेती थी, और मेरी स्वतन्त्रता को कभी नहीं मांगती थी।"

अल्का ने कुछ नहीं कहा। सिर्फ नजर गडाकर उस ने कुमार के चेहरे की ओर देखा।

"तुम मेरे मन की बात समझी हो क्या?"

"हाँ।

"या तुम सोचती हो कि मैं एक अच्छा आदमी नहीं हूँ?'

"नहीं, मैं यह नहीं सोचती।

"पर तुम कुछ सोच रही हो '

"हाँ।"

'क्या?'

" कि मैं वह औरत होती जिस के पास आप रोज़ बीस रुपये देकर जाया करते थे।'

"अल्का।'

कुमार के हाथ में पकडा हुआ कॉफी का प्याला काँप गया। पर अल्का उसी तरह निष्कम्प खडी रहा, जिस तरह वह पहले खडी थी। कुमार घबराकर दीवान पर बैठ गया।

'मैं कह रही थी कि शोहरत और औरत में बडा फर्क होता है।'

'मैं समझा नहीं।'

'शोहरत किसी को अपने आप को समझने में मदद नहीं करती, और न ही पैसा करता है। पर औरत किसी को अपने आप को समझने में उसी तरह मदद करता है, जिस तरह किसी की कला उस की मदद करती है।

"कला व्यक्ति का ही एक अंग होती है—जैसे बाजू या हाथ-पांव।'

"मुहब्बत भी अपना ही एक अंग होती है। अपनी आंखों की तरह या अपनी जबान की तरह। शायद इस से भी अधिक। ये आंखें नहीं, आंखों की नजर होती है। नजर भी नहीं—एक नुक्ता-नजर होता है

'मेरा नुक्ता-नजर बिल्कुल अलग है अलका।'

'वह मैं जानती हूँ।

'यह तुम्हारे नुक्ता-नजर से कभी मेल नहीं खा सकता।"

शायद।

'शायद नहीं यह सच है।"

'मैं ने यह नहीं कहा कि यह कभी मेल खा जाये '

'फिर '

मैं ने कुछ नहीं कहा।'

पर तुम ने यह क्या कहा कि तुम '

" कि मैं वह औरत होती जिस के पास आप बीस रुपये रोज देकर जाया करते थे ?'

"तुम ने यह क्या कहा ?'

'रुपये कमाने के लिए

इस बार अलका हंस पड़ी पर कुमार की हंसी उस के गले में ही सकपका गयी।

"क्या, यह ठीक नहीं ? बीस रुपये रोज के कम हैं क्या ?

"तुम-सी गम्भीर लड़की '

'मैं सचमुच ही बड़ी गम्भीर हूँ।

'हां अपने काम में तो सच ही

'मैं जिंदगी में भी वैसी ही हूं।

'फिर तुम ने यह बात कैसे कही।

"इसलिए कि मैं बहुत गम्भीर हूं।

'वह गम्भीर बात है ?

'इतनी कि इस से अधिक गम्भीर बात कोई और नहीं हो सकती।"

'मैं इसे या नहीं समझ पाऊंगा अलका। नहीं तो मन दिल में दुखी होता रहूँगा।'

फिर भूल जाइए कि मैं ने यह बात कही थी।"

"तुम भूल सकोगी इस बात को ?"

"मैं कभी याद नहीं दिलाऊँगी।"

"हम रोज़ कम ही काम करेंगे जैसे पहले करते रहे हैं ?"

"हम रोज़ कम ही काम करते रहेंगे जैसे पहले करते रहे हैं।"

"हम कभी व्यक्तिगत बातें नहीं करेंगे ?"

"हम कभी व्यक्तिगत बातें नहीं करेंगे।"

"हम सिर्फ अपने काम से वास्ता रखेंगे ?"

"हम सिर्फ अपने काम से वास्ता रखेंगे।"

"तुम मेरी ज़िन्दगी में कोई दखल न दोगी ?"

"मैं आप की ज़िन्दगी में दखल नहीं दूँगी।"

"विशेषकर मुहब्बत की बात नहीं करोगी ?"

"विशेषकर मुहब्बत की बात नहीं करूँगी।"

"अलका !"

"जी !"

"तुम यों बोलती जा रही हो, जैसे कोई बच्ची मास्टर के सामने 'दो दूनी चार' का पहाड़ा पढ़ रही हो ! तुम सीरियस क्यों नहीं हो ?"

मैं बिल्कुल सीरियस हूँ। मैं सारे वचनों को इस तरह दोहरा रही हूँ जैसे गुरु से मन्त्र लेते समय कोई गुरु के वाक्य को दोहराता है।"

कुमार ने अपने माथे की उभरी हुई नाड़ी को उँगलियों से मला और कहने लगा, "मैं तुम्हें बिल्कुल नहीं समझ सकता, अलका !"

"पर मैं अपने-आप को समझ सकती हूँ।"

कुमार ने अभी तक मेज़ की बत्ती नहीं बुझायी थी। उस ने एक बार मेज़ पर पड़े हुए काग़ज़ की ओर देखा, और फिर मेज़ की बत्ती बुझाकर छत की बत्ती को जला दिया।

छत की बत्ती की रोशनी पीतल के सूराखों में से पतली-पतली धाराओं में बराबर बहने लगी। कमरे की दीवारों और फ़र्श पर रोशनी छितराने लगी। पर कुमार को रोशनी से भीगे हुए फ़र्श पर पाँव रखते हुए लगा, जैसे इस गीले फ़र्श से उस का पाँव फिसल जायगा।

२

आज से पहले कुमार को जब किसी औरत का सपना आया था, वह औरत हमेशा ऐसी होती थी जिस का याद रहने योग्य कोई चेहरा नहीं होता था। जिस औरत का कोई

चेहरा न हो, उस औरत की कोई पहचान नहीं होती। जिस औरत की कोई पहचान न हो, उस औरत की कभी तलाश नहीं होती। और जिस औरत की तलाश न हो, उस के लिए दिल में कोई दर्द नहीं होता। कुमार को इस तरह का कोई बेसिर का सपना हमेशा तभी आता था, जब उस के जिस्म में औरत के जिस्म के लिए भूख जगती थी। और यह भूख कुमार के जिस्म में कभी कभार ही जगती थी। इसलिए जब कभी भी कुमार को यह सपना आता था, बाद में इस की याद कुमार को विस्मृत हो जाती थी।

पर आज रात कुमार को जो सपना आया, उस की याद कुमार को साल रही थी। इस सपने में उस ने औरत का चेहरा देखा था, चेहरे को पहचाना था और उसे डर था कि कहीं यह पहचान उस की तलाश न बन जाये। तलाश हमेशा रिश्ते बांधती है। और वह अपनी कला के सिवा किसी चीज से कोई रिश्ता नहीं बांधना चाहता था।

रात अपने आखिरी पहर तक गुजर आयी थी। कुमार ने पहले छत की बत्ती जलाया। पर फिर रोशनी की सफेद धाराओं से घबराकर उस ने बत्ती बुझा दी। वह एकाग्र होना चाहता था—एकमन होना चाहता था। उस ने अपनी मेज की बत्ती जलायी। चाहे उस ने मेज पर अभी कोई काम नहीं करना था पर मेज की बत्ती की रोशनी उसे अच्छी लगी। पीतल का एक छोटा-सा ढक्कन की आड़ रोशनी को बिखरने से बचाकर एक स्थान पर केन्द्रित कर रही थी।

'कितनी साधारण-सी बात है—मैं यों ही घबरा रहा था। मन के विचारों को भी एक जगह केन्द्रित करने के लिए एक छोटे-से ढक्कन की जरूरत होती है—एक छोटी-सी आड़ की जरूरत होती है।' और कुमार के मन में एकदम यह खयाल आया कि कला ही रोशनी होती है, और कला ही उस की आड़।

कुमार ने अपने लिए चाय का एक प्याला बनाया, और अपनी कुरसी पर बैठ कर वक्त से पहले ही काम करना शुरू कर दिया।

सूरज की पहली किरण निकलते ही कुमार को अल्का का खयाल आया। शायद इसलिए, कि ज्यों-ज्यों दिन चढ़ रहा था, अल्का के आने का समय हो रहा था।

'मेरा खयाल है कि मेरे जिस्म में फिर से कोई भूख जग रही है—मुझे औरत का सपना इस भूख के बिना नहीं आ सकता...' और कुमार ने सोचा कि वह कुछ दिनों के लिए अपना स्टूडियो बन्द कर के किसी शहर में चला जाय। दस दिन शहर में रह कर वह अपनी इस भूख को मिटा आये। फिर लौटकर अपने काम में उसी तरह डूब सकेगा जिस तरह वह पिछले कई महीनों से डूबा हुआ था। कुमार की यह जमीन और उस का स्टूडियो कांगड़ा वादी में पपरौला स्टेशन से करीब दस मील के फासले पर था।

कुमार अपने कागज और कपड़े-लत्ते संभाल रहा था कि अलका ने दरवाजा खटखटाया।

"मैं कुछ दिनों के लिए शहर जा रहा हूँ।"

"पठानकोट या अमृतसर ?"

"शायद पठानकोट तक। तुम इतने दिन यहीं अकेली रहना चाहोगी या अमृतसर जाना चाहोगी—अपने पिताजी के पास ?"

"मैं यहीं रहूँगी।"

"मुझे शायद ज्यादा दिन लग जायें।"

"सो ठीक है।"

"शहर से कुछ लाना हो तो मुझे बता दो।"

"अपने रंग और कागज देख लीजिए। कम हों तो लेते आइएगा।"

"अभी पीछे मँगवाये थे—कम से कम छह महीने जरूरत नहीं पड़ेगी।"

"मुझे काफी काम समझा जाइए। पीछे करती रहूँगी।"

"जितनी भी मेहनत करोगी कम है।"

कुमार अल्का से बातें भी कर रहा था और सूटकेस में कपड़े भी सँभाल रहा था।

"मैं रख दूँ कपड़े ठीक से ? नहीं तो सारे सूटकेस में नहीं आयेंगे।"

"अच्छा, तुम ये कपड़े रखो। तब तक मैं अपनी पैंट ले आऊँ। कल प्रेस करने के लिए दी थी।"

"इन में कुछ मैले कपड़े भी पड़े हुए हैं। इन्हें धो डालूँ ? दो घण्टे में सूख जायेंगे।"

"रहने दो। मैं शहर से धुलवा लूँगा।"

"पर गाड़ी तो दोपहर को छूटेगी न ? अभी काफी देर है।"

"अच्छा धो डालो। पर तुम खुद क्या धो रही हो ! अभी हरिया आयेगा। उस से धुलवा लेना।"

अल्का ने कोई जवाब न दिया। कुमार पैंट लेने के लिए चल दिया।

यात्री पैंने का आसपास कोई आदमी नहीं था। कुमार ने बैजनाथ को जाती सड़क पर चाय की दुकान वाले पहाड़िये को शहर से लोहे की प्रेस ला दी थी। वहीं समय-असमय कुमार ये कपड़े धोकर उन पर प्रेस कर लिया करता था। कल जब कुमार ने वहाँ अपनी पैंट दी थी तो उसे शहर जाने का खयाल तक न था। अब जब वह पैंट लेने के लिए गया तो पैंट धुल चुकी थी, पर उसी तरह सिलवटों-सहित पड़ी हुई थी। कोयले दहकाते और प्रेस गरम करते हुए कुछ देर हो गयी। इसलिए कुमार जब पैंट लेकर वापस आया तो अल्का ने उस के मैले कपड़े धोकर सूखने फैला दिये थे।

"हरिया नहीं आया ?"

"आया था। घड़ा ले गया है भरने को।"

कुमार को रात के अँधेरे में शहर की आकस्मिक तैयारी जितनी स्वाभाविक

लगी थी, दिन के उजाले में वह उतनी स्वाभाविक नहीं लग रही थी। हाथ की पट अलका को देते हुए उसे खयाल आया कि अल्का उस की इस तैयारी के बारे में कोई सवाल क्यों नहीं पूछ रही थी। और उस ने चाहा कि अलका कुछ पूछे। चाहे कुछ ही पूछे। सिर्फ इतना ही कह दे कि पीछे गांव में इतने दिन अकेले रहते उसे डर लगता है। चाहे वह कुमार के स्टूडियो में पहले भी नहीं रहती थी। उस ने आधा मील के फासले पर एक घर में ऊपर का चौबारा किराये पर ले रखा था। फिर भी उसे कुमार की उपस्थिति का सहारा था। और कुमार के मन में आया कि अगर अल्का अकेली रहने की बात चला दे तो वह एक न बार उसे समझाकर अपना शहर जाना स्थगित कर देगा। शहर जाने के लिए उस के दिल में कोई उमंग नहीं थी। किसी तरह की भी जिस्मानी भूख उस में नहीं जगी हुई थी और अल्का जैसे जैसे सूटकेस तैयार करती जा रही थी उसे लग रहा था जैसे उसे जबरदस्ती शहर भेजा जा रहा हो।

"तुम पीछे डरोगी नहीं?" कुमार ने खुद ही कुछ देर बाद पूछा।

'डर? मुझे! मुझे काहे का डर है?' अल्का ने जवाब दिया और सूटकेस को बन्द कर के चाबी कुमार को दे दी। चाबी पकड़ाते हुए अल्का ने सौ-सौ रुपये के दो नोट भी कुमार को दिये।

"यह क्या?'

दो महीनों के रुपये आप एक साथ ले लीजिए। शहर में जरूरत होगी।"

"मुझे क्या जरूरत पड़ेगी? खर्च भर के लिए मेरे पास होंगे।'

"सूटकेस में बैंक की पासबुक रखते हुए मैं ने पासबुक देखी थी। सिर्फ सौ रुपये हैं बैंक में।

"इतने ही काफी हैं। जाने का किराया तो है ही। वापसी में बैंक से सौ रुपये निकलवा लूँगा।'

पर वहां जरूरत पड़ेगी। दस दिन भी रहें तो बीस रुपये रोज के हिसाब "

"अल्का!

कुमार के माथे पर पसीने की बूंदें उभर आयीं। उसे लगा कि अल्का की मोटी मोटी और चुपचाप आंखें पारदर्शिनी हैं। उस ने कुमार के मन में रेंगते सारे खयालों को देख लिया था। उसे अल्का की आंखों पर भी गुस्सा आया पर ज्यादा गुस्सा उसे अपने खयालों पर आया जो केंचुए की तरह उस के मन में रेंग रहे थे। केंचुए की तरह जो किसी का कुछ नहीं बिगाड़ते पर उन की सुस्तायी चाल से चिढ़ आ जाती है। कुमार को खुद ही अपने खयालों से चिढ़ आने लगी।

किसी भी केंचुए को अगर तिनका छुआ दें तो वह कुछ देर के लिए इस तरह निर्जीव हो जाता है जैसे कभी उस में कम्पन न आया हो और वह शुरू से ही एक रस्सी का टुकड़ा हो। कुमार को भी लगा कि उस के मन में डर का जो केंचुआ रेंग रहा था, अल्का के छूने से रस्सी का टुकड़ा बन गया था।

"अगर तुम ने यही सोचा है कि मैं शहर इसी लिए जा रहा हूँ, तो नहीं जाता ।"

कुमार ने मन में छिपे हुए डर को रस्सी के टुकड़े की तरह हाथ में लेकर कहा ।

"हम ने इकरार किया था कि हम कभी व्यक्तिगत बातें नहीं करेंगे । मैं उस इकरार पर कायम हूँ ।" अल्का ने कहा । उस ने शहर जाने या न जाने की बात का कोई जवाब न दिया ।

कुमार मिनट भर को चुप रहा । पर वह चुप्पी बोलने से भी अधिक पैनी थी । बोलने से चाहे व्यक्तिगत बातें न करने का इकरार टूटता था, पर कुमार को लगा कि इस चुप्पी से तो बोलना आसान था ।

"पर तुम ने खुद ही बात छेड़ी थी ।"

"मैं ने सिर्फ रुपये दिये थे, बात नहीं छेड़ी थी ।"

"पर वह बात तुम्हारे मन में थी । वह तुम भूली नहीं थी ।"

"मैं ने कोई बात भुलाने का इकरार नहीं किया था । सिर्फ चुप रहने का इकरार किया था ।"

"पर वह बात याद रखने का तुम्हें कोई हक नहीं ।"

"अपनी याद पर सब का अपना हक होता है ।"

"पर अल्का—आखिर तुम उस बात को याद क्यों रखना चाहती हो ?"

"इस 'क्या' के सवाल में मत पड़िए । इस का अन्त कहीं न होगा । अच्छा हो, अगर हम अपने उसी पहले इकरार पर कायम रहें, कि हम कभी व्यक्तिगत बातें नहीं करेंगे ।"

कुमार ने चुप रहने का जो इकरार अल्का से चाह कर लिया था, वही इकरार कुमार को लगा, एक ऐसा अँधेरा था, जिस में हर चीज डरावनी लगती है । कुमार किसी चीज से डरना नहीं चाहता था । इसलिए उसे लगा कि इस इकरार ने एक अन चाहा अँधेरा भरकर बड़ी मासूम बातों को भी भयानक बना दिया था । सारी बातों को उन की मासूमियत में रखने के लिए कुमार ने सोचा कि वह अल्का के साथ चुप न रह कर बातें करेगा । आखिर अलका एक सुलझी हुई लड़की थी ।

"यहाँ मेरे पास बैठ जाओ, अल्का ।"

"जी ।"

"सच बताओ, मुझ से डर लगता है ?"

"बात उलझाकर मत पूछिए ।"

"उलझाकर ?"

"आप जानते हैं कि मुझे आप से डर नहीं लगता । डर वास्तव में किसी को भी किसी से नहीं लगता । डर हमेशा इनसान को अपने से लगता है ।"

"तुम्हारा मतलब है, मुझे खुद से डर लगता है ?"

'जी ।"

"अल्का !

"जी ।'

'तुम मुझ पर यह इल्ज़ाम किस तरह लगा सकती हो ?'

'मैं ने इल्ज़ाम नहीं लगाया । सिर्फ एक बात कही है ।'

"पर यह गलत है ।'

'अगर गलत है तो आप अचानक शहर किस लिए जा रहे हैं ?'

"शहर जाने के लिए मुझे कई काम हो सकते हैं ।"

आप जानते हैं, कि आप को कोई काम नहीं ।'

चलो मान लिया कोई काम नहीं । शायद यही काम हो कि मैं अपनी जिस्मानी भूख बुझाने के लिए शहर जा रहा हूँ पर यह भी तो एक काम है ।

'इस काम के लिए शहर जाने की क्या जरूरत है ?'

"पर यहां ' कुमार के गले में उस की सांस अटक गयी । पर अपने अटके हुए सांस को खींचकर उस ने कहा यहां शहरों जैसा कोई इन्तज़ाम नहीं ।

"मैं हर तरह से उस लड़की से अच्छी हूँ जो बीस रुपये रोज़ लेकर

अल्का !'

"जी ।

'तुम्हें क्या हो गया है, अल्का ! तुम एक शरीफ लड़की हो शरीफ मां-बाप की बेटी !'

'इस में शराफत का ख़याल कहां से आ गया ?

'रुपया लेकर जिस्म देना शराफत नहीं है ।'

"क्या ?'

क्योंकि यह शराफत नहीं ।

फिर इस हिसाब से रुपये देकर जिस्म को लेना भी शराफत नहीं ।"

कुमार चुप हो गया । अल्का फिर बोली, अगर आप अपने लिए शराफत को जरूरी चीज नहीं समझते तो मेरे लिए क्यों जरूरी समझते हैं ?'

'मेरी बात और है अल्का ।

सिर्फ यही, कि मर्दों के लिए एक वह चीज भी शराफत होती है जो औरत के लिए नहीं होती ।

यह बात नहीं, अल्का ।

"फिर ?

मैं कभी किसी एक चीज के साथ अपने-आप को नहीं जोड़ता इसलिए मेरी कीमतों का असर सिर्फ मुझ पर पड़ेगा । पर कल तुम्हारा विवाह होना है । तुम्हारा

वास्ता सिर्फ़ तुम से नही होगा, किसी दूसरे से भी होगा। उस की कीमतें वे नही होगी, जो मेरी और तुम्हारी कीमतें हो सकती हैं।"

"इस का जवाब मैं इस समय सिर्फ इतना ही दूँगी, कि मेरी जैसी लड़की सिर्फ अपनी क़ीमतो का ही स्वीकार कर सकती है, किसी और की कीमतो को नही।"

"यह भी मान लेता हूँ। चाहे मैं जानता हूँ कि यह बात तुम्हारे बस की नही। तुम क्या, किसी के बस की भी नही। पर मेरी मुश्किल दूसरी है।"

"मैं आप का मुश्किल को जानती हूँ।"

"नही तुम नही जानती।"

"ज़रूरत पड़ने पर आप सिर्फ उस औरत के पास जाना चाहते है जिस औरत का कोई चेहरा न हो और जिस औरत का कोई नाम न हो। क्योंकि चेहरे और नाम से पहचान तक बात आ जाती है, और यह पहचान कभी मन में कोई सम्बन्ध जोड़ देती है।"

"हां, अल्का।"

"ए फेसलेस वूमैन, ए नेमलेस वूमैन।"

"हां, अल्का।"

"मैं अपने-आप को फेसलेस भी बना सकती हूँ, और नेमलेस भी।"

"पर, अल्का! क्या? क्यों?"

"इस 'क्यों' का जवाब मैं नही दूँगी।"

"क्योंकि इस का कोई जवाब नही।"

"इस के कई जवाब हो सकते है।"

"मसलन?"

"मसलन यह कि शायद मुझे रुपयों की ज़रूरत हो।"

"यह जवाब गलत है। तुम मुझे काम सीखने के सौ रुपये देती हो। सौ रुपये महीना कम नही। फिर तुम अपने रहने का, पहनने का, खाने का खर्च भी खुले हाथों करती हो। तुम्हारे पिता अमीर है।"

"फिर हो सकता है कि यह मेरी जिस्मानी ज़रूरत हो।"

"यह जवाब भी गलत है।"

"क्या?"

"मेरे पास इस का कोई सबूत नही। पर मेरा दिल कहता है कि यह जवाब ग़लत है। तुम खुद ही बताओ कि क्या यह गलत नही?"

"हाँ यह जवाब ग़लत है।"

"फिर?"

"मैं ने कहा था कि मैं इस का जवाब नही दूंगी। इसलिए चुप हूँ।"

"पर मैं इस का जवाब जानना चाहता हूँ।"

"आप नही समझेंगे। मैं बता भी दूँ, तो भी आप नही समझेंगे।"

"क्या ?"

"क्योंकि बहुत-सी बातों पर हमारे नुक्ते नज़र अलग है। आप ने ख़ुद ही कहा था कि हमारे नुक्ते-नज़र आपस में कभी नही मिल सकते।"

"मैं ने कहा था पर मैं कोशिश करूँगा, कि तुम्हारा नुक्ता-नज़र समझ सकूँ। समझकर भी शायद मान न सकूँ, पर समझने की कोशिश ज़रूर करूँगा।

'समझाने और मनाने में मेरा कोई विश्वास नही।"

'फिर ?'

'समय ख़ुद समझा लेगा। मना भी लेगा।"

"किसे ? मुझे, या तुम्हें ?

"इसे भी समय के फैसले पर रहने दीजिए।'

अलका के कहने पर जब कुमार ने सब कुछ समय के फैसले पर छोड दिया, तो अलका को दो सौ रुपये लौटाता हुआ कुमार बोला, 'ये रुपये ले लो। अभी मुझे नही चाहिए।

'और चाबी ?'

कुमार हँस पडा— चाबी भी ले लो। सूटकेस खाल दो। मैं शहर नही जा रहा।'

और शहर जाकर जो काम करने थे ?

मुझे कोई काम नही।'

'वह बीस रुपये रोज़ का काम ?

'कोई ज़रूरी नही।

डर की बात को बोलकर निडर होने का जो तजरबा कुमार ने किया था, उसी तजरबे के ज़ोर को आज़माने के लिए कुमार ने कुछ देर बाद अलका से कहा 'अगर कभी मुझे ज़रूरत पडी तो तुम से कह दूँगा।

अच्छा।

'तुम मेरे लिए उस औरत की तरह होगी, जिस का कोई नाम नही होता, या उस का कोई भी नाम हो सकता है।

"यह तो बहुत बडा दर्जा है।'

क्या मतलब ?

ख़ुदा का भी कोई नाम नही होता, और उस का कोई भी नाम हो सकता है।'

"छोटी बातों को ख़ुदा से मिला दें तो वे बडी नही हो जाती।

"कई बातें ऐसी भी होती है जो छोटी होने या बडी होने से बेनियाज़ होती है।"

' जिस चीज की कीमत बीस रुपये से चुकायी जा सकती हो, वह बात हमेशा छोटी ही रहेगी, बडी नहीं हो सकती।'

कुमार की पसलियों में आग की एक लपट-सी दौड़ गयी। उस ने अल्का को अपनी दोनों बाहों में कसकर उस के होंठ से एक लम्बा घूँट इस तरह भरा, जैसे वह दो होंठों से उस की सारी जान पी जाना चाहता हो। आग की लपट की तरह कुमार के जिस्म में कुछ सुलगा, और जिस समय कुमार ने अल्का के अंग प्रत्यंग को अपने से लगा लिया, तो उसे लगा कि उस ने अल्का को अपने जिस्म से नहीं,—आग की लपट में लपेट लिया था। यह अल्का को तोड़ देने की जिद थी।

कुमार जब अल्का से अलग होकर एक तरफ खड़ा हो गया तो अल्का ने अपने जिस्म से ढलके हुए कपड़ों को खींचकर एक सलवटों चादर की तरह अपने पर ओढ़ लिया, और कुमार से कहा, ' मेरे रुपये ?

कुमार ने पैंट की जेब से बीस रुपये निकाले, और अल्का ने हाथ बढ़ाकर रुपये ले लिये।

"सिर्फ बीस रुपये।" कुमार हँस पड़ा। पर उस की हँसी जैसे वैसी थी, वह खुद ही अपनी हँसी से टकराकर दीवार की ओर देखने लगा।

"सोने का कलश चढ़ाकर भी कोई ईश्वर को नहीं खरीद सकता। पर कोई पूजा का एक फूल चढ़ाकर भी ईश्वर को खरीद लेता है।" अल्का ने कहा और वह एक एक कर के कपड़े पहनने लगी।

"क्या मतलब ?"

कुछ नहीं।

"इस तरह बीस रुपये कमानेवाली औरत को क्या कहा जा सकता है ?'

' औरत।

' अल्का '

' मैं एक वेश्या बनने का दावा भी उसी आसानी से कर सकती हूँ, जिस आसानी से बीवी बनने का।

"मैं तुम्हें बिलकुल नहीं समझ सकता, अल्का।

"पर मैं अपने-आप को समझ सकता हूँ।"

कमरे की दोनों बत्तियाँ बुझी हुई थीं। खिड़कियों पर नीली और काली धारियों वाले मोटे परदे लटक रहे थे। पर बाहर से सूरज की रोशनी परदों की झिलमिली से छनकर कमरे की दीवारों पर और फर्श पर बिखर रही थी, और रोशनी से भीगे हुए फर्श पर पैर रखते हुए कुमार को लगा जैसे इस गीले फर्श से उस का पाँव फिसल जायेगा।

३

पाँच निन गुज़र गये। अलका रोज़ नियमपूर्वक आती और काम करती। उस घटना की छाया भी उस के साथ कमरे में न आती। छठे दिन सुबह ही अलका आयी तो कुमार अपना तौलिया तह कर के चमड़े के एक बैग में रख रहा था।

आज फिर शायद जाने की तैयारी है?"

'वह तैयारी छोटी थी यह तैयारी बड़ी है। तुम भी मेरे साथ चलोगी। हरिया नाश्ता तैयार कर रहा है, उसे कह दो कि कुछ ज़्यादा बना ले।

"कितने दिन के लिए?"

एक ही निन के लिए।

कुमार और अल्का जब पगडण्डी पर चलते हुए सामने पहाड़ के बगल में पहुँच गये तो एक पहाड़ी नदी के किनारे खड़े होकर कुमार ने हाथ का बैग एक पत्थर पर रख दिया।

'नहाओगी तुम?

'मैं अपने साथ कोई कपड़ा नहीं लायी।'

इस बैग में एक नीली चद्दर रखी है।'

नदी का पानी, जो सारी रात डरे हुए पत्थरों से बातें करता रहा था, अब सूरज की किरणों से खेल रहा था। अल्का ने बैग से चद्दर निकाल ली और पत्थर की आड़ में जाकर कपड़े उतारने लगी। नीली चद्दर को बदन से लपेटकर जब उस ने पानी में पैर रखा जंगली फूलों की एक टहनी पानी में तैरती हुई अल्का के पास आ गयी। अल्का ने टहनी के आगे का हिस्सा तोड़कर अपने बालों में लगा लिया।

कुमार अल्का की बायीं ओर के पानी में नहा रहा था। अलका ने एक नज़र कुमार को देखा और फिर पानी में आहिस्ता-आहिस्ता चलती हुई कुमार के पास से गुज़री, और काफ़ी दूर जाकर उसकी सीध में ठहर गयी। पानी बहुत गहरा था। खड़े रहते पानी कमर से छूता था। अलका घुटनों के बल पानी में बैठ गयी।

अल्का ने हाथों में हरे काँच की पाँच-पाँच चूड़ियाँ पहनी हुई थीं। पानी में डूबी हुई कलाइयों पर चूड़ियाँ ऐसे लग रही थीं जैसे उस ने बाहों पर हरे पत्ते लपेटे हुए हों। अलका बाहें फैलाकर पानी काटती तो चूड़ियाँ खनक उठतीं।

अल्का ने कई बार अपनी ठुड्डी और आधे मुख को पानी में डुबोकर पानी को अपनी आँखों से छुआया। अलका पानी की उतराई की ओर थी और जो पानी अल्का के बदन को छूकर निकलता था वह दूर से कुमार के बदन को छूकर जा रहा था। अल्का की आँखें बड़े अदब से इस पानी को छूती रहीं।

अल्का की चूड़ियों की खनक चाहे ऊँची नहीं थी, पर इस गहरी खामोशी में वह कुमार के कानों को सुनाई दे रही थी। कुमार इस खनक से बचने के लिए कई बार सीध से हटा। एक बार वह बिल्कुल ही पानी के बायें किनारे तक चला गया। अल्का ने वही सीध ले ली। कुमार किनारा बदलकर पानी के दायें किनारे पर आ गया। अल्का ने फिर सीध बदल ली। जितनी देर, और जो भी पानी कुमार के बदन को छूकर आ रहा था, अल्का उसे अपने अंग-अंग में भर लेना चाहती थी।

कुमार ने शायद अल्का के इस खिलवाड़ को भाँप लिया, और इस खिलवाड़ को तोड़ने के लिए वह पानी से बाहर आ गया। अल्का भी पानी से बाहर होने लगी, तो कुमार फिर पानी में उतर गया और तेज़ी से तैरता हुआ अल्का तक आ गया।

झपटकर कुमार ने अल्का का हाथ पकड़ा और झल्लाकर अल्का के बदन से लिपटी हुई चद्दर खींच ली। चद्दर की तरह ही उस ने अल्का को अपनी बाहों में कस लिया और फिर खौलते हुए होंठों से उस ने अल्का के होंठों को इस तरह पिया जैसे वह अल्का की सारी जान के साथ इस पहाड़ी नदी का पानी पी जायेगा।

कुमार ने टूटकर जब अल्का को छोड़ा तो अल्का के होंठ उसी तरह साबुत थे, अल्का की छाती उसी तरह साँस ले रही थी, और नदी का पानी उसी तरह बह रहा था। कुमार को लगा कि न वह अल्का को सास पा सकता था, और न नदी का पानी। वह किनारे के पत्थरों पर इस तरह जा बैठा जैसे सैकड़ों पत्थरों में एक पत्थर और बढ़ गया हो।

अल्का ने किनारे पर आकर कपड़े पहन लिये और नीली चद्दर को निचोड़कर सूखने के लिए एक बड़े पत्थर पर फैला दिया।

"नाश्ता डाल दूँ?" अल्का कुमार के पास आकर खड़ी हो गयी, और नाश्ते का डिब्बा खोलकर प्लेट पोंछने लगी।

कुमार काफी देर तक अल्का के पैरों की ओर देखता रहा, और फिर लपककर उस ने अल्का के पैरों को मरोड़ा।

"ये पैर इस तरह नहीं, इस तरह होने चाहिए थे।"

"किस तरह?"

"एड़ी आगे होनी चाहिए थी, और उँगलियाँ पीछे।"

"क्यों?"

"क्योंकि जिन्नी के पाँव उल्टे होते हैं।"

"जिन्नी क्या होती है?"

"भूत प्रेतों की जाति की जिन्न।"

"हर जिन्नी के पैर उल्टे होते हैं?"

"मैं छोटा सा था। हमारे पड़ोस में एक बूढ़ा रहता था। वह मुझे जिन्नियों के किस्से सुनाया करता था।"

"उस ने जिन्नी देख रखी थी ?"

"वह कहता था कि उस ने अपनी जवानी में एक जिन्नी पकड़ी भी थी।"

"फिर ?"

"वह बताया करता था कि जिन्नी का पकडना बडा मुश्किल होता है। कई कई रातों श्मशान में जाकर बैठना पडता है। वह पहले बहुत डराती है अगर आदमी डर जाये तो वह खुद पकडी न जाकर उस आदमी को पकड लेती है।"

'फिर उस ने जिन्नी कैसे पकड़ी ?'

"उस ने उसे पाँवों से पहचान लिया था। वह कहता था कि हर जिन्नी का नाक मुँह वैसा ही होता है जैसे किसी साधारण औरत का। जिन्नी के मुख की ओर कभी नहीं देखना चाहिए, क्योंकि उस के पैर उल्टे होते हैं और उसे पैरों से पहचान कर पकड लेना चाहिए।

"पर पकडने का फायदा ?'

'वह बूढा कहा करता था कि अगर एक बार जिन्नी पकड में आ जाये तो सारी उमर कोई फिक्र नहीं रहती। जब आप का दिल हलवा खाने का हो वह हलवा ला देती है जब आप का दिल नये कपडे पहनने का हो तो वह कपडे ला देती है। वह तरह-तरह का खाना ला सकती है। वह हैरान कर देनेवाली चीजें आप के कदमों में लाकर रख सकती है।'

"फिर उस बूढे ने जिन्नी छोड क्यों दी ?"

"वह कहता था कि रोज रात को उसे जिन्नी से मेनका का नाच देखने की आदत पड गयी थी। रात को जिन्नी मेनका के कपडे पहनकर और पैरों में घुंघरू बाँधकर मेनका का वह नाच दिखाती जो सिर्फ इन्द्र के दरबार में होता है।

'फिर ?'

आस-पडोस में शोर मच गया कि रात को यहाँ घुंघरुओं की आवाज आती है। इस लिए लोगों से तंग आकर उस ने जिन्नी को छोड दिया।

"आप ने उस बूढे से जिन्नी पकडने का तरीका पूछा था ?

'जब मैं छोटा था तब मैं उस बूढे से जिन्नी पकडने का सारा ढंग पूछकर एक बार जिन्नी पकडने के लिए गया था।'

'फिर ?

"अमावस की रात थी। उस ने बताया था कि जिन्नी सिर्फ अंधेरी रात में ही पकडी जा सकती है।"

'फिर ?

"मुझे बडा दिलेर समझा जाता था। कुछ अपनी दिलेरी से और कुछ मशहूरी की झोंप में मैं आधी रात को चल निकला। अभी श्मशान तक पहुँचा था। बाहर के पेडों के पास ही मुझे डर लगने लगा। एक घने पेड में से कोई जानवर बोला और मैं

उलटे पाँव भागा "

"शायद वह जिनी हा जो पड पर चढकर वोल्नी हो "

"उस बूढे ने मुझे बताया था कि सब से पहले जिन्नी के परा में बँधे हुए घघरुओ की आवाज़ सुनाई दती है।"

"इस का मतलब ह कि हर जिनो का नाचने की कला आती ह।

"शायद।"

"पर मुझे तो यह कला नही आती।"

सो तुम ने यह मान लिया कि तुम जिनी हो ?

"पर सीधे पैरावाली जिनी, और मीधे रास्तावाली।"

"यह सीधा रास्ता ह ?"

"आप इसे उलटा भी कह सकते ह, क्योंकि अगर काई तसवीर को उल्टी आर से देखे तो उसे वह उल्टी ही दिखाई देती ह।

"मैं उल्टी ओर खडा हूँ ?"

"हम ने कल सोचा था कि हम किसी बात का फसला नही करेंगे, हमारी हर बात का फैसला समय करेगा।"

कल की तरह आज भी कुमार ने अल्का की बात मान ली और सारी बात समय के फसले पर छोड दी। उस ने चुपचाप अल्का के हाथ स प्लेट पकड ली, और नमकीन परांठे का एक कौर तोडकर शहद की कटोरी में डुबोया और दायें पैर के अँगूठे से ज़मीन को खरोचने लगा।

अल्का न थमस की काफी प्याले में डाली और प्याला कुमार की तरफ बढा दिया।

'मैं सोच ही रहा था कि अगर हम चाय या काफी भी ले आते एक बात उस बूढे ने ठीक कही थी।'

"क्या ?'

"कि जिनिया कई तरह के खाने सजाकर जब भी चाहें आप के लिए परोस सकती ह।

"पर आप उस बूढे से एक बात पूछनी भूल गये।'

"क्या ?'

आप ने जिनी पकडने का तरीका पूछ लिया, पर जिना से अपने-आप को छुडाने का तरीका नहीं पूछा।'

"वही तरीका मैं खोज रहा हूँ। खोज लूँगा।"

'आज इस नदी पर यही तरीका ढूँढने आय थे ?'

'अगर सच पूछो तो, यही तरीका ढूँढने आया था कल रात "

'कल रात कोई तरीका सूझा था ?'

"कल रात सपने में मैं ने यह नदी देखी था ?"

"मैं भी नदी के किनारे बैठी थी, या नही ?"

"इसी तरह नीली चद्दर लपेटकर तू इस नदी में नहा रही थी।'

'और मेरे बालों में फूल भी लगे हुए थे ?

'मैं ने फूलों की यह टहनी तोड़कर पानी में यों ही नही फेंकी थी। तुम्हारे बालों में लगाने के लिए ही मैं ने पानी में रखी थी।"

'फिर ?"

"सपने जब तक सच नही बनते, ये इनसान के पीछे ही रहते ह "

'और आप ने पीछा छुड़ाने के लिए इस सपने का सच कर के देख लिया ?

'हा।'

"एक रात का मुझे भी सपना आया था।'

"इस नदी का।'

नही ?'

"फिर ?"

'मैं ने देखा कि मैं आप के काम करने की मेज़ पर कागज़ रखकर उस पर इचों के निशान लगा रही हूँ।

"फिर ?'

'निशान लगा-लगाकर मैं थक रही पर वह कागज़ जादू के ज़ोर से जैसे बढ़ता ही गया।'

"फिर ?"

"फिर मैं ने उस कागज़ से पूछा कि वह मेरे साथ इस तरह क्या कर रहा था।'

'फिर ?'

"अजीब बात है! जब मैं कागज़ से बातें करने लगी तो वह कागज़ भी मेरे साथ बातें करने लगा।'

"यू डैम!

"उस कागज़ ने मुझे बताया कि वह मेरे सपनों का कागज़ था और मैं चाहे सारी उमर उस पर इचों के निशान लगाती रहूँ, वह कभी खत्म नही हो सकता था।'

"यू डम

जिनी उफ डविल!

'चल अब नाश्ता कर के लौट चलें। आज सवेरे से कोई काम नही किया।"

चलो कुछ घण्टे काम कर लें, क्या पता, कल सवेरे फिर आना पड़े।

"यहा ?'

"यहा नही। शायद उस पहाड़ की चोटी पर जाना पड़ेगा।'

'क्यों ?

"क्योंकि सपने हमेशा बढ़ते रहते हैं। चेतन प्रयास के पैर चाहे उलटे हों पर सपनों के पैर सीधे होते हैं। आज वे इस नदी तक आये थे, कल पहाड़ की चोटी पर पहुँचेंगे"

कुमार भौंचक्का होकर अलका की ओर देखने लगा। उसे लगा कि वह स्वतन्त्रता के जिस शिखर पर खड़ा था किसी दिन यह अल्का उसे वहाँ से इस तरह खींचेगी कि वह शिखर से फिसलकर मुहब्बत की गहरी खाई में जा पड़ेगा।

४

'प्रयास के पैर चाहे उलटे हों, पर सपने के पैर सीधे होते हैं' अल्का की यह बात कुमार के कानों में एक काँटे की तरह कई दिन चुभती रही। और फिर एक रात कुमार को सपना आया कि वह एक गड्डी मद की तरह अपनी कमर से एक लम्बा और काला रस्सा बाँधकर जंगल में भेड़ें चरा रहा था। भेड़ों को चराते-चराते उसे बड़ी भूख लगी। पर आसपास के चश्मे के पानी के सिवा कुछ न था। पानी की उस ने दो अंजुलियाँ पी थीं कि उसे लगा पानी उस के खाली पेट में चुभने लगा था। वह कलेजे पर हाथ रखकर कँटीले झाड़ों का मुँह मारती हुई भेड़ों की तरफ देखने लगा। फिर उस ने आँखें मलीं और देखा कि सुनसान जंगल में एक परी उतर आयी थी। लाल की माटी जूती उस ने वह पैरों में पहनी थी जिस से वह बिना आहट के ठुमक ठुमक चल रही थी। सिर पर उस ने लाल रंग का अँगरखा बाँध रखा था, और उस की हरी क़मीज़ की कमर से काले रेशम की एक रस्सी बँधी हुई थी। दोनों बाहें ऊपर उठाकर अपने सिर पर एक हँडिया उठायी हुई थी। जिस से उस के चेहरे का काफी हिस्सा उस की बाँहों में छिपा हुआ था। कुमार एक पेड़ की आड़ में हो गया, ताकि वह परी जब पेड़ के पास से गुज़रे, वह उस तरफ से उस का मुख देख सके। जिस पतली-सी पगडण्डी पर वह परी चलकर आ रही थी, वह पगडण्डी इस पेड़ के पास से गुज़रती थी। वहाँ कुमार पेड़ की एक टहनी पर हाथ रखकर खड़ा था। वह परी जब पेड़ के पास आयी तो उस ने सिर से हँडिया उतारकर पेड़ के तने से टिका दी और सिर का लाल अँगरखा उतारकर तने के पास बिछा दिया। हँडिया में रखे हुए पकवान की ख़ुशबू कुमार के कलेजे में इस तरह मँडराने लगी कि वह पेड़ की ओट से हटकर हँडिया के पास आ गया। उसे इतनी भूख लगी हुई थी कि अगर वह हाँडी पेड़ के तने की बजाय परी के सिर पर भी रखी होती तो वह एक झटके से हँडिया छीन लेता।

"न न न" परी ने कहा, और कुमार का हाथ पकड़कर उस ने उसे ज़मीन पर बिछे हुए अँगरखे पर बिठा लिया। हँडिया का ढक्कन भी परी ने अपने हाथों से उतारा, और फिर भरी हुई हँडिया कुमार के सामने रख दी। कुमार अपनी भूख

पर ल्जा गया इस से आख उठाकर वह परी के चेहरे की आर देखने का साहम न कर सका। वह दाना हाथा से हँडिया म से पक्वान निकालकर खाने लगा। कुमार ने जब भरपेट खा लिया तो उस ने लजायी सी आखो से परी की ओर देखा। देखा, और देखता रह गया। अलका उस के सामने खडी थी।

कुमार जब सोकर उठा ता उस ने हाथ से अपने बदन का छु आ। उस की कमर से काई रस्सी नही बँधी थी। पर उसे लगा कि अलका सारी की सारी एक रस्सी बन गयी थी जो रात का सपना में भी उस के साथ बँधी रहती थी।

आज कुमार ने साचा कि सपनों का मानने की जगह, और उन की जिद पूरा करने की जगह वह एकदम बेलिहाज हाकर इन सपना का पूरा करने से इनकार कर देगा। नदी का सपना उस ने पूरा कर के देख लिया था। कुछ न बना था। सपने अब भी उस के पीछे पडे हुए थे।

सुबह अल्का आयी। उस के आने तक कुमार ने अलमारी में से एक गहिन पोशाक निकालकर बाहर रख री थी। यह पाशाक बहुत पहले कुमार ने एक मेले म खरीदी था, और उस ने सोचा था कि किसी दिन वह अल्का का यह पोशाक पहनाकर एक तसवीर पेंट करगा। कुमार ने मेज पर नया कनवस लगा लिया।

"गुसलखाने म जाकर कपडे बदल लो।

अच्छा।'

'यह जूती कुछ बडी लगती ह, पर ठीक ह।

"यह कमाज भी खुली ह।'

'यह खुला ही हाती ह। कमर में जब यह काली रस्सा बाध लगी ता यह खुली नही लगगी।"

अल्का जब कपडे बदल आयी ता खुले बाल लिय कुमार की कुरसी के सामने घुटने टेककर बठ गयी और बाला, चाटिया बना दा, जमी गहिनो की लम्बा पतली चाटियाँ हाती हैं।

कुमार ने नही, पर कुमार क हाथा ने एक मिनट क लिए कहना मानने से इनकार कर दिया। पर फिर कुमार ने चुपचाप अलका की चाटियाँ बना दी।

'अँगरखा मैं खुद बाध लेती हू पर यह रस्सी मुझ से ठाक नही बँधी। अल्का ने कहा और काले रेशम की रस्सी कुमार के हाथ म दे दा।

कुमार ने जब अलका के गिद बाहें डालकर रस्सी का लपेटा तो उस न चौककर अलका के मुँह की आर दखा। सारी की सारी अलका से वह खुशबू आ रही थी जा कुमार को रात म सपने की हँडिया से आयी थी।

कुमार ने एक कसिस लेकर अल्का की कमर से रस्सा बाध दी, पर उस लगा कि उसे कडी भूख लगी हुई थी। सुबह का नाश्ता लिये अभी आधा घण्टा भी नही हुआ था पर भरपेट किया हुआ नाश्ता न जाने कहा चुक गया था।

"काम करने से पहले कुछ खा लें। तुम्हें भूख नहीं लगी ?"

"मैं अभी नाश्ता कर के आयी हूँ।

"नाश्ता मैं ने भी किया था।"

"काफी बना दूँ ?

"नहीं, कुछ नहीं चाहिए।'

कुमार ने ज़िद में आकर कुछ खाने पीने से इनकार कर दिया, और अपने ब्रश को रंगों में भिगाने लगा।

रंगों ने, और रंगों में से उभरती तसवीर ने कुमार की ज़िद रख ली। ढाई घण्टे बीत गये। भूख कुमार को भुलाये रही। फिर एक अजीब बात हुई। कुमार को ज्यों ही तसवीर में एक हाँडी बनाने का खयाल आया कि भूख कलेजे में मँडलाने लगी।

"मुझे काफी बना दो, अल्का ! अगर हरिया कहीं बाहर दिखता है तो उसे कह दो, नहीं तो खुद बना दो।

हरिया कुमार का पहाड़ी नौकर था। कॉफी-चाय बनाता-बनाता आहिस्ता-आहिस्ता सब कुछ सीख गया था। पर उस का ज्यादा समय पानी भरने में कटता था। पीने का पानी कुमार जिस चश्मे से मँगवाया करता था, वह चश्मा कुछ दूर था। इसलिए अल्का ही वक्त-बेवक्त चाय बनाती।

अल्का जब काफी बनाकर लायी तो कुमार ने काफी के प्याले को सूँघकर देखा। प्याले में काफ़ी की गन्ध आती थी कि कुमार ने एक लम्बा सांस खींचकर अल्का के हाथों को तीन-चार बार सूँघा। अल्का के हाथों से वही गन्ध आ रही थी जो रात में कुमार को सपने की हाँडी से आयी थी। और कुमार को डर लगने लगा कि जिस तरह उस ने सपने में उस हँडिया के पकवान को बेसब्री से खाया था, उसी तरह वह अल्का के जिस्म को भी बेसब्री से खाने लगेगा।

पर आज कुमार ने सपनों से बेलिहाज होने की ज़िद ले रखी थी। काफ़ी का एक लम्बा घूँट लेकर कुमार ने कहा "अगर तुम्हें सारी उमर यही कपड़े पहनने पड़ें अल्का !

"तो अल्का उर्फ गड्डिन बन जाऊँगी, जिस तरह अल्का उर्फ जिनी बनी थी, या अल्का उर्फ डविल बनी थी।

"अल्का उर्फ परी ! मैं ने रात सपने में तुम्हें एक परी समझा था।'

"परी का मतलब होता है, परोवाली। फिर आप ने मैंयल्लाकर परी के पंख नहीं तोड़ दिये ?"

कुमार एक मिनट सोच में पड़ गया। फिर हारी हुई हँसी से कहने लगा, "तुम मुझे क्या समझती हो, अल्का ? बहुत बेरहम दिल हूँ मैं।"

'रहम की मुझे कभी ज़रूरत नहीं पड़ा, इसलिए किसी के रहमदिल होने या बेरहम होने से मुझे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

"पर तुम यह तो सोचती हो कि मैं परी के पंख तोड़ देनेवाला आदमी हूं।"

"जरूरत पड़े तो उस के पर भी तोड़ देनेवाला आदमी!"

कुमार चुप हो गया। फिर धीरे से बोला, "यह तुम ने ठीक कहा है अल्का। जिस रास्ते पर मैं जाना न चाहूँ, अगर मेरे पर मेरे कहने में न हों तो मैं ऐसा आदमी हूँ जो अपने पर भी तोड़ ले।"

"मैं जानती हूँ।"

"रात को सपने में मैं ने देखा था कि मैं जंगल में भेड़ें चरा रहा हूँ। सवेरे उठकर मुझे लगा, मेरी जैसे सारी तसवीरें भेड़ें बन गयी हों। मैं तसवीरों को भेड़ें नहीं बनने दूंगा। तुम ने एक दिन कहा था कि सपनों के पैर सीधे होते हैं और प्रयास के पैर उल्टे। आज मैं तुम से शर्त लगा सकता हूं, कि प्रयास के पैर सीधे होते हैं और सपना के उल्टे।"

"शर्त भले ही रख लीजिए। पर मुझे डर है कि कहीं यह बात उल्टी न आ पड़े।"

"कैसे?"

"यही कि शायद इन को उल्टा-सीधा देखने में ही सारी उमर गुज़र जाये।"

"मेरे पास उमर इतनी फालतू नहीं कि इस को उल्टा-सीधा देखने में बिता दूँ। मैं काम करना चाहता हूँ।"

"और काम सपनों के सीधे पैरों से नहीं हो सकता?—सीधे पैरों से सीधे हाथों से।"

"जो हाथ जिस्म के खिलवाड़ में उलझ जायें वे काम नहीं कर सकते। मैं जिस्म के अँधेरे में खो जाना नहीं चाहता।"

"मेरे ख्याल में ज़िन्दगी का रास्ता जिस्म की रोशनी में मिलता है।"

"रोशनी मन की होती है, अल्का तन की नहीं!"

"जिस के तन में मन रोशन हो, वह जिस्म अँधेरा नहीं हो सकता।"

देखने को अल्का की बात भारी पड़ रही थी। इसलिए कुमार खीझ उठा। अलका से उस ने यह बात इसलिए नहीं चलाया थी कि वह अपना नुक्ता नजर अल्का को समझा सके, या अल्का का समझ सके। पर बात खुद ही यह मोड़ ले गयी थी। इसलिए कुमार ने बात का रुख बदल दिया। उस के मन में खीझ थी, और वह चाहता था कि अलका भी खीझ उठे। कहने लगा

"जिस्म अँधेरा हो या रोशन, पर तुम आज बीस रुपये नहीं कमा सकोगी।"

"न सही।"

"ये रहे उस दिन के नगीनेवाले पंख।"

"अच्छा।"

"शायद कभी न कमा सको।"

"न सही !"

"फिर क्या करोगी ?"

"बेरोज़गार लोग क्या करते हैं ? कुछ नहीं करते।"

कुमार का खयाल था कि उस ने अलका को बड़ी कटीली बात कही थी, इसलिए अलका जरूर झुँझला उठेगी। अगर उस की आखों में आसू नही भी उतरेंगे, तो उस की आवाज में आसू जरूर उतर आयेंगे। पर कुमार ने देखा कि अलका बड़े आराम से अपने बाजू के खुले कफ़ो को मिला रही थी, और बाहर बरामदे में पानी का घड़ा लेकर लौटे हुए हरिया को आवाज देकर कह रही थी कि काफी के खाली प्याला को उठाकर ले जाये।

कुमार को अपनी कही हुई बात पर पछतावा हुआ, और दिल की कड़वाहट को हटाने के लिए बोला, "इधर देखो, रोशनी की ओर।"

"क्या ?

"तुम्हारी आखें भर आयी है।"

"वह किस लिए ?"

"मेरी बात रुलानेवाली नही थी क्या ?"

"हाथी, पर मैं रो नही सकती।"

"क्या ?"

"क्योंकि जिस दिन मैं इस राह पर चली थी, आखो के सारे आसू पीकर चली थी।"

"अलका !

अलका ने कोई जवाब न दिया, और पहाड़ी कपड़े उतारकर उस ने अपने कपड़े पहन लिये। अलका जब चली गयी तो कुमार को लगा कि बेगानगी का यह रास्ता, जो अलका के सूखे आँसुओं से भीगा हुआ था, बहुत फिसलन भरा रास्ता था। और किसी दिन किसी दिन इस रास्ते से कुमार का पैर जरूर फिसल जायेगा और वह अपनत्व की गहरी खाइयों में आ पड़ेगा।

५

अगले दिन सुबह अलका आयी तो कुमार रोज की तरह मेज पर काम नही कर रहा था। चारपाई पर लेटे हुए कुमार अपना सिर चारपाई के पाये पर रखा हुआ था। एक हाथ से वह पाये को सहला रहा था जसे वह काफी देर से पाये के साथ अपने दुख-सुख की बातें करता रहा हो।

"तबीयत ठीक नही है क्या ?"

"ठीक ह।"

"रात को देर तक काम करते रहे होगे ?"

'नही।"

कुछ पढने रहे क्या ?'

'नही, या ही नींद उचट गयी था।"

रातें चाहे अँधेरी हा चाहे उजली कुमार रात को पहाडी पगडण्डिया पर घूमता था। वह अक्सर अकेला घूमता। कभी-कभार वह अल्का के चौबारे के सामने से गुजरते हुए अल्का का बुला लेता। पर पिछले कई दिनो से उस ने अल्का को नही बुलाया था।

तुम कल शाम को क्या करती रही हो ?'

'कल ? जो रोज करती ह।'

'रोज शाम को क्या करती हो ?'

कुछ भी कभी औरता के साथ चश्मे से पानी भरने भी चली जाती हूँ।'

'तुम खुद पानी भरने जाती हो ? वह बनिये का लडका पानी भरा करता था ?'

'अब भी भरता है। यो भी कभी न कभी औरतो का साथ मुझे अच्छा लगता ह। वे पानी भरते हुए ढेरो गीत गाती ह।

"तुम भी उन के साथ गाती हो ?'

'कई बार।'

'और क्या करती हो शाम को ?'

'कई बार मैं उन के साथ मटर तोडने चली जाती हूँ।'

"और जब मटरा का मौसम न हा ?'

'मागरे तोडने चली जाती हूँ मिर्चे तोडने चली जाती हूँ पालक की पत्तिया तोडने चली जाती हूँ। और कुछ नही तो उन के साथ धान फटकने बठ जाती हूँ "

"और ?'

'और कई वार उन से मैं गलीचे की बुनाई सीखती हूँ।

"वह किस लिए ?

'गलीचे में जब फूल बनते ह तो मुझे अच्छे लगते ह।'

और ?'

"कई वार नाथी और रामो मुझ से पढने के लिए आ जाती ह।

वे क्या पढती ह ?

उन के खाविन्द फौज में गये हुए ह। उन का दिल चाहता ह कि वे अपने खाविन्दा को खुद खत लिखें।

'तुम कल शाम को क्या करती रही हो ?

"कल ? कल सालिया के बूढे बाप के घुटना पर तेल मलती रही हूँ। उस के घुटना पर बडी सूजन थी। उन की गाय बीमार थी, सालिया और उस की घरवाली उस की दवा-दारू में लगे हुए थे।'

"तुम ने इन सब के साथ सम्बध जोड लिये ह कितनी आसानी से तुम रिश्ते जोड लेती हा तुम झट किसी को बहन कह लेती हो, किसी को अम्मा, किसी को बापू! परसो मैं चश्मे के पास से गुजर रहा था। मेरे परो की आवाज सुनकर करमे की अधी मा मुझ से तुम्हारी बात पूछने लगा। उसे रोष था कि तुम तीन दिन स उस के पास नही गयी हा। उस की बेटी उसे ठिठोली कर रही थी कि तीन दिन से अम्मा की लाठी खोयी हुई थी पर अल्का?"

"जी।'

"तुम्हारा और मेरा क्या रिश्ता ह?'

'बास रुपया का रिश्ता?"

कुमार ने एक उच्छवास लिया, और सिरहान के नीचे हाथ डालकर बीस रुपये निकाले।

"ये लो अपने बीस रुपये।"

"पर आप ने कहा था कि अब मैं ये रुपये कभी न कमा सकूँगी।"

"कहा था, पर "

'मुझे रोजगार छूटने का कोई शिकवा नही।

"आगे का मुझे पता नही, पर ये तुम्हारे पिछले हिसाब के देने ह।

पिछले?

'हा।

'कब के?'

"रात के।"

"आज रात के? इस गुजर चुकी रात के?'

"हा।"

"वह कैसे?'

'मेरा इकरार था कि मुझे जब भी तुम्हारे जिस्म की जरूरत पडेगी, मैं बीस रुपया से उस जरूरत की कीमत दूँगा।"

"हाँ, पर रात को मैं यहा आप के पास नही थी?'

"तुम रात को यहाँ थो, अलका, सारी रात यहा थी।'

"सपने में?'

"हा, सपने में।"

अल्का हस पडी।

'यह हँसने की बात नही, अल्का! जिस इकरार को मार्ई दिन में पूरा कर

ले, रात को खुद ही उस इकरार के सामने झूठा पड जाये, उसे क्या कहा जाये ।"

"उसे यह कहा जाये कि वह अपनेआप से गलत इकरार न किया करे।"

"मुझे गलत या ठीक की बहस में नही पडना। पर जो इकरार मैं ने अपनेआप से किया हुआ ह, वह मैं जरूर पूरा करूँगा। अगर मेरे सपने मेरा इकरार तोडेंगे तो मैं उस की कीमत दूँगा।'

"फिर तो मेरा इन्तजार पक्का हो जायेगा।"

"तुम्हारा मतलब ह कि मुझे ऐसे सपने रोज आया करेंगे? यू डविल "

'मेरा यह नाम पुराना पड गया ह आज कोई नया नाम रखना चाहिए था।'

गुस्से म कुमार के हाथ कापने लगे। चारपाई के पाये को उस ने दोना हाथो में इस तरह कसा कि अगर पाये की जगह उस के हाथो म अल्का का गला हाता, तो वह सचमुच घुट गया हाता।

किसी चीज का कोई बदल नही होता अलका न हँसकर कहा और पाये के पास बैठती हुई बोली, अगर मेरा गला दबाने का दिल ह तो दबा दीजिए। लकडी के पाये ने अपने हाथ क्यो छीलते हो?'

कुमार ने सचमुच ही चारपाई से उठकर दोनों हाथ अलका के गले पर कस दिये। हाथो के छूने की देर थी कि कुमार को लगा कि जसे उस के हाथ गुस्से में नही, अल्का के अग-अग को छूने की तडप से काँप रहे थे।

कुमार ने हाथ इस तरह झटककर अल्का की गरदन से दूर हटा लिये जसे वे भूले भटके आग की लपट स छू गये हो।

"माई गाड कुमार ने अपने माथे से घबराहट की बूदें पोछी।

'आखिर ईश्वर को याद करने का भी तो काई समय चाहिए! अल्का हँसी।

"तुम्हारा बस चले तो मुझे वान गाग बनाकर छोडो।'

"वान गाग?"

एक बार वह किसी लडकी से मिलने गया था

' फिर?

' उसे देखकर लडकी के बाप ने लडकी को दूसरे कमरे में भेज दिया।

"फिर?"

"रात का वक्त था। मेज पर मोमबत्ती जल रही था। वान गाग ने मोमबत्ती की लौ पर अपना हाथ रख दिया।"

'क्या?

"उस ने लडकी के बाप को कहा कि वह उतनी देर तक मोमबत्ती की लौ पर हाथ रखे रहेगा जितनी दर तक वह लडकी उस के सामने खडी रहगी। तुम इस दीवानगी को समझ सकती हो?'

'हा।

"मैं नहीं समझता।"

"उस लड़की का बाप भी नहीं समझ सका होगा।"

'नहीं, वह भी नहीं समझ सका था। कमरे में जब जलते हुए मास की बू फैल गयी तो लड़की के बाप ने हाथ मारकर मोमबत्ती बुझा दी और उस दीवाने को कमरे से निकाल दिया।"

"अपनी दीवानगी की कीमत खुद ही चुकानी पड़ती है।"

"पर मैं यह कीमत चुकाने के लिए तैयार नहीं हूँ। यह दीवानगी मुझे कतई मंजूर नहीं।'

यह दीवानगी हर किसी के हिस्से नहीं आती। वान गाग और अलका जैसे लोग कभी-कभी ही पैदा होते हैं।

अलका ने जब वान गाग से अपनी तुलना की तो कुमार को हँसी आ गयी।

'अगर तुम वान गाग के काल में पैदा हुई होती तो बेचारे को इतने दुखों में से न गुजरना पड़ता।'

"शायद मैं इस जन्म में उस लड़की का हिसाब ही चुकता कर रही होऊँ जिस ने जलते हुए मास की बू तो सूँघ ली थी पर साथ के कमरे से बाहर निकलकर नहीं आयी थी।'

"यू आर क्रेजी!'

सिर्फ इतना खयाल रखना कि 'क्रेज' छूत की बीमारी होता है।"

'यह छूत की बीमारी तुम्हें और वान गाग को ही हो सकती है! मुझे नहीं हो सकता

कुमार ने लापरवाही से अलका का हाथ पकड़ा। हाथ को पहले अपने माथे से छुआया, फिर अपनी आँखों से, फिर अपने होठों से और फिर अपनी गरदन से। और फिर कहने लगा, 'मैं तुम्हारे हाथों को चाहे एक बार छुऊँ और चाहे हजार बार, यह छूत की बीमारी नहीं हो सकती।

'यह बीमारी होनी हो तो बिना छुए भी हो जाती है' अलका ने भी लापरवाही से जवाब दिया।

हवा बहुत तेज चल रही थी। अलका की पीठ खिड़की की तरफ थी। अलका ने अपने बालों को चाहे कई बार अपने कानों के पीछे किया था, पर माथे की छोटी छोटी लटें नहीं टिकती थीं। कुमार ने आगे झुककर अलका के माथे पर बिखरे हुए बालों को मुट्ठी में भरा, और फिर उस के होठों की साँस में से एक गहरी साँस भरकर बोला "कोई जर्म मुझ पर असर नहीं कर सकता!"

'जर्म इतने सामानों में नहीं होते जितने खयालों में होते हैं।" अलका ने कहा, और साथ के कमरे में जाती हुई बोली "आओ काम करें।

कुमार के पैर आदत की तरह साथ के कमरे में चले गये। उस के हाथों ने

एक आदत की तरह मेज की बत्ती जलायी, पर उसे लगा कि वह अभी इस कमरे में नहीं आया था वह अभी अपने माने के कमरे में ही खड़ा था।

'मेरा खयाल है कि मुझे बीस रुपये और खर्चने पड़ेंगे कुमार ने कहा, और अल्का का हाथ पकड़कर उसे फिर पहले कमरे में ले आया।

कुमार ने कमरे का दरवाजा भिड़का दिया, और खिड़की के परदे को ठीक करते हुए बोला 'यह सिर्फ जिस्म की मुहताजी है, अल्का! और कुछ नहीं। अगर तुम्हारी जगह इस समय मेरे पास कोई और औरत होती तो भी ऐसा तरह होता।'

कुमार की बात बड़ी अस्वाभाविक थी। अत्यन्त अमानवीय। अल्का की जगह अगर कोई और औरत होती तो वह इस बात को सह न पाती। अल्का ने सिर्फ सहन ही नहीं किया, उस ने इस बात को समझा भी और चुपचाप अपने कपड़े उतारने लगी।

"समझी?' कुमार ने पूछा।

समझ गयी हूँ मैं, आप नहीं समझे।'

मैं नहीं समझा? मैं क्या नहीं समझा?

'अपनी बात को।'

"मैं अपनी बात को नहीं समझा?

'आप यह भी नहीं समझे कि आप ने यह बात क्या कही है आप को यह कहने की जरूरत क्या पड़ी! अगर मेरी जगह कोई और औरत होती तो आप को यह कहने का खयाल न आता।

"क्योंकि कोई भी ऐसे समय ऐसी बात न कहता।'

इसलिए कि लोगों के मन का रिश्ता कोई नहीं होता। सिर्फ घड़ी दो घड़ी के लिए वे रिश्ते का भ्रम डालना चाहते हैं। यह भ्रम चुप रहने से भी पड़ सकता है। इसलिए लोग चुप रहते हैं पर जब किसी को रिश्ते से डर लगता हो तो खामोशी इस डर को बना देती है इसलिए उसे बोलना पड़ता है डर को तोड़ना पड़ता है।

'पर बीस रुपये का रिश्ता कोई ऐसा रिश्ता नहीं हो सकता जिस से किसी को डर लगे बीस रुपये दिये, रिश्ता बन गया, न दिये टूट गया।

'जैसी आप की मरजी हो, सोच लीजिए। पर कई रिश्ते ऐसे भी होते हैं जो न लफ्जों की पकड़ में आते हैं और न रुपया की पकड़ में।

कुमार ने एक हाथ से अलका को अपनी तरफ खींचा, पर अल्का की बात सुनकर उस ने दूसरे हाथ से अल्का को परे हटा दिया। उस के मन में आया कि जो रिश्ता लफ्जों की पकड़ में नहीं आ सकता और जो रिश्ता रुपया की पकड़ में नहीं आ सकता उस रिश्ते को बाहों की पकड़ में भी नहीं लाना चाहिए।

रिश्ता दिखाई नहीं देता था, पर जिस्म दिखता था। रिश्ता जाने कितनी दूर था, पर जिस्म बहुत नजदीक था।

'रिश्ते को तुम खोजती रहो मुझे सिर्फ तुम्हारा जिस्म चाहिए। कुमार ने

रहा और अल्का के हाथ को इस तरह कसकर पकड़ा जैसे अब अल्का ने उस को अस्वीकार कर देना हो।

कुमार की कोहनी अलका की पसलियों में चुभ रही थी। अल्का ने कहा कुछ न था, पर कुमार को लग रहा था कि उसे सांस लेना मुश्किल हो रहा है। मुश्किल से सांस लेते हुए अलका के होंठों को कुमार ने अपने होंठों में इस तरह कसा, जैसे वह अल्का की सांस तोड़ देना चाहता हो। अलका का जो अस्तित्व कुमार की आवश्यकता बना हुआ था, उसी अस्तित्व से वह दुखा हुआ था। कुमार को अपनी नाड़ियों में उबलता हुआ खून आग की तरह गरम लग रहा था, और आज वह जैसे जैसे अलका के कोमल बदन को अपने लोहे की तरह जलते हुए शरीर से लगा रहा था, वह सोच रहा था कि यह कोमल-सी लड़की इस लोहे से टूटती क्यों नहीं।

कुमार जब जलकर हार गया, और फिर रोशनदान से आती हुई सूरज की एक किरण में उस ने देखा कि अल्का कमरे की कमरे रेशम के गुच्छे की तरह उस की बांहों में इकट्ठी हुई पड़ी थी।

कुमार ने जब कपड़े पहनकर कमरे की अलमारी खोली तो अलमारी में से बीस रुपये निकालकर अलका को देते हुए उस ने कोई ऐसी बात कहनी चाही, जो अलका का दुखा सके। पर उसे कोई बात न सूझी। कुमार के होंठों पर बात कोई न आया, पर एक ऐसी मुसकराहट उभर आयी जो देखनेवाले का अपमान कर रही थी।

कुमार के हाथों से रुपये लेते हुए अलका के होंठों पर भी एक मुसकराहट आयी पर ऐसी मुसकराहट जो सारे अपमान को पीकर एक मान से भर गयी हो।

'चालीस रुपये रोज। बीस रात के सपने के, और बीस दिन के सपने की पूर्ति के!' अल्का ने कहा।

तुम्हारा खयाल है कि तुम रोज रात को मेरे पास एक सपना बेच सकोगी? मुझे आज के बाद तुम्हारा कोई सपना नहीं आयेगा।

'तो फिर रोज रात को जागते रहना" अल्का ने कहा, और चारपाई से उठकर कपड़े पहनने लगी।

दोपहर तक अल्का जिस तरह चुपचाप काम करती रही, दोपहर के बाद उसी तरह चुपचाप उठकर घर चली गयी।

कुमार ने रोटी खायी, कुछ घण्टे और काम किया, और दिन ढलते ही वह सामने के पहाड़ पर घूमने चला गया।

रात गहरी हो गया था जब कुमार लौटा। हरिया ने रोज की तरह रोटी बनाकर चूल्हे की धीमी आग में गरम रखी हुई थी। कुमार ने रोटी खायी और जब वह अपनी चारपाई पर सोने लगा तो उस आनेवाली नींद से डर-सा लगने लगा। वह चारपाई से तड़पकर उठ बैठा और उसे लगा कि अगर वह सो गया तो वह नींद से भागी हुई पगडण्डी से फिसलकर सपने के गहरे कुएं में जा पड़ेगा।

६

अपना जवानी के भरपूर साल कुमार ने आसानी स काट लिये थे। दौल्त उसे इस तरह लगती थी जसे अपने हुनर के एवज में अपनी रानी बपने का जिम्मा उस ने एक बार उस सौप दिया हो, और फिर बार-बार उसे कुछ कहने से मुक्त हो गया हो। दौलत ने खुद ही जसे कुमार के लिए पहाड का इस वादी में एक घर बना दिया था, नही ता उस ने इतना भी उसे नही कहना था। शोहरत उसे हमेशा इस तरह लगती थी जसे एक बूढी माँ अधिक देर अपने बिगडे हुए बेटों के पास रहती ह—क्योंकि उन्हें दुनियादारी की बडी जरूरत हाती ह पर कभी कभी वह अपने अच्छे बेटा के पास आकर अपना दुख सुख रो जाती ह। इसलिए वह जब भी आती थी कुमार उस के पास बठकर उस की बातें सुन लेता था। और उसे जब भी जाना होता कुमार उस की गठरी उठाकर माड तक छोड आता था। ये बातें अब भी वसी थी जसी कुमार की जवानी के समय। पर कुमार की जवानी को उस के जिस्म की जिस भूख ने कभी नही सताया था, वह कुमार को अब सताने लगी थी। इस भूख का भी कुमार का इतना दुख नही था अगर उसे मालूम हाता कि यह सिफ जिस्म की भूख थी। वह हसकर इस भूख को टुलरा लेता। जल्दी नही ता दर से टुलरा जाती टुलरा ता जाती ही। पर कुमार अपने मन का गहराइया से डर रहा था कि कहा यह भूख सिफ अल्का के जिस्म की भूख न हा। जिस का मतलब था कि वह अलका से प्यार करन लगा था। प्यार करने का मतलब था कि उस के खयाल और उस के सपने सारी उमर के लिए अल्का के रहम पर हो जायेंगे। कुमार ने हमेशा उन लोगा को कासा था जिन्हाने अपने सपने चादी स तौल लिये थे, या शाहरत को बेच दिय थे या किसी को मुहब्बत कर के हमेशा के लिए उस की नजर के महताज हा गये थे।

अल्का ने दौलत म, शोहरत में और औरत में जा अन्तर कुमार का बताया था उसे कुमार भा जानता था। दौल्त और शाहरत की गुलामी का मुहब्बत का गुलामी से नही मिलाया जा सकता था। जब काई मुहब्बत क सामने अपने सपने बेचता ह ता आँसुओ के भाव बेचता ह—पर कुमार का किसी के रहम पर जीना पसन्द नही था। न पसे के रहम पर न शाहरत के रहम पर और न ही औरत के रहम पर।

इन्ही दिनो कुमार को दिल्ली से उस क एक दोस्त का खत आता कि दिल्ली म उस ने एक बहुत बडा होटल बनवाने का ठेका लिया था। कुछ साल हुए एक नुमाइश के लिए कुमार का उस के इस दास्त ने बुलाकर तीन महीने अपने पास रखा था। कुमार की सहायता से उस ने पूरे सत्तर हजार रुपय कमाये थे। कुमार ने उस के लिए कई पवीलियन बनाये थे। उसी ने कुमार के हिस्से में से इस पहाडी वादी म बहुत सी

जमीन लेकर कुमार के लिए स्टूडियो बनवा दिया था। अब फिर उसी दोस्त का खत आया था। वह कुमार को दो महीनों के लिए दिल्ली बुला रहा था। कुमार का चाहे पैसे का जरूरत नही थी, पर वह कुछ देर के लिए अलका से दूर जाकर अपने मन की हालत का जरूर समझना चाहता था। इसलिए उस ने दिल्ली जाने का फैसला कर लिया।

पूरे तीन दिन कुमार ने अल्का को कुछ नही बताया। पर आखिर बताये ही चलना था।

"आप जाइए, मैं यही रहूँगी। मुझे अमृतसर नही जाना।" अल्का ने कहा।

"पर तुम भी महीने वहा क्यो नही चली जाती हो? तुम्हारे पिताजी ने तुम्हें कई बार बुलाया है।"

"चली जाऊँगी। दो-तीन दिन के लिए मिल आऊगी।"

"पर यहाँ अकेली क्या करोगी?"

"आप ने एक बार कहा था कि अगर कुछ पैसे आ गये तो बाग के पार के कोने म आप कुछ स्लेटो की छतें डालकर कुछ कुटिया बनायेंग।"

"वह तो मैं उन लोगो के लिए सोचता हूँ जो कभी इस वादी में रहकर कुछ काम करना चाहें।"

"मैं भी उन लोगो में से हूँ। मैं यहाँ रहना चाहती हूँ। किसी के घर में किराये का कमरा लेकर रहना अब मुझे अच्छा नही लगता।"

"पर तुम्हें यहा रहना ही कब तक है अल्का! और छह महीने या एक साल। तुम्हारे पिताजी अब तुम्हारा विवाह करना चाहते है।"

"मैं न रहूँगी तो मेरे जैसा कोई और रहेगा। पर अब आप के पास कुछ पैसे आ जायेंगे अब कुटिया जरूर डलवा दीजिए।"

"लौटकर आऊँगा तो सोचेंगे।"

"मुझे आप उन का डिजाइन बना दीजिए।"

और तुम मेरे आने तक उन्हें बनवा लोगी?

"हा।

"अकेली कैसे बनवाओगी?"

"चेतू चाचा सारा काम करेगा। सामान खरीदेगा, और मजदूर भी। उस के भी कुछ पैसे बन जायेंगे। आजकल उसे पैसे की बड़ी जरूरत है। उसे इस साल अपनी छोटी बच्ची का विवाह करना है। इसलिए वह काम करने के लिए खुशी से तैयार हो जायेगा।"

"पर पैसे तो तब आयेंगे, जब मैं वहा जाकर जमा लूँगा।"

"मैं अभी अपने पास से खर्च देती हूँ। आप वहा से भेज दीजिएगा, या वापस आकर लौटा देना।"

कुमार जानता था कि अल्का अमीर लड़की थी, और उस से बढ़कर मन-आयी करनेवाली। वैसे भी इस बात में उस की किसी दलील का काटा नहीं जा सकता था। उस ने अलका के कहने पर दो दिनों में ही झुग्गिया के डिजाइन बना दिये। चेतू चाचा को बुलाकर अल्का को सारा काम सौंप दिया और खुद दिल्ली जाने की तयारी कर ली।

अच्छी भली सुबह गुजरी अच्छी भली दोपहरी बीती, पर इस गाव में बीतने वाली आखिरी शाम ने जाने क्या किया कि कुमार को लगा जैसे वह उदास है। उदासी शायद कई दिनों से उस की तरफ सरकती आ रही थी, पर वह इस तरह पंजों के बल दुबककर आयी थी कि कुमार को उस के आने की आहट तक न मिली। उस ने तब जाना, जब वह प्रत्यक्ष उस के सामने आ खड़ी हुई।

सो तुम आ गयी हो!' कुमार ने उदासी के चेहरे की ओर देखा। उस का गेहुँआ रंग शाम की लालिमा में दिप रहा था। उस ने कोई जवाब न दिया, सिर्फ थोड़ा सा मुसकरायी और धीमे से कुमार का हाथ पकड़कर उसे बाहर बगीचे में अमरूदों के एक पेड़ के पास ले गयी।

'बगीचे के इस कोने में अल्का की झिलमिलाती झुग्गी बनेगी'

'हा। पर वह इस झुग्गी में कितने दिन रहेगी?

"जितने भी रहे'

'और इन दिनों की कीमत मैं सारी उमर के दर्द उसे दूँगा।'

'कभी तुम ने उस कीमत को भी देखा है जो उस ने तुम्हें पाने के लिए दी है, अब भी दे रही है और आगे भी न मालूम कब तक देगी?

ओह"

"तुम ने उस के जिस्म का मोल बीस रुपये आका उस ने वह भी स्वीकार कर लिया।

मैं ने वास्तव में उस का मोल नहीं आका था। मैं ने अपने और उस में अन्तर बनाये रखने के लिए ये रुपये बिछा दिये थे।

मैं जानती हूँ। पर तुम उस के इस साहस की ओर नहीं देखते जिस ने इस अपमान को भी अपना मान बना लिया?

यह तुम ने ठीक कहा।'

'तुम ने एक तरह से उसे वेश्या तक कहा।

"मुझे यह नहीं कहना चाहिए था।"

उस ने इस लफ्ज को भी जमीन से उठाकर उस ऊँची जगह पर रख दिया, जिस जगह पर सिर्फ बीवी का लफ्ज ही रखा जाता है।

मुझे याद है उस ने कहा था—जिस आसानी से मैं वेश्या बन सकती हूँ, उसी आसानी से बीवी भी!'

"तुम्हें यह खयाल नहीं आया कि उस जसी औरत अगर वेश्या भी होती, तो सिर्फ एक ही मद की ?'

"मुझे उस का अपमान करने का कोई हक नहीं था। पर तुम्हें मालूम है, मैं किस बात से डरता था ? '

"तुम मुझ से डरते थे।'

'क्योंकि मैं यह जानता था कि तुम हरेक खुशी को बड़ी जल्दी सूँघ लेती हो।

'खुशी वस्तुओं में नहीं होती, खुशी मन की अवस्था में होती है। मैं वस्तुओं को सूँघ सकती हूँ, उन के पीछे पड़ सकती हूँ पर मैं किसी के मन की अवस्था को कुछ नहीं कह सकती।'

'मैं अल्का को पाना नहीं चाहता क्योंकि मैं उस के खो जाने से डरता हूँ।

'इसी लिए मैं तुम्हारे पास आ गयी हूँ, पर अल्का के पास जाने की हिम्मत मुझ में नहीं।'

'यह भी मैं जानता हूँ कि तुम एक बार जिस के पास आ जाती हो उस के अंग संग रहती हो। मैं उमर भर तुम्हें लिये लिये फिरूँगा।'

मैं तुम्हारे कई काम सँवारूँगी।

"कौन-से काम ?

"तुम जब तसवीरें बनाओगे मैं उन की आँखों में काजल लगा दिया करूँगी "

'पर '

"मैं जिन लोगों की दवात में सियाही भरती हूँ, जानते हो, उन की कलम में से कैसे गीत निकलते हैं ?'

'पर जिन हाथों में कलम पकड़ी हुई हो या ब्रश पकड़ा हुआ हो, तुम ने कभी उन हाथों की किस्मत देखी है ?

'किस्मत को वस्तुओं के गज से नहीं मापना चाहिए।'

न सही। अवस्था के गज से सही। पर यह अवस्था कैसी है। हर साँस के साथ ही मेरे वक्ष में एक दर्द जाग उठता है '

कुमार ने अपना नीचे का होंठ अपने दाँतों में काटा, और आँखें बन्द कर के बायें हाथ से अपनी छाती को दबाया।

'आप की तबीयत ठीक नहीं " अलका ने धीरे से अपना एक हाथ कुमार के कन्धे पर रखा। कुमार ने गरदन घुमाकर देखा अल्का उस के पीछे खड़ी थी। कुमार चुपचाप अल्का के चेहरे की ओर देखता रहा। फिर उस ने कन्धे पर रखा हुआ अल्का का हाथ धीरे से अपने हाथ में लिया और होंठों पर रख लिया।

कुमार चुपचाप अल्का का हाथ पकड़कर धीरे धीरे बगीचे से बाहर आ गया और बाहर की कच्ची सड़क से होता हुआ सामने के पहाड़ की पगडण्डी पर चढ़ने

लगा। कहीं-कहीं कोई कँटीली झाड़ी अल्का के कपड़ा में उलझ जाती थी। कुमार आगे-आगे चलता, टहनियों को हाथ से हटाता, अल्का के लिए रास्ता बनाते हुए पहाड़ की पगडण्डी पर चढ़ता गया।

एक जगह एक चौरस पत्थर आसन की तरह बिछा हुआ था। कुमार ने अल्का को उस पत्थर पर बिठा दिया। खुद भी उस के पास बैठ गया। फिर धीरे से उस ने अल्का का सिर अपने सीने की उस जगह से सटा लिया जहाँ उस साँस लेने में दर्द हो रहा था।

एक ठण्डा मरहम-सा कुमार के सीने पर लग गया। वह दायें हाथ से अलका के बालों को सहलाने लगा। अल्का के लिए यह इतना नया अनुभव था कि वह उस से इस अनुभव का ताप न सह सकी। उस की आँखों में आँसू उमड़ आये।

कुमार ने अपने पोरों से अलका के आँसू पोंछे और फिर धीरे से उस के होंठों को चूमता हुआ बोला, "पगली! तुम तो कहती थी कि मैं जब इस रास्ते पर चली थी तो आँखों के सारे आँसू पीकर चली थी?"

अल्का का गला भर आया। वह कुछ बोल न सकी। कुमार ने एक छतराये पेड़ की तरह अल्का को अपने गले से लगा लिया—एक कोमल सी बेल को अपने गले से लगा लिया।

अल्का की हिचकियाँ बंध गयीं। कुमार ने एक-एक हिचकी को चूमा और फिर अल्का का माथा चूमकर बोला, "तुम मुझे माफ नहीं कर सकती? मैं ने तुम पर बहुत सख्तियाँ की हैं।"

अल्का ने अपनी काँपती उँगलियों से कुमार के होंठ छुपा लिये। फिर एक गहरी साँस लेकर वह बोली, "मैं ने सख्तियों की आदत बना ली थी, इसी लिए मैं कभी नहीं रोयी थी। पर मैं ने इस नरमी की आदत नहीं बनायी थी।"

कुमार की ज़िन्दगी में यह शायद पहला अवसर था कि कुमार की आँखें सजल गयीं। उस ने भीगी आवाज़ से कहा, "अगर तुम कहो तो दिल्ली न जाऊँ। मैं काम करने के लिए नहीं जा रहा, मैं तुम से भागकर जा रहा हूँ।"

अल्का कुमार के चेहरे की तरफ देखने लगी। चन्द्रमा ने बादल का एक टुकड़ा हाथ से दूर हटाया, और कुमार के चेहरे की तरफ देखने लगा। वह भी शायद अल्का की तरह चकित था।

"जिस ने घने जंगल में चाँदनी का जादू न देखा हो, उसे मेरी हालत का पता नहीं चल सकता। तुम्हारा जादू इस चाँदनी से भी गहरा है, जादूगरनी!" कुमार ने अल्का की गरदन को अपने होंठों से छुआ।

अल्का की गरदन को कुमार के होंठों ने भी छुआ और होंठों से निकलकर गहरी साँस ने भी।

"आप बड़े उदास हैं।

"इतना मैं जिन्दगी में कभी उदास नहीं हुआ।"

"चांदनी का यह जादू कैसा है ! जादू उदासियां देते हैं ?

"उन की दी हुई हर चीज़ के पीछे एक गहरी उदासी होती है। क्योंकि जादू उतर जानेवाली चीज है।"

"मेरा जादू भी उतर जायेगा ?"

"अब मेरे अपने बस में कुछ नहीं रहा, अलका ! सब कुछ तुम्हारे बस में हो गया। यह जादू तुम्हारे रहम पर रहेगा।"

"आप इसी लिए उदास हैं ?'

"मैं ने इस जादू को तोड़ने की पूरी कोशिश की थी। मैं ने इसी लिए तुम्हारे जिस्म की बीस रुपये कीमत रखी थी। सोचता था, सारा हिसाब साथ के साथ निपट जायेगा पर जिन औरतों के साथ हिसाब निबटाये जाते हैं, उन के पास जादू नहीं होते।"

'अगर हिसाब निपट जाता आप खुश होते ?"

"मैं बड़ा स्वतन्त्र होता, इसी लिए खुश होता। खुश अब भी हूँ, शायद इतना खुश पहले कभी नहीं हुआ। पर इस खुशी में एक अजीब तरह का दर्द मिला हुआ है। तुम्हें एक बात बताऊँ।'

"क्या ?

"जैसे जैसे यहाँ से जाने का समय निकट आता गया, वैसे-वैसे मेरे सीने में दर्द होने लगा। सचमुच का दर्द, जैसा निमोनिया में सांस लेते समय होता है। पर मैं ने जब तुम्हारा सिर अपने सीने से लगाया, मेरा दर्द जाता रहा। यह एक बहुत बड़ी मुहताजी हो गयी है "

कुमार ने अलका के सिर पर रखा हुआ हाथ उठा लिया और उस से अपनी दोनों आँखें ढँक लीं। एक टूटती-सी आवाज़ कुमार के मुँह से निकली, "मैं ने आज तक हर स्वाद से अपनेआप को मुक्त रखा हुआ था। छुटपन में माँ जब गरम परांठे बनाती थी तो मैं जान-बूझकर रात की बासी रोटी खाया करता था कि कहीं मेरी जीभ को किसी स्वाद की आदत न पड़ जाये अलका, अलका देख, मैं किस तरह तुम्हारे अधीन हो गया हूँ।'

चुप की चुप बैठी हुई अलका को कुमार ने दोनों बाहों से झकझोरा "अलका, मुझे बताओ कि कभी मुझे छोड़ तो नहीं जाओगी ? इस चांदनी का जादू कभी न उतरेगा ? इस मेरे सीने में जब दर्द होगा तुम अपना सिर मेरे सीने पर रख दिया करोगी ? अलका अलका अगर तुम कभी मुझे छोड़ कर चली गयी

अलका ने अपनी दोनों आँखें इस तरह भींच लीं, जैसे वह अपने सारे के सारे आंसू पी रही हो।—सिर्फ अपने ही नहीं कुमार के आंसू भी।

तुम बोलती क्यों नहीं ?'

"इसलिए कि मेरा जादू चल गया है।"

'तुम बहुत खुश हो, अल्का ?'

"मैं बड़ी उदास हूँ।"

"क्या उदास हो ?"

"मुझे नहीं मालूम था कि मेरे जादू का यह असर होगा।'

'तुम जो कुछ चाहती थी, तुम ने पा लिया। अगर कुछ गँवाया है तो मैं ने गँवाया है। तुम ने कुछ नहीं गँवाया।'

"मैं इसी लिए उदास हूँ कि आप को वह गँवाना पड़ा जिसे आप गँवाना नहीं चाहते थे।'

"पर मैं अपनी स्वतन्त्रता को गँवाये बिना तुम्हें नहीं पा सकता अल्का। मैं तुम्हें पाना चाहता हूँ।'

मुझे पाने का खयाल छोड़ दीजिए।

'यह तुम कह रही हो, अल्का !

"हाँ।"

पर मैं तुम्हारे बिना रह नहीं सकता मेरे जिस्म में एक आग जैसी भूख जग उठी है।

"मैं आप की कीमता पर ही आप को अपना जिस्म दे दिया करूँगी।

'पर बीस रुपये देकर तुम्हारे जिस्म को लेना तुम्हारे जिस्म का अपमान है अल्का।"

"मुझे यह कभी अपमान नहीं लगा, फिर भी कभी नहीं लगता।

"पर मुझे यह हमेशा लगता रहा है कि मैं तुम्हारा अपमान करता हूँ।'

'पर यह अपमान कर के आप खुश होते थे।"

'क्योंकि इस तरह मेरी स्वतन्त्रता पास रहती थी।

"वह अब भी आप के पास रहनी चाहिए।'

पर मैं दो चीजें नहीं पा सकता अल्का! मुझे एक चीज खोनी पड़ेगी। तुम्हीं बताओ तुम दोनों चीजें पा सकता हो ?

"हाँ।

"मुझे भी, और स्वतन्त्रता को भी ?'

"मैं ने दोनों पायी है।

"यह तुम कैसे कह सकती हो—अगर कल मैं दिल्ली चला जाऊँ, तो वहाँ मैं दो महीने रहूँगा। क्या तुम सोचती हो कि वहाँ मैं किसी और औरत के पास नहीं जा सकता ?'

'जा सकते हो, पर जाओगे नहीं। जाओगे भी तो मैं आप के साथ होऊँगी। आप अकेले नहीं जाओगे।

"यह कैसे हो सकता है ? "

'जाकर देख लीजिएगा।"

"पर मैं यह देखकर क्या करूँगा मैं तुम्हें पाना चाहता हूँ।

"मुझे आप कभी नहीं पा सकते।"

"कब तक नहीं पा सकता ?'

"जब तक आप की मुहब्बत और आप की स्वतन्त्रता मिलकर एक नहीं हो जाती।'

"पर ये दोनों अलग अलग चीजें हैं, अलका ! ये कैसे मिल सकती हैं ? कभी नहीं मिल सकता ! '

"जिस दिन ये दोनों मिल जायगी, उसी दिन के बाद आप उदास नहीं होंगे।'

पर अल्का

' आओ चलें आप को सुबह बहुत जल्दी उठना है।

"मुझे सुबह उठने की कोई जल्दी नहीं।

' आप को सुबह की गाड़ी से दिल्ली जाना है।'

' मैं दिल्ली जाकर क्या करूँगा !

"काम करोगे।

तुम मेरे साथ चलोगी ? '

मैं यहीं रहकर काम करूँगा।

"झुग्गियां डलवाओगी ?

"हां।

' लौटकर बनवा लूँगा।

"मैं ने लकड़ी मँगवा ली है। छत के लिए स्लेटें भी कल आ जायेंगी। मिस्त्री और मजदूर कल सुबह आठ बजे आ रहे हैं। '

उस का कोई बात नहीं। पर क्या तुम चाहती हो कि मैं अकेला जाऊँ ?

'हां मैं चाहती हूँ कि आप अकेले जायें।'

' तुम मुझे पाना चाहती थीं, अल्का ! अब जब मैं अपना सब कुछ तुम्हारे हवाले कर रहा हूँ तुम कुछ भी नहीं पाना चाहती ?'

"इस बात का जवाब मैं फिर दूँगी।'

'कब ?

"जब आप लौट आयेंगे।"

उस रात कुमार को सोते समय एक अजीब ख्याल आया कि कल सवेरे जब वह दिल्ली जायेगा, तो यह मीलों की दूरी उसे उदासी की अंधेरी कन्दरा में ले जायेगी।

७

कुमार दिल्ली चला गया। उस का दोस्त उसे स्टेशन पर लेने आया था। कुमार उसे पाच साल बाद मिल रहा था। पर कुमार को भी, और उस के दोस्त को भी लगा जैसे वे पाच साल के बाद नहीं पच्चीस साल के बाद मिल रहे हों, और इन पच्चीस सालों में उन दोनों की जून बदल गयी हो।

'लोग कहते हैं कि उमर के साथ चेहरे का तेज ढल जाता है। जब मैं गाडी के डब्बा का देख रहा था तो सोच रहा था कि अब तुम्हारे बाल सफेद हो गये होंगे। चेहरे पर उमर की झुर्रियां पड गयी होंगी। अगर ज्यादा नहीं तो कुछ मोटे हो ही गये होगे। और साथ ही पहाडों में रहते रहते तुम्हें ढंग से कपडे पहनने की आदत भी नहीं रही होगी' केवलकृष्ण चकित होकर बार-बार कुमार के चेहरे की ओर देखते हुए बोलता गया 'पर कमाल है! तुम पहले भी खूबसूरत थे। पर इतने नहीं। सुबक्-मे, बुत की तरह तराशे हुए हो! जाने तुम वहाँ किस चश्मे का पानी पाते हो! तुम्हारे चेहरे पर शायद इसी को चेहरे पर नूर की आमद कहते हैं'

कुमार चुप रहा। उस ने जरा हंसकर केवलकृष्ण की ओर देख भर लिया। केवलकृष्ण कुमार के साथ पढा करता था। कुमार के साथ ही उस ने आर्ट का अध्ययन किया था। पर धीरे-धीरे उस का सम्बन्ध सरकारी दफ्तरों से इतना जुड गया कि उस के लिए उस ने कई छोटे छोटे आर्टिस्ट नौकर रख लिये थे। एक फर्म के मालिक से बढते-बढते वह एक अच्छा ठेकेदार बन गया था। दिल्ली में उस की अपनी कोठी थी अपनी गाडी थी, और जैसे-जैसे रुपया बैंक में बढता गया वैसे-वैसे उस के शरीर का मास भी बढता गया और जितना उस के शरीर का मास बढता गया उतना ही उस का रंग फीका पडता गया। बडे बडे महँगे कपडों को भी उस के बदन पर देखकर ऐसा लगता था जैसे दिल्ली के दर्जियों को कपडे सीने की जाँच न रह गया हो। पर यह सारी बात कहने की नहीं थी इसलिए कुमार ने कुछ न कहा।

केवलकृष्ण ने अपनी कोठी में एक एकान्त कमरा कुमार के लिए सजा रखा था। कुमार ने कुछ दिन आराम किया, फिर उस ने केवलकृष्ण के साथ बैठकर काम का पूरा ब्यौरा समझा। केवलकृष्ण ने उसे बताया कि होटल बनानेवालों की मुख्य शर्त यह है कि होटल किसी तरह भी विदेशी होटलों की नकल न हो। वे ऐसा भारतीय माहौल उभारना चाहते थे जो आज तक भारत के किसी और होटल में न था। वे साज-संगीत आदि भी एकदम भारतीय रखना चाहते थे। पिछले अनुभव से केवलकृष्ण को विश्वास हो गया था कि कुमार की कल्पना में एक ऐसा नयापन था जो विदेशों का अनुकरण करनेवाले आर्टिस्टों में कभी नहीं आ सकता था।

वास्तविक शब्दों में जिसे पन्द्रह दिन और पन्द्रह रातों का व्यतीत कहते हैं—कुमार ने उसे इस काम में लगा दिया। काम का नक्शा उभर आया। इस दिमागी मेहनत के बाद अब ज्यादा काम कागज़ी मेहनत का था। केवलकृष्ण ने कुमार की सहायता के लिए दो नये मेहनती आर्टिस्ट दे दिये।

होटल के सब से बड़े कमरे के वातावरण में दूसरे कमरों से वैशिष्ट्य आवश्यक था। मालिक ने सब से पहले उसी कमरे का भीतरी ब्योरा तयार करने को कहा था। उसे तैयार कर लेने के बाद उसे काम का काफी हिस्सा पूरा हो गया।

कुमार ने कमरे के चारों कोनों में चार बुत लिखाये। एक बुत में सारंगी बज रही थी, एक में सितार, एक में शहनाई, और एक में बांसुरी। कुमार ने बताया कि जिस समय सारंगी का रिकार्ड लगाना होगा, सारंगीवाले बुत में रोशनी जल उठेगी। बाकी तीन कोनों के बुत अँधेरे में रहेंगे। जिस समय सितार का रिकार्ड लगाना होगा, सितार के बुत की रोशनी जल उठेगी, और बाकी के तीन बुत अँधेरे में रहेंगे। इसी तरह सारे बुत क्रम से अपने संगीत के अनुसार रोशन होंगे।

कुमार जब से दिल्ली आया था उस ने अल्का को कोई खत नहीं लिखा था अल्का को सोचा तक नहीं। इस में उस के काम ने उस बहुत सहायता दी थी। बीस इक्कीस दिन के बाद अल्का का ही एक छोटा-सा खत आया जिस में उस ने बगीचे की मुर्गियों के विषय में लिखा था, और उन्हीं के बारे में कुछ पूछा था। जैसे साधारण सवाल थे, कुमार ने एक खत में वैसा ही जवाब दे दिया। साथ ही केवलकृष्ण से लेकर दो हज़ार रुपये भी भेज दिये।

एक महीना गुज़र गया। कुमार को न अल्का की सुधि ने सताया, और न किसी गहरी उदासी ने। तीन-चार बार कुमार ने अल्का को सपने में ज़रूर देखा, पर सपने में किसी किस्म की तल्खी नहीं होती थी। अल्का चुपचाप कोई तसवीर बना रही होती, या वह बाग का पानी दे रही होती और या मुँह दूसरी ओर घुमाकर कोई किताब पढ़ रही होती। इन साधारण-से सपनों ने न तो कुमार के मन में कोई लहर उठायी, और न जिस्म में। वैसे कुमार थोड़ा हैरान था कि अल्का को देखते ही उस के जिस्म में जो आग सुलग उठती थी किसी सपने में भी उस आग का सेंक क्यों नहीं था। यह बात कुमार को अच्छी लग रही थी। उसे लग रहा था कि उस के स्वभाव की स्वतन्त्रता दिनोंदिन उस के पास लौट रही थी।

करीब डेढ़ महीना हो चला। कुमार को विश्वास हो गया कि अब जब वह अल्का के पास लौटेगा तो यह उस के लिए, और अल्का के लिए एक नया अनुभव होगा। उसे लगता था जैसे उस ने अपने जिस्म की भूख को जीत लिया हो। अन्तर के किसी कोने में वह अल्का का आभारी था कि उस ने ज़ोर देकर उसे दिल्ली भेज दिया था और कुमार सोच रहा था कि अगर कहीं उस रात अल्का भी उस चाँदनी के जादू में आ जाती तो कुमार शायद सारी उमर के लिए एक मानसिक गुलामी सहेज

लेता। उसे विश्वास होता जा रहा था कि उस रात उस ने जो कुछ अल्का को कहा था वह जंगल में छिटकी हुई चाँदनी के असर में कहा था। वह सिर्फ दिमाग़ी उन्माद था, जो चाँदनी में समन्दर की लहरों की तरह उमड़ आया था।

अपनी इस स्वतन्त्रता को परखने के लिए कुमार को एक खयाल आया। केवल-कृष्ण चाहे उस का पुराना दोस्त था, पर कुमार ने जो अपना जवानी में ही बुजुर्गी का वेश ओढ़ लिया था, उस कारण केवलकृष्ण ने कभी कुमार के साथ उस की व्यक्तिगत ज़िन्दगी की कोई बात नहीं पूछी थी, फिर भी कुमार को यह बात कठिन न लगी। एक दिन उस ने केवलकृष्ण से कहा कि वह इतने दिन लगातार काम कर के बहुत थक गया है, एक दिन वह खाली रहकर शराब पीना चाहता है और उस रात उसे एक औरत भी चाहिए।

"अच्छा," केवलकृष्ण ने छोटा-सा उत्तर दिया। कुमार ने किसी ख़ास रात की बात नहीं की थी, इसलिए इस बात को वह भी भूल गया।

चार-पाँच दिन बीते होंगे। कुमार जब एक रात अपने कमरे में लौटा तो उस के कमरे में एक बीस बाईस साल की लड़की बैठी हुई थी। कुमार को केवलकृष्ण से कही हुई बात फिर भी याद न आयी। उस ने समझा कि उस लड़की ने गलती से यह कमरा केवलकृष्ण की बीवी का समझ लिया होगा, तभी वह वहाँ आ बैठी।

वह लड़की कुरसी से उठ खड़ी हुई। वह हँसी—जैसे पहले से जानती हो। कुमार को उस की हँसी परायी-सी लगी। कुमार के आधे उतारे हुए कोट को उस ने आगे बढ़कर थाम लिया, और कोट की दूसरी बाजू उतरवाकर कोट को खूँटी पर टाँग दिया। कुमार हैरान था।

कुमार अभी चकित खड़ा हुआ था कि उस लड़की ने मेज पर रखी हुई शराब की बोतल को सधे हुए हाथों से खोला, और गिलास में बर्फ डालकर उस ने एक भरा हुआ गिलास कुमार के सामने कर दिया।

कुमार को बात याद आ गयी, पर वह हैरान था कि केवलकृष्ण की पिछली शामें सारी-की सारी उस के साथ बीती थीं, उस ने खाना भी उसी के साथ खाया था पर इस लड़की के बारे में उसे कुछ नहीं बताया।

शराब का गिलास उस ने पकड़ लिया। पर कमरे में खड़े हुए उसे यह नहीं महसूस हो रहा था कि कमरा उस का है, और आज उस के कमरे में कोई मेहमान आया हुआ है। उसे लग रहा था जैसे वह अपने कमरे में जाते हुए भूल से किसी दूसरे के कमरे में आ गया हो।

'बैठिए,' उस लड़की ने जब हाथ से कुरसी की तरफ इशारा किया तो कुमार को खयाल आया कि अभी तक वह खड़ा हुआ है।

कुमार चुपचाप कुरसी पर बैठ गया और उस ने अपने हाथ में पकड़े गिलास में से एक घूँट लेकर उस लड़की के चेहरे की तरफ इस तरह देखा जैसे उसी से पूछ

रहा हो बताओ, अब तुम से क्या बात करूँ !

लडकी ने शराब का एक और गिलास भरा, और कुमार की तरफ देखती हुई हाथ ऊँचा उठाकर कहने लगी, "आप की सेहत के लिए !"

कुमार ने मुसकराकर उस लडकी की तरफ देखा। वह खूबसूरत थी। उस के होठ कुछ मोटे थे पर उस के मुख पर फब रहे थे। उस का जिस्म गठा हुआ था। उस की पीठ का काफी हिस्सा नगा था, और कुमार को खयाल आया कि अगर पीठ का इतना हिस्सा नगा रखना हो तो जिस्म की गठन इस से कुछ कम होनी चाहिए, और साथ ही माथा कुछ और चौडा। और कुमार को खुद ही खयाल आया कि वह लडकी को देखते हुए इस तरह जाच रहा है जैसे उसे सामने बिठाकर उसे पेंट करना हो।

जाने कुमार से यह कैसे पूछा गया, "एक रात के कितने रुपये केवल ने देने तय किये है ?" लडकी चुप-सी रह गयी। कुमार ने सोचा नही था कि वह यह बात पूछेगा। पूछने की जरूरत भी नही थी। कुमार को खुद ही अपनी बात अच्छी न लगी।

"आप रुपया की फिक्र न करें। केवल साहब ने मुझे दे दिये है। साथ ही ऐसे वक्त ऐसी बात नही करते" लडकी ने कहा, और मेज पर पडी हुई शराब की बोतल लाकर कुमार के गिलास में डालने लगी।

'जब मन का रिश्ता कोई न हो, तो लोग रिश्ते का भरम डालना चाहते है। यह भरम चुप रहने से ही पड सकता है। इसलिए ऐसे मौका पर लोग चुप रहते है' कुमार को अचानक अल्का की कही हुई बात याद हो आयी और साथ ही अल्का भी याद हो आयी।

'यू डैविल !' कुमार के मुह मे निकला।

"लडकी घबराकर कुरसी से उठ खडी हुई और कुमार ने चौंककर उस की ओर देखा, 'मैं ने तुम्हें नही कहा !'

कुमार हाथ में पकडे हुए गिलास को एक सास में पी गया, और गुसलखाने म जाकर कपडे बदलने लगा।

कुमार जब कमरे में वापस आया तो वह लडकी कुमार के बिस्तर पर लेटी हुई थी। बिस्तर की चादर उस ने ओढी हुई थी। अपने उतारे हुए कपडे तह कर के उस ने मेज पर रख दिये थे।

बिस्तर की ओर न जाकर कुमार ने मेज की दराज खोला और सिगरेट निकाल कर पीने लगा। कुमार को सिगरेट पीने की आदत नही थी। गाँव में वह कई-कई महीने सिगरेट नही पीता था। शहर में जब कभी वह रग लेने के लिए जाता था तो साथ में सिगरट की दो डिबिया भी ले आता। यहाँ दिल्ली आकर उस ने दो डिबिया खरीदी थीं जो पिछला सारा महीना खत्म नही हुई थी। पर आज कुमार ने एक सिगरेट पी, दूसरी पी, और फिर दूसरी सिगरेट की आग से तीसरी सुल्गा ली।

'आप बहुत सिगरेट पीते है ? सभी आर्टिस्ट बहुत पीते है" उस लडकी ने

रहा। कमर की खामोशी टूट गया। कुमार ने हाथ के सिगरेट को राखदानी में रख दिया।

कुमार बिस्तर के पास खड़ा होकर काफी देर लड़की के चेहरे की ओर देखता रहा। फिर उस ने हाथ से उस पर ओढ़ी हुई चादर को जरा एक ओर हटाया। चादर कंधे से हटायी छाती से हटाया, कमर तक हटा दी। कुमार जाने क्या सोच रहा था। अगर इस वक्त उसे कोई देखता तो उसे लगता जैसे कुमार एक डाक्टर था, और मरीज़ को बड़े गौर से देखते हुए उस के मर्ज़ के बारे में सोच रहा था।

उस लड़की ने कुमार के ख्यालों को तोड़ते हुए पूछा, "आप दिल्ली नहीं रहते ?"

मैं ?

कमल साहब कहते थे कि आप यहाँ पहाड़ पर रहते हैं। यहाँ आप अकेले रहते हैं ? अगर मैं यहाँ अकेली रहती होऊँ तो मुझे बड़ा डर लगे।

'डर ? मुझे क्या डर है यहाँ ! कुमार को अल्का के शब्द याद हो आये।

'यू डम कुमार के मुंह से निकला।

लड़की घबराकर चारपाई पर उठ बैठी।

'सारी तुम्हें नहीं कहा ! कुमार ने नरमी से कहा और फिर उस से पूछा "तुम्हारा नाम क्या है ?

"कान्ता।'

'तुम रात को वापस कैसे जाओगी ?

अगर जल्दी खाली हो गयी तो टैक्सी लेकर चली जाऊँगी नहीं तो सुबह चली जाऊँगी।

कुमार को ख्याल आया कि इस लड़की को जल्दी फारिग हो जाना चाहिए। लड़की के साथ बिस्तर पर बैठते हुए उस ने बत्ती बुझा दी।

कुमार पल भर बैठा रहा। और दूसरे ही पल चौंककर उठ खड़ा हुआ, और खिड़की की तरफ देखते हुए बोला, बाहर खिड़की के पास कोई खड़ा हुआ है।'

"उस तरफ बगीचा है। इस वक्त बगीचे में कोई नहीं हो सकता।'

'अभी कोई उधर से गुज़रा है। उस की छाया खिड़की पर पड़ी थी।"

कान्ता बिस्तर से उठ बैठी। अपने ऊपर चादर लपेटकर उस ने एक हाथ से खिड़की का परदा हटाया और बाहर बगीचा देखकर बोली आप खुद देख लीजिए। सड़क की रोशनी बगीचे में पड़ रही है। बगीचे में किसी की छाया तक नहीं "

कुमार ने भी कान्ता के पास जाकर खिड़की से बाहर देखा। बाहर कोई नहीं था।

कान्ता बिस्तर पर लौट आया। कुमार ने खिड़की का परदा ठीक किया और कान्ता के पास जाकर बिस्तर पर बैठ गया।

'आप अब भी खिड़की की तरफ देख रहे हैं। मान लीजिए आप को ऐसे ही

शक हो गया। यहां कोई नहीं आ सकता।" कान्ता ने कुमार की बाँहों पर अपना हाथ रखा। कुमार ने खिड़की से ध्यान हटा लिया, और दोनों आँखें भींचकर कान्ता पर ओढ़ी हुई चादर को एक तरफ हटाने लगा।

कुमार के हाथ ठिठक गये—"बाहर किसी के चलने की आवाज़ आ रही है।"

"बगीचे से चलने की आवाज़ आ ही नहीं सकती।" कान्ता ने कहा।

"खिड़की की तरफ नहीं, दरवाज़े की तरफ। बाहर लकड़ी के फर्श पर कोई चल रहा है।"

कान्ता आहट लेने लगी। कहीं कोई आवाज़ नहीं थी। वह कुमार के हाथ को पुचकारकर बोली "अगर आप ने शराब ज़्यादा पी होती तो मैं समझती नशे में हैं। पर आप ने तो जमकर पी भी नहीं।"

"मैं नशे में नहीं कान्ता। बाहर सचमुच कोई चल रहा है। पग की आवाज़ साफ सुनाई दे रही थी।"

"अगर कोई बाहर आया भी हो तो क्या है। मैं ने दरवाज़े की साँकल चढ़ा दी है।"

कुमार ने चुपचाप अपना सिर सिरहाने पर रख दिया। कान्ता ने कुमार का हाथ पकड़ा और उस की बाँह को अपनी पीठ के गिर्द लिपटा लिया।

"तुम ने काँच की इतनी चूड़ियाँ क्या पहन रखी हैं?"

"काँच की चूड़ियाँ?"

"इन के खनकने की इतनी आवाज़ हो रही है।"

"पर मैं ने तो काँच की कोई चूड़ी नहीं पहनी हुई।"

कुमार चौंककर पलंग पर उठ बैठा। उस ने कमरे की बत्ती जलायी और कान्ता की दोनों नंगी कलाइयों की तरफ देखा।

—"फिर वह चूड़ियों की आवाज़ कहाँ से आयी थी?"

कान्ता ने कोई जवाब न दिया। कुमार का सारा बदन काँप रहा था। काँपते हाथों से उस ने कान्ता को टैक्सी के पैसे देकर चले जाने के लिए कहा। उस की तबीयत ठीक नहीं थी। सोकर शायद ठीक हो जाये।

कान्ता कुछ न बोली। चादर को अपने बदन से लपेटकर बिस्तर से उठ खड़ी हुई। उस ने मेज़ पर पड़े हुए अपने कपड़े हाथ में लिये और गुसलखाने का दरवाज़ा भिड़काकर कपड़े पहनने लगी।

कान्ता चली गयी। कमरे का दरवाज़ा भिड़काकर कुमार अपने पलंग पर लेटा तो उसे ख़याल आया—खिड़की पर पड़ती अल्का की छाया, दरवाज़े पर उस के चलने की आवाज़ और उस की बाँहों में पहनी हुई काँच की चूड़ियों की खनक... उस ने जो कुछ देखा था, और जो कुछ सुना था, वह और कुछ नहीं था, यह वह रास्ता था जो पागल दिल का एक अँधेरी गुफा की ओर जा रहा था।

८

सवेरा होते ही कुमार के लिए जब नौकर चाय लेकर आया तो केवलकृष्ण भी उस के साथ था। आते ही उस ने कुमार के माथे को छुआ।

"बुखार देख रहे हो?"

"मुझे डर था, कहीं बुखार न हो गया हो।

"क्यो?'

"शायद तुम ने रात में बहुत पी ली थी। तुम्हें आदत नहीं ज्यादा पीने की। सिर के चक्कर आ रहे होंगे?"

कुमार ने पलंग से उठकर चाय का प्याला बनाया और वह प्याला केवलकृष्ण को देकर अपने लिए एक गिलास में चाय बनाकर उस ने पूछा, तुम्हें किस ने कहा है कि मैं ने बहुत पी ली थी?"

"मैं रात सो नहीं पाया। एक बार उठकर भी आया था तुम्हें देखने के लिए, पर दरवाजा बन्द था, कमरे की बत्ती बुझी हुई थी। सोचा कि सो गये होगे इसलिए मैं ने दरवाजा नहीं खटखटाया।

' पर यह तुम्हें किस ने कहा कि मैं ने बहुत पी ली थी?'

आधी रात के करीब कान्ता का टेलीफोन आया था। वह काफी डरी हुई थी"

"और वह कहती थी, कि मैं ने बहुत पी ली थी?

"नहीं, उस ने यह नहीं कहा था। मैं ने ही सोचा कि शायद तुम ज्यादा पी बैठे थे। इसलिए तुम कान्ता से वैसी बातें करते रहे।

' कैसी बातें?"

' चलो छोड़ो उस की बातों को, पर तुम्हें हुआ क्या था?

"वह क्या कहती थी?

'कहती थी "

"कहते क्या नहीं?'

'वह मुझ से नाराज थी कि मैं ने उसे एक पागल आदमी के पास क्यों भेजा था।"

कुमार हंस पड़ा। केवलकृष्ण ने मेज पर पड़ी हुई बोतल को देखा और बोला, "पर बोतल तो उसी तरह भरी हुई है। मुश्किल से दो गिलास लिये होंगे तुम ने।'

'एक मैं ने पिया था एक कान्ता ने।"

"फिर तुम्हें हुआ क्या था?'

"जाने क्या हुआ था।"

"तुम्हें खिड़की में से जिन भूत दिखाई देते रहे हैं?"

"जिन भूत तो नहीं, एक जिन्नी दिखती रही है।"

"कान्ता कहती थी कि तुम्हें काँच की चूड़ियों की आवाज़ आ रही थी।"

"जिन्नी ने हरे रंग की चूड़ियाँ पहनी हुई थीं।"

"सच बताओ, तुम ऐसी बातें कर-कर के कान्ता को डरा क्या रहे थे?"

"उसे नहीं डरा रहा था, मैं तो खुद डर रहा था।"

"कान्ता से?"

"उस बेचारी से क्या डरता"

"शायद तुम्हें कान्ता पसन्द नहीं आयी। पर तुम्हें उस को कुछ नहीं कहना चाहिए था। मुझे सवेरे कह देते, मैं किसी और को बुला देता।"

"इस में कान्ता का कोई कुसूर नहीं।"

कुमार ने केवलकृष्ण को विश्वास दिलाया कि रात में जो कुछ हुआ था शराब का एक गिलास पी लेने की वजह से हुआ था, क्योंकि उसे शराब पीने की आदत नहीं थी। उसे चक्कर आ गया था। इसी लिए उस खिड़की में किसी की परछाई दिख रही थी। इस में कान्ता का कोई कुसूर नहीं था। पर केवलकृष्ण को इस पर विश्वास न हुआ। उस ने यही सोचा कि कुमार को कान्ता पसन्द नहीं आयी थी। वह कान्ता को अपने कमरे में से वापस भेजना चाहता था, इसी लिए बहकी-बहकी बातें करता रहा।

"अच्छा मैं तुम्हारे लिए एक बहुत खूबसूरत लड़की का इन्तज़ाम कर देता हूँ। पैसे ज़रा ज़्यादा लेती है, पर कोई बात नहीं। केवलकृष्ण बोला, आज कहो तो आज कल कहो तो कल। जब कहो।"

कुमार कुछ देर अपने दोस्त के चेहरे की तरफ देखता रहा। फिर उस ने चाय का एक घूंट लेकर पूछा, कितने रुपये लेती है?

"जितने रुपयों में तुम्हारी एक पेंटिंग बिकती है।" केवलकृष्ण ने हँसकर कहा।

"क्या मतलब?"

"मेरा मतलब है कि एक साधारण पेंटिंग। यों तो तुम्हारी पेंटिंग का हज़ार रुपया भी मिल सकता है, इस से भी ज़्यादा मिल सकता है। पर आम पेंटिंग का जम दो-अढ़ाई सौ रुपया मिलता है"

"वह दो-अढ़ाई सौ एक रात का लेती है?"

"शहर में दो-अढ़ाई सौ। अगर शहर से बाहर ले जाना हो तो चार-पाँच सौ के चार देने पड़ते हैं। पर तुम रुपये के फिक्र में क्या पड़ गये?"

नौकर चाय रखकर चला गया था। वह चाय के बरतन उठाने आया तो कुमार ने उसे और गरम चाय लाने के लिए कहा। नौकर चला गया तो केवलकृष्ण ने कहा

"तुम रुपया की चिन्ता न करो, सिर्फ यह बता दो कि कब बुलाऊँ। तुम कभी कभार शहर में आते हो वहाँ पहाड़ों में तुम्हें क्या मिलता होगा वैसे पहाड़िनें होती तो खूबसूरत हैं "

कुमार कुछ न बोला। वह मेज़ के खाने में से सिगरेट निकालकर पीने लगा।

किस सोच में पड़े हो ?"

"किसी में नहीं।'

तो आज रात उस को बुला दूँ ?

' इतनी क्या जल्दी है, अभी मैं पन्द्रह दिन यहीं हूँ।'

"दरअसल बात यह है कि मैं अपनी बीवी को कल उस की मां के घर छोड़ आया हूँ। उस की माँ कुछ बीमार थी। पर वह दो रातें उस के पास रहकर कल लौट आयेगी फिर मुश्किल पड़ेगा "

फिर रहने दो इस बात को। कभी फिर सही।'

फिर किसी को यहाँ बुलाना मुश्किल हो जायगा। किसी होटल में तो फिर भी हो सकेगा

देख लेंगे '

कुमार ने बात टाल दी। छह दिन बीत गये। सातवें दिन दोपहर का खाना खाते हुए कुमार से केवलकृष्ण ने कहा 'बात बन गयी है। मेरी बीवी अभी अपनी माँ की तरफ चली है। उस के चाचा की लड़की बम्बई से आयी हुई है। रात को वह वहीं रहेगी। मैं आज रात उसे बुला लूँगा।

कुमार कुछ न बोला। चुपचाप रोटी खाता रहा। केवलकृष्ण ने ही फिर कहा बहुत खूबसूरत है। कान्ता कुछ भी नहीं उस के सामने।

खाना खाते हुए कुमार के सीने में हल्का-सा दर्द हुआ। पर गिलास को मेज़ पर रखकर जब कुरसी से उठा तो उस के सीने में तेज़ दर्द हुआ।

'पानी शायद बहुत ठण्डा था ' केवलकृष्ण बोला और उस ने देखा कि कुमार को सांस लेने में कठिनाई पड़ रही थी। उस ने कुमार को उस के कमरे में ले जाकर पलंग पर लिटा दिया।

फ्रिज के पानी से कभी-कभी ऐसा हो जाता है। अभी ठीक हो जायगा। केवलकृष्ण ने कहा और गरम पानी में कुछ चम्मच ब्राण्डी डालकर कुमार को पिला दी।

कुछ देर कुमार उसी तरह उखड़ी हुई साँसें लेता रहा। फिर शायद ब्राण्डी का असर हुआ कुमार को हल्की-सी नींद आ गयी।

केवलकृष्ण को किसी ज़रूरी काम पर जाना था। वह चला गया। बस उसे यक़ीन था कि अब तक कुमार की तबीयत ठीक हो गयी होगी पर वह दो घण्टों में लौट आया। कुमार की साँस उसी तरह उखड़ी हुई थी। उस का रंग दर्द से पीला

पड गया था।

"जब हम खाना खा रहे थे, उस वक्त तुम्हें कोई तकलीफ नहीं थी।"

'पानी पीते-पीते हुई थी।"

कभी पहले भी हुई है इस तरह ?"

"एक बार हुई थी।"

'इसी तरह ? या ज्यादा ?"

'इस से कम थी।

"तब तुम ने कौन सी दवा ली थी ?

कुमार ने बात करते-करते आँखें बन्द कर ली। शायद दर्द बढ़ गया था। केवलकृष्ण ने गरम पानी की बोतल तौलिये में लपेटकर कुमार के सीने पर रख दी। कुमार ने एक बार आँखें खोली बोतल को देखा और एक अजीब सी मुसकराहट उस के होठों पर खिल आयी। शायद उसे वह दिन याद आ गया था जब उस ने अल्का का सिर अपने सीने से लगाकर कहा था, "मेरे इस सीने में जब दर्द होगा, तुम अपना सिर मेरे सीने पर रख दिया करोगी ?

केवलकृष्ण ने कुमार के माथे को छुआ। माथा गरम था। दर्द के जोर से शायद हल्का-सा बुखार हो आया था। उस ने डाक्टर को बुलाने के लिए नौकर भेज दिया।

डॉक्टर आया। उस ने कुमार के सीने और पीठ को देखा और एक इंजेक्शन लगाकर बोला 'रात तक फर्क पड़ जायेगा। खाने के लिए कुछ मत देना। गरम पानी का सेंक दीजिएगा बस। अगर रात तक फर्क नज़र न आया तो एक इंजेक्शन और देना होगा। अगर बुखार बढ़ जाये तो मुझे फौरन इत्तला कर दीजिएगा।

डाक्टर चला गया। केवलकृष्ण हैरान था कि मिनटों में क्या हो गया था। कुमार भी हैरान था। इस दर्द का अहसास उसे पहली बार तब हुआ था, जब अपने गाँव में अल्का के साथ उस की आखिरी शाम रह गयी थी। पर तब उसे आज जितनी हैरानी नहीं हुई थी। शायद इसलिए कि उस दिन दर्द आज जितना नहीं था। कुमार सोच रहा था कि ख्यालों की गाठें जिस्म की नाड़ियों में कैसे इस तरह उतर सकता है, कि नाड़ियों में सूजन आ जाये

'अजीब बात है ' केवलकृष्ण ने कुमार पर ओढ़ायी हुई चादर के साथ एक कम्बल भी जोड़ दिया और बोला, "तुम्हें यह नहीं लगता कि कोई चीज़ तुम्हें किसी बात से रोक रही है ?'

लगता है।

'किरमत को इस तरह ज़िद ठानते मैं ने कभी नहीं देखा।"

"मैं ने भी पहले कभी नहीं देखा।

"उस दिन भी अजीब बात हुई थी।

"हा, अजीब बात हुई थी।"

'तुम शान्ता को 'डविल' कहकर बुला रहे थे। मैं ने कभी तुम्हारी ज़बान से ऐसे ल्फज नही सुने थे '

"मैं ने उसे कुछ नही कहा था।

'तुम्हें शायद मालूम नही, तुम शराब के नशे में थे "

'मैं शराब के नशे में नही था।'

"बट इट इज समथिंग मेण्टल ।'

"शायद।"

"पर आज तुम बिल्कुल ठीक थे—मेण्टली अब भी ठीक हो। पर आज फिजीकली कुछ हो गया ह—तुम जानते हो कि मैं ने टेलीफोन से बात पक्की कर ली थी, अब फिर टेलीफोन कर के आया हू, उसे मना कर के आया हू '

"वह तुम से नाराज नही हुई ?

'बडी नाराज थी, क्योंकि मैं ने सवेरे उसे बडी मुश्किल से मनाया था, उसे आज कही दूसरी जगह जाना था। खर कोई बात नही, मैं उस की कसर फिर कभी निकाल दूँगा, वह मुझ से नाराज नही हो सकती—पर मैं उस की बात नही सोच रहा था, उस का क्या ह, तुम नही तो दूसरी सही—पर मैं तुम्हारी बात सोच रहा हू।

"मेरी बात ह ?

कुमार ने करवट बदली। दद कुछ थम गया था। पर करवट बदलने से सीने में दद की एक लहर-सी दौड गयी। उस ने एक घुटी हुई सास खीची और गरम पानी की एक तरफ खिसकी हुई बोतल को हाथ से ठीक किया।

'थोडी चाय पिओगे ? चाय का कुछ हरज नही।

'अच्छा।'

केवलकृष्ण ने चाय मँगवायी। कुमार को एक बडे तकिये का सहारा दिया और उस के लिए चाय का प्याला बनाने लगा। चाय के घूट लेते हुए कुमार ने दो-तीन बार आँखें बन्द की।

"दद ज्यादा ह ?

'नही।"

"तुम कुछ सोच रहे हो ?

'मैं सोच रहा हूँ कि दुनिया में कोई ऐसी वेश्या भी होती ह या नही, जो सिर्फ एक ही आदमी की वेश्या हो।

'एक ही आदमी की वेश्या ?'

'जो सिर्फ एक ही आदमी को अपना जिस्म दे और एक ही आदमी से उस के पैसे ले।

'पर वह वेश्या कसे हुई ?

"यही तो मैं सोच रहा हूँ कि वह वेश्या कैसे हुई।"

केवलकृष्ण ने कुमार के माथे को छुआ। उसे लगा कि बुखार बढ़ गया है।

डाक्टर रात को एक बार फिर आया। वह जब इंजेक्शन की सुई को और सिरिंज को गरम पानी में साफ कर रहा था तो कुमार ने एक गहरी साँस ली। उसे लग रहा था कि वह अपने ही खयालों की पगडण्डी से फिसलता जा रहा है, और दिना दिन बेबसी के गहरे पाताल में उतरता जा रहा है।

९

कुमार ने अल्का को अपने वापस आने की खबर नहीं दी थी। बुखार टूटने के बाद उस ने दिल्ली में सिर्फ दो दिन आराम किया था, और तीसरी शाम उस ने वापस लौटने की तैयारी कर ली थी। इसलिए जब गाड़ी स्टेशन पर पहुँची तो चेनू चाचा को स्टेशन पर देखकर वह हैरान रह गया। चेनू चाचा ने आगे बढ़कर कुमार के हाथ से सूटकेस ले लिया। उस ने बताया कि वह पिछले तीन दिनों से रोड स्टेशन पर आकर गाड़ी देख जाया करता था। अल्का पिछले तीन दिनों से उसे रोज स्टेशन पर भेजती थी।

कुमार की जमीन पपरोला से डेढ़ मील दूर थी। वह डेढ़ मील चढ़ाई का रास्ता था। चेनू चाचा के आने से कुमार को आसानी जरूर हो गयी, क्योंकि नहीं तो सूटकेस को उठाने के लिए उसे पपरोला से कोई आदमी खोजना पड़ता। पर वह हैरान था कि अल्का पिछले तीन दिनों से उसे स्टेशन पर क्या भेज रही थी।

बैजनाथ को जाती चौड़ी सड़क के दायें हाथ पहाड़ की सपाट छाती पर कुमार की जमीन थी। बायें हाथ की पगडण्डी उतरने से पहले ही सड़क पर से जमीन का बहुत-सा हिस्सा नजर आने लगता था। सीढ़ियों की तरह बिछे हुए धान के खेत अनारों और अमरूदों के पेड़ और जिस हिस्से में कुमार का स्टूडियो था वह भी। कुमार ने पगडण्डी के सिरे पर खड़े होकर देखा फूलों की लम्बी क्यारियों के पार के हिस्से में नया बनी हुई झुग्गियों के स्लेटों से ढके हुए माथे सन्ध्या की लाली में अपने मुँह उठाकर उस की राह देख रहे थे। चेनू चाचा के हाथ में बोझ था, वह थोड़ा पीछे रह गया था। कुमार ने कुछ देर उस की प्रतीक्षा की, पर फिर उस के पाँव बरबस पगडण्डी उतरने लगे। कुमार जब झुग्गियों के पास पहुँचा तो उसे एक झुग्गी के दरवाज़े में से आग जलती नजर आयी। दरवाज़े की चौखट पर पहुँचकर उस का दिल इतना धड़कने लगा कि वह एक मिनट के लिए वहीं रुक गया।

झुग्गी में बैठी अल्का ने शायद उस के पैरों की आवाज सुन ली थी। वह चौखट पर आ गयी। इस समय अगर कोई ऊँची पगडण्डी से इस झुग्गी की तरफ देखता

तो उसे लगता कि झुग्गी की चौखट में किसी ने दो बुत गढ़कर रखे हुए हैं।

झुग्गी के अन्दर बायीं दीवार के साथ एक कच्ची उचान थी। उचान पर ऊन का एक पहाड़ी गलीचा बिछा हुआ था। उचान के सामने एक पेड़ का एक चौड़ा छीलकर कटाव पड़ा हुआ था, जिस पर एक सरसों के तेल का दिया जल रहा था। दीवार के कोने में मिट्टी की अंगीठी में तीन मोटी-मोटी लकड़ियाँ जल रही थीं। जलती हुई लकड़ियों की रोशनी अलका की पीठ की तरफ थी इसलिए अलका के मुँह पर से यह नहीं दिख रहा था कि उस के चेहरे पर कितने रंग आये थे और कितने रंग गये थे।

सड़क से उतरकर पगडण्डी पर खड़े हुए जैसे कुमार के पैर बरबस चल पड़े थे, कुमार की बाँहें भी बरबस आगे बढ़ गयीं और आगे बढ़कर अलका को अपने साथ लगा लिया।

अलका ने कुमार को जब मिट्टी की उचान पर बैठाया तो कुमार का मुँह आग की रोशनी की तरफ था। अलका ने नज़र भरकर देखा, और कुमार के कन्धे पर हाथ रखकर पूछा, "बीमार रहे क्या?"

"तुम्हें किस ने बताया?" कुमार ने अलका की ओर देखा। पर अलका की पीठ की तरफ रोशनी होने से उसे चेहरे पर पड़ने अंधेरे में आँखें दिख सकती थीं पर आँखों में आया हुआ पानी नहीं दिख सकता था।

"कितने दुबले हो गये हो!" अलका ने धीरे से कहा और आग के पास ढककर रखी हुई चाय पत्थर के प्याले में डालने लगी।

"सिर्फ दो दिन बीमार रहा था, ज्यादा दिन नहीं।" कुमार ने कहा और अलका के हाथों से चाय का प्याला लेकर पूछा "पर तुम कैसे जानती थी कि मैं वापस आ रहा हूँ। तुम चेतू चाचा को रोज स्टेशन पर क्यों भेजती रही हो? तुम ने कल भी उसे भेजा था परसों भी।"

"मेरा कोई कुसूर नहीं इस चाय का कुसूर है!" अलका ने अपने प्याले से चाय का घूँट भरा और हँसकर बोली "परसों मैं ने अपने लिए चाय बनायी। केतली से चाय डालकर जब मैं प्याला उठाने लगी तो मैं ने देखा कि मैं ने एक की जगह दो प्यालों में चाय भर दी थी। मुझे लगा कि आप आ रहे हैं मैं ने चेतू चाचा को स्टेशन पर भेज दिया।

कुमार को लगा कि उस की आँखों में उतरा हुआ पानी उस के चेहरे पर दिखने लगेगा। जैसे भी बना वह हँसकर बोला, "तुम में और गाँव की उस अल्हड़ छोकरी में कोई फर्क नहीं जिस की परात में आटा गूँधते समय अगर आटा उछल जाये, तो समझ लेती है कि आज कोई पाहुना आयगा।"

"असल में मैं चार दिनों से डरी हुई थी।

"क्यों?"

"मुझे एक सपना आया था। सपने में आप ने मुझे कभी आवाज़ दी। आप

आवाजें देते गये और मैं सुनती गयी। मैं जहाँ से भी गुजरकर आप की तरफ आने लगूँ, सामने लाहे का एक जगला आ जाता। शायद मुझे स्टेशन का खयाल रहा हो। स्टेशन पर जसे जगले लगे रहते ह, वैसा ही एक जगला हर मोड पर आ जाता था। आप इस तरह आवाज देते जा रहे थे जसे आप को मेरी बडी जरूरत हो। आवाजें सुनते सुनते मेरी नींद खुल गयी।'

'अलका।'

"सवेरे उठकर मेरे दिल म आया कि दिल्ली चल दूँ, पर मै जानती थी कि आप नाराज हागे।'

"मुझे सचमुच तुम्हारी बडी जरूरत थी।" कुमार ने हाथ में पकडा हुआ प्याला दिये के पास पेन के बटाव पर रख दिया, और अल्का को कसकर अपने गले से लगा लिया।

"क्या जरूरत पड गयी थी मेरी?'

बडी जरूरत थी दद हाने लगा था, बुखार हा गया था, इसलिए "

"बाहर कोई आया ह "

'चेतू चाचा हागा

कुमार उठकर झुग्गी से बाहर आ गया। चेतू चाचा सूटकेस जमीन पर रख रहा था। कुमार ने उसे सूटकेस दूसरी तरफ उस के कमरे में ले चलने के लिए कहा, और साथ ही कहा कि वह हरिया को खाना बनाने के लिए कह दे।

कुमार ने झुग्गी में लौटते हुए देखा कि झुग्गी की दीवार पर अल्का ने एक बहुत बडी तसवीर बनायी हुई थी। काली लकीरो में एक मद का चेहरा था, और लाल रग का लकीरो म एक औरत का। मद की पीठ की तरफ एक सूरज था, पर सूरज का ज्यादा हिस्सा अँधेरे से ढका हुआ था। औरत की पीठ की तरफ एक सूरज था, पर सारा का सारा सूरज राशनी से भरा हुआ था। मद की आख खुली थी, और सतक हाकर दुनिया की आर देख रही थी। औरत की दोनो आखा पर मद की छाया लिपटी हुई थी। कुमार काफी देर दीवार की तरफ देखता रहा, और आग का रोशनी में अल्का के चेहरे की तरफ देखने लगा।

"अभी मेरे पास इतना हुनर नही कि बहुत अच्छा बना सकूँ।"

हुनर की तरफ कुमार का इतना ध्यान नही था। वह खयाल को देख रहा था। दीवार के जिस हिस्से में मद का बुत था, उस के पीछे बहुत कम जगह थी, जसे वह बहुत थोडा रास्ता चलकर आया हो। पर अल्का ने जिस राह पर स औरत को आते दिखाया था, वह रास्ता बहुत लम्बा था। उस रास्ते पर गहरे लाल रंग बिछे हुए थे, जसे उस का रास्ता जिज्ञासा और तलाश से सराबार हो। पर मद का रास्ता दलीलों से भरा हुआ था। उस के रास्ते पर अल्का ने मानसिक उलझाव की गहरी छायाएँ डाली हुई थी।

कुमार ने अल्का को बाहों में लेकर उस का माथा चूम लिया और बोला, "तुम्हारी इस औरत को प्रणाम करने का जी चाहता है।" अल्का ने कुमार के कंधे पर सिर रखकर आँखें बंद कर लीं और शायद कान भी बंद कर लिये क्योंकि कुमार के मुँह से यह बात सुनने के बाद उसे और कुछ सुनने की जरूरत नहीं रही थी।

"जानती हो, मैं ने इस जगह का नाम चक्क[1] नम्बर छत्तीस क्या रखा था ?"

'यह नाम आप ने रखा था ?"

'पहाड़ों में गाँवों के नाम नम्बरों पर नहीं होते। शायद और भी कहीं नहीं होते, परन्तु हमारे गाव का नाम था—चक्क नम्बर छत्तीस। साल भर के अरसे में जब मेरे माँ-बाप मर गये तो हमारी सारी जमीन चाचा ने हथिया ली। मैं तब बम्बई आठ स्कूल में पढ़ता था।

"आप ने लौटकर जमीन का कुछ न किया ?"

"एक बार गया था, पर जमीन का झगड़ा निबटाना मेरे बस की बात नहीं थी। वैसे भी हमेशा के लिए गाँव में नहीं रह सकता था। मुझे शहरों में रहना था। कई सालों के बाद मेरे पास कुछ रुपये जमा हो गये, तो मैं ने यहाँ आकर यह जमीन खरीद ली।"

'जैसे चक्क नम्बर छत्तीस की जमीन लौटा ली।'

'तब मुझे ऐसा ही महसूस हुआ था। इसलिए इस का नाम चक्क नम्बर छत्तीस रखा था। पर फिर कभी इस बात का खयाल नहीं आया। आज तुम्हारी झुग्गी में खड़े खड़े मुझे इस तरह महसूस हुआ है जैसे मैं उस गाँव में उसी घर में खड़ा हो गया हूँ—इस के साथ कोई तुलना नहीं उस की—पर मेरी माँ ने कमरे में इसी तरह एक चार पाई पर एक फुलकारी बिछायी हुई थी। कमरे की दीवार पर उस ने लक्ष्मी की तसवीर बनायी हुई थी—आज इस दीवार की ओर देखते हुए मुझे लगा कि जैसे मेरी माँ की बनायी हुई लक्ष्मी वहाँ से चलती-चलती आज यहाँ आ गयी हो '

इस तरह की पिघली-सी बातें करना कुमार की आदत नहीं थी। अल्का इन बातों से भीगी हुई कांपती जा रही थी कि अभी अगर कुमार को इस बात का ध्यान आ गया तो वह जल्दी से अपनी पुरानी आदत को लौटाकर अपने मन पर लोहे की परत चढ़ा लेगा। इसलिए अल्का ने उस का हाथ पकड़ा और बोली चलिए खाना खा लें '

'तुम अब यहाँ रहती हो, या गाँव में जाया करती हो ?

यहीं। वह कमरा मैं ने छोड़ दिया।'

"मुझे दूसरी झुग्गिया नहीं दिखाओगी ?

"खाना खा लीजिए, फिर लौटकर दिखा दूँगी ?"

---

१ पंजाब में छोटे से छोटे गाँव को 'चक्क' कहते हैं।

"तुम ने यहां बिजली नहीं लगवायी ?"

"झुग्गिया का माहौल न बनता तब।"

"मैं ने स्टडियो के लिए बडी मुश्किल से बिजली ली थी। पूरा एक साल लग गया था।"

"वहाँ जरूर चाहिए थी।"

"पर यहा तुम्हें रात को डर नहीं लगता ? चारों ओर उजाड है"

"इन दिनों सिर्फ दो बार डर लगा था। पर वह इस उजाड की वजह से नहीं लगा था। मुझे दो बार ऐसे सपने आये थे कि मैं बहुत डर गयी थी।"

"क्या ?"

"एक मैं ने आप को अभी सुनाया है, जब आप सपने में मुझे आवाजें दे रहे थे—एक दस से सात-आठ दिन पहले आया था।"

"सात आठ दिन पहले ?"

"मैं ने सपने में देखा कि जल्दी जल्दी कहीं जा रही हूँ। न जाने कहां ! गहरी रात थी। मैं रात के अँधेरे में चलती जा रही थी। इतना मालूम था कि सडकें किसी शहर की है। फिर अँधेरे में मैं ने एक खिडकी को खटखटाया। एक दरवाजे को भी ठकोरा। नींद खुलने पर मुझे यह सपना समझ में न आया। जाने मैं कहां जा रही थी। मैं ने किसी दरवाजे को क्या ठकोरा था वह दरवाजा बन्द क्यों था मैं समझ न सकी। पर मुझे काफी देर डर लगता रहा।

अल्का से लिपटा हुआ कुमार का हाथ काँपने लगा और उस के मुँह से निकला, "यू डविल !"

अल्का ने कुमार के चेहरे की ओर देखा, और बोली, "मेरा खयाल था कि अब तक मुझे डैविल कहना भूल चुके होंगे।

कुमार ने शायद अल्का की बात नहीं सुनी। उस ने अल्का का हाथ पकडकर उसे गलीचे पर बठाया। उस के दिल में आया कि वह अल्का को दिल्ली की उस रात की बात सुना दे, जिस रात वह कान्ता के साथ वहां कमरे में बैठा हुआ था कि खिडकी पर अल्का की परछाईं पडी थी और उस के दरवाजे पर अल्का के पैरों की आवाज आयी थी। पर कुमार ने अपने होंठ इस तरह भींच लिये जैसे कहीं उस के मुंह से बात निकल न जाये। उस ने बात बताने की जगह अल्का से एक बात पूछी, "तुम ने उस दिन अपने हाथों में चूडियां भी पहन रखी थी ?"

अल्का समझ न पायी और अपनी दोनों बाँहें फैलाकर बोली, "मैं ने उसी दिन नयी चूडियाँ चढायी थी, शायद एक दिन पहले चढायी थी।"

बात को मन ही मन झेल पाना कठिन था, पर कुमार उसे झेलना चाहता था। उस के अपने होंठों में समा नहीं रहा था। उस ने अपने होंठों को अल्का के होंठों से इस तरह लगाया जैसे वह होंठों का नहीं, उस बात का चुम्बन ले रहा हो।

कुमार ने दिल्ली में रहते माना था कि अब उस के जिस्म का भूख उस कभी नही सतायेगा। उस ने तजरबा कर के भी देखा था। कान्ता उस के बिस्तर पर लेटी रही थी पर कुमार को उस की भूख ने कुछ नहीं कहा था। अल्का की सांस ने कुमार के जिस्म में सोयी हुई आग को मालूम नही किन फूँकों से जगा दिया। कुमार को लगा कि उस का अंग-अंग जल रहा था। कुमार ने झुग्गी का दरवाजा भिडका दिया। दोनों में जलती लकडियों में एक और सूखी लकडी रखी और जिस समय उस ने अल्का के जिस्म से कपडे उतारकर अपनेआप से लगाया, उसे लगा कि यह झुग्गी एक आग का तालाब है और वह इस में नहा रहा है।

कुमार दिल्लीवाली जो बात अल्का से नही कहना चाहता था अल्का के पास से उठकर, कपडे पहनते हुए उसे लगा कि उस ने वह बात अल्का को अपने राम राम की जबान से कह दी थी।

कुमार और अल्का ने जब कुमार के कमर में जाकर खाना खा लिया तो कुमार ने हरिया को एक लालटेन जलाने के लिए कहा, और अलका से बोला, 'चलो दूसरी दोनों झुग्गियाँ भी देख आयें।'

तीनों झुग्गियाँ एक सीध में नही थी। एक का मुँह फूलों की क्यारियों की तरफ था, एक का पहाड की खाई की तरफ, और एक का मक्के के खेत की तरफ। तीनों का पीठ से लगा हुआ एक साझा आंगन था। हरेक के दरवाजे के सामने एक चौडा बरामदा था, जो स्लेटो की छत से ढका हुआ था। जो एक झुग्गी के सामने से घूमकर, दूसरी झुग्गी के सामने होकर, तीसरी झुग्गी के सामने आता था। इसी बरामदे म से गुजरकर कुमार ने दूसरी झुग्गी का दरवाजा खोला और हाथ में पकडी हुई लालटेन की रोशनी म झुग्गी को देखने लगा।

पहली झुग्गी की तरह इस झुग्गी की खिडकी भी ताड के पत्तो से ढकी हुई थी। लकडी की एक चिटकनी स खिडकी बन्द की हुई थी। इसे खोलने के लिए साँकल की जगह कौडियों की एक डोरी बाँधी हुई थी। बैठने के लिए मिट्टी की एक उचान इस झुग्गी में भी उसी तरह थी, जसी पहली झुग्गी में कुमार ने देखी था। पर दीवार में ऊँचे-नीचे कितने ही आले थे, और हरेक आले म एक एक दिया रखा हुआ था।

'अगर ये सारे दिये जला दें!' कुमार ने इतना उमडकर कहा कि आवाज उस की अपनी नहीं लगती थी। शायद इसी लिए अलका ने कोई जवाब न दिया।

कुमार ने लालटेन की रोशनी दूसरी दीवार पर डाली। सारी दीवार पानी की लहरों से ढँकी हुई था। चूने में नीला थोथा मिलाकर अल्का ने पानी की ये लहरें बनायी थी। कुमार ने ध्यान से देखा, पानी की भरी हुई छाती में अलका ने एक लकीर खीची हुई थी।

"लोग कहते ह, पानी में रखा नही खिचती।'

"आप यह कहते ह?'

"नही, मैं नही कह सकता, क्योकि मैं इस लकीर पर पाव रखकर खडा हुआ हूँ।"

अल्का हँस पडी।

"मुझे नही मालूम तुम ने यह लकीर क्यो खीची ह। पर मैं ने इस का अपना ही अर्थ निकाला ह।"

"क्या ?"

"मेरे अपने मन में एक लकीर लगी हुई हैं। लकीर की एक तरफ बडा ठण्डा पानी बह रहा ह, और एक तरफ बडा गरम।

"एक ओर मुहब्बत, एक ओर नफरत।"

"अल्का !'

"जी।'

"मैं यही कहना चाहता था, पर कहा नही। तुम ने खुद ही कह दिया जाने मेरे अन्दर यह क्या ह! मैं तुम्हे प्यार भी करता हूँ और नफरत भी "

'मैं जानता हूँ'

"मैं एक पतली-सी लकीर पर खडा हुआ हूँ। मालूम नही, किस समय और किस तरफ मेरा पाव फिसल जाये '

अल्का ने कुछ न कहा।

कुमार ने लालटेनवाला हाथ नीचे किया, और झुग्गी से बाहर आकर दूसरी झुग्गी की तरफ बढा।

उस में अभी कुछ काम रहता है।' अल्का ने कहा।

कुमार पीछे लौटने लगा तो उस ने अल्का से कहा कि अगर उसे यहा झुग्गी में अकेले डर लगता था तो वह कुमार के कमरे में चली आये।

"मैं यहाँ अपनी झुग्गी में सोऊँगी।' अलका ने पहली झुग्गी का दरवाजा खोला और दिये में तेल डालकर उस की बत्ती को उकसा दिया।

अपने कमरे में जाते हुए कुमार सोच रहा था कि इस दुनिया में और कोई औरत नही थी जो उसे इस तरह बाध सकती थी। यह सिर्फ़ अल्का थी, जिस ने उस की बाँहो को, और उस के खयालो को अपने हाथो में कसकर पकडा हुआ था।

इस पकड पर कुमार को प्यार भी आता था, और गुस्सा भी आता था। और वह सोच रहा था कि अल्का ने कितनी सच्ची तसवीर बनायी थी! उस के मन के पानियो में एक रेखा खिंची हुई थी, और इस रेखा पर वह दोनो पर रखकर खडा हुआ था और कुमार को लगा, कि खडे-खडे अब उस के पैर थक गये थे। उसे इस लकीर पर से जरूर गिर पडना था। पर उसे यह नही पता लग रहा था कि वह हमेशा के लिए मुहब्बत की तरफ गिर पडेगा, या नफरत की तरफ।

कुमार अल्का के लिए बारीक रगदार सूत से बुनी एक लाल घाती दिल्ली स लाया था। अल्का आज जब नहाकर वही घाती बाँध रहा थी, तो उसे लगा जसे एक गीत पहाड की पगडण्डी उतरकर उस की मुम्मो की ओर आ रहा हा। उस ने कान लगाया। गीत पास आ रहा था

दु ग्वा वाला डल्ड्र तू मेरे कन्ने देइ दे
ता हाई जा अगाडी मेरे माह्णुयाँ।
ओ पवलिया माह्णुया।[1]

अल्का समझ गयी कि नायी आ रही थी। नायी को इस गीत का और छोर पता नहीं था बस एक हा पक्ति आती थी और नायी जानती थी कि अलका जब बडी री में हाती थी तो वह उस स मिन्नत कर क इस गीत का सुना करती था। गात काहे का एक ही पक्ति का फिर फिर गाती थी। इसलिए नायी जब अल्का से मिलन के लिए या उस से पन्ने के लिए आया करती थी, तो चौडी सडक से पगडण्डी उतरत ही इस गीत को गाना शुरू कर देती था।

यह गीत अलका ने जब से सुना था वह इस गीत से बँध गयी थी। जाने इस घाटी में किस दिलवाली ने इस गीत को रचा होगा। अल्का हमेशा सोचा करती थी कि वसे तो सारे गात ही अपने सिरा पर अपने दुखो की डलिया उठाकर चलते ह पर यह गीत कसा था। यह दूसरे के दुखा की डलिया को सहारा दता था। और यह गीत सुनते ही हमेशा अल्का को यह महसूस होता था कि पहले भी कही इस घाटी मे कोई कुमार जसा मद हुआ हागा जा कही बँध नही पाता हागा और पहले भी इस घाटी में कभा अल्का जसी औरत जरूर हुई हागी जिस ने उस मद स कहा होगा कि तुम्हार सिर पर उठायी हुई दुखो की टलिया अब मैं उठा लेती हूँ तुम हल्के होकर आगे बढ जाओ।'

नायी ने कभा इस गीत को नही समझा था पर अलका की आखें इस गीत का सुनकर भारी हो जाती थी। नायी की आवाज में जब लोच बढ जाता था और वह लहराकर कहती थी वे पवलिया महणुआँ वे मेरिया माह्णुआ। तो अलका की आखें चौंककर उस रिश्ते का ढूढने लगती जिस रिश्ते स कोई एक गीत की एक ही पक्ति

---

१ दुखों की टलिया तू मुझे दे दे।
और तू आगे चल राही।
ओ मेरे अजनबी राही।'

में किसी को 'मेरा' भी कह सकता है, और 'पखला' भी। नाथी ने बताया था कि 'पखला' उसे कहते हैं जो हमारा वाकिफ न हो।

नाथी ने झुग्गी में आकर शहद का भरा हुआ कसोरा पड के कटाव पर रख दिया। अल्का नाथी से कुमार के लिए शहद मोल लिया करती थी।

नाथी ने नज़र भरकर अल्का की ओर देखा, और हँसकर अपनी छाती पर हाथ रखकर बोली, 'हाय नी अम्मा! एह मदरेला चोलू ए ?'

अल्का हँस पडी।

' नहाई धाई के तिज्जा इतना रूप चढना ऐ! मेरे मन बुरी ममता लगदी '' नाथी ने कहा और उचान पर बैठ गयी।

तुम ने यह गीत बीच ही में क्या छोड दिया ? अल्का ने हाथ में पकडी हुई कंघी आले में रख दी, और नाथी के पास गलीचे पर बैठ गयी।

'घडोलू मुश्किल करा सत्त वल पई जादे तेरे लक्के विच, दुखा दा ढलडू कुरयू गल-गल लई फिरना! नाथी हँसने लगी।

अल्का जब कभी यह गीत सुनने के लिए बेचैन होती, नाथी उसे इसी तरह खपाती थी। 'अच्छा, अब जब तुम्हारे रसिया का खत आयेगा, मैं तुम्हें पढकर नही सुनाऊँगी!' अल्का ने नाथी की एक चोटी खोल दी और हँस पडी।

''भला, थावी मैं नरेलू दिगी! तूँ चिट्ठी पढी न्या।'

''नरलू तुम फिर देना। चल आ तुम्हें चाय पिलाऊँ!'' अल्का ने कहा, और बरामदे के चूल्हे में आग जलाकर चाय बनाने लगी।

चाय पीकर अल्का नाथी को छोडने चली, तो उस ने देखा कि कुमार हाथ में कोई कागज पकडे हुए उस की ओर आ रहा था। अलका ठहर गयी। कुमार ने पास आकर एक तार अल्का को पकडा दिया। अल्का ने लिफाफा खोला, तार पढा और कागज को मोडकर फिर लिफाफे में रख दिया।

' पिताजी का तार है न ?

'हाँ। C

' कोई खास बात है ?

''कोई खास बात नही मुझे बुलाया है।'

''कब जाओगी ?''

'मुझे जाना नही खत लिख दूँगी।''

''नहीं, अल्का, जब वह बुलाते हैं तो जाना ही चाहिए।'

''जिस काम के लिए वह बुलाते हैं, उस के लिए जाने की जरूरत नही।

कुमार चुप रहा। वह जानता था कि जिस काम के लिए अल्का को जाने की जरूरत नही थी, वह कौन सा काम हो सकता है।

नाथी चली गयी थी। कुमार अल्का को लेकर वापस उस की झुग्गी में आ

उस के जादू का झाडक्टर चला न गया होता तो जाने क्या हो जाता।'

चलते चलते कुमार ने मक्ई के एक भुट्टे को उस के सुनहरी गुच्छ से पकडकर सहलाया, और अपने होंठों में कहा, 'वह वक्त मुश्किल था। मैं मुश्किल घडियाँ गुजर आया हूँ। अब कोई डर नहीं।'

सामने अनार का पेड था। कुमार ने अनार की एक कली तोडी, और उस के लाल रंग का दोना आँखों से घूरते हुए बोला, 'सुबह वह बिलकुल तुम्हारे जैसा लगती थी। देखा तो मैं ने किस तरह तुम्हें इन पत्तों से अलग किया है। इसी तरह मैं ने उसे अपने दिल से तोड दिया है।'

स्लेटा की मुन्नियों के पास पहुँचकर कुमार को खयाल आया कि वह कितनी देर से एक एक पौधे से और एक एक पत्ते से अल्का की बातें कर रहा था। और उस ने अपने पर हँसकर अपने आप को कहा, 'इधर काहे को आ निकला हूँ! मुझे अपने कमरे में जाना चाहिए।'

कुमार ने झुग्गी की चौखट से अपने पाँव लौटा लिये। डूबते सूरज की लाली बडे ध्यान से कुमार के चेहरे की ओर देखने लगी।

कुमार जब अपने कमरे में आया तो हरिया ने उसे बताया कि अल्का बीवी सवेर चली गयी। चेतू चाचा भी उस के साथ गया है और हरिया ने बताया कि स्टेशन पर जाकर चेतू चाचा को जाने क्या हुआ कि वह गाडी में बैठ गया। नानी भी स्टेशन पर गयी थी, वह लौट आयी है।

जो कुछ हरिया ने बताया था कुमार ने सुन लिया, पर अपनी ओर से कुछ न पूछा। हरिया खाना ले आया। कुमार ने खाना खा लिया और बिस्तर पर लेटकर उस ने एक किताब पढनी शुरू कर दी। 'यू गेव मी बैक समथिंग दैट बिलाङ्ड टु मी, समथिंग दैट यू डिड नाट टेक अवे माइ कान्फिडेंस इन माइसेल्फ।'

कुमार ने जब ये पंक्तियाँ पढीं तो उसे लगा कि वह एक साधारण किताब नहीं पढ रहा था, वह एक वेद में से वाक्य पढ रहा था। आज अल्का ने सचमुच उस की खोयी हुई चीज़ उस लौटा दी थी। यह चीज़ वह अपने साथ नहीं ले जा सकी थी और कुमार खुश था कि अपने आप में उस का विश्वास लौट आया था।

कुमार ने इस किताब को किसी खास इरादे से पढना शुरू नहीं किया था। उसे खयाल आया था कि पुस्तक का पन्ने पन्ने वह सो जायगा। इसलिए उस ने किताबों की अलमारी के पास जाकर जो भी हाथ में आयी, वही किताब निकाल ली थी। उस ने किताब का नाम भी नहीं पढा था।

ये पंक्तियाँ पढने के बाद कुमार को लगा कि वह किताब अपने होंठों से उस के मन की बातें कर रही थी। इसलिए उस ने उसे उमंग से पढना लगा। अगली पंक्तियाँ थीं 'दि एबिलिटी टु लव डीपली एण्ड स्टेड फास्टली इज रेयरर दैन ग्रेट टेलेण्ट।

टलेण्ट गुड वी दि सर्वेण्ट आफ लव। फार विदाउट लव, टेलेण्ट इज लाइक सेक्स विद ओनली वन बाडी।"

'क्या बकवास है।' कुमार के मुँह से गुस्से में निकला और किताब को उस ने मेज़ पर पटक दिया। उस ने मेज़ पर जलती बत्ती बुझा दी और सोने के लिए दोनों आँखें बन्द कर लीं।

'अलका ने जाते हुए शायद मेरे लिए कोई खत लिखा हो।' कुमार को खयाल आया, पर उस ने सोचा कि अलका ने अगर कोई खत उस के लिए लिखा होता तो हरिया ने उसे खुद ही दे देना था। तब भी कुमार ने मेज़ की बत्ती जलायी और मेज़ को ध्यान से देखा। मेज़ पर कोई कागज नहीं था। कुमार ने बत्ती बुझा दी, और सोचने लगा— अलका ने अच्छा ही किया जो जाते वक्त कोई सन्देश नहीं देकर गयी नहीं तो जिस तरह वह अपना बातों से दूसरों को बींध देती है, उस ने खत लिखकर भी मुझे रुला देना था।

कुमार ने एक हलकी सांस ली और स्वतन्त्रता के इस क्षण को पूरी तरह महसूस करने के लिए चारपाई से उठकर बाहर अमरूदों के पेड़ों के तले आ बैठा। रात तारों की रोशनी में भीगी हुई थी। कुमार ने दोनों बाहें खोलकर धरती की ओर और आसमान को इस तरह देखा जैसे उस की बाहें एक लम्बी के बदन से अलग होकर इतनी स्वतन्त्र हो गयी हों और इतनी विशाल भी कि अब वे सारी धरती को और सारे आसमान को अपने में समेट सकती हों।

एक हलकी सांस लेते हुए कुमार के सीने में हलकी सी पीड़ा हुई पर कुमार के जिस्म ने आज किसी भी पीड़ा को स्वीकार न करने की ठानी हुई थी।

चल तारों की छांव में आंखमिचौली खेलें।

कुमार को लगा कि किसी ने उसे पीठ के पीछे से कहा था। कुमार ने चौंककर पीछे की ओर देखा। वहां कोई नहीं था। बायीं ओर जंगली फूलों की एक सघन झाड़ी थी। उसे लगा कि उस झाड़ी की ओट में खड़ा कोई हँस रहा था। कुमार ने झाड़ी की ओर जाने की जगह माथा सिकोड़कर उस झाड़ी की तरफ देखा।

कुमार को लगा कि जिस तरह दिल्ली में एक रात उसे अलका की परछाईं दिखाई दी थी और उस के कानों में अलका के पैरों की आवाज़ आयी थी, आज भी उस के साथ वैसा ही कुछ होने वाला था। उस ने गुस्से में कहा 'अलका!' इस तरह— जैसे अलका एक छोटी-सी बालिका हो, उसे बार-बार चिढ़ाती हो, और वह अलका को रोक रहा हो।

"पर यह अलका नहीं, मैं हूँ। अब तुम और मैं रोज़ तारों की छाँव में आँख मिचौली खेला करेंगे!' झाड़ी के पीछे से आवाज़ आयी और कुमार ने आवाज़ पहचान ली। यह उस लड़की की आवाज़ थी, जिस के साथ उस ने एक बार सामने खड़े होकर बातें की थीं।

'सो तुम आ गयी हो !' कुमार ने धीरे से कहा, और सिर नीचे झुका लिया।

सिर नीचा किये कुमार बाग में घूमता रहा। चलते चलते उस ने देखा कि वह झुग्गी के दरवाजे पर खड़ा था। कुमार ने एक गहरी साँस ली और झुग्गी का दरवाज़ा खोलकर अन्दर चला गया।

अन्दर गहरा अंधेरा था। कुमार ने हाथों से लकड़ी के कटाव को सहलाया। उसे मालूम था कि इस के ऊपर एक दीया और एक माचिस रखा रहती थी।

कुमार ने दीया जलाया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उस ने दीया क्यों जलाया था। दीये की रोशनी में उस ने झुग्गी की दीवारों की तरफ देखा। झुग्गी का चेहरा बड़ा उदास था।

कुमार ने एक गहरी साँस ली और बोला, 'तुम मुझ से बेहतर हो। तुम उदास हो, पर तुम अपनी उदासी को छिपाती नहीं हो, पर मैं अपनी उदासी को स्वीकार नहीं करता।' कुमार ने कहा और गलीचे पर इस तरह बैठ गया जैसे उस ने झुग्गी के साथ और भी बहुत सी बातें करनी हों।

दीवार की तरफ देखते-देखते कुमार की नज़र एक आले में पड़ी। आले में एक काग़ज़ पड़ा हुआ था। कुमार का दिल एकाएक धड़कने लगा। कुमार ने उस काग़ज़ को उठाया। पर जब उसे खोलकर दीये की रोशनी में पढ़ने लगा तो उस की आँखें पथरा गयीं, और कुछ देर तक उस से कोई अक्षर पढ़ने न बना।

कुछ देर बाद कुमार ने पढ़ा, अलका ने लिखा था :

'इट इज़ सो सिम्पल दैट इट मे बी इम्पॉसिबल टु एक्सप्रेस। इट इज़ सो फ़ण्डामेण्टल दैट इट इज़ हार्ड टु कम्यूनिकेट। इट इज़ सो लॉन्ग दैट इट इज़ डिफ़िकल्ट टु डिलिवर। इट इज़ सो सैक्रेड दैट इट मे बी टू फ़ैन्टास्टिक टु टॉक एबाउट। बट इट हैज़ लेफ़्ट ब्रोकन हार्ट इट मे इवैपोरेट!'

काँपते हाथों से काग़ज़ को लकड़ी के कटाव पर रखकर कुमार के मन में जो कुछ हुआ, उस का एक ही सीने में झेल पाना कठिन था। कुमार ने गलीचे पर लेटकर आँखें बन्द कर लीं।

जाने कब कुमार को नींद आ गयी। वह रात भर उस गलीचे पर लेटा रहा। रात समय ही उस ने अपने नीचे बिछे हुए गलीचे का एक कोना उठाकर अपने पर ओढ़ लिया। जब उस की आँख खुली खिड़की में से सुबह की हल्की रोशनी अन्दर आ रही थी। खिड़की की ओर देखते हुए उस की नज़र कौड़ियों की लड़ी पर गयी जिसे अलका ने ताड़ के पत्तों से बाँधा हुआ था, और कुमार को लगा कि अलका विवाह करवाने के लिए अमृतसर चली गयी थी, पर अपना कलीरा[1] यहीं छोड़ गयी थी।

---

[1] शादी के अवसर पर कलाई की चूड़ियों के साथ बँधनेवाली कौड़ियों की लड़ी।

अल्का जिस लाल धोती को कल छत्तीस चक्र में पहने हुई थी, अमृतसर पहुँचकर जब वह अपनी कोठी में आयी तो वही लाल धानी उस ने बांधी हुई थी। रास्ते में उस ने कपड़े नहीं बदले थे, बाल भी नहीं सँवारे थे, पर बौराये बालों ने और सूत की इस लाल धोती ने अल्का को जाने कैसा रूप चढ़ा रखा था कि अल्का का माथा चूमते हुए अल्का के पिताजी को खयाल आया कि अल्का को किसी की नज़र न लग जाये। पिताजी ने अल्का के लिए जिस आदमी को चुना था, वह आजकल उन्हीं के यहाँ ठहरा हुआ था। इस वक्त भी वह बाहर टाँगे की आवाज सुनकर पिताजी के साथ ही बाहर चला आया था। वह अल्का की तरफ देखता रह गया। पिताजी ने अल्का से उस का परिचय कराया "कैप्टन जगदीशचन्द्र, मर्चेण्ट नेवी में हैं।" और अल्का को अपनी बाँहों में लेकर चाय पीने के लिए कमरे में ले गये। अल्का ने चेनू को अपना कमरा दिखा दिया। वह अल्का की चीज़ें कमरे में रखने चला गया।

पिताजी ने अल्का से जगदीशचन्द्र का बड़े साधारण तरीके से परिचित कराया था। और कुछ न कहा था सिर्फ वे चाय पीते समय जगदीशचन्द्र की सफरी ज़िन्दगी के बारे में वे दिलचस्प बातें सुनाते रहे, जो शायद उन्होंने पिछले चार-पाँच रोज़ में जगदीशचन्द्र से सुनी थी। और उन्हीं बातों से अल्का ने अपने पिताजी की इच्छा का अन्दाज़ा लगा लिया था।

जगदीशचन्द्र बड़े शौक के साथ अल्का से उस की पेण्टिंग और पहाड़ी ज़िन्दगी के बारे में पूछता रहा। अल्का सलाके से जवाब देती गयी। समुद्र के सफर के बारे में उस से पूछती रही। पर वह सारा समय उस आनेवाले वक्त के बारे में सोचती रही जब उस का इस से ज़्यादा बड़ी बातों से वास्ता पड़ना था।

सन्ध्या समय पिताजी किसी काम से बाहर चले गये। अल्का ने समझ लिया कि वह जान-बूझकर उसे जगदीशचन्द्र के पास अकेली छोड़ गये थे। वह अपने कमरे की खिड़की में इस तरह खड़ी हो गयी जैसे ज़िन्दगी की इस नयी माँग को, और उस के बराबर तुलनेवाली अपनी हिम्मत को जाँचकर देख रही हो। उसे ठहरे हुए कुछ ही समय हुआ था कि कमरे के दरवाज़े में से जगदीशचन्द्र ने आवाज़ देकर उस से पूछा कि क्या वह कमरे में आ सकता था।

"आइए।" अल्का ने खिड़की से हटकर एक कुरसी की ओर हाथ से सकेत किया।

"अभी तक सफर की थकान होगी" जगदीशचन्द्र ने कमरे में आकर कुरसी पर बैठते हुए बड़ी आत्मीयता से देखा।

"आप तो खूब लम्बा सफर करनेवाला में हैं, सफर की थकान की बात इतना क्यो गाचते ह !' अलका हँस पडी और सामने कुरसी पर बठ गयी।

'हम लोगा की वह आदत बन जाती ह। वास्तव म मैं वहा आना चाहता था।

'कहाँ ?'

"वही तुम्हारे चक्र नम्बर छत्तीस में।

"आ जाते।

"पर पिताजी तुम्हें यहा बुलाना चाहते थे वह सब सुन्दर जगह होगी ?'

'हा।

"इतने दिनो बाद शहर म आकर अजीब सा लगता होगा।

"बहुत अजीब !"

"मेरा खयाल ह कि तुम्ह समन्दर किनारे की जिन्दगी भी अच्छी लगेगी।

अलका ने एक नजर में जगदीशचन्द्र क चेहरे की ओर देखा और हँस पडी। अलका के हँसने से जगदीशचन्द्र को खयाल आया कि अलका से पूछे बिना उस ने उस का जिन्दगी का खुद ही समन्दर के किनारे से जोड दिया था। यह उस ने बडी जल्दी की था।

"वास्तव में ' जगदीशचन्द्र ने कुरसी से उठकर अलका की पीठ की तरफ खडे होकर उस की कुरसी पर हाथ रखा और वह जसे जो कुछ महसूस कर रहा था उसे वसे ही कह दिया, 'मैं ने यह बिल्कुल नही सोचा था कि मेरा इतनी खूबसूरत लडकी से वास्ता पडगा।

"आप ने क्या सोचा था ?'

"मैं ने कुछ भी नही सोचा था। माँ काफी अरसे से शादी के लिए जोर दे रही ह। इस बार छुट्टियों म उस ने मुझे मना लिया था कि मैं शादी कर लूँगा। उस ने कई जगह देख रखी थी।

' फिर कई स्थानो में से आप ने इस जगह को क्यो चुना ?

' आप के पिताजी को शायद किसी ने मेरी ओर स बताया था। उन्होने मुझ से मिलना चाहा और मैं चला आया। वसे मैं यहा भी माँ के जोर देने पर आया था। वह कहती थी कि अगर यहा बात हो जाये तो किसी और जगह की बात सोचने की जरूरत नही।"

"वह मुझे जानती ह ?

'तुम्हें नही पिताजी को जानती ह।

'पर यह मा का फसला है, आप का नही !

जगदीशचन्द्र ने कुरसी पर रखा हुआ हाथ अलका के कन्धे पर रख दिया। उस के हाथ म उस क मन की बात धडक रही थी, पर वह सोच रहा था कि वह इस

बात को कसे कहे ।

"सो आप मुझ से विवाह करने के लिए तयार ह ।" अल्का ने खुद ही कहा ।

"अगर सिफ मेरी मरजी से हो सकता हो तो आज ही हो जाये अभी "

"पर अब सन्ध्या समय कसे होगा !" अलका हँसने लगी । जगदीशचन्द्र को उस की हँसी बडी अच्छी लगी । उस के मजाकिया स्वभाव के बराबर उतरने के लिए वह भी हँस दिया, और बोला, "विवाह करवानेवाली अदालतें रात को भी खुली रहनी चाहिए !" और फिर जगदीशचन्द्र ने अल्का के कन्धे पर रखे हुए हाथ को जरा दबाकर कहा, "पर यह मेरी मरजी की बात ह । मुझे अब तक तुम ने अपनी मरजी नही बतायी ।"

"मेरी मरजी का तो आप ने पहले ही फैसला कर दिया था कि मुझे समन्दर के किनारे की जिन्दगी अच्छी लगेगी !" अलका हँस दी ।

जगदीशचन्द्र ने झुककर अल्का के होठों को छूना चाहा, पर अल्का ने मुँह हटा लिया और बोली, 'अभी नही !"

जगदीशचन्द्र ने अल्का के कन्धे पर रखा हुआ हाथ इस तरह उठा लिया जसे वह अपने सब्र का सबूत दे रहा हो ।

अब जब पिताजी आयेंगे, उन्हें तुम खुद बताओगी, या मैं बता दूँ ?' जगदीशचन्द्र ने अल्का से पूछा ।

"जसी आप की मरजी ।'

' मेरी छुट्टी बहुत कम रह गयी ह । तुम जो कुछ खरीदना चाहो, मुझे जल्दी बता देना ।

' मुझे कोई चीज नही खरीदनी । पर अदालतवाले एक महीने का अरसा मागते ह ।

"मेरी मा अदालती शादी से खुश न होगी । अगर हम दूसरी तरह से शादी करते तो कोई हरज ह ?

' कई देशों में आप एकवर्षीय विवाह भी कर सकते ह, और द्विवर्षीय भी और जरूरत पडे तो एकमासिक भी पर हमारे देश में इस तरह का विवाह नही होता । इसलिए रसमी विवाह से अदालती विवाह अच्छा ह ।

"अल्का !

'जी ।'

"तुम मुझ से उमर भर के लिए विवाह नही करना चाहती हो ?'

' वह नही सकती । गुजर जाये तो सारी उमर बीत जाये, न गुजरे तो एक महीना भी न गुजरे एक दिन भी न बीते ।'

जगदीशचन्द्र पहले हरान हुआ । फिर उस ने हसकर अल्का की ओर देखा और बोला, देखने से यह बिल्कुल पता नही चलता कि तुम इतनी एडवेंचरस' होगी ।'

"मैं बिलकुल एडवेंचरस नहीं हूँ।'

"मैं ने सोचा था कि अगर कभी किसी से इस तरह की बात करनी होगी, तो मुझे ही हम नेवीवालों का जिन्दगी बडा अजीब होता है। नित नये लोगों से वास्ता पडता है। इसलिए सारी उमर का बंधन कई बार हमें अच्छा नहीं लगता पर लगता है कि तुम मुझ से भी कहीं एडवेंचरस हो।

"मैं बिल्कुल 'एडवेंचरस नहीं हूँ। बात बस इतनी है कि ज़िन्दगी बडी अजीब होती है। सिर्फ नेवीवालों की ही नहीं, सभी की अजीब होती है।'

'तुम्हारा ख़याल है कि शायद तुम कभी किसी और को प्यार करने लगोगी ?"

"शायद नहीं, अब भी करती हूँ।

जगदीशचन्द्र अलका के चेहरे की ओर देखने लगा। वह अब तक खड़ा हुआ था।

वह हैरान हुआ कुरसी पर बैठ गया। फिर कुछ देर बाद उस ने अलका से पूछा, "फिर तुम उस से विवाह क्यों नहीं कर लेती हो, अलका ?'

'वह मुझ से विवाह नहीं करना चाहते।'

जगदीशचन्द्र कुछ देर चुप रहा। फिर हँस पडा, "पर अब जब कि तुम कुँआरी हो, वह तुम से विवाह नहीं करना चाहता और फिर अब तुम्हारा विवाह हो जायेगा तो क्या वह चाहेगा कि तुम तलाक लेकर उस से विवाह कर लो ?'

शायद ?

जगदीशचन्द्र के मन में कमक सी उठी और उस ने आगे बढ़कर अलका का हाथ पकड़ लिया और बोला 'मैं तुम्हें इतनी दूर ले जाऊंगा कि तुम्हें कभी उस की खैर-खबर भी न मिले।

मैं जहाँ भी रहूँ मुझ उस का पता रहेगा।

जगदीशचन्द्र ने अलका का हाथ छोड़ दिया और बोला "मेरा खयाल है तुम्हें विवाह नहीं करना चाहिए।

मेरा भी यही ख़याल है कि मुझे विवाह नहीं करना चाहिए।'

पर मैं हैरान हूँ कि तुम विवाह करना मान कैसे गयी।'

मैं ने उसे वचन दिया है कि मैं विवाह कर लूंगी।"

इस का मतलब है उस ने ज़बरदस्ती तुम से वचन लिया है।

'हाँ।'

"उस का ख़याल है कि एक बार तुम्हारा विवाह हो जायेगा और वह हमेशा के लिए तुम से जुदा हो जायेगा।

'हाँ।'

'मेरा ख़याल है कि उस ने ठीक सोचा है।

जगदीशचन्द्र ने प्यार से अलका का हाथ पकड़ लिया और बोला, "उस से चाहे

तुम्हारा कितना भी ताल्लुक रहा हो मुझे उस की परवा नहीं। ज्यादा से ज्यादा यह होगा कि उस का तुम से जिस्मानी ताल्लुक़ होगा। यह कोई खास बात नहीं। इस तरह मेरी ज़िन्दगी में भी कई लड़कियाँ आयी हैं। सब की ज़िन्दगी में आती हैं। विवाह से पहले की बातों को नहीं कुरेदना चाहिए। मुझे सिर्फ यह बता दो कि मुझ से विवाह हो जाने पर मुझ से चोरी उसे मिलोगी ?

"बिलकुल नहीं।'

"उसे खत लिखोगी ?

"बिल्कुल नहीं।'

जगदीशचन्द्र ने कुरसी से उठकर अलका की पीठ पर अपना हाथ रखा और बड़े प्यार से बोला, "दैन इट इज़ नथिंग !"

'पर एक बात है।"

'क्या ?'

"अगर कभी मुझे यह मालूम हो गया कि उस ने अपना खयाल बदल दिया है, और उसे मेरी ज़रूरत है तो मैं आप से तलाक लेकर उस के पास चली जाऊँगी।

"चलो, यह बात मंजूर है।" जगदीशचन्द्र हँसा। उस ने अलका के घने बालों में से एक छोटी लट को अपनी उँगली पर लपेटा और बोला, 'मैं खुश हूँ कि तुम ने इतनी दिलेरी से बातें की हैं। तुम जैसी लड़की कभी झूठ नहीं बोल सकती।"

"मैं कभी झूठ नहीं बोल सकती।'

जगदीशचन्द्र ने झुककर अलका के होंठों को छूना चाहा पर अलका ने इनकार में सिर हिला दिया, 'अभी नहीं, विवाह के बाद।'

'सुबह अदालत में लिखकर दे दूँ।"

"दे दीजिए।

'पूरा एक महीना इन्तज़ार करना होगा।'

"आप की छुट्टी का क्या होगा ?"

"मैं और छुट्टी ले लूँगा।'

जगदीशचन्द्र जब अलका के कमरे से जाने लगा तो अलका ने जल्दी से दरवाज़े की देहरी पर जाकर उस से पूछा "एक आखिरी खत लिखने की इजाज़त है ? सिर्फ यह लिखना है कि आज से एक महीने के बाद मेरा विवाह हो जायेगा।"

"हाँ। जगदीशचन्द्र ने हँसते हुए कहा, और अलका के कमरे से वह चला गया।

अलका रात को जब कुमार के नाम खत लिखने लगी तो उसे यह समझ नहीं आ रहा था कि वह यह खत किस लिए लिखने लगी है। हाथ में क़लम पकड़कर जब उस ने कागज़ की तरफ देखा तो उसे लगा जैसे वह खाइयों के पत्थरों को खत लिखने लगी हो।

चेतू चाचा शहरे जो ग्या तो शहरे दाई हाई रया !" हरिया ने उठने-बठते कई बार कहा। कुमार ने कई बार हरिया को झिड़की देकर कहना चाहा कि उस ने चेतू चाचा की रट क्यों लगा रखी है, आखिर वह मुद्दत में शहर गया है, चार दिन वहाँ की रौनक देखेगा और खुद लौट आयेगा। पर कुमार को लगा कि रोज जब गाड़ी का समय होता था तो वह खुद घूमते घूमते शहर की बड़ी सड़क पर चला जाता था। वह पिछले कई दिनों से बजनाथ की ओर नहीं गया था। हमेशा पपरोला की उतराई उतर जाता था, जैसे वह आधी बाट चलकर स्टेशन से जाते हुए चेतू चाचा को लेने जा रहा हो। इस लिए उस ने हरिया को कुछ न कहा।

"मैं चेतू चाचा की बाट इस तरह क्या देख रहा हूँ, जैसे कोई कासिद का इन्तजार कर रहा हो ?" कुमार ने हरिया को कुछ कहने की जगह अपनेआप को कोसा। वह स्वयं रुआँसा-सा हो गया। फिर उस ने खुद ही अपनेआप को ढाढ़स बँधाया, 'मैं चतू की बाट इसलिए देख रहा हूँ कि वह आकर मुझे अल्का की पूरी खबर बताये कि उस ने यहाँ जाकर कोई ज़िद नहीं ठानी और अपने पिताजी का कहना मानकर अपने विवाह की बात पक्की कर ली।'

एक दिन नाथी हरिया को खोजती-खोजती कुमार के बरामदे से बाहर निकली। कुमार घास पर बैठा था। नाथी को उस ने पहले भी कई बार हरिया के पास आकर शहर की खबर पूछते देखा था। पर वह हमेशा हरिया से पूछकर लौट जाया करती थी। आज वह कुमार के पास आकर खड़ी हो गयी—'बाबूजी।

'हाँ, नाथी।"

मेरी जान तां सूली टँगोई गयी।

'क्या हुआ नाथी ?

"चेतू चाचा घरे जो भुल्ली गया।

'उस ने जाना कहाँ है, नाथी! आज-कल में ही आ जायेगा। तुम्हारी माँ को उस पर भरोसा नहीं, जो इतनी उतावली हो गयी है ?"

"खड्डा द पार तित्तरूँ बोल्दे तां अम्मा डरी डरी जांदी।'

कुमार हँसने लगा। कुमार जानता था कि नाथी का खाविन्द कई सालों से उसे छोड़कर परदेश गया हुआ है। नाथी जवान-जहान थी पर वह हस खेलकर दिन बिता रही थी। और अब जब चेतू चाचा दो चार दिनों के लिए परदेश गया था तो उस की बूढ़ी औरत इस तरह विराग गया था कि वह पल पल बाद नाथी को उस की खबर पूछने के लिए भेजती थी। कुमार ने हँसकर नाथी से कहा, अगर अम्मा की तरह तुम

भा अपना दिल छाऽ बठी ता क्या होगा !"

'मैं ता बाबूजी अपना दिल सड्डा दिया पत्थरा साही करी लिया !"

'फिर तुम अम्मा का समझाती क्या नही हो ?'

"उसा दिया हड्डिया दा चूरा होई जादा ! मिा क्या पता उम जो वी कने भेजि दिन्दी !'

'उसे किस बात का डर लगता ह ?"

' रब दीयाँ रब जाने उट्ठी वई मिजो गालिया दिन्दी ए !'

' पर इस में तुम्हारा क्या कुसूर ह ?"

"मैं चाचे जा टेशने उप्पर छड्डि आयी। अम्मा उट्ठा-वई गलाँनी ए औ दगेबाज़ शहरे जो ग्या नहरे दा ई होई रया !'

नाथी लौटने का हुई ता कुमार ने एक गहरी सास ली, 'एक ओर चेतू की औरत ह, जो यह सोचती ह कि चेतू शहर जाकर शहर का ही क्या हो रहा ह। दूसरी तरफ मैं हूँ जो यह सोच रहा हू कि अलका शहर गया हैं, ईश्वर करे वह शहर की हो रहे !'

"जली आये नहरा दा रहणा !" नाथी ने जाते-जाते कहा।

'तुम्हें शहरा पर बहुत गुस्सा आ रहा ह। कुमार फिर हँसने लगा।

'तिनो पता ना, बाबूजी, ए हासा कुत्थू ते आउन्दा ए ?' नाथी जाती जाती ठिठक गयी, और कुमार की ओर देखने लगी।

"आज तुम्हें क्या हुआ ह नाथी ! तुम्हें मेरी हँसी पर भी गुस्सा आ रहा ह।'

"अलका बीबी जो कन्हो करी शहर भेजि दित्ता ! मेरा मन बुरा हुन्दा ए बाबूजी ! मरियाँ अक्खी उस जो तापदिया फिरदीया !

कुमार ने चौंककर नाथी के चेहरे की ओर देखा। उस ने सोचा कि अलका ने नाथी को कुछ न बताया होगा, पर यह अल्हड़-सी नाथी खुद ही उस की हमराज़ बन गयी थी। उस के मन ने खुद ही जान लिया था कि अलका कुमार के कहने पर शहर चली गया ह।

'एह धड़ालू ताँ मेरे सिर दा बरीए, बाबूजी ! पानिएँ जो जान्दी आ ताँ मैं सार रस्ते बीबी ए जो तापदीया !' नाथी ने कहा, और उदास मुँह लिये चली गयी।

कुमार की आँखें झुक गयी। नाथी की बात उस के मन को कचोटने लगा। उसे लगा कि वह भी नाथी की तरह अपने सिर पर अपना भार उठाकर चल रहा ह। यह भार किसी दिन उस के सिर का बरी हो जायेगा। वह इस उठाये-उठाये फिरेगा। और अलका को जगह-जगह ढूँढता फिरेगा।

"बाबूजी बाबूजी ! हरिया पगडण्डा के दूसर सिरे से दौड़ता आ रहा था—"चेतू चाचा आयी गया ! इत्थे नी बडा भारा टरक लयी आउन्दा-!" हरिया ने कुमार के पास आकर बताया। वह हाँफ रहा था।

कुमार को मालूम था कि चेतू गालों होय गया था। टरक की बात सुनकर उस लगा, जैसे अल्का भी चेतू के साथ आयी हो।

कुमार का दिल सिहर उठा और वह सिहरन उस के बदन में से होती हुई उस के पाँव में उतर गयी। पगडण्डी पर चढ़कर अल्का को देखने के लिए उस ने पर आगे बढ़े। पर फिर वह अपने पाँव को जकड़कर ठिठक गया—जैसे उस ने खुद ही एक जंजीर अपने पाँवों से बाँध ली हो।

'मुझे यही डर था!' कुमार को लगा, जैसे उसे अल्का पर गुस्सा आ रहा था। पर गुस्से से देखने की बजाय वह उत्सुकता से पगडण्डी की ओर देखने लगा। देखता भी जा रहा था और सोचता भी जा रहा था 'उस ने जरूर मन की होगी अगर मैं अब उसे आते हो यह कह दूँ कि वह उलटे पाँव लौट जाये तो फिर यह मुझे चैन से जीने क्या नहीं देती?

'परी पाऊँदा बाबूजी!" चेतू चाचा ने दस गज दूर से ही कहा और सिर कन्धा पर रखी हुई चीज वहीं उतारकर कुमार के पास आ गया।

कुमार ने एक बार चेतू की तरफ देखा, एक बार खाली पगडण्डी की ओर और धीरे से बोला, राजी तो हो चेतू?'

'बड़ा राजी बाबूजी!' चेतू ने लपककर कुमार के पाँवों को छुआ।

'बड़े दिन लगा दिये! शहर में बड़ा दिल लग गया था?' कुमार को लगा कि चेतू से बातें करते-करते वह अब भी खाली पगडण्डी की ओर देख रहा है।

'शहर दीया गल्लां बाबूजी! बड़ा सुख पाया ओयू! खान जो बहुत कुछ, देखने जो बहुत कुछ ओयू बड़े बड़े मकान" चेतू चाचा बोलता जा रहा था।

'अच्छा अच्छा अब जल्दी से घर जाओ। तुम्हारी औरत को तुम्हारा फिकर हो रहा है।' कुमार ने चेतू की बीच में ही टोककर कहा। उस ने चेतू की बात को इसलिए नहीं टोका था कि वह जल्दी से घर चला जाये वह सोच रहा था कि चेतू से शहर की बातें जितनी देर तक खत्म नहीं होंगी। बात को टोक देने से शायद वह रुक जायेगा, और अल्का की बात करेगा।

'क्या गल्ल दी थी?' चेतू ने अपने पाँव से जूती निकालकर उस में से मिट्टी झाड़ते हुए पूछा।

'कौन?'

'गाभी दी अम्माँ!'

'वह गाभी को गालियाँ देती है कि उस ने तुम्हें शहर क्या भेजा! वह तुम्हें स्टेशन से लौटा क्यों न लाया!'

'उस दा बस होए बाबूजी, तां मिंजो गोडे कन्ने बन्नी छड्डे!' चेतू ने कहा और हँसने लगा। उस की हँसी में इतना ताप नहीं था, जितनी इस बात की खुशी थी कि उस के पास ऐसी औरत थी जो उसे आँख की ओट नहीं रखती थी।

कुमार ने गठरिया और बक्से की तरफ देखा और चेतू से बोला, "तुम शहर से बड़ी चीज़ें खरीदकर लाये हो ?"

"क्या गलाऊँ, बाबूजी ! अलका बीविए मिंजो बडीया बखमासा दित्तिया !

अल्का का नाम सुनकर कुमार को लगा कि यह नाम सुनने के लिए उस के कान बड़े प्यासे थे।

"वह राज़ी थी ?" कुमार की ज़बान ने अपने वश से बाहर होकर यह बात पूछ ली।

"तुसाँ वास्ते इक कागद दित्ता।" चेतू ने कहा और वह बक्से को खोलने लगा।

'अगर इस तरह उस की खबर को तरसना था तो उस ने उसे भेजा ही क्यों था ?' कुमार ने अपने आप को उलाहना दी।

"बाबूजी दिक्खा कितनियाँ चगा।" चेतू ने बक्से को खोलकर काँच के बहुत से गजरे दिखाये, और फिर एक रेशमी चादर दिखाते हुए बोला, "ऐ मिंजो बड़े बाबूजी ने दित्ती औ, पिताजी ने।"

बक्से में एक गरम कोट पड़ा था। चेतू ने बड़े चाव से उस कोट को निकाला, और उस के रेशमी अस्तर को अपनी तली से बार-बार सहलाते हुए कहा, "इक ओयू साहब आया, मिंजो एक कोट..." चेतू की बात उस के मुंह में ही रह गयी। उसे लगा कि कुमार ने माथे पर तेवर डालकर उस की तरफ देखा था। उस ने सोचा कि बाबूजी उस से नाराज़ हो गये, शायद यह सोचकर कि उस ने यह चीज़ खुद माँगकर ली हो।

"मैं कुछ नहीं मँगिया था बाबूजी, साहब ने मिंजो आपू ही दित्ता !" चेतू ने कुछ सहमकर कहा और जल्दी से बक्स के खाने में से एक लिफाफा निकालकर कुमार को दिया।

कुमार ने लिफाफा ले लिया और अपने कमरे में जाकर दरवाज़ा भिड़का लिया।

'आप ने मेरे कई नाम रखे थे। अपने नये-नये नाम रखने की मुझे आदत हो गया है। आज इस महीने की आठ तारीख है। अगले महीने की इसी तारीख को मैं अपना एक और नाम रखूँगी—मिसेज़ जगदीशचन्द्र। यह खबर सब को बता देना। शाइया के परयरा को भी बता देना !' यह खत पढ़कर कुमार को पहली बार ज़िन्दगी में यह महसूस हुआ कि उस के खाने का चौरवर उस का रोना निकल जायेगा।

जगदीशचन्द्र अपने गाव चाहल अपनी मा के पास चला गया था। पूरे बीस दिन वहाँ रहकर फिर कुछ चीजें खरीदने के लिए अमृतसर आ गया था। रात को उसे अल्का के पिताजी अपने पास ले आये थे। अल्का उसे पूरे सत्कार से मिली थी। उस के साथ कोठी के बगीचे म भी बठी रही। जगदीशचन्द्र को सिर्फ यह महसूस हुआ था कि अल्का पहले से कुछ दुबली हो गया ह।

आधी रात होगी। सोते-सोते जगदीशचन्द्र को लगा, जसे वह किसी पहाड की पगडण्डी पर खडा होकर सामने क ऊंचे पहाडो पर पडी हुई बफ का देख रहा हो। पास के किसी मोड पर से उसे किसी पहाडिन के गाने की आवाज सुनाई दी। पहाडी स्वर कितनी ही देर उस के काना में गूजते रहे। फिर स्वरो के साथ-साथ गीत भी सुनाई दने लगा

'दुपाँवाला डल्डू तूं मेरे वन्ने देई दे।
ता होई जा अगाडी मेरे माहणुआ।
ओ पखलिया माहणुआ!

आवाज़ दिल म उतरती जा रही थी। जगदीशचन्द्र अधजगी हालत में था। उस को कितनी ही देर मालूम न हुआ कि वह पहाड पर नही, शहर के एक कमरे में सोया हुआ ह।

एक बार गीत क बोल थिरक गये, जसे गानेवाले की आवाज आसुओ से भर आयी हो। जगदीशचन्द्र चौंककर चारपाई से उठ बठा। आवाज़ बाहर के बगीचे में से आ रही थी। बगीचे में रात का अँधेरा गहरा नही था। वह कितनी देर खिडकी में से देखता रहा। पर जिस तरफ आवाज़ की सीध थी उस तरफ एक पेड का गहरा साया था। पेड के साये की तरफ देखत हुए जब उस की आखें अधेरे से कुछ हिल गयी तो उस ने अलका की पीठ पहचान ली।

'अलका!' जगदीशचन्द्र ने बाहर बगीचे में जाकर कहा, और पेड स पीठ टेककर खडी हुई अलका के पास जा खडा हुआ।

अल्का चुप हो रही।

'तुम बहुत उदास हो।'

अल्का ने सिर झुका लिया।

"मुझे लगता ह जसे इस सारी उदासी का कारण मैं हू।'

"नही, आप नही।

पर मेरे कारण तुम्हारी मजबूरी और बढ जायेगी।'

"इस से अधिक अब क्या बढ़ेगी "

"पर अलका "

"जी।"

"कैसा विवाह है यह ?"

"मैं खुद नहीं जानती।

'मैं कई बार बैठे-बैठे सोचने लगता हूँ बाजार भी जाता हूँ, चीज़ें भी खरीदता हूँ पर दिल में खुशी नहीं दिखता

अलका को अपनेआप पर कभी तरस नहीं आया था जगदीशचन्द्र की हालत पर उसे तरस आ गया। उस ने आगे बढ़कर जगदीशचन्द्र का हाथ पकड़ लिया, "आप क्या विचारों में पड़ते हैं, इनकार कर दीजिए इस विवाह से !'

'मैं ने एक दिन यह भी सोचा था और उस रात तुम्हें खत भी लिखा था पर दूसरे दिन मैं खुद ही विचारों में डूब गया। लिफाफे में डाला हुआ खत फाड़ डाला।

'आज यही समझ लीजिए कि मुझे वह खत मिल गया है।"

"तुम्हारे पिताजी क्या कहेंगे ? सोचेंगे यह कैसा आदमी है ! सिर्फ दस दिन बाकी है।"

"पिताजी से मैं खुद कुछ कह लूँगा।

पर अलका वह कैसा आदमी है जो तुम्हें प्यार नहीं कर सका ! तुम उसे भूल नहीं सकती ? मैं सोचता हूँ कि उसे तुम कुछ समय में भूल जाओगी।'

अलका ने पहली बात का कोई जवाब नहीं दिया। आखिरी बात के जवाब में बोली 'शायद यह समय उमर जितना लम्बा हो जाये। आप इस समय की कीमत चुकाते रहिएगा ?"

"मुझे उदास रहने की ज़रा भी आदत नहीं, पर मैं कई दिनों से उदास हूँ।"

'मैं इसी लिए कहता हूँ कि आप यह कीमत क्यों दें।'

"मैं भी यही सोचता हूँ कि मैं क्या कर रहा हूँ तुम ने मुझे पहले दिन ही सब कुछ बता दिया था। पर उस दिन जाने मुझे क्या हुआ था !

'मैं उस दिन सोच रही थी कि आप न जाने यह विवाह क्या करना चाहते हैं।'

"तुम मुझे बहुत खूबसूरत लगी थी पर अब सोचता हूँ कि मैं तुम्हारी अकेली खूबसूरती का क्या करूँगा।' जगदीशचन्द्र की भटकती आँखों ने अँधेरे में अलका के चेहरे को टटोला।

आप ठीक सोचते हैं।"

"मेरा खयाल है कि मैं बाकी छुट्टियाँ कैंसिल करवाकर वापस नौकरी पर चला जाऊँ। पर मेरे जाने के बाद क्या सोचोगी ?"

"क्या ! एक अच्छा आदमी, और क्या ! आप यों ही परेशान हो रहे हैं। आज

आप की रात की नींद भी खराब हो गयी है।"

अलका जगदीश को साथ लेकर कोठी में लौट आयी और जगदीश को उस के कमरे तक छोड़कर खुद अपने कमरे में चली आयी।

अलका जिन दिनों यहाँ होती थी सुबह की चाय खुद बनाया करती थी। उस दिन भी जब सुबह हुई, अलका ने चाय बनायी। एक प्याला अपने पिताजी के कमरे में रख आयी और एक प्याला जगदीश के कमरे में। जगदीश के कमरे से जब वह लौट रही थी तो आवाज देकर जगदीश ने उसे अपने पास बुलाया।

अलका पलग के पास जाकर खडी हो गयी। जगदीश ने पलग से उठकर एक सिगरेट सुलगायी, और पलग के पाये पर बठते हुए बोला 'मुझे रात को बिल्कुल नींद नही आयी।'

'आप इतना क्यों सोचते है? वापस जाकर एक-दो दिन में ठीक हो जायेगा।

"तुम ने उस दिन तलाक की बात की थी।"

'अच्छा हुआ उस की जरूरत न पडी।

"तलाक विवाह के बाद होता है। पर मुझे आज ऐसे लगता है, जसे तलाक विवाह से पहले हो गया हो।

अलका ने मन की पीडा को जीकर देखा हुआ था। वह जगदीश के मुँह से इतनी भावुक बात सुनकर सहम गयी कि इस राह चलते आदमी को यह पीडा न छू जाये।

'मैं कभी ऐसी भावुक बातें नही करता पर तुम ठीक कहती हो। वापस काम पर लौट जाऊँगा तो एक दिन में ठीक हो जाऊँगा।'

अलका जाने लगी तो जगदीश ने उसे फिर रोक लिया कहा 'तुम मेरे मन की हालत समझती हो?

"हाँ।'

"मैं जब तुम्हारी तरफ देखता हूँ, तुम्हारे चेहरे के पीछे मुझे एक और चेहरा भी दिखाई देता है जिस से तुम प्यार करती हो—मुझे उस का चेहरा भी दीखता है शायद मैं जब भी तुम्हारी तरफ देखूँगा मुझे इसी तरह दिखाई देगा इसलिए हमें विवाह नही करना चाहिए। क्या करना चाहिए?

'नही करना चाहिए।

"मेरा यहाँ दिल घबराता है। मैं अभी तयार होकर चला जाऊँगा।

"अच्छा।'

"मैं पिताजी से कुछ नही कहूँगा—तुम खुद कुछ कह देना।

"अच्छा।"

अलका अपने कमरे में लौटी, तो उस की चाय ठण्डी हो चुकी थी। उस ने गरम चाय का एक प्याला और बनाया। खिडकी में खडी जब वह चाय पी रही थी, उस ने

जगदीशचन्द्र को कोठी के दरवाजे से बाहर आते हुए देखा। वह कितनी ही देर जगदीश की पीठ की तरफ देखती रही। वह ओझल हो गया, तो अलका उस की पीठ के खयाल में ही डूबी रही। उसे लगा, जैसे वह इस पीठ से माफी माँग रही हो।

१५

कुमार के कमरे में लटका हुआ कलेण्डर कई दिनों से कुमार की ओर देख रहा था, और कुमार उस की ओर। कलेण्डर की ओर देखते देखते कुमार कभी यह सोचता कि आनेवाली आठ तारीख इतनी जल्दी क्यों आ रही थी? उस का दिल चाहता था कि वह तारीख कहीं रास्ते में ही अटक जाये और कभी वह सोचता कि आनेवाली आठ तारीख इतनी देर से क्या आ रही, और उस का दिल चाहता कि तारीख जल्दी से आकर गुजर जाये। कलेण्डर उस की तरफ देखता रहता था, और देखते-देखते उस का दिल चाहता कि वह इस कमरे में से उठकर वहां चला जाये जहां से कुमार को कभी किसी तारीख का पता न चले।

आठ शब्द याद आते ही कुमार का जाने क्या हो जाता। एक दिन हरिया ने आकर जब आठ आने माँगे तो कुमार काफी देर उस के चेहरे की तरफ देखता रहा।

"अट्ठ बजी गए बाबूजी?" एक दिन सुबह लकड़िया का गट्ठा ले जाते हुए पहाड़िये ने कुमार से पूछा, तो कुमार का पाँव ठिठककर पत्थर से जा टकराया।

कुमार कई दिनों से एक तसवीर बना रहा था। तसवीर में एक चन्द्रमा अपने पूरे जलाल में था। नीचे एक पानी का तालाब था। उस में चाँद की परछाइं भी चन्द्रमा की ही तरह भरपूर जलाल में थी। तालाब के किनारे पर कुछ लम्बे पेड़ थे, और पानी में उन के काले साये तर रहे थे। यह तसवीर करीब आठ फुट लम्बी थी। कुमार ने जब तसवीर खत्म की, तो कमरे की सब से बड़ी दीवार पर लटकाकर उसे दूर से देखने लगा। उसे महसूस हुआ कि तसवीर पर बड़े आकार में 'आठ' का अंक लिखा हुआ था। आसमान के चन्द्रमा का गोल दायरा, और पानी में उस की परछाइं का गोल दायरा मिलकर 'आठ' का अंक बन गया था। कुमार ने कई बार अपनी चेतना पर दबाव डालकर देखना चाहा कि तसवीर में एक चन्द्रमा था, और एक उस की परछाइं। पर उस की आँखें इस विचार के प्रतिकूल जब तसवीर की ओर देखती थीं तो उन्हें आठ का अंक दिखाई देता था। तसवीर की ओर देखते-देखते कुमार ने देखा कि तसवीर के पेड़ भी आठ ही थे। चार तालाब के किनारे पर उगे हुए पेड़ थे और चार उन के पानी में तरते साये। कुमार ने घबराकर वह तसवीर दीवार से उतार ली।

कुमार ने नया कनवस लेकर एक और तसवीर बनानी शुरू कर दी। इस

तसवीर म एक अँधेरे का आलम था। एक मुसाफिर इस अँधेरे में रास्ते पर चल रहा था। क्षितिज की केवल हल्की-सी रेखा उस मुसाफिर को दिखाई दे रही थी। मुसाफिर का सारा शरीर अँधेरे में लिपटा हुआ था। पर उस के पैर रोशनी म भीगे हुए थे। कुमार ने इस मुसाफिर के पैरो को उजले रगो में बनाया। जितने कदम वह मुसाफिर चल चुका था कुमार ने उन पैरो के निशान भी उजले बनाये। तसवीर को खत्म कर के कुमार ने जब उसे कमरे की दीवार पर लगाया तो उस की तरफ देखते देखते कुमार को लगा कि तसवीर का मुसाफिर चल नही रहा था। अपने पैरो पर खड़ा का खड़ा रह गया था। कुमार ने उन उजले कदमो की ओर देखा, जो कदम वह मुसाफिर चलकर आया था। कदम पूरे सात थे। आठवें कदम पर वह मुसाफिर चलने से रुक गया था। कुमार ने कापते हाथो से उस तसवीर को दीवार से उतार लिया और नया कनवस लेकर एक और तसवीर बनाने लगा।

इस नयी तसवीर में कुमार ने खास ध्यान रखा कि किसी तरह भी पैरो और कदमो की तरह कोई ऐसी चीज नही बनायेगा जिसे गिना जा सके। इस तसवीर में उस ने एक लडकी इस तरह की बनायी, जिस का सम्बन्ध एक अलग दुनिया और अलग किस्म की जिन्दगी से था। लडकी के इस तरफ उस ने सगमरमर की जाली की एक बहुत ऊँची आड बना दी। जाली की यह आड एक दुनिया को और एक जिन्दगी को अलग अलग कर रही थी।

कुमार ने ऐसी तसल्ली से इस तसवीर को बनाकर जब दीवार पर टागा और खुद दरवाजे की चौखट पर खडा होकर दूर से इस तसवीर को देखने लगा, तो उस की आखें चकित रह गयी। सगमरमर की जाली के सारे सूराख एक-दूसरे से मिलकर इस तरह के आकार म ढल गये थे जसे पूरे के पूरे कनवस पर सैकडो आठ लिखे हुए हो। आठो की लम्बी कतार थी, कतार के नीचे एक और कतार। उस के नीचे एक और कतार उस के नीचे एक और कतार। कुमार ने सिर झुकाकर दीवार की ओर से मुँह फेर लिया जसे उस ने अपने आप से मुँह फेर लिया हो।

हरिया कई बार बठे-बठे अपने देश का एक गीत गाया करता था, बारा बजि गय हो राज दीया घडीया बारां बजि गये हो। कुमार ने यह गीत कई बार सुना था। इसे सिर्फ हरिया ही नही गाया करता था गडरिये भी गाया करते थे। कोई-कोई तो इसे बासुरी पर बजाया करता था। कुमार ने कभी इस गीत की तरफ ध्यान नही दिया था। आज हरिया से यह बात सुनकर उसे लगा कि इस गीत की पृष्ठभूमि म कोई दद भरी कहानी थी। इस घाटी म कभी इस तरह के बारह बजे होंगे कि सारी घाटी काप उठी होगी। इस घटना को जाने कितने वर्ष हो चुके होंगे। शायद एक सदी गुजर चुकी हो। पर बारह बजे घटित हुई कहानी आज भी इस घाटी के लोगो को याद थी। जसे वे आज भी जब घडी की तरफ देखते ह उन्हें बारह बजने से भय आने लगता ह।

"हरिया !"

"हाँ, बाबूजी !'

"यह तुम क्या गा रहे हो—बारा वजि गये ?'

"एक साढे देसे दा गौन ए !"

"बारह बजे क्या हुआ था ?"

"बारह बजे मोहनें नें फासिये चढना सी !'

"यह मोहना कौन था ?'

'फुल्लां ल्हीया बाडोया विच राजे दा माली सी !'

"राजे ने उसे फाँसी का हुक्म क्या दे दिया ?'

"एक राने दी रानी कीया हार दिंदा सी।"

"और क्या करता था ?'

"पजरगी मुरली बजान्दा सी।"

फिर राजे ने उसे फासी लगा दिया ?

'नही, बाबूजी ! इस दे धरमे दे भार नाल तखता टुटी गया !"

"आ !

कुमार जब हरिया से यह बहाना सुनकर दूर के पेडों की तरफ देखते हुए नीचे गया तो वह सोच रहा था, 'मोहने ने किसी रानी के रूप की पूजा की होगी, रानी के शृगार के लिए उस ने फूलों के हार पिरोये होंगे, राजा को उन फूलों में से मुहब्बत की खुशबू आयी होगी और राजा ने फासी का हुक्म सुना दिया ! मुहब्बत करना मोहने का कुसूर था यही कुसूर उस का धर्म बन गया, और धर्म के भार से फासी का तख्ता टूट गया मैं इस से बिलकुल उल्टा खेल खेल रहा हूँ मैं ने मुहब्बत को धर्म नही बनाया, शायद इसी लिए मेरे भार से कुछ नही बनता। मेरे सारे दिन सारी रातें इस तरह हो गयी ह, जस मैं पानी के तख्ते पर खडा होऊँ !

घडी की सुई ने जसे धीरे धीरे सरकते हुए वही बारह बजा दिये थे, जब मोहने ने फासी लगना था। उसी तरह समय की सुई धीरे धीरे सारे दिन गुज़र गयी, और आखिर आठ तारीख आ पहुची।

कुमार को याद आया कि कई वर्ष पहले जब वह बम्बई पढ़ता था तो वह एक बार समुद्र म नहाने के लिए गया था। उस दिन उस ने पहली दफा समुद्र में पाव रखा था। वह कितनी ही हल्की-हल्की लहरों के थपेड अपनी पीठ पर महसूस करता रहा। कभी उस के पैर उखड जाते थे कभी समन्दर का नमकीन पानी उस की नाक और मुह म चला जाता था। वह कितनी ही देर छोटी छोटी लहरों म खडा रहा था। नहाते-नहाते वह पानी म और आगे बढ गया था और फिर अचानक एक बहुत बडी लहर उस पर चढ आयी थी। वह बौखला उठा था। उसे लगा था कि यह लहर उसे बहाकर ले जायेगी। एक और आदमी उस से कुछ फासले पर नहा रहा था। उस ने

पास आकर कुमार का हाथ पकड़कर उस उपर उछाल लिया था, और लहर पैरों के नीचे से गुज़र गयी थी। उस ने कुमार को बताया था कि इस तरह की ऊँची लहरों के आने पर या तो अपने पैर उठाकर लहर पर सवार हो जाना चाहिए, और या नाक मुँह बन्द रखकर लहर को अपने सिर पर से गुज़र जाने देना चाहिए। और कुमार ने सोचा कि अगर वह आठ तारीख की इस ऊँची लहर पर सवार होकर पार नहीं हो सकता, तो उसे अपनी नाक मुह बन्द कर लेना चाहिए, और इस लहर को अपने सिर के ऊपर से गुज़र जाने देना चाहिए।

कुमार अपने चक्क की पगडण्डी पर चलता बड़ी सड़क पार आ गया। इस सड़क पर से अक्सर सलानियों की मोटरें गुजरती थी। कई बार कुछ सलानी अपनी मोटरें सड़क पर छोड़कर कुमार का स्टूडियो देखने के लिए चक्क की पगडण्डी उतर आते थे। मंदिरों के झरनों की तरह इस घाटी में कुमार का स्टूडियो भी दर्शनीय समझा जाता था। कई बार कुछ लोग कुमार से शहर का कोई काम भी पूछ लेते थे।—आज कुमार को सड़क पर आकर किसी सलानी की शहर की ओर जाती मोटर तो दिखाई न दी पर फौजियों की एक जीप ज़रूर मिल गयी। फौजियों ने बताया कि उन्हें पठानकोट तक जाना है। कुमार उन की जीप में बैठकर पठानकोट की तरफ़ चल दिया। जीप पालमपुर पहुँची तो कुमार ने पठानकोट जाने का इरादा छोड़ दिया। वह पालमपुर ही उतर गया।

'जैसा पठानकोट वैसा पालमपुर!' कुमार ने मन में कहा और उस गली की तरफ चल दिया। वहाँ पहुँचकर कुमार ने सोचा था कि वह नाक मुँह बन्द कर किसी औरत के जिस्म में इस तरह खो जायेगा कि आठ तारीख की ऊँची लहर उस के सिर के ऊपर से गुज़र जायगी। कुमार को विश्वास था कि वह पानियों में अडिग खड़ा रह जायेगा, और वह आसानी से किनारे की रेत पर लौट आयगा।

पालमपुर के बाज़ार में बैठनेवाली औरतों को ज्यादा आमदनी की उम्मीद नहीं हुआ करती थी। इस रास्ते से होकर गुजरनेवाले फौजी उन का एकमात्र सहारा थे। बड़े अफ़सर उस तरफ कम ही आते थे क्योंकि उन्हें पठानकोट में यहाँ से अधिक सहूलियतें मिल जाती थीं। इसलिए आम किस्म के ग्राहकों की अभ्यस्त ये औरतें जब कभी ऐसे आदमी को देखती जिस से उन्हें ज्यादा आमदनी की उम्मीद होती तो वे खास तौर से उस का स्वागत करतीं। कुमार का स्वागत भी इस तरह हुआ जैसे एक मुद्दत के बाद किसी वाकिफ के घर में आया हो।

चन्द्रावती की आयु को अल्हड़ कहा जा सकता था पर उस की कोई भी अदा अल्हड़ नहीं थी। कुमार ने शराब पीने से इनकार कर दिया तो चन्द्रा ने मुसकराकर कुमार के सामने से गिलास हटा लिया। कांच के एक प्याले में उस ने फलों का रस डालकर कुमार के पास रख दिया और उस के पैरों से बूट उतारकर उस की जुर्राबें उतारने लगी।

चन्द्रा की ठण्डी ठण्डी उँगलियाँ जब कुमार के कसे हुए बदन से छूईं, तो कुमार को लगा जैसे नींद आ रही हो।

चन्द्रा ने सेमल की रुई से भरा हुआ एक तकिया पलंग पर रख दिया। कुमार ने तकिये पर सिर रखकर चन्द्रा से पूछा अगर आज उस का विवाह होना हो तो वह कैसे कपड़े पहनेगी। उस ने चन्द्रा को वैसे ही कपड़े पहन लेने के लिए कहा, और चाँदी के वे सारे गहने भी पहनने को कहा, जिन्हें विवाह के दिन पहना जाता है।

चन्द्रा चुप रही। साथ ही कोठरी में जाकर उस ने अपना बक्स खोला। चन्द्रा ने हरी छींट की चूड़ीदार सल्वार पहनी। दरियाई किनारीवाला कुरता पहना, पाँव में पायलें और नाक में चाँदी की एक छोटी सी नथ पहनकर जब वह कुमार के पास आयी तो कुमार सो चुका था।

पायल की खनक से कुमार ने अपनी अलसायी आँखें खोलीं और देखा कि चन्द्रा उस के पायताने इस तरह सिमटकर बैठ गयी थी जैसे वह अभी-अभी डोली में से निकलकर लायी गयी हो।

कुमार ने हाथ पकड़कर चन्द्रा को पायताने से उठाया। पर चन्द्रा को अपनी बाहों में लेते हुए उसे महसूस हुआ जैसे वह कपड़े की बनी एक गुड़िया से खेल रहा हो।

चन्द्रा ने नाक में पहनी हुई नथ को अपनी उँगलियों से थाम लिया। नथ का मोती शायद उसे भारी लग रहा था। कुमार ने चन्द्रा की ओर देखा। उसे लगा, चन्द्रा विवाह का यह स्वांग भरते भरते ऊब गयी थी।

'यह स्वांग किस लिए।' कुमार को खयाल आया और उस ने अपने आप को घूरकर देखा, 'मैं ने चन्द्रा को अल्का का स्वांग भरने के लिए क्यों कहा था? मैं यह क्या कर रहा हूँ!'

'आज ही नहीं तुम हमेशा ही इस तरह करते हो!' कुमार को लगा जैसे बाहर से किसी ने कुछ न कहा हो, पर उस के अन्दर बैठकर उस से कोई कह रहा था तुम ने अपने-आप को कभी भी उस तरह स्वीकार नहीं किया, जैसे तुम्हें करना चाहिए था। तुम ने अल्का को भी कभी उस तरह कबूल नहीं किया, जैसे तुम्हें करना चाहिए था। तुम अल्का में हमेशा एक वेश्या का भ्रम खाते रहे और आज एक वेश्या में अल्का का भ्रम खाना चाहते हो तुम यह क्यों नहीं समझते कि वह यहाँ भी बैठी हुई है तुम उस के पास बैठे हुए हो, और तुम यहाँ भी नंगे हो, वह तुम्हारे पास खड़ी है

पानी में कभी रेखा नहीं खिंचता। रेखा का भ्रम होता है, पर रेखा नहीं! तुम अब तक पानी को तोड़कर देख रहे हो'

पानी टूट नहीं सकता था पानी का बाँध टूट गया। फिर वे पानियों में जाने कैसा वेग आया। इसी पानी के जोर में से एक बिजली पैदा हुई। मुहब्बत और

नफरत की तारा ने मिलकर इस बिजली को जगा दिया, और इस की रागनी म कुमार को लगा कि अलका उस के पास थी। अल्का उस के अन्दर भी थी, और अल्का उस के बाहर भी थी। कुमार ने चन्द्रा की मूँठ रुपयों से भर दी। ये रुपये चन्द्रा से आज के त्याग के लिए माफी माँग रहे थे।

कुमार गली में स होता हुआ बडे बाज़ार में आ पहुँचा और पपरोला का जा रही बस में बठ गया।

बस के पपरोला पहुँचते पहुँचते अँधेरा गहरा हो गया था। डेढ मील अभी और बाकी था। पर कुमार जल्दी जल्दी पाव उठाता हुआ अपने चक्क की तरफ इस तरह चला जसे वहा उस का कोई इन्तज़ार कर रहा हो।

चक्क की कच्ची पगडण्डी से उतरकर कुमार सीधा झुग्गियो की तरफ चला गया। जिस झुग्गी में अल्का ने दीयो के बहुत-से आले बनाये हुए थे कुमार ने उस झुग्गी में जाकर सब दीये जला दिये। झुग्गी की दीवार झिलमिला उठी। कच्ची उचान पर उन का गलीचा बिछा हुआ था। कुमार जब उस गलीचे पर बठा तो उसे लगा जसे आज उस के विवाह की पहली रात हो। अल्का कहीं नही गयी थी अलका उस के पास थी। अल्का उस के अन्दर था। और फिर कुमार ने उस दीवार की ओर देखा, जिस दीवार पर अल्का ने पानी की लहरें बनाकर पानी में एक रेखा खीची हुई थी। कुमार के दिल में आया कि वह अभी रग और ब्रश लेकर पानी में खिंची हुई रेखा को मिटा दे।

१६

अलका ने कोठी के बगीचे म एक ऊँची जगह पर पत्थर की एक शिला रखी हुई थी। इस शिला पर वह शाम का चाय के प्याले रखकर अपने पिताजी को आवाज़ देकर बुला लेती थी। पिताजी रोज़ नियमपूवक शाम के छह बजे चाय पीते थे, और फिर सर करने के लिए चले जाते थे। अल्का उन के आने तक बगीचे में ही बठी रहती थी।

आज पिताजी को गये कुछ ही दर हुई थी। जगदीशचन्द्र कोठी के बाहरी दरवाज़े में से अलका के पास आ गया। अल्का चाय के खाली प्याले उठा रही थी।

आप!

'*मैं कितना देर से उस तरफ मोड पर खडा हुआ था। पिताजी के चले जाने* पर अन्दर आने की साच रहा था।"

"पिताजी ने आप को आने से कभी नही रोका।'

पर मैं तुम्हें अकेले में मिलना चाहता था।"

"बठिए।'

'बठने का अधिकार मैं ने खो दिया ह पर आज मैं वही अधिकार लेने आया हूँ '

"आप अभी तक वापस नही गये ? आज पन्द्रह तारीख हो गयी ह "

"वापस जाना चाहा था, जा नही सका अलका !'

"जी !"

"मैं उस दिन जब रात के अँधेरे में यहा से चला गया था "

'मैं ने आप को जाते हुए देखा था।"

"तुम ने उस दिन क्या सोचा होगा ?

अलका ने हँसकर कहा, "जहा तक आप की पीठ दिखाई देती रही मैं आप की पीठ की तरफ देखती रही और उस से माफी मागती रही।'

"माफी तो उसे मागनी चाहिए जो पीठ कर के चला जाये।

'आप किसी की तरफ पीठ कर के जानेवाले नही थे जाने के लिए मैं ने आप को मजबूर किया था, इसलिए मैं आप की पीठ से माफ़ी माँगती रही '

जगदीश ने एक गहरी सास ली, और अलका की तरफ देखते हुए बोला, "न कोई तुम्हारी तरह सोच सकता ह न कोई तुम्हारी तरह बोल सकता ह। अब तुम समझी हो कि मैं जाकर भी क्या नही जा सका। लगता था दुनिया म हुस्न भी बहुत मिल जायेगा, जवानी भी मिल जायेगी, पर यह जो मैं ने तुम में देखा ह वह मुझे कभी नही मिलेगा।"

अलका कुछ नही बोली। उस ने सिर झुका लिया।

'यह जो आठ तारीख गुजर गयी है अलका, वह मुझे लौटा दो।'

'तारीख तो लौट सकती है, पर

"अब मेरे मन में कोई 'पर' नही रहा, और न तुम्हारे मन में रहेगा।'

'क्या ?"

'क्योंकि उस का कारण नही रहा।"

"कारण उसी तरह ह जसे पहले था।'

नही, अलका, अब वह कारण नही रहा। तुम्हे एक अपनी चोरी बताऊँ ?"

क्या ?

'मैं तुम से भी पूछ सकता था पर पूछा नहा था। खुद ही सोचता रहा कि आखिर वह कौन-सा आदमी था, जिसे तुम इतना प्यार करती थी।"

'आप पूछते, मैं बता देती।"

"मैं खुद ही सोचता रहा। जो सोचा था ठीक निकला।'

"उन का नाम कुमार ह।'

"मुझे पता है।

'पर यह पता लगने मात्र से कारण कसे मिट गया ?"

"मैं वहा गया था, चयक नम्बर छत्तीस में, उसे देखन के लिए।"

"फिर ?"

"जब मैं ने उसे देखा वह होश में नही था, इस लिए मुझे यह मालूम नही कि वह कसा आदमी था। अच्छा ही होगा। पर

"वह बीमार ह ?

"मेरा खयाल हैं कि अब तक जिन्दा नही होगा। डॉक्टरा ने बताया था कि मुश्किल से दो रातें और गुजरेंगी। यह कल सुबह की बात ह।"

अल्का पत्थर की तरह पत्थर की शिला पर बैठ गयी।

"अल्का, तुम यह मत सोचना कि मैं उस की मौत से खुश हो रहा हूँ बल्कि डाक्टर ने जो दवा लिखकर दी थी वह वहाँ कही से न मिल सकी। मैं आते हुए पठानकोट से वह दवा भिजवाकर आया हूँ मैं ने यह बिल्कुल नही चाहा था कि वह जिन्दा न रहे '

"उन्हें क्या तकलीफ़ थी ? सीने में दद था ? अल्का शिला से इस तरह उठ खड़ी हुई, जसे अभी कुमार के पास चल देगी और उसे बचा लगी।

'हाँ, सीने में दद था। चेतू ने बताया था कि बाबूजी का यह दद पहले भी हो जाया करता था पर इस बार बुखार भी हो गया था, और यही बुखार दिन-ब दिन बढ़ता गया था। वह शायद एक रात सर्दी में बठकर झुग्गी की दीवार पर कोई तसवीर बनाता रहा। झुग्गी की एक दीवार म दीया के लिए बहुत-स आले बने हुए हैं। वह सारी रात दीये जला कर एक तसवीर बनाता रहा तभी उस के सीने को ठण्ड ने जकड लिया

'चेतू ने मुझे "

"चेतू का इस म कोई कुसूर नही अलका। वह यहा आकर तुम्हें खबर दना चाहता था, पर कुमार ने आने नही दिया।

"मुझे आप बता देते "

'यह मरे जाने से पहले की बात ह अल्का। मुझे सिफ चेतू ने, और उस की बेटी ने बतायी थी।"

"पर "

"मेरा खयाल ह कि उस की दिमागी हालत ठीक नही थी। मुझ से ज्यादा तुम्हें पता होगा वह शायद शुरू से ही कुछ इसी तरह था

"किस तरह ?

"चेतू कहता था कि बाबूजी को यह मालूम नही कि तुम अमृतसर चली आयी हो।

"क्या ?

"वह समझता था कि तुम अभी तक अपनी झुग्गी में रहती हो तुम वहा एक

झुग्गी में रहती थी न ? मैं ने वे झुग्गियां भी देखी थीं '

अलका जगदीश की ओर देखने लगी।

"मैं ठीक कह रहा हूँ, अल्का! अगर वह ज़िंदा भी रहता, या अब भी किसी तरह बच जाये तो मैं जो कुछ उस के बारे में सुन आया हूँ, उस से मुझे बिलकुल यह डर नहीं रहा कि वह कभी हमारी ज़िन्दगी में कोई दख़ल दे सकता है।"

"वह बच जायेंगे ?"

'बचने की बात मैं ने यों ही कही है, अल्का! मुझे डाक्टर ने खुद ही बताया था कि वह बच नहीं सकता पर तुम यह मत सोचना कि मैं उस की मौत से खुश हूँ मैं अब भी चाहता हूँ कि वह बच जाये पर जिस आदमी की दिमाग़ी हालत ठीक न हो, वह बचकर क्या करेगा! वैसे वह आर्टिस्ट बहुत अच्छा है, मैं ने उस की तसवीरें देखी हैं।'

'दिमाग़ी हालत ?"

उसे शायद किसी जिन प्रेत की असर थी। यह मेरा खयाल नहीं अल्का! मैं किसी जिन्न प्रेत को नहीं मानता। चेतू चाचा ऐसा सोचता था उस ने बताया था कि बाबूजी बैठे-बैठे किसी से बातें करते रहते थे और कई बार अपने पलंग की ओर हाथ कर के चेतू को पूछते थे कि उसे पलंग पर बैठी हुई जिन्नी दिखती थी या नहीं क्या नाम है चेतू की बेटी का, माया ? वह भी यही कहती था कि बाबूजी को पैरों का कोई वहम पड़ गया था। वे उस से पूछते थे कि जिन्नी के पैर उलटे होते या सीधे ? और या नींद में कहते थे कि पानी में रंग नहीं खिंचती, रेखा का भरम होता है यह सब शायद बुखार की वजह से होगा।"

अलका ने मुँह घुमा लिया। एक हाथ से उस ने पत्थर की शिला को कसकर पकड़ा हुआ था। आँसुओं की जितनी भी बूँदें अल्का की आँखों से टपककर पत्थर की शिला पर गिरीं, शिला को लगा कि वह इन बूंदों से पिघल जायेगी।

'अल्का! जगदीश ने पास होकर अल्का के कंधे पर हाथ रखा।

'जी!"

"मैं जानता था तुम्हें दुख होगा। आखिर तुम ने कभी उसे इतना प्यार किया था। पर यह तुम्हारे और मेरे बस की बात नहीं। जाने उस की क़िस्मत कैसी थी! वह तुम जैसी लड़की से प्यार न कर सका। पता नहीं उस के मन में क्या था। पर अब शायद यह बात ही ख़त्म हो गयी।

अलका से बोला न गया। उस ने इनकार में सिर हिला दिया, जैसे वह कह रही हो, 'यह बात अभी ख़त्म नहीं हुई, यह बात कभी ख़त्म नहीं होगी!

"अल्का!'

"जी!'

"मैं तुम्हारे दुख को समझता हूँ, अल्का! इसलिए मैं विवाह में धूम्रपान नहीं

करूँगा। कल या परसों हम पन्द्रह मिनटों में यह रस्म कर लेंगे, फिर मैं तुम्हें सीधा

'मेरा विवाह हो चुका है, जगदीश।"

'अल्का!'

"काफी देर हुई, मेरा कुमार से विवाह हुआ था। पर वह सोचते थे कि पानी में रेखा खिंच सकती है। अब उन्हें मालूम हो गया है कि पानी में रेखा नहीं खिंचती। इसलिए मैं रात की गाड़ी से उन के पास चली जाऊँगी—अपने घर चली जाऊँगी

"पर अलका, वह तो '

"वह जरूर जिन्दा होंगे!"

"तुम यह भी देख लो, खुद जाकर देख लो। पर अगर तुम्हारे जाने तक कुमार जिन्दा न हुआ "

'फिर भी मैं वहां अपने घर रहूँगी, एक विधवा औरत की तरह रहूँगी।

यात्री

एक

औरत दुनिया की सब से बड़ी स्मगलर है। मर्द कुछ भी करे, सिर्फ गाँजे और अफीम जैसी चीजें ही स्मगल कर सकता है। ज्यादा से ज्यादा सोना स्मगल कर सकता है या सरकारी भेद जैसी कोई चीज, बस इस से ज्यादा कुछ नहीं। पर औरत इनसान के समूचे अस्तित्व का स्मगल कर सकती है। जब तक स्मगलिंग का माल छिपा सकती है, कोख में छिपाये रखती है जब नहीं छिपा सकती, बता देती है, दिखा देती है—और वह भी किसी शर्मिन्दगी के साथ नहीं, बड़े मान के साथ—स्मगलिंग के वजब का हक कहकर। हक कहकर भी नहीं एहसान कहकर। इनसान पर इनसान के वंश को चलाये रखने का एहसान कहकर।

मेरी माँ ने मेरे बाप पर यही एहसान करने के लिए भगवान से एक बेटा माँगा था—पहले हकीमों की दवाओं से माँगती थी, फिर फकीरों की जड़ी-बूटियों से, फिर अड़ोसन-पड़ोसन के बताये हुए जादू-टोने से, फिर करामाती कहे जाने पीरों फकीरों की कब्रों से, और फिर शिवजी के इस मन्दिर में आकर शिवलिंग से—और आखिर माँग माँगकर उस ने भगवान को इतना तंग कर दिया कि भगवान को उसे बेटा देना ही पड़ा।

सोचता हूँ, भगवान पूरा बनिया है। माँ ने भगवान् से भी एक सौदा कर लिया था—तू मुझे एक बेटा दे दे मैं उसे तेरे इसी मन्दिर में चढ़ा जाऊँगी, तेरी सेवा में अर्पित कर जाऊँगी

अजीब सौदा है—माँ ने भगवान पर भी एहसान कर दिया देख तेरी सेवा के लिए मैं क्या दे रही हूँ। लोग मुट्ठी भर मक्की का आटा देते हैं, या गुड़, चावल और नारियल चढ़ा देते हैं या ज्यादा से ज्यादा किसी चबूतरे और बावली पर संगमरमर मढ़ जाते हैं या कलश पर सोने का पतरा, पर मैं ने जीता-जागता एक बच्चा तेरी मूर्ति के आगे रखा है और उधर मेरी माँ ने मेरे बाप पर भी एहसान कर दिया—कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ीं, पर आखिर मैं ने तेरे कुल का नाम रख लिया, तेरा वंश खत्म होने नहीं दिया और चाहे तेरे इस बेटे को तेरे खेतों में जाकर हल नहीं जोतना है, बुढ़ापे में तेरी लाठी भी नहीं पकड़नी है, पर तू कभी-कभी उसे आँखों से देखकर

कलेजा ठण्डा कर सकता है—दुनियादार बेटों का सिर्फ देखा जाता है, पर साधु बेटे के तो दर्शन किये जाते हैं।

माँ अक्सर यहाँ दर्शन करने आती है, बाप सिर्फ संक्रान्तिवाले दिन या किसी पर्व पर। शायद इसलिए कि बहुत मुसीबतें माँ ने झेली थीं और सबों का महत्त्व जानने के लिए उसे एक प्रत्यक्ष सबूत की जरूरत पड़ती है और मैं बीस बरसों का प्रत्यक्ष सबूत हूँ।

मुझे याद नहीं—चालीसा नहाने के बाद जब मेरी माँ मुझे एक गेरुए कपड़े में लपेटकर इस मन्दिर में चढ़ाने आयी थी, तो शिवमूर्ति के ठण्डे पैरों पर पड़ा मैं रोया था या नहीं। (सुना है, माँ ने अपनी मानता के मुताबिक मुझे पैदा होते ही गेरुए कपड़े में लपेट दिया था।)

मन्दिर के मुख्य सन्त किरपासागरजी ने मेरे माथे को मूर्ति के पैरों से छुआकर मुझे फिर माँ की झोली में डाल दिया था— यह बालक आज से शिव का पुत्र है, पार्वती इस की माँ और तू इस की धाय। एक बरस के लिए तुझे दूध पिलाने की सेवा सौंपते हैं। इस की पहली वर्षगाँठ पर यह बालक हमें लौटा देना।

सो एक बरस के लिए मैं उधार सौंपा गया था। पता नहीं इस एक बरस में मैं ने माँ को माँ कहकर पुकारा था या नहीं, शायद नहीं—क्योंकि मेरे होंठ इस शब्द से परिचित नहीं लगते।

अनुमान लगाता हूँ कि अपनी पहली वर्षगाँठ को जब गेरुआ चोले में घुटनों घुटनों चलते, मैं ने मन्दिर की मूर्ति के पैरों में पड़े हुए फूलों के पास पहुँचकर किसी फूल को उठाकर खाने के लिए मुँह में डाला होगा और मेरे गले ने फूल के स्वाद को कबूल न किया होगा—तो मैं जरूर रोया होऊँगा। (मन्दिर का बूढ़ा सेवादार साई भगतराम बताता है कि फूलों की पत्तियाँ मेरे तालू से चिपक गयी थीं और मेरी साँस रुक गयी थी। उस ने मेरे मुँह में उँगली डालकर वे पत्तियाँ निकाली थीं और फिर मुझे बहलाने के लिए महन्तजी ने खुद एक कटोरी में दूध और बताशा डालकर मुझे भूनि का प्रसाद चखाया था।)

शायद कुछ दिन टुकुर-टुकुर सब के मुँह की तरफ देखा होगा—साई भगतराम के मुँह की तरफ, गोविन्द साधु के मुँह की तरफ, महन्त किरपासागर के मुँह की तरफ, शिव की मूर्ति के मुँह की तरफ, पार्वती की मूर्ति के मुँह की तरफ और मन्दिर में आकर माथा टेकनेवाले भक्तों के मुँह की तरफ—कुछ याद नहीं। ये सारे मुँह चिरकाल से परिचित लगते हैं।

मन्दिर में एक गुफा है। कहते हैं, यह गुफा यहाँ काँगड़ा घाटी में से निकलकर कैलास पर्वत पर पहुँचती है। पर अब कोई इस गुफा में से गुजरा नहीं। जानेवाले ज्यू जाते थे, इस बात को सदियाँ गुजर गयी हैं। यह गुफा कई सौ मील लम्बी है, यह सिर्फ एक कथा है। कथा का इधर का सिरा सामने दिखता है—गुफा का मुँह।

उधर का सिरा कोई नहीं जानता। पता है—मैं भी नहीं जान सकूँगा, पर लगता है, जैसे मैं इस मकड़ों मील लम्बी गुफा में कुछ मील रोज चलता हूँ। पहुँचता कहीं नहीं, सिर्फ चलता हूँ। अँधेरा इस के गाल मुह पर भी पुता हुआ है—और दूर अन्दर भी।

'मा' शब्द का सिर्फ इस कहानी को चलाने के लिए बरत रहा हूँ, वैसे इस शब्द से मेरा कोई वास्ता नहीं। मंदिर में बहुत-सी औरतें आती हैं, वह भी आती है। मन से उस को 'वह औरत' ही कह सकता हूँ मां नहीं। यह शब्द एक मजाक लगता है—मेरे साथ तो लगता ही है उस के साथ भी। बिल्कुल उसी तरह जैसे बेचारी पार्वती के साथ।

कई बार रात के अँधेरे में मैं अपनी कोठरी से निकलकर मन्दिर के उस हिस्से में चला जाता हूँ जहाँ शिव और पार्वती की आदमकद मूर्तियाँ हैं। वह दोनो मुझे बड़े स्थिर और आराधना में लीन एक बूढ़े किसान और एक अधेड़ औरत की तरह खड़े लगते हैं—भगवान से एक बेटे की मुराद माँगते हुए। बिल्कुल उसी तरह जिस तरह मेरी माँ, और मेरा बाप किसी दिन इसी तरह ऐसे ही खड़े होकर भगवान से प्रार्थना करते रहे होंगे।

मैं दोनों मूर्तियों के सामने खड़ा हो जाता हूँ, जैसे हँस रहा होता हूँ—तुम्हें एक बेटे की बहुत कामना है? अच्छा मैं अपनेआप का दान देता हूँ

मूर्तियाँ दो भिखारियों की तरह लगती हैं और अपनाआप—भिक्षा की वस्तु।

नहीं मैं भिक्षा की वस्तु भी नहीं, सिर्फ भिक्षा का एक पात्र हूँ। वस्तु में एक रंग एक स्वाद, एक महक शामिल होता है। और सब से ज्यादा एक सन्तुष्टि शामिल होती है मुझ में यह कुछ भी नहीं। मैं सिर्फ एक पात्र हूँ—वस्तु को ढोनेवाला। वस्तु एक तसल्ली है—जो माँ नाम की एक औरत को मिली है और बाप नाम के एक मर्द को मिली है या शिव-पार्वती को मिली है, जिन की मूर्तियोंवाले इस मन्दिर की शोभा बढ़ गयी है—कि इस मन्दिर से बेटों की मुराद मिलती है।

मेरा ख्याल है—महन्त किरपासागरजी सचमुच दूरदर्शी हैं। उन्होंने मेरे जन्म के समय ही मेरे मन की उस अवस्था का अनुमान लगा लिया था, जो कुछ सोच और समय आने पर मेरे अन्दर पैदा हो जानी थी। इसलिए उन्होंने एक सक्रान्तिवाले दिन मेरा नाम रखा था—किरपापात्र।

किरपापात्र या भिक्षापात्र एक ही बात है। एक तरह से हम सब भिक्षा पर ही पलते हैं—सिर्फ मैं नहीं साई भगतराम भी, गोविन्द साधु भी, महन्त किरपासागर भी। हाथ पसारकर कोई भी किसी से कुछ नहीं माँगता, सब पैरों के जोर से माँगते हैं—कभी अपने पैरों के जोर से और कभी उन से बहुत तगड़े शिव-पार्वती के पैरों के जोर से—भक्तजन जो कुछ देते हैं, शिव-पार्वती के पैरों पर रख देते हैं, कई महन्तजी के पैरों पर भी रख देते हैं कोई गोविन्द साधु के पैरों पर भी रख देते हैं,

और कोई-काई साइ भगतराम के परा पर भी—मेर पर भी इन पैरो में शामिल हो रहे ह—हम सब जन हाथा का काम परो से ले रहे ह

पर भिक्षापात्र हाने का खयाल सिफ मुन्हे आता ह। पता नही, क्या ? शिव पावती तो खर बोल नही सकते मह्तजी के मुँह से भी ऐसी बात मैं ने कभी नही सुनी। गाविन्द साधु गूंगा है उस के कुछ बोल्ने का सवाल ही नही उठता, पर उस के मुह स भी नही ल्गता कि वह किसी चीज का भीख ममझता हो—बल्कि बादामा की ठण्डाई अगर कभी उस के हिस्से नही आती तो वह घूरकर सब की तरफ देखता ह। साइ भगतराम ता बिल्कुल अलबेला ह वह बाजरे की सूखी रोटी भी उसी स्वाद से चबा जाता ह जिस तरह गिरी को पजीरी। सिफ मेर गले में कुछ अटका हुआ ह—और हर ग्रास के साथ चुभ सा जाता ह।

डेर के नाम पर सिफ चार कोठरियाँ ह—एक मह्न्तजी की, एक मेरी, एक गाविन्द साधु और साइ भगतराम की, और एक आने-जानेवाले साधुआ के लिए। इन काठरिया की झाड-बहार साइ भगतराम के जिम्मे ह। मन्दिर इन काठरिया से बिलकुल अल्ग ह—एक पथरीली पगडण्डा का लाघकर पहाड के एक वक्ष में बना हुआ। एक छोटी सी पानी की नहर मन्दिर के पैरो में बहती ह। इस नहर के साथ चौतरे की और पथराला पगडण्डी की सफाई भी अक्सर साइ भगतराम ही करता ह। (वसे यह गाविन्द साधु के जिम्मे ह) मन्दिर के फश को धोना और पोछना मेर जिम्मे ह—मुझ से पहले मह्न्तजी के अपने जिम्मे था—और ल्गता ह इस काम से हम सब भिक्षा के दान को अपने से झाड देने ह। सब स मेरा मतल्ब ह—सारे सिवा मरे।

मन्दिर पत्थरा या इटा से बनाया हुआ नही एक बहुत बडी चट्टान को बीच में से खोदकर बनाया हुआ ह। चट्टान का ऊपर का हिस्सा छत की तरह ह नीचे का हिस्सा फश की तरह। इस के अन्दर की मूतिया भी कही बाहर से लाकर रखी हुई नही बीच के पथरीले हिस्से को ही तराशकर बनायी हुई ह। और बाहर से जा नदी गुजरती ह, वह पहाड के पिछले हिस्स म से रस आती ह कि उस का कुछ पानी चट्टान के ऊपर के हिस्से से टपककर बूद बूँदकर मूर्तियों के शरीर पर गिरता रहता ह। मूतिया गेज धुली हुइ होता ह—ल्गातार पडते पानी से सील्न की एक पतली सी परत उन पर जम जाती ह, जिसे राज एक मोटे कपडे से मल्कर उतारना होता ह। और ल्गता ह—भिक्षा का शब्द भी बूद-बूंद गिरत पानी की तरह दिन रात मेर जिस्म पर पडता रहता ह। मैं किसी भी खयाल के माटे कपडे स मल्कर उसे उतारू वह तब भी एक सील्न की पतली परत की तरह मेर ऊपर जमा रहता ह। राज जम जाता ह।

मह्न्त निरपासागरजी से निजी तौर पर मुझे काई शिकवा नही—उन्हाने अपने लिए आये चढावे में से हिस्सा निकाल्कर मुझे पाला ह पनाया ह—सिफ शिकवा ह तो उन के सागर होने से, और अपने पात्र हाने से।

शिक्वा भी नही, नफरत ह।

और यही नफरत उस माँ नाम की औरत से ह जिस ने इस पात्र को अस्तित्व दिया ह। यह नफरत इस हद तक ह कि वह जब भी मन्दिर के दशन के लिए आती ह, मैं किसी बहाने मन्दिर से बाहर चला जाता हूँ। कभी वह मेरी कोठरी की दहलीज रोक ले और अपने पल्लू म बँधी हुई अखरोट की गिरियाँ जबरन मेरे मुह में डाल दे, तो उस की पीठ मुडते ही मैं मुह में से वे गिरियाँ थूक देता हूँ।

बाप नाम के मर्द को जब देखता हूँ—वह अपने बदन की रखवाली करता हुआ एक प्रेत-सा लगता ह।

किरपासागरजी के गाल मुझे दो लाल पके हुए फोडों की तरह लगते ह, जिन पर एकदम पुल्टिस बाँधने का ख़याल आता ह

मा—धीरे धीरे चलती हुई जब एकदम सामने आ जाती ह—वह मुझे पजों के बल चलती हुई बिल्कुल एक बिल्ली लगती ह, जो अभी एक चूहे की गरदन दबोच लेगी

बाप—दुबला-पतला-सा और सिर का कन्धों के ऊपर एक बोझ सा डालकर चलता हुआ मुझे खेता में गाडे हुए 'डरने' की तरह लगता ह और मैं चिडिया-कौआ की तरह उस से डर जाता हूँ

एक साधारण आम से शायद यह सब कुछ नही दीख सकता पर मुझे पता ह, मेरी आखो में नफरत की डोरियाँ पडी हुई ह

गोविन्द साधु जब बूटी रगडकर पीता ह उस की आखो में भी लाल डोरिया पड जाती ह और वह लाल डोरियावाली आँखो से जब मुझे देखता ह—मैं उस बीस बरस का एक जवान आदमी नही, जवान औरत नज़र आता हूँ

तीन-चार साल हो गये, गोविन्द ने एक दिन अपनी तोरी जसी लटकती टाँगों पर बादाम रोगन की मालिश करते हुए जबरदस्ती मेरी बाह पकड ली थी, और वह मेरी पीठ पर और दो टागो पर बादाम रोगन की मालिश करने लगा था। मुझे बिल्ली, कुत्ता या कोई भी जानवर अच्छा नहा लगता, उस के लम्बे-लम्बे हाथ मुझे कुत्ते के पौधो की तरह लगे थे, मैं ने जब छूटने के लिए जोर लगाया था तो उस ने अपनी पूरी ताकत से मुझे एक चौड पत्थर पर गिराकर । मैं बडे जोर से चिल्लाया था—इतने जोर से कि अन्त में किरपासागरजी यह आवाज़ सुनकर वहा पहुँच गये थे। उन्होने पास ही पडे हुए बूटी रगडनेवाले डण्डे से गोविन्द साधु को ऐसे पीट डाला था—जसे वह गोविन्द साधु को भी बूटी की तरह ही रगड देंगे। उस दिन के बाद गोविन्द साधु ने मुझ से कुछ नही कहा, बल्कि मैं दोपहर के समय जिस पेड के नीचे बैठकर पढ़ता हूँ, वह वहा से घूमकर दूर जा बठता ह। पर यह मैं अब भी देख पाता हूँ—वह जिस दिन बूटी रगडकर पी ले, और उस की आँखो में लाल डोरियाँ पड जायें वह उन की कोरो में से मुझे आते-जाते ऐसे देखता ह—जसे मैं उस को बीस बरस की

जवान औरत दिखता हाऊँ

पर उस से मुझे नफ़रत नहीं। वह खुजली के मारे हुए कुत्ते की तरह लगता है। कुत्ते से कोई रास्ता काटकर निकल सकता है तो उस एक ग्लानि-सी हो सकती है, पर उस के खून म नफरत नही खौलती।

इस तरह साइ भगतराम एक खस्सी (बधिया) जमा लगता है, जिस से किसी गाय को कोई खतरा नहीं। इसलिए उस से भी कोई नफरत नही होती।

नफरत के पात्र सिफ वे हैं जिन्होने अपनी झोलियो में दान पुण्य भरा हुआ है—और या भिक्षापात्र—मैं स्वय।

दो

नफरत नफरत नफरत चिडिया का एक झुण्ड अभी चहकता गुजरा है। शायद उधर की दीवार के पास साइ भगतराम ने दाल-चावल सूखने के लिए डाल रखे थे चिडिया ने उसे कुग्गा समझ लिया था, और साइ ने या गोविन्द साधु ने अपना घुघरू-वाला डण्डा खटका दिया था कुछ आवाज-सी आयी थी और फिर चिडियो का झुण्ड मेरे ऊपर से चहकता हुआ गुजर गया। सब चिडियाँ जस चहक रही थी—नफरत नफरत नफरत

यह शब्द बहुत बडा है—चिडियो की चोंच में पूरा नही आ रहा था, पर वे इसी शब्द का बार-बार दोहरा रही थी—जितना भी उन की चोच म पकडा जा रहा था

डेरे में परसा से मूसलनाथ का डण्डा फिर खडक रहा है। वह बरस में एक आध फेरा जरूर लगाता है। फिर उन दिनो म रोज भाग का दौर चलता है। बहुत छोटा था, जब वह मुझे झोली में बिठाकर—नही बिठाकर नही झोली में दबोचकर कहता था 'तुझे नाथ जोगिया के नाम आते है? जो तू बिना भूले सारे नाम सुना दे तो मैं तुझे इलायची और मिश्री दूँगा इलायची और मिश्री के लिए नही, पर उस की झोली में स छूटने के लिए मैं जल्दी से जोगिया के नाम दोहरा देता था—आदिनाथ महेन्द्रनाथ, उदयनाथ सन्तोषनाथ कन्थडनाथ, सत्यनाथ अचम्भनाथ, चौरंगीनाथ और गोरखनाथ। वह झोले में से इलायची मिश्री निकालने लगता, तो मैं उस की बाहो स छिटककर परे जा खडा हो जाता था, और जोर से कहता था—और तेरा नाम मूसलनाथ। मुझे पता था उस का नाम गोल बाबा है, पर उस के हर समय डण्डा पकडे रहने के कारण मैं ने उस का नाम रख दिया था—मूसलनाथ। "धन तेरे की," कहता हुआ वह इलायची और मिश्री को फिर मुट्ठी में भींच लेता था, और मुझे अपनी बाहो में दबोचने के लिए आगे बढता था। इतने में मैं दौड

जाता था।

आज पता नहीं क्या, ऐसा लग रहा है कि अगर वह आज एक बार मुझे फिर याली म दबाचकर आगियों के नाम पूछे, तो सारे नाम बताने के बाद मैं सिर्फ़ यही कहूँगा—तेरा नाम मुझे मालूम नहीं, पर मेरा नाम है—भिक्षानाथ। अपनेआप से इस से बडा मज़ाक मैं और क्या कर सकता हूँ

सिद्ध मकरध्वज बनाने का नुसखा सिर्फ़ शील बाबा को आता है, पिछले बरस उस ने महन्तजी को बनाकर दिया था, सारा साल उन्हें जाडों का दद नहीं हुआ था। इस बरस वह फिर बना रहा है और इस बरस उस ने महन्तजी के कहने पर मुझे उस का नुसखा लिख दिया है—सोना आठ तोले, पारा एक सेर, आँलेसार गन्धक दो सेर। इन तीनों चीजों को पहले लाल कपास के फूलों के रस में, फिर घीकुआर के रस में घोटकर, आतशी शीशे में डालकर, मुँह पर खडिया मिट्टी लगाकर, और मुलतानी मिट्टी के पाचे कपडे की सात तहें बोतल पर लपेटकर सुखा लेना। इस शीशी को एक हाँडी म साधा रखना, और उस के चारों तरफ बालू रेत भर देना। बत्तीस पहर आग की एकसार आँच लेना। फिर बोतल के मुँह पर उडकर जो लाल पदार्थ जम जायेगा—वही मकरध्वज होगा

और शील बाबा ने यह नुसखा लिखाते हुए मेरे कान को मरोडकर कहा था—अनाडी हकीम की तरह कुछ कच्चा-पक्का किसी को न लिख देना। पारा कच्चा रह गया तो खानेवाले का हड्डियाँ गल जायेंगी

ज़बान रोक ली थी नहीं तो ज़बान से निकलने लगा था—मूसल बाबा! भिक्षा भी कच्चे पारे की तरह होता है, खानेवालों की हड्डियाँ गल जाती हैं।

पारे को शिव धातु कहते हैं, भिक्षा को पता नहीं क्या कहते हैं भिक्षा को माँ धातु कहना चाहता हूँ।

वह मेरी मा आज भी आयी थी। दबे पाँव चलती हुई वह मेरी कोठरी तक आ गयी थी। वह जब दुबककर आती है, मुझे हमेशा एक बिल्ली का खयाल आता है। कल सारा दिन यही खयाल आता रहा था—सारा दिन हमारे डेरे में एक बिल्ली को पकडने की भागदौड होती रही थी। एक कोठरी में दूध की कटोरी ऐसे दहलीज के पास रख दी गयी थी, कि बिल्ला ने जब कटोरी को मुँह मारा था, बाहर ताक के पीछे खडे साधु भगतराम ने तुरत दरवाजा भिडका दिया था। बिल्ली कोठरी में बन्द हो गयी थी। पर जब दूसरी कोठरी में से बीच के दरवाजे को खोलकर बिल्ली को पकडने का यत्न किया गया तो वह उछलकर खिडकी के ताक से ऐसे जा लगी कि खिडकी की पतली-सी कुण्डी टूट गयी, और बिल्ला उस खिडकी में से बाहर कूद गयी। लेकिन आखिर डेरे के तीन साधु उस के पीछे पडे हुए थे, शाम तक उन्होंने बिल्ली को पकड ही लिया—और आज उस बिल्ला को मारकर उस की एक हड्डी को निम्बे के पानी में पीसा जा रहा है। गोविन्द साधु को पिछले दिनों से एक फोडा हो गया है। शील बाबा

कहते हैं कि यह भगंदर है, और उस के ऊपर लगाने के लिए बिल्ली की हड्डी का लेप तैयार करना है।

कल सारी रात मैं सपने में एक बिल्ली पकड़ता रहा था—हालांकि दिन में बिल्ली पकड़ने के लिए मैं ने किसी का साथ नहीं दिया था—पर सपने में मैं ऊंचे ऊँचे पत्थरों पर से गुज़रता एक बिल्ली के पीछे-पीछे दौड़ता रहा—और अजीब बात थी कि मेरे आगे-आगे दौड़नेवाली चीज कभी एकदम बिल्ली बन जाती थी, कभी मेरी माँ

मुझे पता नहीं भगंदर फोड़ा क्या होता है, उस से कैसे पीप बहता है, और उस में कैसे टीसें उठती हैं—पर मेरी हड्डियों में एक दर्द है, एक एक हड्डी में एक एक जोड़ में, एक एक खयाल में

और कल ही भयानक खयाल आया है—मन के इस फोड़े पर लेप करने के लिए अगर माँ की पसली को पीसकर

मनु ने इक्कीस नरक माने हैं, महाभारत में छियासी नरक-कुण्ड लिखे हुए हैं—और मेरा यकीन है उन में से एक नरक कुण्ड ज़रूर मेरे मन की हालत जैसा होता होगा।

तीन

गोविन्द साई का शाह बाबा की दवा से शायद सचमुच आराम हो गया है—आज उस का घुँघरूवाला डण्डा फिर उस की पत्थर की कूँडी में छनक रहा है। वह भाँग घोट रहा है और उस का गूँगापन भी घुँघरूवाले डण्डे की तरह छनक रहा है। दे रगड़ा मस्त कलन्दर दे रगड़ा यह बोल उसे साई भगतराम ने सिखाये थे—जो उस के गले में से छनकर बन जाते हैं—'गे गे गे

पता नहीं, यह घुटती हुई भाँग की ठण्डी-सी गन्ध है या कुछ और—अचानक मुझे ठण्ड सी लगने लगी है। पर ऐसा कई बार लगता है, बैठे-बैठे लगने लगता है—कई बार धूप में बैठे हुए भी और कई बार रजाई में सोते हुए भी

बहुत छोटा था, स्कूल पढ़ने के लिए जाता था, तो एक दिन मेरा सहपाठी रलिया स्कूल से लौटते वक्त मुझे अपने घर ले गया—आदर की चीज़ थी इसलिए रलिये की माँ ने मेरे बैठने के लिए मूढ़ा डालकर, मूढ़े पर खेस बिछा दी थी। और मैं सारे घर में एक अलग-सी चीज़ की तरह उस मूढ़े पर बैठ गया था।

रलिया के लिए उस ने मूढ़ा नहीं बिछाया था, बल्कि उस ने उसे झिड़ककर उस की बाँह अपनी तरफ खींची थी—'यह मुँह पर तू ने सियाही कहाँ से लगा ली ?' और अपने दुपट्टे के पल्लू से उस ने रलिये का मुँह रगड़कर पोंछा था। सूखे पल्लू से सियाही नहीं छूटी था, इसलिए उस ने कन्नी को थोड़ा सा थूक लगाकर, उस कन्नी को रलिये के मुँह पर रगड़ा था।

रलिया उस से बाह छुड़ाकर और हाथ में पकड़े हुए बस्ते को जल्दी से वहीं रखकर, मेरे साथ जाने के लिए आतुर था, पर उस की मां ने फिर डांट दिया, "जाता कहां है भूखा पेट लेकर, बैठ जा सीधा होकर निकम्मी औलाद !" और फिर उसी पल बड़े दुलार से कहने लगी— 'किसी का घर लाकर कोई भूखा थोड़े ही भेजा जाता है ? बेअक्ल, अभी मैं गरम-गरम रोटी पका देता हूं, तू भी खा और अपने दोस्त को भी खिला" और उस ने रलिये को समझाते हुए उस का माथा चूम लिया था।

एक औरत नहीं, जैसे एक फिरकी माथा चूम रही थी।

चूल्हे में अधजली लकड़ियां का धुआं सारे घर में घूम रहा था। रलिया ने जब अपना बस्ता फेंका था तो उस से एक किताब उधर गिर गयी थी। रलिया का छोटा भाई खटोले पर सोता हुआ अचानक रोने लगा था उस के मुंह पर बैठी मक्खियां ने शायद बहुत जोर से भिन भिन की थी। रलिये की मां ने जैसे एक हाथ से चूल्हे को हवा की और दूसरे हाथ से रलिये के बस्ते से गिरी किताब को उठाकर पहले माथे से लगाया और फिर बस्ते में रखा और एक हाथ से खटोले पर रो रहे बच्चे के मुंह पर से मक्खियां को उड़ाया लग रहा था कि शिव के तीन नेत्रों की तरह रलिया की मां के तीन हाथ थे

कमरा धुंधला-सा पर था—पर लकड़ियों की तिड़ तिड़ में से मक्खियां की भिन भिन में से रलिया का पढ़ता निश्चिंता में से, और रलिया के मुंह को चूमती उस की मां के सुख में घुल मिलकर एक सेंक-सा उठकर मेरी तरफ आने लगा था—एक गरमायी सा

मैं फिर कभी रलिया के घर नहीं गया, पर कभी-कभी अचानक बैठे-बैठे या सोते हुए मुझे ठण्ड-सी लगती है और पता नहीं क्या मुझे बचपन की वह बात याद आ जाती है

चार

कल शिवरात्रि को मां ने व्रत रखा था, पूजा के लिए महन्त विरूपाक्षगिरजी को बुलाया था। सुना है कि उस की यह ताकीद थी कि पूजा के समय मैं भी उन के साथ जाऊं।

मुहूर्त टालने के लिए मैं मन्दिर के पिछवाड़े जंगल में इस तरह छिप गया था कि अगर वे मुझे ढूंढ़ने तो पूजा का मुहूर्त गुज़र जाता।

पता लगा कि वह पूजा के वक्त रोये जा रही थी

आज साढ़ भगतराम ने उस के बड़े पास्ते में एक बात बतायी, 'इस लड़के की रगों में खून की जगह पानी भरा हुआ है।"

सुनकर हंसी-सी आ गयी है। मेरा खयाल है, उस ने ठीक कहा है। पद्मपुराण

में एक कथा आती है कि मार्कण्डेय ऋषि जब तप कर रहा था तो आस-पास खाने के लिए पत्तों के सिवा कुछ न था। सो वह बरसों तक पत्ते खाता रहा, और उस के शरीर में खून की जगह हरे पत्ते का रंग भर गया। ऋषि ने जब अहंकार से भरकर यह बात महादेव को बतायी तो महादेव ने उस का अहंकार तोड़ने के लिए दिखाया कि उन के शरीर में खून की जगह भस्म भरी हुई है। भला अगर उस ऋषि की नाड़ियों में खून की जगह पत्तों का हरा रस हो सकता है, और महादेव की नाड़ियों में भस्म, तो मेरी नसों में ठण्डा पानी क्यों नहीं हो सकता? आखिर मैं ने अपने जन्म से लेकर अब तक मन्दिरवाली भट्ठी का पानी पिया है।

आज फिर मुझे हँसी-सी आ रही है। हँसी पता नहीं क्या होती है, पर जो कुछ आयी था शायद हँसी ही थी।

मैं शिवजी की मूर्ति के पास खड़ा था। यह प्रार्थना का समय था। मन्दिर की दहलीज़ में से गुज़रते हर किसी का हाथ लोहे के घण्टे को एक बार जरूर छू लेता था, और घण्टे की आवाज़ प्रार्थना के बोलों से टकरा रही थी—आवाज़ बहुत भारी थी, इसलिए वह साबुत थी, सिर्फ बोल टूट रहे थे

जय जय जय जय जय त्रिपुरारी
कर त्रिशूल साहत छवि भारी
शारद नारद शीश नवाये
नमो नमो जय नमो शिवाय

और मैं ने देखा—सामने भरी माँ मूर्तियों के आगे दोनों हाथ जोड़ खड़ी थी। पत्थर की छत से छनकर बूँद-बूँद पानी मूर्तियों पर भी गिरता रहता है और देखनेवालों पर भी। उस के सिर के पल्ले पर भी पड़ रहा था—और वह बिलकुल भीगी हुई बिल्ली की तरह लग रही था—पर हँसी इस बात पर नहीं आयी था—इस बात पर आयी थी कि आज उस ने अपने बालों को मेहँदी से रँगा था। मेहँदी का खयाल मुझे बड़ी देर बाद आया, यह याद कर के कि कुछ दिन हुए उस ने मेरे सामने माथे की वनपटियों को दबाते हुए साईं भगतराम से सिर दर्द का इलाज पूछा था और साईं ने उसे मेहँदी पीसकर सिर पर लगाने के लिए कहा था। पर अचानक जब उस के बाल लाल-से दिखे—तो मुझे लगा वह आज काले और सफेद बिल्ले की जगह अचानक भूरी बिल्ली बन गयी थी और वह बिल्ली की तरह म्याऊँ-म्याऊँ करती लग रही थी—

की ही दया तहाँ करी सहाइ
नीलकण्ठ तब नाम कहाई
प्रगटे उदधि मथन में ज्वाला
जरे सुरासुर भये बेहाला

जिस्म में एक कपकँपी सी आ गयी—याद आया कि बहुत छोटा था, अभी अलग कोठरी में सोने लायक नहीं था। चार बरस का होऊँगा, महन्त किरपासागरजी

की कोठरी में बिछे उन के आसन के पास ही एक चटाई पर सोता था, और अचानक एक रात आँख खुल गयी थी—सामने जो कुछ दिखा था उसे देखकर घिघियाकर रो पड़ा था। वह तो आदमक़द कोई चीज़ थी, पर उस वक़्त वह सारी कोठरी में फैली हुई लगती थी—एक बहुत बड़ा और काला सियाह मुँह था जिस पर दोनों आँखें सफ़ेद और लाल रंग में जलती दिख रही थी। सिर पर कुछ हरे-हरे पंख झूल रहे थे।

महन्त किरपासागरजी ने मुझे उठाकर अपनी गोद में ले लिया था, पर मैं रोये जा रहा था, और काँपे जा रहा था।

"तू उसे हाथ लगाकर देख, यह तुझे कुछ नहीं कहेगा," महन्तजी ने एक बार मुझे अपनी गोद से हटाकर उस की तरफ़ करना चाहा था मेरा डर उतारना चाहा था पर उस की तरफ़ देखते ही मेरी फिर चीख निकल पड़ी थी।

सवेरे दिन के उजाले में, बाहर डेरा की खुली जगह पर महन्तजी ने मुझे बिठाकर, और उसे भी सामने बिठाकर मुझे समझाया था 'यह बड़ा अच्छा आदमी है, दीवाना साधु हरिया बाबा।'

बहुत देर बाद मुझे समझ आयी कि साधुओं का एक समुदाय दीवाना साधु कहलाता है और इस समुदाय के सारे साधु मुँह पर काला रंग मलकर, सिर पर मोर के पंख खोंस लेते हैं।

पर उस रात की भयानकता बड़ी देर तक मेरी याद में अटकी रही थी—एक कुछ बहुत काला-सा, मेरी आँखों के आगे फैला हुआ, और उस में मोर का एक रंग-बिरंगा पंख हिलता हुआ

आज की इस घटना से पता नहीं उस का क्या सम्बन्ध था—माँ के मेंहदी रँगे बालों को देखकर मुझे मोर का पंख याद आ गया। लगा मेरे सामने एक बहुत बड़ा खालीपन है—और उसी काले खालीपन में मेंहदी रंग का एक गुच्छा लटक रहा है—मोर के पंख की तरह।

उस के होंठ बराबर फड़क रहे थे

स्वामी एक है आस तुम्हारी
आय हरो मम संकट भारी
शंकर ही संकट के नाशन
संकट नाशन विघ्न विनाशन

माँ की आँखों के आगे पतली-मोटी झुर्रियों का एक जाल-सा फैला हुआ है। आँखें उस जाल में फँसी हुई लग रही हैं, नहीं तो कई बार ऐसा लगता है अगर ये जाल में फँसी हुई न हों तो उस के मुँह से उछलकर सीधी मेरे मुँह पर आकर चढ़ जायें

पर काले और फैले हुए खालीपन में ये आँखें मुझे कभी-कभी ही दिखती हैं, नहीं तो काला और फैला हुआ यह खालीपन बड़ा अडोल होता है। सिर्फ़ आज यह लगा

यात्री

रहा है कि उस खालीपन में मेंहदी रंग वाले का गुच्छा लटक रहा है—मोर के पंख की तरह।

पाँच

भुलावा एक बार हो सकता है, दो बार हो सकता है पर यह जो रोज, आये दिन लगता है—यह शायद भुलावा नहीं होगा

प्रभात का समय था। पूजा के समय मन्दिर में खड़ा था मूर्तियों के बिल्कुल पास था इसलिए मूर्तियों के चरणों में चढ़ाये हुए फूल मेरे पैरों तक भी पहुँचे हुए थे और फिर सुन्दरा ने फूलों का एक झोली इस तरह पलटी कि मेरे पैर उन के नीचे ढक-से गये। और फिर जब सुन्दरा ने जमीन तक माथा झुकाकर मूर्तियों को प्रणाम किया तो लगा कि उस का एक हाथ मेरे पैर को छू रहा था।

जरा-सा चौंककर मैं ने आँखें नीची कर ली—अपने पैरों की तरफ पर पैरों के ऊपर और पैरों के गिर्द फूलों का इतना ढेर था कि न अपना पैर दिखता था न उस का हाथ।

यह भुलावा भी हो सकता था इसलिए इस बात की तरफ फिर कभी ध्यान नहीं दिया। पर यह जिस दिन की बात है, उस के तीन चार दिन बाद सक्रान्ति थी। रोज मन्दिर में न इतने भक्त आते हैं न इतने फूल चढ़ते हैं पर सक्रान्तिवाले दिन पूर्णिमा वाले दिन, अमावसवाले दिन या और किसी ऐसे दिन छोटे-से मन्दिर का सारा चबूतरा फूलों से भर जाता है। उस दिन सक्रान्तिवाले दिन फिर ऐसा लगा था—सुन्दरा ने फूलों की एक झोली मूर्तियों के चरणों में पलटी थी और फिर मूर्तियों के चरणों में सिर झुकाती हुई फूलों के ढेर में से बाँह गुजारकर, लगा मेरे एक पैर पर अपने हाथ की हथेली रख दी हो।

मन का जोर-सा लगाकर, दूसरी बार की घटना को भी एक भुलावा कह लिया था। पर पूर्णिमावाले दिन फिर ऐसा ही हुआ था अमावसवाले दिन फिर इसी तरह और इस से अगली सक्रान्तिवाले दिन कल फिर

उस ने और कभी कुछ नहीं कहा। पर बहुत दिनों की एक बात है—तब मैं ने इस बात को भी एक संयोग ही समझा था—पर यह शायद संयोग नहीं था

वह अपने खेत की मेड़ पर चलती गाँव की तरफ लौट रही थी। शाम का अँधेरा इतना गहन हो गया था कि एक बार देखकर भी जो कोई अपने ध्यान में हो जाये, तो यह नहीं पता लगता था कि किसी ने देखा या पहचाना था या नहीं। मैं अपने ध्यान में नदी की तरफ जा रहा था। नदी बिल्कुल उस के खेत के सामने पड़ती है—और फिर लगा वह भी नदी की तरफ लौट पड़ी थी।

कुछ आगे जाकर मैं ने पीछे एक बार देखा था—वहां तक, जहां तक लगा कि वह नदी के किनारे जाकर खडी हो गयी। एक आवाज सी सुनाई दी, जसे वह नदी की तरह एक लम्बी आवाज में गा रही थी

पीछे मुडकर जरूर देखा था, पर इस तरह नहीं कि उस का यह दिख जाये कि मैं उस की आवाज सुनकर खडा हो गया था। एक पेड के तने के पास होकर जरा थम-सा गया था।

देख सकता था—वह गा रही थी, पर बिल्कुल अपने ध्यान में। नदी के किनारे, पानी में हाथ लटकाकर कुछ धो रही थी—शायद खेता से जो साग-भज्जी तोडकर लायी थी, उसे धो रही थी। अधेरे म बहुत कुछ नहीं दिख रहा था। पर यह दिख रहा था कि वह बडी बेखबर थी न उस तरफ देख रही थी जिस तरफ मैं गया था, न किसी और तरफ। सिर्फ जो कुछ गा रही थी, वह बडा अजीब था। उस की पक्तियाँ पूरन भक्त के किस्से में से थी, जिन में उस के नाम जसा नाम आता है

मैं भुल्ली हां, तुसीं न होर काई
लाइयां जोगियां नाल प्रीत लोका[1]
जगल गये न बौहडे सुदरा नूं
जोगी नहीं जे किसे दे मीत लोको।

पेड के तने के पास मैं कुछ देर खडा रहा था।

ये पक्तियाँ, न जाने क्या, ठण्डे पानी के छींटा की तरह लगी थी। मैं ने अपने कन्धे पर रखी हुई खद्दर की गेरुई चादर जरा कसकर दोना कन्धा पर लपेट ली थी

पर देखा था, वह फिर बेध्यान नदी के किनारे से लौट पडी थी—सीधी गाव को जाती हुई पगडण्डी पर। और लगा था—उस की आवाज सयोग से मेरे काना म पड गयी थी, उस ने जान-बूझकर मेरे काना में नहीं डाली थी।

वसे एक बात उस दिन रह रहकर मेरी याद में आती रही थी—बहुत साल हुए, जब मैं छोटा था, गाव की औरतें जब कन्या जिमाती थी, मुझे मन्दिर में से जबरन पकडकर ले जाती थी 'यह हमारा बीर लगूरिया' कहती थी, और मुझे छोटी छोटी लडकियो की पगत में बिठा देती थी।

और एक बार की बात है—इसी सुन्दरा की मा ने कन्यायें जिमायी थी। उस दिन सुन्दरा ने सिर पर गोटेवाली लाल चुनरी ओढ रखी थी। उस के हाथ भी लाल थे। वह हम सब को अपनी हथेलियाँ दिखा रही थी—"देखा बल्लाजी, मैं ने मेहंदी लगायी है।' और सुन्दरा की मौसी ने सब लडकिया के पैर धोकर उन को जब मौली बाधी

---

[1] मुझ से भूल हुई तुम कोई यह भूल मत करना, तुम कोई जोगियों से प्रीत मत करना। मुझ सुन्दरा के पास वह फिर लौटकर न आया, वह ऐसा जगलों में चला गया कि फिर वहीं खो गया। जोगी किसी के दोस्त नहीं होवे।

और एक पगत म बिठाया, तो मुझे सुन्दरा के पास बिठाती हुई जोर से सुन्दरा की माँ से कहने लगी, "ओ बहन ! जरा एक बार इधर देख। ये दोनो जने सुन्दरा और पूरन की जोडी लगते ह। यह छोटा सा साधु सचमुच किसी राजा का बेटा लगता ह

छोटी छोटी थालियों में पूरी, हल्वा और छोले देती हुई सारी औरतें हँस पडी थी। उस वक्त मुझे बिलकुल पता नही लगा था कि वे क्या हँसी थी। सुन्दरा को भी पता नही लगा था पर फिर जब मैं ने कुछ बरसो बाद पूरन भक्त का किस्सा पढा तो फिर एक बार दशहरे के मले में जब सुन्दरा ससुराल से आयी हुई थी और अपनी मौसी की बेटी को मेला दिखाती अचानक मेरे सामने आ गयी थी तो हँसकर उस ने अपनी मौसी की बेटी को कहा था, 'ले देख ले, मेरा पूरन मेरा जोगा"

पर यह बहुत दिनो की बात थी। सिर्फ उस दिन रह रहकर मेरी यादों में उलझ रही थी जिस दिन नदी के किनारे मैं ने उसे बेखबर गाते सुना था—नदी की तरह लम्बी आवाज में वह कह रही थी 'मैं भूली हूँ तुम में से कोई और जोगियो से प्रीत न लगाना"

लेकिन फिर इस बात का भी एक अजीब-सा सयोग समझ लिया था।

पर यह जो रोज आये दिन फूलो के ढेर में छिपा हाथ मेरे पैर को छू जाता है

पैर कुछ देर के लिए सुन्न-सा हो गया लगता ह। किसी कथा-कहानी में जसे कोई राजकुमारी फूल तोडने जाती है फूलो की किसी डाली को हाथ लगाती ह डाली से लिपटा हुआ साप उस की उगली को डस जाता ह और वह वही मूर्च्छित होकर फूलो की झाडी में गिर पडती ह—मेरा पैर भी फूलो के ढेर में मूर्च्छित-सा हो जाता ह

उस का बाह एक साँपिन की तरह फूलो के ढेर में फुफकारती-सी लगती ह।

छह

आजकल महन्तजी का दाया गाल सूजा हुआ ह। उन की दो दाढें दुखती ह। पर पूजा के नियम में उन्होने कोई फर्क नही आने दिया। सिर्फ इतना फर्क पडा ह कि श्लोकों के सारे शब्द उन के मुँह में दानो की तरह अटके लगते ह—हिलते भी ह पर बाहर नही निकलते।

साइ भगतराम आजकल दो वक्त उन के लिए लपसी बनाता ह सिर्फ पतली पतली लपसी उन के अन्दर जा सकती ह और कुछ नही। पहले वह रोज सवेरे रात की भीगी बादाम की गिरियाँ छीलकर और शहद में डालकर खाते थे, पर अब गिरिया चबायी नही जा सकती इसलिए कुछ गिरिया को पीसकर लपसी म मिला लिया जाता है। वह नियम से जिस वक्त लपसी पीते ह एक कटोरी लपसी मुझे भी जरूर पिलाते

है, अपने पास बिठाकर। जैसे शहद और गिरियाँ पहले राज अपने पास बिठाकर खिलाते थे। सिर्फ यह पता नहीं लगता कि इस सब कुछ को मैं जिस एक शब्द 'उन की किरपा' से जोड़ना चाहता हूँ, वह जुड़ता क्यों नहीं

रात जब वह सोने लगते हैं, साइं भगतराम नियम से उन के पाँव दबाता है। मैं ने कई बार चाहा कि साइं भगतराम का यह नियम मैं अपना नियम बना लूँ, पर उन्होंने हर बार अपने हाथ के इशारे से मुझे पैरों की तरफ से हटा दिया। पता नहीं, उन्हें मेरी सेवा क्या स्वीकार नहीं ? वैसे 'सेवा' शब्द को लोग जिन गहरे अर्थों में लेते हैं, मैं इस उस तरह कभी भी नहीं ले सका। यह सिर्फ एक नियम की तरह लेना चाहता था—सवेरे उठने के नियम की तरह या कीकर की दातुन करने के नियम की तरह। पर मुझे इस नित्य नियम में डालना, लगता है उन्हें मंजूर नहीं। या शायद उन्होंने इस के असली रूप में देख लिया है—यानी 'सेवा' से बहुत छोटे रूप में। और इस छोटे रूप में उन्हें यह मंजूर नहीं हो सकता।

अब कोई तीन दिनों से साइं भगतराम लपसी में पोस्त के डोडे भी पीसकर डाल देता है, ताकि उन्हें जल्दी नींद आ जाये, और दाढ़ की पीड़ा से उन्हें कुछ देर के लिए चैन मिल जाये। इसलिए वह रात को जब बहुत जल्दी ऊँघने लगते हैं, मैं साइं भगतराम को उस की 'सेवा' से उठाकर खुद उस की जगह ले लेता हूँ। ऊँघते हुए वह यह नहीं पहचान सकते कि उन के पाँव को मेरे हाथ दबाते हैं या साइं भगतराम के। पर हैरानी मुझे उन पर नहीं, अपनेआप पर हो रही है—कि यह मेरा नियम 'सेवा' की हल्की-सी छुअन से भी इतना दूर है कि उन के पैरों को दबाने के बाद, मैं जितनी देर अपने हाथों को अच्छी तरह मल मलकर न धो लूँ सो नहीं सकता।

समझ नहीं सकता, पर नफरत जैसी कोई चीज़ है जो मेरे मुँह में एक दाढ़ की तरह उगी हुई है।

लगता है, जो कुछ खाता हूँ इसी दाढ़ से चबाता हूँ। चाहे कई बार यह भी लगता है कि इस दाढ़ में बड़ी पीड़ा हो रही है। यह मेरे मुँह में हिल रही है पर निकलती नहीं।

और कभी यह सोचता हूँ कि कहीं किसी दिन कोई चिमटी-सी मिल जाये, तो उस के साथ खींचकर इस दाढ़ को हमेशा के लिए अपने मुँह से निकाल दूँ।

पर फिर कुछ नहीं होता। पीड़ा भी नहीं होती। बल्कि फिर हर चीज़ को इस दाढ़ से चबाने में स्वाद आता है।

हरेक चीज़ को हरेक खयाल को जैसे आज सुबह जब महन्त किरपासागर जी पूजा के श्लोक पढ़ रहे थे और श्लोकों के सारे शब्द उन के मुँह में दाढ़ों की तरह अटके हुए थे, तो अचानक मुझे जो खयाल आया था वह था कि जो ये मुँह खोल दें तो मैं हाथ में एक चिमटी ले लूँ और श्लोकों के सारे शब्द खींचकर उन के मुँह से बाहर निकाल दूँ

यह किसी के लिए भी एक भयानक खयाल है। पर एक पुजारी के लिए, चाहे उस की उमर बीस बरस क्या न हो, अति भयानक है

पर मैं सारा दिन इस खयाल का स्वाद लेता रहा हूँ—जस यह एक गिरी का टुकडा था जो अपना दाढ से चबाता रहा हूँ

गिरी म से एक सफेद दूध-सा घूँट रह रहकर मेरे अन्दर उतरता रहा था

आज मेरी दाढ में बिलकुल कोई पीडा नही हो रही।

सात

हे ईश्वर!

ईश्वर पता नही क्या चीज है यह शब्द एक आदत की तरह मुह से निकल गया है।

आदत की तरह नही टूटी हुई सास की तरह।

शील बाबा ने एक दिन मकरध्वज का नुसखा लिखवाते हुए कहा था अनाडी हकीम की तरह कुछ अधकचरा कर के किसी को न खिला देना। पारा कच्चा रह गया तो खानेवाले की हडडिया गल जायेंगी " और आज मैं ने कच्चा पारा खा लिया है।

रोज नफरत की एक गिरी-सी खाता था। आज कच्चा पारा खा लिया है।

शायद हर जिन्दगी एक मकरध्वज होती है। ईश्वर जब भी किसी इनसान को पैदा करता है, जिन्दगी नाम की चीज मकरध्वज की तरह उसे खिला देता है। और इनसान हसता है खेलता है, जवान होता है और उस की जवानी धरती पर ठुमक-ठुमककर चलती है धमक के चलती है

और लगता है—ईश्वर ने जब मुझे जन्म दिया था और जब जिन्दगी नाम की चीज उस ने मुझे मकरध्वज की तरह खिलायी थी, उस दिन एक अनाडी हकीम की तरह मकरध्वज बनाते हुए उस से पारा कच्चा रह गया था

यह कच्चा पारा शायद मैं ने आज नही खाया, अपने जन्म के समय ही खा लिया था, सिर्फ आज उस के असर को देख रहा हूँ—क्योकि आज लग रहा है कि मेरी हड्डिया गलनी शुरू हो गयी है

आज प्रात काल—सुबह की पहली किरण के साथ—महन्त किरपासागरजी को लगा कि उन की उमर के दिन पूरे हो गये है। उन्होने साइ भगतराम के कन्धे का सहारा लिया चारपाई पर से उठे और जसे-तसे मन्दिर में पहुच गये।

मुझे बुलाया। एक नारियल मेरी झोली में डाला। और फिर जरी की एक पगडी शिव-पार्वती के चरणों से छुआकर मेरे सिर पर बाँध दी। अपनी सारी पदवी

मुझे सौंप दी।

फिर मेरे आगे—अपनी पदवी के पैरों के आगे—खुद भी सिर झुकाया, भाई भगतराम और गोविन्द साधु को भी सिर झुकाने के लिए कहा, और फिर उस के बाद जो कोई भी माथा टेकने के लिए आया, उसे भी।

"सोचा था, बहुत बड़ा समागम करूँगा। पर अब वक्त नहीं " उन का सिर्फ एक छोटी सी यह हसरत आयी थी, वैसे वह बड़े सुमरूप लग रहे थे।

'योग्यता' नाम की कोई चीज न कभी मुझे अपनेआप में लगी थी, न उस वक्त लग रही थी। बल्कि अपनेआप उस वक्त

याद आ रहा था कि मंगल नाम का एक साधु कुछ बरस हुए, इस डेरे में आकर रहा था। वह जहां भी बैठता था, पास से गुजरते हर कीड़े को हाथ से मारता रहता था। दिन में न जाने कितने कीड़े मारता था। उस का कहना था, मैं इस तरह कीड़ों को इन की जून से छुड़ा रहा हूँ

उस वक्त जरी तिल्लेवाली पगड़ी सिर पर बांधकर—मुझे अपनाआप बिल्कुल उस कीड़े की तरह लग रहा था, जिसे उस की जून से छुड़ाने के लिए किसी मंगल साधु की जरूरत थी।

पर कहा कुछ नहीं, कहने का कुछ हक भी नहीं था।

शाम तक महन्त किरपासागरजी को और भी यकीन हो गया कि उन की आयु के दिन पूरे हो गये थे और वह शायद आखिरी दिन था। सब को अपनी कोठरी से बाहर भेज दिया गया। आज उन की हालत को देखते हुए मन्दिर में आये कितने ही श्रद्धालु मन्दिर में वापस नहीं गये थे। उन्होंने सब को वापस जाने का हुक्म दिया, और फिर मुझे अकेले कोठरी में बुलाया। पैरों के पास ही मैं बैठ गया। उन्होंने पैरों के पास से उठाकर अपनी बांह के पास बिठाया, अपनी आँखों के सामने।

पिछले कई दिनों से मुँह की सूजन की वजह से उन्हें बोलने में मुश्किल होती थी, पर उन के आधे से उच्चारण को समझने की आदत पड़ गयी थी। इसलिए उन्होंने जो कुछ कहा समझने में कठिनाई नहीं हुई।

समझने के लिए तो शायद इतनी कठिनाई हुई है कि सारी उम्र भी कुछ समझ में नहीं आयेगा, पर सुनने में मुश्किल नहीं हुई।

'सिर की पदवी, सिर का भार, जिस तरह उतारकर तुझे दिया है, उसी तरह मन का एक भेद, मन का भार भी उतारकर तुझे देना है "

सुबह जिस तरह तिल्ले की और जरी की पगड़ी सिर पर रख ली थी मैं ने, और मुंह से कुछ नहीं कहा था, उसी तरह जो कुछ उन्होंने बताया, छाती पर रख लिया मैं ने और मुँह से बिल्कुल कुछ नहीं कहा।

सिर्फ यह लगता है—सिर शायद साबुत रहेगा, पर छाती साबुत नहीं रहेगी।

'आज जो भी पदवी तुझे मिली है, यह तेरा हक था, यह सिर्फ तुझे मिल

सकती थी

"जिस तरह जो कुछ भी किसी बाप के पास होता है, बेटे को मिल जाता है। अमीर बाप से अमीरी, फकीर बाप से फ़कीरी

'मुझे सब कुछ मिला, जबान नहीं मिला। इस जबान से तुझे बेटा नहीं कह सका इस वक्त सिर्फ भगवान हाजिर है और कोई नहीं, और भगवान् की हाजिरी में मैं तुझे एक बार बेटा कहकर मेरा अपना बेटा

ये सारे शब्द ज्यों-ज्यों उन के मुँह से निकलते गये—मैं अपनी छाती पर रखता गया। देखने का जानने का, और सोचने का वक्त नहीं था, सिर्फ इन्हें पकड़-पकड़कर छाती पर रखता गया।

तेरी माँ एक पुण्यात्मा है उसे कभी दोष नहीं देना भगवान ने खुद उसे सपने में दर्शन दिये इस सयोग का हुक्म किया उस ने सिर्फ हुक्म माना और मैं ने सिर्फ एक बार उसे अगीकार किया फिर कभी नजर भरकर उस की तरफ नहीं देखा उस की साध पूरी हो गयी उस के मन में सिर्फ एक बेटे की साध थी तेरी मेरी भी जन्म जन्म की तृष्णा मिट गयी तेरा जन्म एक पुण्यात्मा का जन्म '

कोठरी का दरवाज़ा खड़का। दूर-दूर के मन्दिरों के साधुओं तक महन्तजी की बीमारी की खबर कई दिनों से पहुँची हुई थी, पर आज सुबह मन्दिर के वारिस की नियुक्ति की बात भी शायद पहुँच गयी थी और उन्होंने अन्त नजदीक जानकर आज जल्दी से उन की ख़बर लेनी चाही थी। उन आये हुओं को कोठरी में बठाकर, मैं कोठरी से बाहर आ गया।

रोज़ सोने से पहले, कितनी देर तक मैं आसपास की पहाड़ी पगडण्डियों पर घूमता हूँ। आज भी वही पगडण्डियां हैं, पैरों की जानी-पहचानी हुईं, पर पैरों को कई बार पत्थरों की ठोकर लगी है।

पर कांपते जा रहे हैं—टाँगों के बीच की हड्डियाँ जैसे गलकर खोखली हुई जा रही हैं कोई कच्चा पारा खा ले तो शायद ऐसे ही होता होगा

आठ

अगर जन्म बदलना एक चोला बदलना है तो मैं रोज दो चोले बदलता हूँ।

चार पहर एक चोला पहनता हूँ—डेरे के स्वामी होने का। और चार पहर दूसरा चोला—एक बड़े बदशक्ल कीड़े का।

'कीड़ा' शब्द जितना हीन है स्वामी शब्द उतना ही महान। यह मेरे अस्तित्व के दो सिरे हैं—हीनता और महानता।

जब सोता हूँ—देखता हूँ कि एक काले और बदशक्ल कीड़े की तरह मैं एक

बिल में से निकल रहा हूँ और मुझे जमीन पर रेंगते हुए देखकर मगल साधु अपने उपले सरीखे हाथ को मेरे ऊपर फैलाकर हँस रहा होता है 'आ मैं तुझे इस जून से छुडाऊँ ।'

जागता हूँ—पग के पास कई माथे झुके हुए होते है और मैं एक पदवी के आसन पर बैठकर जमीन से ऊपर उठ रहा होता हूँ।

दोनो सिरो के बीच एक गुफा है, बडी सँकरी और अँधेरी। मन्दिर की एक दीवार में से निकलती गुफा की तरह। और कई बार मैं उन दोनो सिरो से बचने के लिए उस गुफा में घुस जाता हूँ।

यह मेरे काले और अँधेरे खयालो की गुफा है। मसलन कभी यह कल्पना कर के देखता हूँ कि मेरी माँ ने महन्त किरपासागरजी से एक बेटे का दान कैसे माँगा होगा महन्त किरपासागरजी ने उस के सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखकर, फिर वह हाथ धीरे-धीरे उस के अंगो पर किस तरह फेरा होगा शायद अपनी कोठरी में जाकर या शायद मन्दिर के पास लगे पेडो के घने झुण्ड में फिर सफेद और गेरुए कपडे किस तरह कुछ देर के लिए एक-दूसरे में गुम गये होगे

'तेरी माँ एक पुण्यात्मा ' महन्तजी के कहे हुए ये शब्द गुफा के अँधेरे में बडी जोर से हँसते है और फिर यह हँसी एक जीते-जागते बच्चे की शक्ल में बिलख कर रो पडती है

मैं गुफा से बाहर भी आ जाऊँ, तो यह बच्चा उसी गुफा में पडा घिघियाकर रोता रहता है।

महन्तजी के स्वर्गवास की खबर सुनकर, गाँव की कोई औरत या मर्द ही होगा जो उन के आखिरी दर्शन करने न आया हो। माँ भी आयी थी। गाँव की सभी औरतो ने बारी-बारी महन्तजी के चरणों पर माथा टेका था, और उन की तरह माँ ने भी टेका था पर वह जब महन्तजी की लाश के परो के पास झुकी थी—मुझे उस के मुँह पर दिख रहा था कि उस एक क्षण में उस के मुँह की हड्डियाँ निकल आयी थी। मेरा खयाल है उस वक्त वह जरूर सोच रही होगी कि महन्तजी के स्वर्गवास से अगर वह पूरी नही तो आधी विधवा हो गयी थी

उस के 'आधी विधवा' होने के खयाल से एक हमदर्दी-सी हो आयी थी। असल में हुई नही थी, सिर्फ मैं ने सोचा था कि होनी चाहिए थी। और फिर मैं यह सोचने लगा था—आज यह हमदर्दी मुझे अपने प्रति भी होनी चाहिए क्योंकि अपने बाप की मृत्यु से मैं सही अर्थों में अनाथ हुआ हूँ। पर यह हमदर्दी मुझे अपने प्रति भी न हुई।

चिता को आग दी थी—चेला होने के नाते भी देनी थी, बेटा होने के नाते भी।

एक बन्धन में दो नाते शामिल है सिर्फ मैं शामिल नही। न उस वक्त, चिता को आग देते वक्त शामिल था, न अब।

आज एक अजीब घटना घटी है, किसी शहर से कोई बड़ी अमीर-सी दीखती औरत आयी थी। उस के साथ दो दासियाँ थी जिन्होंने मन्दिर में चढ़ाने के लिए फल और मिठाई उठा रखी थी। वह मन्दिर की इस ख्याति को सुनकर आयी थी कि इस मन्दिर में मानता करने से सूखी हुई कोख भी हरी हो जाती है

उस के हाथ प्रार्थना में जुड़े हुए थे 'कृष्ण खावें लड्डू पेड़ा, शिवजी पीवें भंग, बैल की सवारी करें पार्वतीजी के संग, मेरे भोलानाथजी मेरे काज सम्पूर्ण कर'

एक अजीब खयाल आया था—कहते हैं, इतिहास अपनेआप को दोहराता है। और आज शायद इतिहास ने अपनेआप को दोहराना चाहा था

लगा—अभी उस की प्रार्थना के जवाब में उस को वह दूँगा कि इस स्थान से हासिल किया हुआ बच्चा इसी स्थान पर चढ़ाना होता है। और फिर जब वह हाँ कर देगी, उस का हाथ पकड़कर उस को अपनी कोठरी में

एक ग्लानि-सी हुई। लगा—इस औरत का हाथ पकड़कर जब अपनी कोठरी में ले जा रहा होऊँगा तब वह मैं नहीं होऊँगा, वह मेरे रूप में एक बार फिर महन्त किरपासागरजी मेरी माँ का हाथ पकड़कर उसे अपनी कोठरी में

इसलिए उस औरत को कुछ नहीं कहा बल्कि घबराकर आँखें बन्द कर लीं। उस ने शायद यह समझा था कि मैं उस के लिए प्रार्थना कर रहा था, क्योंकि फिर जब आँखें खोलीं वह बड़ी सन्तुष्ट होकर और प्रणाम कर के चली गयी थी

मन की अजीब दशा है—माँ के साथ हमदर्दी करना चाहता हूँ—होती नहीं। फिर यह सोचकर कि इनसान की मौत के बाद तो उस के साथ कुछ हमदर्दी हो जानी चाहिए महन्त किरपासागरजी के साथ हमदर्दी करना चाहता हूँ, पर कुछ नहीं होता आखिर में एक स्वयं रह जाता है। सोचता हूँ, तीन पात्रों में एक ही सही पर वह पात्र भी मेरी हमदर्दी का पात्र नहीं बनता

और जैसे महन्तजी के आखिरी दिनों में उन के मुँह की सूजन भी उतर गयी थी पर उन की हालत बिगड़ती गयी थी हकीम ने बताया था कि मसूड़ों में पड़ा हुआ मवाद उतरकर अन्दर मेदे में पड़ गया है—लगता है मेरी नफरत भी माथे से उतरकर मेरे मेदे में पड़ गया है—किसी को कुछ कहना नहीं चाहता पर मेरे अन्दर से रेत की तरह कुछ गिरता बिखरता जा रहा है

नौ

आड़ूओं के पेड़ों पर जब भी फूल लगते हैं, मेरी आँखें अजीब तरह बेचैन हो जाती हैं। लगता है, यह सिर्फ मुझ पर हँसने के लिए खिलते हैं। यह सिर्फ अब ही नहीं

लगता, जब बहुत छोटा था तब भी लगता था कि मैं किसी चटखे हुए पत्थर में से उग आयी घास की तरह हूँ, और शायद किसी को पता नही, पर आड़ूआ के पेड को यह भेद पता लग गया है—और वह ज़ोर-ज़ोर से खिलखिलाकर हँस रहा है

'मेरी जड़ धरती की छाती के भीतर है तेरी कहा है ?' वह कई बार कहता था और बड़ी ज़ोर से हँसता था—इतने ज़ोर से, कि उस के कई फूल झडकर मेरे जिस्म पर गिर पडते थे—जैसे हँसते-हँसते मुह से थूक गिर पडे।

मैं ने उस के नीचे खड़ा होना छोड दिया, पास खडा होना भी छोड दिया। पर वह दूर खड़ा भी हँस सकता है, इसलिए जब उस की हँसी की आवाज़ कान मे पड़ती है, मेरा आँखें अजीब तरह बेचैन होकर उधर देखने लगती है।

पीपल की जड़ भी धरती में होती है और पेडो की भी, पर ये अपने में मस्त रहते है—अपने हरे-भरे बदन में लिपटे हुए। आड़ूओ के पेड की तरह कोई भी खिलखिलाकर नही हँसता।

पता नही, उसे इतनी बार हँसने की क्या ज़रूरत पडती है—जब कि मुझे पता है कि मैं किसी पत्थर की दरार में से अपनेआप उग आयी घास का एक तिनका हूँ, मेरी कोई शाखाएँ कभी नही निकलेंगी, कभी फूल नही लगेंगे, फूलो से कोई फल नही बनेंगे

अगर बन सकते होते महन्त किरपासागरजी ने जब अपनी आखिरी सासें लेते हुए इशारे से अपने पास बुलाया था, उस शाम जो भेद उन्होने मेरे सामने खोला था उन की आँखों में एक मोह की लौ थी इस लौ को शायद वात्सल्य कहते है, पर मेरे बदन की नाडियों में कोई खून नही पिघला था। एक हुक्म में बँधा मैं उन के पास हो गया था, पर उन के बोलते खून के जवाब में मेरा खून कुछ नही बोला था। उन की आँखों में एक धुंध-सी आ गयी थी शायद कोई हसरत-सी थी और फिर उन्होने आँखें बन्द कर ली थी मैं पत्थर की दरार म से उग आयी घास का एक तिनका-सा हूँ अगर एक बीज की तरह धरती की छाती चीरकर उगा होता, ज़रूर मेरी किसी टहनी पर खून का फल खिल पडता

सुन्दरा ने भी यह आज़माकर देख लिया है। आज़माइश का दिन था—उस की नहीं, मेरा आज़माइश का।

'मेरे लिए क्या हुक्म है ?" मन्दिर के साथ के सुनसान जगल में उस ने मुझे पता नही किस तरह ढूँढ लिया था और मरे पास आकर यह कहते हुए एक अनुनय से मेरी तरफ देखा था।

"मेरा हुक्म ? किस लिए ?' कुछ समझ नही पाया था। सिर्फ़ यह समझ सका था कि मन्दिर में फूलो की झोली को पकड़ती हुई वह जब ज़मीन का हाथ से छूती थी तो उस की हथेली मेरे पैरों को छू रही-सी लगती थी। यह भुलावा नही था।

"क्या पूरन इस जन्म में भी सुंदरा को स्वीकार नहीं करेगा ?" उस की आंखों में पानी भरा हुआ था, आखों में भी और आवाज में भी, क्योंकि उस के शब्द भी गीले-से लग रहे थे।

"मैं पूरन भी नहीं हूँ और राजा का बेटा भी नहीं," सिर्फ इतना ही कहा था। हैरान था—पत्थर की दरार में से निकले घास के तिनकेवाली बात आड़ूआ के पेड़ को पता लग गयी थी पर सुंदरा को क्या पता नहीं लगी थी ?

मन्दिर में पूजा के समय जब वह फूलों की झोली को पलटती थी, उस की बांह फूलों के ढेर में सांपिन की तरह पड़ी हुई लगती थी और वह मेरे पैर का जब उँगलियां या हथेली छुआती थी पर मूर्च्छित-सा हुआ लगता था—पर आज मैं ने उस के डंक को अकारथ कर दिया है। भला घास के तृण को भी कभी किसी सांप का जहर चढ़ता है ? मुझे उस की बात का जहर नहीं चढ़ सकता

मेरी आत्मा " वह कुछ ऐसी बात कहने लगी थी, मैं पर उस से दूर सा होकर खड़ा हो गया। आत्मा और पुण्यात्मावाली कहानी जो महन्त किरपासागरजी ने सुनायी थी वही बहुत थी, इस कहानी को फिर आज सुंदरा से सुनना नहीं चाहता था।

मेरे पत्थर के देवता उस ने वहीं दूर से कहा, और फिर जल्दी से चली गयी।

सुन्दरा बावली है रो पड़ी थी पता नहीं, उस ने आड़ूआ के पेड़ की तरफ क्या नहीं देखा—वह अगर देखती तो उसे वह भेद मालूम हो जाता कि उस पेड़ के सारे फूल सिर्फ मुझ पर हँसने के लिए खिले थे

पिछले कई सालों में मैं कभी आड़ूओ के पेड़ के नीचे नहीं खड़ा हुआ था, आज बड़ी देर तक खड़ा रहा, लगा आज जरूर खड़ा होना था और देखना था कि आखिर उस के फूल मुझ पर कितना हंस सकते हैं

दस

आड़ूआ के गुलाबी फूलों की हँसी, और सुंदरा की काली सियाह आंखों के आंसू अजीब तरह एक-दूसरे में मिल-जुल गये हैं। शायद यह हँसी बीज की तरह है जिसे धरती में बोकर यह आंसू पानी दे रहे हैं या आंसू गोल बीज की तरह हैं जिसे धरती में बीजकर यह हँसी पानी दे रही है

एक अजीब-सी हमदर्दी मेरे मन में उग आयी है—माँ को तो भगवान् ने सपने में दर्शन दिये भगवान की तरफ से उसे एक संयोग का हुक्म मिला, महन्त किरपासागर जी ने भगवान का हुक्म मान लिया, और दोनों ने मिलकर कुछ प्राप्त कर लिया। पर

वह तीसरा आदमी जो मेरी माँ का पति है पर मेरा बाप नहीं उस बेचारे ने क्या प्राप्त किया सिर्फ एक भुलावा कि मैं उस का बेटा हूँ चाहे उस के आँगन में नहीं खेला, चाहे उस के खेतों में उस का हल नहीं चलाया, पर उस के घर का चिराग हूँ

क्या चिराग जैसा शब्द भी इतना काला और अँधियारा हो सकता है

लगता है—माँ ने एक अँधेरा चुराया, जब तक अँधेरे को अपनी कोख में छिपा सकती थी, छिपाये रखा। फिर जब छिपाया न गया, उस की एक पोटली बाँधकर उस गरीब आदमी के सामने जा रखी—देख! मैं तेरे घर का चिराग ढूँढकर लायी हूँ।

चिराग क्या होता है—मिट्टी की एक कटोरी-सा, थोड़ा-सा तेल, थोड़ी-सी रुई। वह तो था ही, सिर्फ आग नहीं थी। आग एक सच्चाई होती है पर झूठ भी शायद सच्चाई की तरह बलवान होता है, और वह भी अपने होंठों की रगड़ में से आग की चिनगारी पैदा कर सकता है

चिराग जल गया। पर एक फ़र्क मैं देख सकता हूँ—इस चिराग की रोशनी में जो राह नज़र आती है उस राह पर एक भयानक खामोशी है और एक भयानक एकाकीपन।

इस चिराग से जिस का भी सम्बन्ध है, सब उस राह पर चल रहे हैं पर सब एक-दूसरे से अपनी आँखों को चुराते हुए और अपने अस्तित्व को भी चुराते हुए, सब एक-दूसरे से टूटे हुए और अपने-अपने एकाकीपन को भोगते हुए

हमदर्दी जैसे शब्द को माँ के साथ जोड़ना भी चाहूँ, तो भी नहीं जुड़ता। महन्त किरपासागरजी के साथ भी नहीं जुड़ता। सिर्फ कुछ जुड़ता है—तो उस बेचारे आदमी के साथ जो दुनिया की नज़र में मेरा बाप है।

बाप शब्द से ख़याल आया है कि अगर मैं इस शब्द का उस बेचारे आदमी पर से उतार दूँ—(मुझे लगता है इस शब्द को उस ने एक गठरी की तरह उठाया हुआ है)—और इस शब्द का भार मैं महन्त किरपासागरजी के सिर पर रख दूँ फिर?

पर अब वह भी नहीं हो सकता। अगर महन्त किरपासागरजी जीवित होते, तो मैं शायद किसी दिन यह कर देता। पर अब यह भार मैं उन की लाश के सिर पर कैसे रख दूँ?

आज सुबह मन्दिर के कार्यों से निबटकर, मेरे पैर ज़बरदस्ती उस खेत की तरफ चल पड़े थे जहाँ वह 'बेचारा' आदमी हल चला रहा था। पता नहीं उस ने क्या समझा होगा पर मैं ने उस के हाथ से उस का काम पकड़ लिया था। सूरज जब तक सिगर पर नहीं आया था मैं उस के खेतों में उस के एक मज़दूर की तरह लग रहा था उस के काम का बोझ हल्का नहीं कर रहा था, सोच रहा था, शायद ऐसे ही उस के सिर पर उठाये हुए शब्द का भार कुछ हल्का हो जाये

उस का मुझे पता नहीं पर मेरा अपना मन कुछ हल्का-सा हो गया है—खेत के पास बहते पानी में जब मैं ने अपने हाथ धोये थे लग रहा था—बदन से कुछ धोया जा

रहा था। कंधे की चादर से जब माथे का पसीना पोंछा था, लग रहा था—लैस की तरह लगे हुए एक रिश्ते का कुछ हिस्सा मैं ने आज पोंछ दिया था

अगर मैं रोज इसी तरह कुछ पोंछता रहूँ तो शायद किसी दिन सब कुछ पोंछ दिया जायेगा

हे भगवान

मैं ने यह सोचा ही नहीं कि अगर मैं रोज उस के खेत में जाकर उस की गोडाई या जुताई करूँगा, तो गाँववाले रोज देखेंगे, और तब लैस की तरह लगा हुआ यह रिश्ता दिनों दिन छूटेगा या और पक्का हो जायेगा ?

नहीं, मैं कुछ नहीं पोंछ सकता। कुछ भी पोंछा नहीं जा सकता बल्कि रोज जो हाथा को पसीना आयेगा उस पसीने से भी उस रिश्ते की बू आयेगी

अजीब हालत है। कोई रिश्ता नहीं, पर उस रिश्ते की बू सब ओर फैली हुई है

रिश्ता होता फिर मर गया होता यह बू समझ में आ सकती थी। बिल्कुल उस तरह जिस तरह एक लाश में से बू उठती है। पर जो है ही नहीं, उस की बू किस तरह ?

ईश्वर भी कहीं दिखता नहीं पर उस की खुशबू हर तरफ फैली हुई है

क्या यह रिश्ता भी ईश्वर की तरह है ? लगता है, अगर बू और खुशबू के फर्क को छोड दिया जाये तो यह रिश्ता भी ईश्वर की तरह है

या यह कह सकता हूँ कि यह मर हुए ईश्वर की तरह है।

मरे हुए ईश्वर ने, लगता है उस के साथ एक मरा हुआ मजाक किया है। उस का नाम दीनानाथ है यह मजाक नहीं तो और क्या है ? शायद उस से बढकर और कोई दीन नहीं, पर फिर भी वह दीनों का नाथ है

शायद वह स्वयं ही दीन है, और स्वयं ही नाथ है

ग्यारह

रिश्ता भी क्या चीज है ? जहाँ कुछ भी नहीं, वहाँ नजर आता है जहाँ नजर नहीं आता, वहाँ है।

गुरू से पता था—माँ से एक रिश्ता है, पर बीस बरस बड़े गौर से देखता रहा हूँ कभी नजर नहीं आया।

महंत किरपासागरजी ने अपने आखिरी वक्त जो कुछ बताया था सुन लिया पर ग्रहण कुछ भी नहीं हुआ। वहाँ भी गौर से देखता हूँ, पर कुछ दिखाई नहीं देता।

मवर सुन्दरा आयी थी—उस ने ब्याह का जोड़ा पहन रखा था। मुँह अच्छी

तरह नहीं दीख रहा था। सिर्फ आंख दिखती थी, और एक बड़ी सी नथ दिखती थी। उस वक्त मन्दिर के चबूतरे पर बहुत-से फूल नहीं थे, पर उस ने फूलों की थाली जब पल्टी थी सारा चबूतरा फूलों से भर गया था। और उस ने उसी तरह फर्श पर झुक कर, फूलों के ढेर में से बाँह गुज़ारकर

आज सिर्फ मेरा पैर ही नहीं, मेरा सिर भी मूर्च्छित हो गया लगता था, फिर उठकर जब वह खड़ी हुई तो नज़र भरकर देखा—नथ की गोल तार पर पानी की बूँदें अटकी हुई हैं। जैसे नथ की आँखों में आँसू आ गये हों

लगा—मेरी आँखों में से कुछ रिस पड़ा था। जैसे किसी टहनी से कुछ तोड़ो तो पानी रिस आता है

पर टहनी कौन है? क्या मैं टहनी हूँ?

और क्या इस टहनी से जो कुछ टूट गया है, वह रिश्ता था?

सुन्दरा के साथ मैं ने कभी यह शब्द नहीं जोड़ा, पर क्या जो दिखता नहीं था, वह था?

"आखिरी प्रणाम" आवाज़ कानों तक पहुँची थी। होंठ हिलते नहीं दिखे थे, सिर्फ नथ हिलती-सी दिखी थी। जैसे यह बात उस नथ ने कही हो

सुन्दरा नहीं जानती, पर यह भी एक रिश्ता है

वही रिश्ता जो हवन-कुण्ड के साथ होता है

मैं कुण्ड हूँ। पाराशर स्मृति के अनुसार पति के जीते-जी जो स्त्री किसी और से सन्तान लेती है, उस सन्तान का नाम कुण्ड होता है

किसी कुण्ड में जो कुछ पड़े वह दग्ध हो जाता है

मुझ प्यार कर के सुन्दरा अपना हवन करना चाहती थी। वह नहीं जानती, पर मैं ने उसे हवन की सामग्री होने से बचाया है

बारह

माँ औरत के रूप में होता है, पृथ्वी के रूप में भी। विष्णुपुराण में कथा आती है कि विष्णु ने जब वराह का रूप धारण किया, तो धरती ने उस के साथ भोग कर के नरक नामक पुत्र पैदा किया।

सो यह कहानी सिर्फ मेरी नहीं, आदि-युगादि की है।

और आदि-युगादि से यह नरक पैदा होते रहे हैं।

भोग करनेवालों का क्या है, उन का खेल उन को नहीं भुगतना पड़ता, यह सिर्फ नरकों को भुगतना पड़ता है। यह सिर्फ मुझे भुगतना है

आज सुबह माँ जब मन्दिर में आयी थी, सोच रहा था, उस को प्रणाम करूँ।

बिल्कुल इस तरह जिस तरह कोई पृथ्वी का प्रणाम करता है।

पृथ्वी ने जब गर्भ धारण किया था, तो किसी ने भी पृथ्वी का निरादर नहीं किया था, तो मुझे भी उस का निरादर करने का क्या हक है?

मेरी माँ साक्षात पृथ्वी है।

सुल्फा बहुत अच्छी चीज है। मैं ने आज तक नहीं पिया था। गोविन्द साधु के हाथों से चिलम पकड़कर आज मैं ने थोड़ा-सा ही पिया कि आनन्द आ गया। अजीब अजीब बात भी सूझ रही है

अभी चरपट योगी की कथा याद आया है कि चरपट योगी का जन्म योगी मछेन्द्रनाथ की दृष्टि से हुआ था—भोग से नहीं सिर्फ दृष्टि से।

और क्या पता मेरा जन्म भी महन्त किरपासागरजी की सिर्फ दृष्टि से हुआ हो

लगता है महन्त किरपासागरजी भी योगी मछेन्द्रनाथ की तरह सिद्ध पुरुष थे। सो सिद्ध पुरुषों को प्रणाम करना चाहिए

मुझे अफसोस है कि मैं ने महन्त किरपासागरजी को कभी आज जी तरह प्रणाम नहीं किया था। चरपट योगी ने मछेन्द्रनाथ को जरूर प्रणाम किया होगा। मुझे चरपट योगी से यह शिक्षा लेनी चाहिए थी

चरपट से भी मेरे बड़े भाई की जगह है पता नहीं यह ख्याल पहले क्यों नहीं आया उस का जन्म भी ऐसे हुआ था जैसे मेरा तो हम भाई भाई हैं आज मैं बहुत खुश हूँ आज इतिहास के पन्नों में से मुझे मेरा भाई मिल गया है

गोविन्द साधु पता नहीं कहाँ अलोप हो गया है। अभी मूँगफली की झाड़ी के पास बैठा चिलम पी रहा था। वहीं साहू भगतराम ही दिख पड़े तो कहूँ कि चिलम मेरे लिए भी भर ला। चिलम के दो घूँट से ही आनन्द आ गया

आनन्द की तृष्णा भी अजीब चीज है यह मैं किस तरह बैठा हुआ हूँ किस मुद्रा में? आह, याद आया—यह भद्रा मुद्रा है। टखनों को मोड़कर अपने नीचे रखकर बैठने की मुद्रा। योगियों का आसन

पता नहीं, मेरे नीचे क्या बिछा हुआ है मेरा ख्याल है भद्रासन होगा बहुत सख्त है भद्रासन होना ही सख्त है बैल का चमड़ा इस आसन पर बैठनेवाले लोगों की भलाई के लिए बैठते हैं लोगों के कल्याण के लिए मैं किस का कल्याण करूँगा? क्या आसन पर बैठनेवाले अपना कल्याण नहीं कर सकते?

एक अजीब बू आ रही है, शायद बैल के चमड़े की है नहीं यह मेरे जिस्म में से आ रही है हाथों में से बाँहों में से सीने में से मछली की बू की तरह मत्स्य गन्धा वह कौन थी मत्स्यगन्धा? वह जो वसु राजा के वीर्य से मछली के पेट में से जन्मी थी? उसे भी जरूर अपने जिस्म में से मछली की बू आती होगी मेरी माँ भी शायद मछली है मैं मछली के अन्दर से पैदा हुआ हूँ एक दिन महन्त किरपा

सागरजी समाधि में लीन थे पता नहीं, महाभारत में किसी ने यह कथा क्यों नहीं लिखी

व्यास ने महाभारत लिखते समय जरूर भांग पी रखी होगी नहीं, सुल्फा पी रखा होगा कोई साई भगतराम उस की चिलम भर रहा होगा, और वह लिखता गया होगा आज साई भगतराम ने कमाल की चिलम भरी है, मैं भी महाभारत लिख सकता हूँ

महाभारत का क्या है, जो मरजी आये लिखते जाओ जहां कुछ समझ न आये, वहां जो जी चाहे लिख दो शुक्र ब्रह्मा का बेटा था पर शुक्र की मां नहीं थी वह ऐसे ही पैदा हो गया था। ब्रह्मा एक यज्ञ करवा रहा था, वहां देवताओं की बहुत सुन्दर पत्नियां आयी हुई थी, तो उन को देखकर ब्रह्मा का वीर्य गिर गया। सूरज ने उस वीर्य को इकट्ठा कर लिया और अग्नि में उस का हवन किया तो उसी वक्त अग्नि में से तीन सुन्दर बालक निकल आये देवताओं ने एक बालक शिव को दे दिया ख्वाहमख्वाह एक अग्नि को दे दिया वह भी ख्वाहमख्वाह और एक उस के असली बाप को दे दिया, ब्रह्मा को, यही बालक शुक्र था

तो बाप का क्या है, बाप पर कोई दोष नहीं लगता इसलिए बाप का नाम याद रख लेना चाहिए दोष सिर्फ मां पर लगता है सो मां का नाम भूल जाना चाहिए

बच्चे का क्या है, वह कहीं भी पैदा हो सकता है—मछली से भी पक्षी से भी अग्नि से भी मैं जब महाभारत लिखूँगा, तो लिखूँगा कि मैं सुल्फे की चिलम में से जन्मा था

खूब वक्त पर खयाल आया है कि बच्चे की पैदाइश के लिए इनसान का वीर्य भी जरूरी नहीं पद्मपुराण में लिखा है कि मंगल विष्णु के पसीने से पैदा हुआ था वामनपुराण में लिखा है कि शिवजी के मुंह में से एक थूक गिरा और उस थूक में से एक बालक जन्मा था

सो मैं अपने जन्म की कथा लिखूँगा कि एक दिन महन्त किरपासागरजी सुल्फे की चिलम पी रहे थे मुँह से एक थूक गिरकर चिलम में पड़ गया और मैं सुल्फे के धुएँ की तरह चिलम में से निकल पड़ा

यह सब सम्भव है अयोध्या के सूर्यवंशी राजा सगर की रानी सुमति को और्व ऋषि के वर के अनुसार साठ हजार पुत्र पैदा होने थे, ऋषि की वाणी थी, इसलिए सुमति के गर्भ से एक तुम्बा जन्मा जिस में साठ हजार बीज थे। राजा ने साठ हजार घी के घड़े भरकर उन में एक एक बीज रख दिया—दस महीने बाद हर घड़े में से एक एक बालक निकल आया

यह हरिवंशपुराण की कथा है इसलिए सच है। सच किसी काल में भी हो सकता है। इस बारे में यह भी सच है कि एक दिन महन्त किरपासागरजी सुल्फे की चिलम पी रहे थे, मुँह में से एक थूक गिरकर चिलम में पड़ गया, और एक बालक

सुल्फे के धुएँ की तरह चिलम में से निकल पड़ा

यह कैसा ज्ञान है जो मुझे प्राप्त हो रहा है

भुशुण्डि नाम के एक ब्राह्मण को जब लोमश ऋषि ने श्राप दिया था, तो उस के श्राप से वह एक कौआ बन गया था पर कौआ बनते ही उस को एक ज्ञान प्राप्त हो गया था, और फिर वह चिरजीवी होकर सब ऋषियों को कथा सुनाता रहा

मैं भी शायद उस की तरह कागभुशुण्डि हूँ मुझे भी एक ज्ञान प्राप्त हुआ है मैं भी समय को एक कथा सुना रहा हूँ

तेरह

सुना—मा बहुत बीमार है। कुछ दिनों से मन्दिर में देखी नहीं थी। कुछ ऐसा ही खयाल आया था पर जिस बात को खबर लेना कहते हैं, उस बात का खयाल नहीं आया।

आज उस ने अपनी किसी पड़ोसिन को भेजा था—"एक बार मुँह दिखा जा। यह मेरे बत्तीस दांतों में से निकली मिन्नत है।'

उस वक्त मैं मन्दिर में खड़ा था, शिव और पार्वती की मूर्ति के पास और लगा, यह शब्द सुनकर मैं भी पत्थर की तरह हो गया था—पैरों को उठाकर चलने की जगह वही पत्थर का तरह हो जाना आसान लगा था।

यह सुबह की बात है। दोपहर के समय वह पड़ोसिन फिर आयी थी "मरने को पड़ी है कहती है—एक बार मुँह दिखा जा। तुझे मेरे दूध की बत्तीस धारा की सौगन्ध "

बत्तीस दांत बत्तीस धारें लगा उस के पास बत्तीस की गिनती बहुत सारी थी, और अचानक खयाल आया कि स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में औरत के बत्तीस शुभ लक्षण माने गये हैं "

इकत्तीस के बारे में कुछ नहीं कह सकता, पर एक के बारे में जरूर कह सकता हूँ। बत्तीस में से एक लक्षण निष्कपटता भी है।

सोचा जाना है इसलिए जाऊँगा। दूध की बत्तीस धारा का कर्जा लौटाने नहीं, और न ही बत्तीस दांतों में से निकली मिन्नत को सुनकर सिर्फ एक मन्दिर का साधु होने के नाते, जिसे गाँव में से आये किसी मर्द या औरत के बुलावे पर जरूर जाना होता है।

सिर्फ यह खयाल जरूर आया कि उस ने अपने आखिरी वक्त या मुश्किल की घड़ी में जो मेरे मुँह से कोई साधु-वचन सुनना चाहा तो मैं यह कह सकूँगा, 'भली औरत! तुम में औरत के बत्तीस शुभ-लक्षणों में से शायद इकत्तीस ही होंगे पर मैं

बत्तीसवें की बात करता हूँ—निष्कपटता की। जिस मर्द के नाम के नीचे तू ने सारी जिन्दगी गुजारी है, अगर आखिरी वक्त तू उस के साथ निष्कपटता बरत ले '

जाते वक्त कोई और खयाल नहीं आया था। सिर्फ एक खयाल था, यही खयाल जो मैं सुल्फे की तरह पीता गया था। और एक क्रोध-सा था जो सुल्फे के धुएँ की तरह निकल रहा था

अब आती बार खयाल आ रहे हैं, यह भी कि सुल्फे का जो नशा मेरे सिर को चढ़ा हुआ था—एक दम्भ का नशा था। शायद दम्भ को भी सुल्फे की तरह पिया जा सकता है

और यह खयाल भी आ रहा है—बत्तीस शुभ लक्षण सिर्फ औरत के ही नहीं होते, मर्द के भी होते हैं। और उन बत्तीस में से एक लक्षण उदारता भी होता है, क्षमा भी। मैं ने उस के शुभ लक्षणों की गिनती कर के उस को सुना दी पर यह गिनती मैं अपने लिए भी तो कर सकता था

क्या उदारता और क्षमावाला लक्षण मुझ में नहीं होना चाहिए ?

उम्र के बरसों की तोड़ी हुई एक औरत बड़ी दीन-सी होकर, और हारकर, चारपाई के बान से लगी हुई थी और मैं परे एक आसन पर चावल के माड़ की तरह अकड़कर बैठ गया था।

चलो, बैठ भी गया था, तो चुप ही रहता

उस ने मुझे हाथ से छूना चाहा था—बढ़कर, पता नहीं पैरों को कि सिर को, पर उस का हाथ बीच में ही लटका रह गया था

कुछ झुर्रियाँ थीं, जो हवा में लटक रही थीं

मांस के बलों में पता नहीं जिन्दगी का क्या कुछ लिपटा होता है

परे आसन पर बैठे हुए मुंह पर शायद निर्दयता जैसी कोई चीज थी, लगा—उस ने देख ली थी, और उस की आँखों में पानी भर आया था।

शायद वह सोचती थी कि आँखों के पानी से वह मेरे मुंह पर से इस निर्दयता को धो सकती थी

पर यह मेरे मुंह पर जो कुछ भी उसे दिखा था, धूल की तरह उड़कर पड़ा हुआ नहीं, मांस के रोम की तरह उगा हुआ है।

वही बात हुई जो मैं ने सोची थी। मेरी खामोशी तोड़ने के लिए उस ने कहा, "मेरे लिए कोई वचन।'

'वचन मैं सोचकर गया था। इसलिए कह दिया, ' निष्कपटता। '

लगा उस के मुंह की सब झुर्रियाँ मेरी ओर देखने लगी थीं।

उस वक्त कोठरी में वह अकेली थी। मैं था, पर मेरा मतलब है, उस का पति उस का दीनानाथ—उस वक्त बाहर ओसारे में था, अन्दर उस के पास कोठरी में नहीं था।

उस की आँखों में कुछ फरक गया था। शायद खौफ जैसी कोई चीज थी। वह एकटक मेरी तरफ देख रही थी और उस की आँखों में वह खौफ शीशे की तरह चमक पड़ा था। और फिर लगा था—वह शीशे की तरह चटख गया था शायद पिघल गया था

उस की आँखों से कुछ पानी पिघले हुए शीशे की तरह बह रहा था।

उस ने खाट की बाँही पर छाती का भार डालकर अपनी बाँह को लटकाया—मेरे आसन का एक कोना हथेली से छू लिया। आसन का कोना भी उस के साथ लगा मेरा घुटना भी।

घुटना जल-सा उठा एक क्रोध में। हथेली को घुटने से झटक सकता था पर गुस्से की बड़ी गरम लकीर, घुटने से लेकर जबान तक फैल गयी थी इसलिए जबान तिलमिला गयी। कह दिया "महन्त किरपासागरजी ने आखिरी वक्त यह निष्कपटता मुझे बता दी थी।"

बहुत साल हुए एक बार गोविन्द साधु ने एक साँप मारा था। उस का डण्डा जब साँप की कमर में धँसा हुआ था, और साँप के सिरवाला हिस्सा व नीचे धड़वाला हिस्सा दो अलग-अलग हिस्सों में तड़प रहे थे—मैं उस के पास खड़ा उस को देखता एक ग्लानि से भर गया था। उस दिन मुझे साँप पर नहीं गोविन्द साधु पर बड़ा गुस्सा आया था। साँप तड़प रहा था, गोविन्द साधु तमाशा देख रहा था।

लगा मेरी बात सुनकर वह भी साँप की तरह तड़प उठी थी मेरी बात लकड़ी के एक डण्डे की तरह उस की पीठ में धँस गयी थी और जिस के बोझ के नीचे वह गुच्छा हुई अजीब तरह टूट रही थी। अपनेआप से भी एक नफरत हुई। अपनेआप से भी उस बात से भी, और उस बात की चोट से तड़पती उस की जान से भी।

एक मरते हुए इनसान को मैं कैसी शान्ति दे रहा था? मुझे पता था मैं एक बदला ले रहा था पर यह कैसी घड़ी थी बदला लेने की?

और सब से अधिक नफरत अपनेआप से हुई अपने अस्तित्व से। जैसे मेरा अस्तित्व नफरत का एक टुकड़ा हो

हिल-सा गया था।

फिर यह खयाल भी आया—जो मैं नफरत का एक टुकड़ा था तो मांस के इस टुकड़े को जन्म देनेवाली माँ? वह एक बच्चे की माँ नहीं, एक नफरत की माँ थी।

और मैं फिर अडोल-सा हो गया।

कोठरी में एक खामोशी छा गयी थी।

यह खामोशी शायद बहुत भारी थी, पत्थर की शिला की तरह। न इस का न मैं हटा सकता था, न वह।

पर मेरा खयाल गलत निकला, उस ने खामोशी की शिला तोडी और कहा, "मुझे पता था, एक दिन मुझे अग्निकुण्ड में नहाना होगा"

मैं ने कुछ हरान होकर उस के मुँह की तरफ देखा।

अचानक उस ने अपनी मिन्नत-सी करती हथेली मेरे घुटने पर से हटा ली। और बडी शान्त होकर अपनी खटिया पर आराम से लेट गयी।

अब उस की आवाज भी शान्त और अडोल थी। उस ने सहज भाव से कहा, "कई बार लगता था कि सीता की तरह मुझे भी अग्नि-परीक्षा देनी पड़ेगी"

लगा—यह बोल महन्त किरपासागरजी के उन बोलों के साथ मिलते थे—'तेरी मा एक पुण्यात्मा है उसे कभी दाग न देना स्वयं भगवान् ने सपने में उसे दर्शन दिये

पर यह बोल शायद जान-बूझकर मिलाये गये थे। मुझे कभी भी भगवान् के इन दर्शनोंवाली बात पर विश्वास नहीं हुआ था। और लगा अब मा भी अगले वाक्य में इन दर्शनोंवाली बात को दोहरा देगी

इनसान अपने किये को अपने हाथ में न पकड सके, तो बडी सीधी-सी बात है कि वह भगवान के हाथ में पकडा दे

पर उस ने कुछ नहीं कहा।

इसलिए मुझे, खुद, कहना पड़ा, "भगवान ने सपने में दर्शन दिये, सिर्फ यही कहने के लिए?"

वह सचमुच हँस दी—"नहीं, मेरे लाल! मेरे ऐसे करम कहाँ थे कि भगवान मुझे सपने में दर्शन देते, और कुछ कहते।

लगा—दर्शनवाली बात महन्त किरपासागरजी ने मेरे मन को बहकाने के लिए बनायी थी।

और लगा—एक झूठ था, जो इस कोठरी में पड़ी हुई खटिया पर से रेंगता-रेंगता, एक मरे हुए इनसान की समाधि तक पहुँच गया था।

पर मैं झूठ और सच को नितारना क्या चाहता था? अपने पर एक खीझ-सी आयी। और लगा अगर यह लोग किसी झूठ पर कुछ खाँट-सी लपेटकर मुझे खिलाना चाहते है, तो मैं इसे खा क्यों नहीं लेता? आखिर भगवान के नाम को खाँड की तरह पीसने के लिए इन बेचारों ने कितना कुछ किया है

"अग्नि-परीक्षा, कभी किसी पति की आज्ञा थी, आज पुत्र की आज्ञा है"

लगा—वह अपनेआप से बातें कर रही थी।

फिर एक गुस्सा-सा आ गया—झूठ को खिलाना भी जरूर है पर दूसरे से यह भी कहलवाना है कि यह बहुत मीठा है!

उस ने मेर गुस्से को नहीं जाना, कहती गयी "मेरे एम कम नहीं थे जा भगवान मुझे दशन देते। मैं ने सिफ उस की आज्ञा मानी थी जिस को मैं ने सारी उम्र भगवान् समझा। दशन उसे हुए थे, मैं ने सिफ उस की आज्ञा मानी।'

दरवाजे के पास खटका सा हुआ। लगा, अब वह बिल्कुल चुप हो जायेगी, क्योंकि अब उस का पति अन्दर कोठरी में आ गया था।

हकीम से तेरे लिए एक और पुडिया लाया हूँ ' उस ने कोठरी में आते हुए कहा। और कहा, "हकीम ने कहा ह कि आज का दिन कष्ट का ह, अगर आज का दिन कुशलता से गुजर गया तो '

"हाँ आज का दिन ही कष्ट का था " लगा, वह हँस दी थी, और फिर उस ने अपनी चारपाई पर से हाथ में दवा की पुडिया लेकर, खडे हुए अपने पति के पैरों की तरफ अपना हाथ बढाकर कहा, "मैं तेरे, अपने भगवान के, हाथों में इस दुनिया से चली जाऊँ मुझे इस से ज्यादा कुछ नहीं चाहिए एक इस बेटे का मुह देखने के लिए जान अटकी हुई थी, वह भी देख लिया अब मुझे शांति मिल गयी ह और हाथ के इशारे स उस ने पुडिया खाने से इनकार कर दिया।

शाम का अँधेरा उतर आया था। और फिर लगा, जसे वह सो गयी थी। मैं उठकर बाहर आ गया।

बाहर ओसारे म वह लालटेन की चिमनी पोछ रहा था। उस ने एक बार मेरे कन्धे पर हाथ रखकर मुझे प्यार-सा किया। लगा हाथ कुछ झिझक सा रहा था।

झिझक को समझ सकता था, पर हाथ की मेहरबानी को समझ नहीं सकता था। कुछ हरान होकर उस की तरफ देखा। लगा, वह कुछ कहना चाहता था, पर फिर वह कोठरी की तरफ देखकर चुपचाप लालटेन की चिमनी पोछने लगा।

एक सन्देह सा हुआ—जसे वह सब कुछ जानता था। और मुझ से कहना चाहता था—मैं ने क्षमा कर दिया ह मैं, एक आम दुनियादार इनसान होकर, और तू उसे क्षमा नहीं कर सकता ?

मैं ने एक बार अपने वेश की तरफ देखा—सिर से पाव तक मैं ने गेरुआ, भगवान के नामवाला, वेश पहना हुआ था। और लगा उस के सफेद कपडे मेरे वेश को एक उलाहना-सा दे रहे थे

एक बार फिर पलटकर देखा—वह ओसारे में खडा एक सफेद कपडे के टुकडे से अब भी लालटेन की चिमनी पोछ रहा था। चिमनी पता नहीं कब की धुआँयी हुई थी, या कोई काला सा धब्बा चिमनी पर से उतर नहीं रहा था

चौदह

यह कैसा अँधेरा है कहीं खत्म ही नहीं होता

कोख का अँधेरा हर कोई झेलता है। पर उस का एक गिना चुना समय होता है। और वह जैसे-तैसे गुजर जाता है। पर मेरा यह अँधेरा गुजरता क्यों नहीं? क्या समय मुझे अँधेरे की कोख में डालकर फिर निकालना भूल गया है? और मुझे, अँधेरे की कोख में पड़े हुए ही बरस पर बरस गुजरते जा रहे हैं?

साइं भगतराम एक दिन एक मूर्ख पण्डित की कथा सुना रहा था कि एक गाँव की स्त्रियाँ जब एक पण्डित से तिथि त्योहार पूछने जातीं और मूर्ख पण्डित से जन्त्री न पढ़ी जाती, तो वह बहुत कच्चा पड़ जाता। आखिर उस ने सोच-साचकर एक उपाय ढूँढा। मिट्टी की एक कुलिया रख ली, और पड़वा का दिन पूछ पुछाकर, उस ने अपनी बकरी की एक मेंगनी उस कुलिया में डाल दी। दूसरे दिन एक और मेंगनी डाल दी, तीसरे दिन एक और। इस तरह रोज एक मेंगनी वह याद से उस कुलिया में डाल देता। जब कोई स्त्री तिथि पूछने आती वह कुलिया की मेंगनी गिनता और उस के मुताबिक उस दिन की तिथि बता देता। कुलिया में एक मेंगनी होती तो पड़वा होती दो होती तो दूज, तीन होती तो तीज सो काम चलता गया। पर एक दिन पण्डित जी की कुलिया कहीं आँगन में पड़ी रह गयी, और आँगन में खड़ी बकरी ने जब मेंगनी की तो कुलिया मुँह तक भर गयी। अगले दिन एक स्त्री तिथि पूछने आयी, पण्डित ने कुलिया देखी तो मेंगनियों की गिनती ही न हो स्त्री ने स्वयं ही कहा, 'होनी तो आज नौमी है।' पण्डितजी ने भी उस समय टालने के लिए कह दिया 'है तो नौमी, पर अपार नौमी है।'

मन की हालत रुआँसी-सी है। पर यह हास्यास्पद बात याद आ गयी है। लगता है, समय भी एक मूर्ख पण्डित है। मेरी बारी अँधेरे दिनों की गिनती करता हुआ अपनी कुलिया को रात आँगन में ही रख गया था—और अब मेरी नौमी को अपार नौमी कहकर अपनी मूर्खता छिपा रहा है।

अपार अँधेरा।

और लगता है—कोख में से निकलकर मैं सीधा मन्दिर की गुफा में आ गया हूँ और गुफा पता नहीं कितने सौ मील लम्बी है।

हर सवाल अँधेरे की उपज होता है—सिर्फ यह बात अलग है कि सवाल छोटा हो तो वह एक बालक की तरह घुटुएँ घुटुएँ चलता है और रोता है, पर अगर बड़ा हो तो वह खाली दीवारों को हाथों से टटोलता और उन से सिर पटकता है

कोख के अँधेरे में मैं ने सिर्फ हाथ-पैर ही मारे होंगे, मैं ने तो घुटुएँ चलना भी

गुफा के अँधेरे में भागा था, और अब मेरे साथ की जवानी गुफा की दीवारों से सिर मार रही है

अँधेरा उसी तरह है—सिर्फ़ सवाल बड़े हो गये हैं—मेरे अंगों की तरह

पन्द्रह

आज गले में पहना हुआ काला-सा चोला भी मेरे अंगों में कसता-सा लग रहा था

अंगों की गोलाइयों में जैसे कुछ नोकें निकल आयी हों

कई बरस हुए, जब मैं स्कूल में पढ़ता था, एक दिन मेरा एक सहपाठी लड़का हँसी-खेल में मुझे एक लारी में बिठाकर पठानकोट ले गया था।

पठानकोट के खुले बाजारों में नहीं, सँकरी गलियों में। और वहाँ उन गलियों में औरतें ही औरतें थीं—छोटी-छोटी चाँदी की मुरकियाँ पहने स्कूल में पढ़ती लड़कियों जैसी भी, और होंठों पर दन्दासा मलकर बैठी हुई बड़ी-बड़ी स्त्रियाँ भी और दहलीजों में बैठकर हुक्का पीती बड़ी-बूढ़ियाँ भी।

वहाँ कोई मर्द नहीं था। जैसे छोटी स्त्रियों को बड़ी स्त्रियों ने आप ही जन्म दिया हो।

हम दोनों लड़के, स्कूल में पढ़ती उम्र के, वहाँ खोये-खोये-से लगते थे—या गुल्ली-डण्डा खेलते अपनी खोयी हुई गुल्ली को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वहाँ, उन गलियों में पहुँच गये लगते थे।

वे स्त्रियाँ हुक्के की गुड़गुड़ की तरह मुझे हँसती लगी थीं। अभी यह खैर था कि मेरे साथी ने लारी में चढ़ने से पहले मेरे गरम वाले को गले में से उतरवाकर अपनी एक कमीज और एक खुला पायजामा मुझे पहना लिया था। उसके वे कपड़े वह पहले ही घर से लाया था। सुबह घर से आते समय दोनों कपड़े अपने बस्ते में डाल लाया था।

यह उन औरतों को कुछ वाजिब भी लगता था। एक-एक को उनमें भी, राम सत ना नहीं था।

वे औरतें और उनके हुक्के जब मिलकर गुड़गुड़ करने लगे थे।

मैं कमीज की बाँह से 'लाग' पड़ा पड़ी माथे का पसीना पोंछ रहा था उसने एक घर के मुहारे में से गुजरते हुए मेरी बाँह को कसकर पकड़ लिया था—"एक पकवासन तो तरी यह लड़का भी तेरा मजाक उड़ायेगा।

मेरा कौन?

अजीब लगा था, "लाग" वहाँ लग गया था मेरी टाँगें काँपने लगी थीं। और फिर एक कोठरी-सी में पहुँचकर मैं हैरान-परेशान एक लड़की के तख्तपोश पर बैठ

गया था।

थोडी देर में दो लडकियाँ आयी—एक ने सिर पर लाल चुनरी ओढ रखी थी, और एक ने गहरे काशनी रंग की। लाल चुनरीवाली लडकी को मेरे दोस्त ने बाह से पकडकर अपने पास बिठा लिया। और काशनी चुनरीवाली ने आप ही मेरी बाह पकडी और फिर मेरे पास तख्तपोश पर बैठ गयी।

फिर जसे मैं ने गाजे का एक लम्बा-सा घूँट पी लिया हो—और मेरी सास मेरे गले में अड गयी हो

वह काशनी चुनरीवाली लडकी मेरी बाह पकडकर मुझे पता नही कौन-सी और कोठरी में ले गयी थी। मैं वहाँ एक तख्तपोश पर निढाल-सा पड गया था। शायद अँधेरा बहुत था—या उस ने अपनी चुनरी सारी कोठरी में तान दी थी—मेरी आँखो के आगे काशनी रग फल गया था

रग काशनी भी था और गीला भी था

मेरा बदन उस रग में पता नही डूब रहा था कि तर रहा था, पर मेरे बदन की सारी हड्डियाँ बसी हुई थी और मुझे लग रहा था जसे मेरी सारी हड्डियाँ उस रग में घुम रही हो

कुछ पलो के लिए मुझे ऐसा लगा, जसे मैं अपनी हड्डियों के जोर से उस रग को तोड सकता था

पर रग गीला था। मेरी हड्डियाँ उस रग में फिसल रही थी

और फिर मुझे लगा कि मैं रग की किसी गहरी खाई में गिर पडा था। ऐसे जोर से गिरा था कि शायद मेरे सारे अग टूट गये थे

अपनाआप मास के एक ढेर की तरह लग रहा था।

फिर मास के ढेर में से मुझे एक अजीब-सी बू आयी।

बू से मेरे सिर को एक चक्कर सा आया। एक चेतनता-सी भी हुई, कि मैं ने सारा जोर लगाकर जहा प गिरा हुआ था वहाँ से उठना चाहा

उठने क लिए मैं ने हाथ मारे—मेरे हाथो को बडा कुछ छुआ—मास के अजीब अजाब टुकडे बहुत छोटे होठो जसे भी और बहुत पतले उँगलियो जसे भी।

और बडे गोल टुकडे, जिन्हें हाथ लगाने पर मेरे हाथ काँप गये थे।

काशनी रग अब पानी की तरह पतला नही था, गाढा होकर जम रहा था।

और फिर वह रग जब बहुत जम गया, हँसने लगा।

मैं ने जल्दी-जल्दी अपने कपडे गले में पहन लिये—शायद उस की हँसी से घबरा गया था।

यह सिर्फ बाहर रोशनी म आकर देखा था कि मैं ने पायजामा उल्टा पहन लिया था।

इस बात को बहुत साल हो गये हैं जब भी सोचा, अच्छी नहीं लगी।

कई बार यह भी सोचना चाहा कि यह मैं नहीं था, मेरे दोस्त का सिर्फ कमीज़ पायजामा था, जो लारी में बैठकर वहाँ गया था, पर वह कमीज़-पायजामा गले से उतारकर भी सारे कुछ का दोष गले से नहीं उतार सका था।

फिर यह भी सोचना चाहा था कि इस में इतना दोष नहीं था। दोष सिर्फ संस्कारों में था। तो भी इस को दोहराने का कभी ख़याल नहीं आया था।

यह ख़याल सिर्फ आज आया था। आज गले में पहना हुआ ढीला चोला भी अंगों से अटकता लग रहा था। अंगों की गोलाइयों में जैसे कुछ नोकें निकल आयी हों।

और मुझे लगा—आज मेरी हड्डियाँ किसी बौराये हुए बैल के सींगों की तरह तनी हुई हैं जो किसी के पहलू में धँसना चाहती थीं

गाँव से बहुत दूर जाकर, गेरुए चोले को उतार दिया। कपड़े की एक पोटली सी बाँधकर साथ ले गया था—धारीदार पायजामा लकीरोंवाली कमीज़ और सिर पर लपेटने के लिए एक लम्बा-सा अंगोछा

भेष बदल गया। लारी में बैठकर सोचा कि यह मैं नहीं था, वह एक भेष लारी में बैठा हुआ था

पर वहाँ पहुँचकर किसी सँकरी गली की तंग कोठरी में बैठकर जब किसी लाल या काशनी रंग में डूबना चाहा उस के किनारे पर ही पैर अड़ गये।

अंगों का सारा तनाव जैसे अंगों से निकलकर पैरों में आ गया था। पैर जमकर खड़े हो गये।

पैरों को देखना चाहा दिखे नहीं। वह काल्पनिक फूलों के ढेर में छिपे हुए थे।

'तू यह फूल क्यों लायी है?' शायद मैं ने बहुत गुस्से से कहा था।

कोठरी में से एक सहमी-सी आवाज़ आयी थी—'फूल कहाँ हैं? यहाँ कोई फूल नहीं। मैं कोई फूल नहीं लायी हूँ।

पर वहाँ फूलों का एक ढेर लगा हुआ था—इतना बड़ा कि मेरे दोनों पैर उस में ढके हुए थे। मैं न अपने पैरों को देख सकता था, न हिला सकता था।

किसी ने उस कोठरी में मेरी सहायता भी करनी चाही थी मेरी बाँह पकड़कर मुझे वहाँ से हिलाना चाहा था, शायद बैठाना चाहा था शायद कहीं ले जाना चाहा था

पर दोनों पैरों के ऊपर कोई हथेलियाँ भी छू रही थीं
और पैर उन हथेलियों की छुअन से शायद मूर्च्छित हो गये थे
मूर्च्छित पैरों को शायद आगे नहीं बढ़ा सकता था, पर पीछे घसीट सकता था।
घसीट घसीटकर फिर अपने डेरे में लौट आया हूँ।

अगो की गलाइयों से सभी नाके यड गया ह और मेरा गेरुआ चोला सहमकर मेरे गले से लगा हुआ है।

सारा वस्त्र सूखा है—किसी रंग में नहीं डूबा। और शायद इसी सूखेपन को पवित्रता कहते हैं

पर पर सीले है। शायद बहुत देर गीले फूलों के ढेर में पड़े रहे थे, इसलिए।

या शायद पैरों की आखों में आसू आ गये है

सुन्दरा सुन्दरा जादूगरनी! आज तू ने यह मेरे साथ क्या किया है?

यह 'क्या' मेरी देह से बाहर है, पर फिर भी मेरी रूह के अन्दर है

स्कन्दपुराण में क्या कथा आती है कि सूरज की एक पुत्री छाया के गर्भ से पैदा हुई। क्या सूरज के भोग के समय भी छाया का अस्तित्व कायम रहा था? जरूर रहा होगा, नहीं तो उस का नाम छाया क्से होता।

तो सूरज के सम्मुख होकर भी छाया का अस्तित्व सम्भव है? मैं ने सुन्दरा को त्यागा था, पर उस का अस्तित्व इस त्याग के सामने भी खड़ा है

कुछ रिश्ते कैसे होते है जो हर हाल में रहते है। स्वीकृति में से जन्मने कायम रहने ठीक था। पर यह अस्वीकृति में से भी जन्म ले लेते है, और सिर्फ जन्म नहीं लेते, इनसान की उम्र के साथ भी जीते है, और उम्र के बाद भी जीते है

ब्रह्मववर्त पुराण की एक कथा याद आयी है—विष्णु को शखचूड की स्त्री तुलसी का सत भंग करना था इसलिए एक दिन उस ने शखचूड का रूप धारण किया और तुलसी के साथ भोग किया। तुलसी को जब इस छल का पता लगा उस ने विष्णु को शाप दिया कि वह पत्थर हो जायेगा। विष्णु ने भी उसे शाप दिया कि उस के सिर के बाल तुलसी का पौधा बन जायेंगे। और उस का शरीर गण्डका नदी बन जायेगा। गण्डका नदी में से अब तक जो पत्थर मिलते हैं वे विष्णु का रूप है—शालग्राम। वह रिश्ता अब तक कायम है। यहा तक कि लोग कार्तिक की अमावस को तुलसी की पूजा करते तुलसी के पौधे का और शालग्राम का विवाह रचाते हैं

यह कैसे शाप थे जिन्होंने वर का रूप धारण कर लिया? सुन्दरा का त्याग पता नहीं वर था, कि शाप! पर जो कुछ भी था, वह कायम है। मेरी देह से बाहर है, पर फिर भी मेरी देह के अन्दर है

शायद वरदान और शाप भी सूरज और छाया की तरह एक ही समय, एक ही जगह इकट्ठे रह सकते हैं

पृथ्वी का नाम, जिस राजा पृथु के नाम से पड़ा, उस का जन्म उस के मरे हुए पिता वेणु की दायीं जांघ में से हुआ था—वेणु धार्मिक राजा नहीं था, इसलिए ऋषियों ने कुशा के तिनकों से मार-मारकर उसे मार दिया पर राज-काज के लिए आखिर किसी की जरूरत थी, इसलिए मरे हुए वेणु की एक जांघ को मलना शुरू किया। पर उस जांघ में से जिस बालक ने जन्म लिया वह बहुत भयानक शक्ल का था, उस का राज्य

नही सौंपा जा सकता था। इसलिए ऋषियों ने फिर मरे हुए राजा की दायीं जांघ को मलना शुरू किया। इस दायीं जांघ में से एक प्रकाश से चमकते बालक ने जन्म लिया, वही बालक पृथु था

इनसान की एक जांघ में यदि भयानकता वास करती है तो दूसरी जांघ में अनन्त सौंदर्य। खून के एक ही चक्कर में वर भी शाप भी

सुंदरता कहीं नही, पर है

सोलह

मन्दिर के पासवाले जंगल के पिछवाड़ेवाली खड्ड आज धुंध से नाका-नाक भरी हुई है। धुंध इतनी गाढ़ी और जमी हुई लगती है लगता है—अगर मैं उस पर पैर रखकर चलूँ, तो अडोल खड्ड के परली तरफ पहुँच सकता हूँ।

पेड़ों का काली नाली और हरा परछाइयां खड्ड की धुंध पर बड़ी स्थिरता से लेटी हुई है। सिर्फ किसी किसी वक्त हिलती और करवट लेती-सी लगती है।

पिछले दिनों एक यात्री यहां आया था। पता नहीं कौन था? सिर्फ एक रात का बसेरा कर के आगे कुल्लू की पहाड़ियों की तरफ चला गया। कहता था फिर वापसी पर आऊँगा। अभी आया नहीं पर आयेगा, क्योंकि भार हल्का करने के लिए किताबों की एक गठुर अमानत छोड़ गया है।

सिर्फ वही नहीं अपनी याद भी छोड़ गया है आज बार बार उस की याद आ रही है।

जिस दिन आया था उस दिन दूर-पास कहीं धुंध नहीं थी पर जब मैं ने उसे पूछा कि वह किस शहर से आया था, तो उस ने हँसकर कहा था 'धुंधवाले शहर से।

पूछा था कि वह शहर कहां है तो हंस पड़ा था—"हर शहर धुंधवाला शहर है और उस ने जरा ठहरकर कहा था हमारी दुनिया में वह कौन-सा शहर है जो धुंधवाला शहर नहीं।

मैं ने चारों तरफ देखा था, और दूर धौलाधार की पहाड़ियों की तरफ भी। वह मेरे प्रश्न को समझकर हंस पड़ा था, और उस ने कहा था, पत्थर हर जगह दिखते हैं पर इस धुंध में इनसान को इनसान का मुंह नहीं दिखता।

मैं ने एक बार उस की तरफ देखा था फिर अपनी तरफ। जैसे पूछ रहा होऊँ क्या तुम्हें मेरा मुँह नहीं दिखता?

वह कुछ देर चुप रहा था फिर धीरे से उस ने कहा था, जो मैं यह कहूँ कि मुझे तेरा मुँह नहीं दिखता, सिर्फ तेरा जोगिया वेश दिखता है, फिर?

मुझे यह लालच नहीं था कि मेरा मुँह उस लिखे, और इस मुह के पीछे, मैं हूँ वह भी उस को नजर आऊँ, इसलिए मैं ने भी हँसकर कह दिया, 'चलो, मुह की पहचान न सही, जोगिये वेश की ही सही, क्या यह पहचान के लिए काफी नहीं है ?'

'जिस हिसाब से दुनिया चल रही है, उस हिसाब से काफी है,' उस ने कहा था, और बरामदे के एक कोने में कम्बल बिछाकर चुपचाप लेट गया था।

शाम का हल्का-सा अँधेरा था, देख सकता था कि अभी वह सोया नहीं था। उस के हाथ के पास एक दीया और एक पानी का कटोरा रखकर एक बार गौर से उस के मुह की तरफ देखा था। मुह के बारे में कुछ और नहीं सोच रहा था, सिर्फ यह कि आज तक के देखे हुए चेहरों से वह कुछ अलग-सा लग रहा था, और उसे कुछ घड़ियों के लिए मैं अपने ध्यान में रखना चाहता था—जैसे कोई विलक्षण फूल तोड़कर कुछ घड़ियों के लिए उसे अपने सिरहाने के पास रख ले।

पीठ मोड़ने लगा था, जिस वक्त उस ने कहा था, 'जोगिये वेशवाली बात का गुस्सा मत करना, दोस्त !'

हँसी आ गयी थी, इसलिए जवाब दिया था 'जोगिये वेश को तो गुस्सा शोभा नहीं देता,' पर साथ ही ध्यान आया था कि यह ऋषियों की जबान ही होती थी, जो बात-बात में क्रोधित हो उठती थी और शाप दे देती थी।

इसलिए एक गहरी सांस लेकर यह भी कह दिया, "क्रोध करेगा तो जोगिया वेश क्रोध करेगा, मैं क्या करूँगा ?"

वह कन्धों पर तानी हुई गरम चादर को हाथ से परे कर के कम्बल पर बैठ गया, और कहने लगा, "यह बात तू ने बढ़िया कही है। खुदा होते हैं, तो वेश ही खुदा होते हैं, क्रोध करते हैं तो वेश ही क्रोध करते हैं इनसान हैं ही कहां ? अगर कहीं हैं भी तो मुझे तो धुन्ध में दिखते नहीं"

फिर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और कहने लगा, 'सारी दुनिया कपड़ों में बँटी हुई है, वेशों में—फटे हुए चीथड़ोंवाले, कामकाजी मजदूर, अधमैले कपड़ोंवाले, छोटे-छोटे दुकानदार, चमकते कपड़ोंवाले बड़े-बड़े दुनियादार' और मेरा हाथ पकड़ कर मुझे भी अपने कम्बल पर बिठाते हुए कहने लगा, 'और कमरबन्द पहननेवाले राजा और मन्त्री इस लोक के रक्षक और गेरुए वस्त्रोंवाले परलोक के रक्षक।'

मेरे कन्धे पर उस ने जोर से एक हाथ मारा और फिर कहा, 'और तो और, धरती के टुकड़े भी वेशों से ही पहचाने जाते हैं—अपने-अपने झण्डों से। और उन धरती के टुकड़ों की रखवाली भी इनसान नहीं करते वर्दियां करती हैं अगर इनसान कहीं होते तो लड़ाइयों की क्या जरूरत थी भला कहीं सचमुच का इनसान भी सच मुच के इनसान को मार सकता है ? यह सब वर्दियों और वेशों की लड़ाई है झण्डों की लड़ाई' उसे एक सांस सी चढ़ गयी थी। जैसे सांस बहुत बड़ी थी और छाती बहुत छोटी थी। और लग रहा था—कपड़ों का वेश तो क्या, उस की रूह को उस के

वदन का वश भी तग लग रहा था

"तू कोई भगवान् को पहुँचा हुआ इनसान लगता है," मैं ने उस की पीठ पर थपकी-सी मारी थी, और उस के कधो से उतरी हुई चादर उस के कधो पर ओढा दी थी।

वह हँसा नही, बल्कि कुछ उदासीन सा हो गया और कहने लगा 'भगवान के पास तो किसी फुरसत के वक्त पहुच लेंगे। पहले अपनेआप के पास पहुच लें इस धुध में भगवान तो क्या दिखना है अभी किसी को अपना मुँह भी नही दिखता "

कुछ कहने के लिए मचल-सा गया था। मैं नही, शायद मेरा गेरुआ वेश मचल गया था। पर अपने वेश को मैं ने स्वय ही चुप सा करवाया, और वहा से उठ बैठा।

सुबह मक्की की रोटी और गुड की डली मैं ने जब उस को जाते हुए उस के पल्ले से बाध दी, उस ने अपनी गठरी पोटली को जरा हाथ से टोला और फिर कुछ किताबो का भार उस से हल्का कर के गठरी और पोटली उठा ली।

यह मेरी अमानत। फिर जब इस राह से गुजरूगा, ले लूँगा उस ने कहा था।

"पर जो सीने मे डाला हुआ है और मस्तक में भी वह भी तो बहुत भारी है' मुझे हसी सी आ गयी थी।

'उसे ढोने के लिए ही तो इस शरीर की जरूरत है, नही तो यह शरीर क्या सँभाले फिरना था।' वह हँस पडा था।

बहुत-से यात्री आते है जाते है। पर जो भी आते है, मन्दिर की नदी मे से पानी के चुल्लू भरते जस नदी को कुछ रीता ही करते है। पर वह जब हँसा था मुझे लगा—उस की झरने जसी हँसी नदी के पानी में मिलकर, नदी को और भर गयी थी।

कहा कुछ नही, सिफ जाते समय यह पूछा "इन पुस्तको का बाचने का हक वर्जित तो नही?

उस के जाते हुए के, पाव पल भर को ठहर गये थे। उस ने गौर से मेरे मुह की तरफ देखा था—जसे किसी धुध की तह में से मेरे मुह को ढूढ रहा हो।

"ज्ञान को धारण करना शिवजी की तरह गगा को धारण करने के बराबर है' उस ने कहा और मुसकरा दिया।

'पुराणो में गगा के बारे में जो प्रसग आते है उन की जगह जो तेरा यह कथन प्रसग बनकर आता तो बहुत अच्छा था। अनायास ही मेरे मुह से निकला।

"पुराणो में क्या प्रसग आते है? उस ने पूछा।

"कई आते है," मैं ने जवाब दिया, जिन मे से एक यह है कि यह वामन अवतार के पैरो का जल है। जब वामन का पैर ब्रह्मलोक तक पहुचा, तब ब्रह्मा ने उस का पैर धोकर उस जल को कमण्डल मे डाल लिया, और भागीरथ की प्रार्थना पर

ब्रह्मलोक से छोड दिया। शिवजी ने उस जल को जटाओं में सँभाल लिया, और फिर जटा खोलकर उस जल को पृथ्वी पर छोड़ा तो वही जल गंगा कहलाया।"

"और ?" उस ने फिर पूछा।

"और 'वाल्मीकीय रामायण' में आता है कि हिमालय पर्वत के घर मेनका के उदर से गंगा और उमा दो बहनें पैदा हुईं। एक बार शिव ने अपना वीर्य गंगा में डाल दिया। गंगा उसे धारण न कर सकी, और गर्भ को फेंककर ब्रह्मा के कमण्डल में जा रही। फिर भगीरथ की प्रार्थना पर कमण्डल से निकलकर पृथ्वी पर आयी"

'काफी दिलचस्प कहानियाँ हैं।' वह ज़ोर से हँसा और कहने लगा, "शायद इन कहानियों में ही गंगा को ज्ञान का चिह्न कहा गया है"

'गंगा को कि शिवजी के वीर्य को जिसे गंगा धारण न कर सकी ? किसी ज्ञान को गर्भ में धारण कर सकना ही तो मुश्किल था"

मैं ने जब कहा तो हम दोनों इस तरह हँसे, जैसे मैं हम दोनों स्पष्टता और अस्पष्टता के बीच में खड़े बड़े थाये हुए लग रहे थे।

यह बात अलग है कि दूसरे पल वह चला गया, और उस के जाने के बाद भी कितनी ही देर तक वहां खड़ा रहा।

उस दिन धुंध नहीं था, पर आज मन्दिर के पासवाले जंगल के पिछवाड़े खड्ड में धुंध भरा हुआ है

वैसे जिस धुंध का ध्यान उस ने की था, वह उस दिन भी था, आज भी है और शायद हमेशा होगा

सिर्फ यह कह सकता हूँ कि आज धुंध दोहरा है

पर यह दोहरा धुंध पता नहीं कैसा है—गाढ़ा सफ़ेद और बर्फ की तरह जमा हुआ—कि पेड़ों की काली, नीली और हरी परछाइयों की तरह। किसी के यहां होने की परछाईं भी इस पर अडोल पड़ी लगती है

यह पता नहीं मेरे वजूद की परछाईं है, कि उस यात्री के रूप में किसी ज्ञान के वजूद की परछाईं

सत्रह

आज लगता है—उस यात्री को मैं ने बहुत नजदीक से देखा है। उसे भी और अपने-आप को भी।

उस की अमानत किताबों में से एक किताब मैं ने पढ़ी किताब का हर पन्ना जैसे शीशे का एक टुकड़ा था। जिसमें अपनी सूरत भी नज़र आती रही, और अपनी कल्पना में पड़ी हुई उस यात्री की सूरत भी।

रेत उस के परों के नीचे भी हिल्ता है और उस के पर चौंककर रेत के कानून की ओर देखते हैं

कुछ बूढ़े आदमी कुछ घबराये हुए-से उसे सरकारी आदमी समझते हैं पर वह विश्वास दिलाता है, कि वह एक साधारण स्कूल मास्टर है। रात बिताने के लिए वह कोई जगह पूछता है तो एक जना उसे मदद का विश्वास दिलाता है। शाम ढल जाती है। उस कीड़ा को कोई खास किस्म नहीं मिल्ती और वह थककर अपनी तलाश कल पर छोड़ देता है।

रात बिताने के नाम पर उसे सड़क पर उतरती एक गहरी खाई में बना हुआ एक घर मिल्ता है। रस्सी की मदद से वह घर की छत पर उतरता है। घर का रास्ता दिखाने आया हुआ बूढ़ा लौट जाता है। वह घर की छत पर ढेर सारी गिरती रेत को देखकर परेशान होता है, पर यह तजरबा सिर्फ एक रात का सोचकर वह धीरज बांध लेता है।

रस्सी को घर की छत तक लटकाते समय बूढ़े ने आवाज दी थी — नानी किवाड़ खोल !' पर यह यानी घर की दहलीज पर जिस औरत को देखता है उस की जवानी अभी ढली नहीं होती। हाथ में लालटेन पकड़े वह उस का स्वागत करती है।

"इस कोठरी में एक ही लालटेन है अगर तू अंधेरे में बैठ सके, तो मैं पिछवाड़े बैठकर तेरे लिए कुछ रांध लूं" औरत कहती है।

'मैं कुछ खाने से पहले नहाना चाहता हूँ' वह जवाब देता है।

औरत हैरान सी होती है फिर कहती है 'जो तू परसों तक इन्तज़ार कर सके, नहाने का इंतज़ाम हो जायेगा।

"पर मैं ने यहां सिर्फ एक रात रहना है" वह जवाब देता है और हैरान होता है कि औरत ने उस की बात सुनी-अनसुनी कर दी है।

खाने के लिए उसे मछली का सूप मिल्ता है पर औरत जब उस की थाली पर कागज की छतरी तानती है, वह हैरान होता है तो वह बताती है कि यहां रेत इस तरह उड़ती है कि अभी सूप का प्याला छतरी के बिना रेत के कणों से भर जायेगा। और वह बताती है कि हवा का रुख जो इस ओर हो तो सारी रात उसे छत पर से रेत उतेरनी पड़ती है, नहीं तो दूसरे दिन यह सारी कोठरी रेत में दब ही सकती है।

उस का बदन यानी देर में चिपचिपा हो जाता है, और उड़ती रेत, उस के गले में नाक में और आंखों में एक तह की तरह जमने लगती है।

दूसरे दिन सवेरे-सवेरे बाहर दूर से बहुत ऊँचाई से आवाज आता है, और रस्सी से एक आदमी के लिए नहीं, दो आदमियों के लिए कुछ खाने का सामान नीचे उतार दिया जाता है। अजाब-से शक उस की आँखों के आगे रेत के कणों की तरह

घूमने ह, पर उस की समझ में कुछ नही पडता। औरत लगातार एक फावडे से दरवाज़े के सामने से रेत का हटाने म लगी हुई ह।

"मैं तेरा हाथ बटाऊँ ? वह औरत से पूछता ह।

पर औरत जवाब देती ह 'पहले दिन ही तुझे इतनी तकलीफ दूँ ? नही, पहले दिन नही वह परेशान होता ह फिर भी उस के हाथ स फावडा पकडकर उस की मदद करना चाहता ह। औरत कहती ह अच्छा जा तुझे आज ही काम पर लगना ह तो तेरे हिस्से का फावडा उन्होंने भेज दिया ह, वह ले ले।

'वह कौन ?' अभाव परेशानी ह। वह वहा से उलटे पाँव ही चला जाना चाहता ह पर बाहर की सडक तक पहुँचने के लिए रेत की चढाई किसी तरह भी पार नही की जा सकती

वह रेत का बन्दी होकर रह जाता ह

गाव के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए सारी रात रेत को बुहारने का काम जरूरी ह और इस काम के मजदूर सिर्फ रेत बुहारते ह। और उस के बदले गाव के मुखिया उन्हें सूखी हुई मछली कुछ आटा और कुछ पानी रस्सियो से उतारकर उन तक पहुँचा देते ह

इस का मतलब ह कि तुम कुछ लोग सिर्फ रेत बुहारने के लिए जीते हो ?' वह परेशान होकर पूछता ह।

'हा, सिर्फ रेत बुहारने के लिए। यह गाव तभी बना रह सकता ह। जो हम यह काम छोड दें तो दम दिनो म सारा गाव रेत के नीचे दब जायेगा औरत बताता ह और उस का दार्शनिक मन सोचता है कि रेत के इस कानून के आगे शायद कुछ भी नही हो सकता। बडी-बडी बादशाहतें भी वक्त की रेत म दब जाती ह पर अस्तित्व क्या ह ? शायद पानी के अथाह सागर म पानी को बुहार बुहारकर एक निश्चल स्थान बनाने का यत्न

उस की निराशा उस के गले में अटक जाती ह वह रेत की दीवार पर चढकर रेत की इस कब्र में से निकल जाना चाहता ह पर

इस 'पर का जवाब कही नही

'उन्होंने मुझे यहा तेरे पास रेत का कैदी क्या बनाया ? वह हारकर कुछ दिनों बाद उस औरत से पूछता ह।

'इसलिए कि मैं अकेली थी, यहा मुझे रेत भी खा जाती, और अकेलापन भी, औरत बताती ह।

पर उन्होंने मुझे कोई कुत्ता या बिल्ला समझ लिया था कि जो भी औरत मेरे सामने आ जायेगी ' वह गुस्से म खौल जाता है।

पर गुस्सा भी आखिर रेत की तरह नाडियो म जम जाता ह। जब समय गुजरने लगता ह तो उस के जिस्म की निराश भूख उसी औरत के जिस्म म से हुडबडा

कर कुछ माँगती है

कोई चीज मजबूर करती नहीं लगती, सिर्फ रेत औरत पर आया हुआ उस का गुस्सा आखिर रेत के कणों की तरह रेत में मिल जाता है

वह रेत की कब्र में है, पर फिर भी रेत बुहारता है

फिर और कुछ नहीं, सिर्फ साँसों का चलते रहना ही जरूरी लगने लगता है

और जिन्दगी के अर्थ बन जाते हैं, साबुन की, पसीने की, और रेत की गन्ध में भीगे हुए वस्त्र, और उन में साँसों को चलाये रखने का निरन्तर यत्न

जिन्दगी की हकीकत को मैं ने इतने नग्न रूप में कभी भी नहीं देखा था। किताब खत्म हो जाती है, कहानी फिर भी चलती जाती है

इस दुनिया में कौन है जो इस कहानी का पात्र नहीं ?

हम सब रेत बुहार रहे हैं। यह बात अलग है कि कोई हल-फावड़ा लेकर इस रेत को उठाता है, कोई तराजू लेकर और कोई कलम-दवात लेकर मेरे जैसे कुछ लोग पूजा-पाठ के फावड़े से रेत बुहारते हैं पर साधन बदलने से कुछ नहीं बदलता, रेत रेत है

सपनों के नाम पर हम—सारे जो कुछ सोचते हैं हर आज के बाद, उस को बात, हर पल पर डालकर, चलते चले जाते हैं

और यत्न के नाम पर जो कुछ करते हैं

(इस कहानी का पात्र फिर याद आ गया है—गले के कपड़े उतारकर और उन की रस्सी बट-बटकर उन के सहारे कहीं से निकलने और छूटने का उस का यत्न)

उन यत्नों के पदचिह्न भी उड़ती रेत से बहुत जल्दी मिट जाते हैं

और बगावत के नाम पर हम जो कुछ चाहते हैं खुले गले में उड़ उड़कर पड़ती रेत आखिर उन चीखों को भी हमारे गले में बन्द कर देती है

कुछ नहीं बनता। कभी भी नहीं बनता। सूखती घास जैसे कुछ बीज धारण कर लेती है इनसान भी अपनी हड्डियों की मुठ किसी और मास में लपेटी हड्डियों की मुठ के साथ जोड़-तोड़कर अपने अस्तित्व के बीज इस धरती पर छोड़ जाता है

अठारह

मैं महन्त किरपासागरजी के अस्तित्व का बीज हूँ, चाहे घूरे पर पड़ा हुआ—पर हर बीज को मिट्टी की मेहरबानी जरूर स्वीकारनी होती है, फलना भी जरूर होता है, फूलना भी

अपने वजन में से उगता सोचा तो मैं कुछ नहीं कर सकता

इन्हें जो नफरत के कडवे फल लग जायें, तो भी मैं कुछ नहीं कर सकता यह वाज़ की बेबसी है।

अपनी सूरत के बारे में चर्चा होती मैं ने सुनी है (मेरी सूरत को किसी भी तरह महन्त किरपासागरजी की सूरत से मिलाकर नहीं)। शिवजी के वर्ण के साथ मिलाकर, दूध और केसर के रंग से मिलाकर, या दूध और मधु के रंग से मिलाकर

रंगों का भी शायद शौक होता है भुलावा डालने का। जो सिर्फ किसी रंग की उपमा में किसी को विरह लिखना हो, तो मेरा ख्याल है वह सब से पहले सप-फली की उपमा में कोई विरह लिखेगा। उस के जितना सुन्दर रंग किसी फल का नहीं होता। उस के रंग में जैसे आग जलती होती है। पर इसी सप-फली का दूसरा नाम मौत फली है। इस को बस होठों से छुआने की देर होती है।

आम मिट्टी में से उगनेवाली जड़ी-बूटियों का ज़हर सिर्फ होठों को चढ़ता है, पर इनसान के मन में से उगनेवाली जड़ी-बूटियों का ज़हर आँखों को भी चढ़ता है, माथे को भी चढ़ता है, सांसों को भी चढ़ता है, पावों को भी चढ़ता है, और सपनों को भी चढ़ता है

कभी-कभी नदी की आवाज़ में से अचानक महन्त किरपासागरजी की आवाज़ उभर आती है—कुसूर मेरे कानों का है, आवाज़ का नहीं—पर फिर भी ऐसे लगता है जैसे वह आवाज़ मेरे कानों से मजाक-सा करती हो

कभी सोचना चाहता हूँ कि मेरे कान उस आवाज़ से मज़ाक करते हैं। पर पता है यह सच नहीं। शायद कभी हो जाये पर अभी नहीं। अभी तक यही सच है कि यह आवाज़

यह सब कुछ शायद इसलिए कि उन की आवाज़ में कुछ खास तरह का 'कुछ था'—नदी के पानी की तरह, हल्का-सा होते भी बड़ा भारी, और अपने जोर से बहता। कोई पत्थर, कंकड़, पत्ता या हाथों का मल उस में फेंक भी दें तो उस से बेपरवाह उसे बहाकर ले जाता, या परों में फेंककर उस के ऊपर गुजर जाता।

पानी के बहाव की शायद सिर्फ आँखें होती हैं, कान नहीं होते। उन की आवाज़ भी एक सीध में चली जाती थी, इर्द गिर्द की बातों को सुनकर कभी खड़ी नहीं होती लगती थी। साधु डेरे भी घर-गृहस्थी की तरफ झगड़ों वगैरा और निन्दा चुगली से बसते हैं—जाले इन की दीवारों पर भी लगते हैं। पर महन्त किरपासागरजी की आवाज़ के बारे में मैं यह जरूर कह सकता हूँ कि वह नदी के वेग की तरह, इस सब कुछ को बहाकर ले जाती और उन्हें आँखें भरकर देखती भी नहीं थी।

यह आवाज़ दो तरह की थी—एक भारी और बेगवती और दूसरी बहुत सूक्ष्म, उदास और पवन की तरह पवन में मिलती तथा अपने अस्तित्व का सबूत भी चुराती।

पहली तरह की आवाज़ एक खास तरह के प्रभाव को लेकर चलती थी, पर

दूसरी तरह की बिल्कुल बेपरवाह होकर।

कोई जब भी बात करता है, सिर्फ पहली तरह की आवाज की ही बात करता है। शायद वह प्रत्यक्ष थी, इसलिए। और शायद लोगों को अपनी हस्ती उस के प्रभाव के नीचे झुक जाती थी इसलिए। पर मेरे लिए इस तरह नहीं। सोचता हूँ—बाहर दिखते बोझ को कोई हाथ से अपने ऊपर से उतार सकता है, पर वह जो दूसरी किस्म का कुछ होता है, जो साँसों में मिलकर छाती में उतर जाता है उस का क्या करे!

मन्दिर के साथवाले जंगल में, यह दूसरी तरह की आवाज मैं ने कई बार सुनी थी। वह अकेले रात प्रभात कभी उस जंगल में खो गये लगते थे—आवाज को भी शायद जंगल की शा शा में मिलाकर, खो देना चाहते थे—एक ही बोल होता था जो बार-बार होठों से झड़ता था—'मुद्दतें गुज़र गयी बेयार ओ मददगार हुए।'

यह बोल उन के होठों से पीले पत्ते की तरह झड़ता था फिर होठों पर हरे पत्ते की तरह उगता था और फिर होठों से पीले पत्ते की तरह झड़ता था

पंजा के बल चलकर मैं ने कई बार इस आवाज का पीछा किया था। अपने कानों की इस चोरी से मुझे कोई उलाहना नहीं। सिर्फ कई बार ऐसे होता था कि मेरे कान बहुत दर्द करने लगते थे और लगता था कि एक नफरत मेरे कानों में पीप की तरह भर जाती थी

पता नहीं, यह असली अर्थों में नफरत थी या नहीं। यदि थी तो इस से बचने के लिए मैं बड़ी आसानी से यह कर सकता था कि कभी वह आवाज न सुनता। एक बेपरवाही की रुई कानों में दे सकता था। पर मैं तो उस आवाज का पीछा करता था, वह मुझे बुलाती नहीं थी पर फिर भी पंजों के बल चलकर मैं उस के पीछे जाता था। उस के बिना कानों को जैसे एक बेचैनी-सी होती थी।

आज आवाज कोई नहीं, पर उस की कल्पना अभी भी बाक़ी है। वही उस मरी हुई आवाज को फिर से जीवित कर देती है। और फिर वह सिर्फ मेरे कानों तक सीमित नहीं रहती कई बार मेरे होठों तक भी आ जाती है। होठ उस के भार के तले हिलने लग पड़ते हैं और हिलते हिलते खुद एक आवाज-सी बन जाते हैं—मुद्दतें गुज़र गयी बेयार ओ मददगार हुए

किसी साइ-फकीर ने कहा है—

कुन फ़िकुन जदों कीतो ई
कीतियाँ ना जोरावरियाँ
जुज़ अपनी तो जुदा कीतो ई
तेरियाँ कीतियाँ मत्थे धरियाँ[1]

---

१ तुम ने जब कहा कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ, तब तुम ने हम से जबरदस्ती की। तुम ने हमें अपने से अलग कर दिया, और तुम्हारा किया हमें स्वीकार करना पड़ा।

उस साइ-फकीर ने भी शायद यही एकाकीपन भोगा था, जो महन्त किरपासागर जी ने बेयार मददगार होते हुए भुगता था

बुन फिकुन—मैं एक से अनेक हाऊँ—

पता नहीं किस अपार शक्ति का यह खयाल आया ? सब छोटे छोटे टुकड़ों में बँट गये थे—एकाकीपन के टुकड़ों में ।

महन्त किरपासागरजी का अस्तित्व भी एकाकीपन का एक टुकड़ा था—और उस टुकड़े ने शायद बिलकुल मिट जाने के खौफ में से एक और टुकड़े को जन्म देना चाहा था—मुझ ।

किसी के वजूद पर लादी गयी किसी की मरज़ी
मुझे उन से नहीं, उन की इसी मरज़ी से नफरत है
अपना आप नाजायज लगता है, शायद इसलिए यह नफरत जायज़ लगती है

उन्नीस

आज वह आया था—वही दीनानाथ । कपड़े साधारण थे पर के धुले हुए थे, साफ-सुथरे, पर उस के सिमटे हुए अंगों से लगकर कुछ सिकुड़े से लग रहे थे उस के मुँह की तरह दीन-से लग रहे थे, और उस के मुख से निकली बात की तरह झिझकते-से, और गुच्छा-से होते

उस के गले में कोई अंगोछा-सा था और उस अंगोछे की कनी वह अपने हाथ से ऐसे मरोड़ रहा था जैसे अभी भी एक कपड़े के टुकड़े से लालटेन की चिमनी पोंछ रहा हो

पता नहीं उस दिन उस का चिमनी पोंछते हुए देखकर उस का किस तरह का मुँह ध्यान में अड़ गया था । लगा, वह कई बरसों से एक चिमनी को पोंछ रहा है

वह बड़े एकान्त के समय आया था । यह शायद संयोग नहीं था, वह वक्त को देखकर आया था । मैं उस वक्त अकेला मंदिर के पिछवाड़े के जंगल में पगडण्डिया पर घूम रहा था । रोज शाम को सन्ध्या के समय इस तरह घूमता हूँ । एक नियम की तरह । लगता है, उस को इस नियम का पता था

ये चैत के दिन बड़े अजीब होते हैं—पेड़ों की पत्तियाँ पल पल में रंग बदलती हैं थोड़ी-सी हवा से भी काँप-काँप सी जाती हैं और फिर लगता है जैसे ये घबराकर पेड़ों के पैरों पर गिर रही हों

उन की यह दीनता देखकर मन में कुछ होता है
वह भी जब आया मेरे पास, मेरे मन को कुछ हुआ
मेरा खयाल है, उस ने भी एक बार चुपचाप पेड़ों की तरफ़ देखा था—पेड़ जो

हर घडी नगे और दीन-से हो रहे थे, फिर उस ने, आँखो को झुकाकर, पेडो की हानी कबूल कर ली थी—

"मैं तुम से एक बात करने आया हूँ" उस ने कहा। पर इतना वह मुझे कहता नही लग रहा था, जितना अपनआप को। जैसे कोई पेड अपने को पतझड के आने की खबर बता रहा हो।

'यह तेरी मा है" उस ने कहा, और फिर चुप हो गया।

पता नही यह बतानेवाली क्या बात थी। मुझे पता थी, और उस को भी मालूम था कि मुझे पता है।

"जाने उस के कितने दिन रहते ह पता नही दो घडिया ही हो, पर उस की जान अटकी हुई ह तू ने उस राजकुमारी की कहानी सुनी ह जिस की जान तोते में थी? वह मारने से नही मरती थी, पर जब किसी ने तोते की गरदन मरोड दी उस की भी गरदन टूट गयी वह भी अभी मरने लायक नही थी, पर उस की जान उस में नही, तुझ म है—तेरी एक नजर म। तू नजर मोडता है उस की जान लटक जाती ह तू उसे एक बार मा समझकर देख, वह मरी हुई भी जी पडेगी' यह सब कुछ उस ने अटक-अटककर भी कहा और एक सास में भी।

मुझे ऐसा लगा था कि जैसे वह मुझ पर तरस खाकर मुझे गुफा के अधेरे में से निकालने आया हो, पर उसे यह पता न हो कि अगर उस ने दो कदम आगे रखे तो उसे भी हमेशा के लिए गुफा के अँधेरे में गुम हो जाना होगा।

मुझे जिन्दगी म अगर किसी पर पहली बार तरस आया तो उस पर—दिल में आया कि उस के होठो पर हथेली रखकर उसे आगे कुछ कहने स चुप कर दूँ

हवा तेज नही थी पर पेडो की पत्तिया झडी जा रही थी। मैं हवा को हाथ से रोक नही सकता था।

"वह बडी नेक औरत ह" शब्द उस के मुँह म थे मेरे कान बौरा-से गये। वही घडी सामने आ गयी, जब महन्त किरपासागरजी ने आखिरी स्वासा के समय कहा था "वह एक पुण्यात्मा ह'

लगा—यह दोनो मर्द, मुझे—एक तीसरे इनसान को—यह बताने के बजाय, एक-दूसरे को बताते, फिर?

तो क्या फिर भी दोनो के मुँह से यह बात निकलती? सोचा—महन्त किरपा सागरजी जीवित नहीं पर उन की कही हुई बात बाकी ह, जो मैं यह इस भाल इनसान को सुना दूँ? लगा—यह जो स्वय ही गुफा के अँधेरे में भटकने के लिए आया ह, तो मैं क्या कर सकता हूँ

इसलिए जवाब दिया, 'मुझे पता ह महन्त किरपासागरजी न भी यही बात कही थी।'

बहुत दिन हुए महाभारत की एक कथा पढ़ी थी कि एक मुनि ने यज्ञ कराया

राजा की ओर से इक्कीस बैल दक्षिणा में मिले, पर मुनि ने वे बैल दूसरे ऋषियों को दान कर दिये और राजा से और बैल मांगे। राजा ने गुस्से में आकर मरी हुई गउएँ दे दीं। मुनि ने भी गुस्से में आकर राजा के नाश के लिए और यज्ञ आरम्भ किया। वह ज्यों ज्यों गउओं का मांस काटकर हवन करता गया, त्यों-त्यों राजा का राज्य नष्ट होता गया

लगा—मैं ने जो बात कही थी वह भी एक मरी हुई गाय का मांस काटकर हवन में डालनेवाली बात थी, और उस के साथ अभी, इस सामने खड़े इनसान के मन का स्वर्ग नष्ट हो जायेगा

मां उस वक्त मरी हुई गाय की तरह लग रही थी

पर कोई भी स्वर्ग शायद भुलावे के परदे में नहीं होता सच की नग्नता में होता है। लगा मैं कुछ भी कहूं, उस के मन के स्वर्ग को नष्ट नहीं कर सकता था। क्योंकि मेरी बात के जवाब में उस ने स्वयं ही कह दिया था, "उन्होंने जरूर कहा होगा क्योंकि यह सच है।

एक बार यकीन नहीं आया कि मैं सचमुच उस के स्वर्ग को नष्ट नहीं कर सकता। इसलिए फिर कुछ ठहरकर, कुछ और स्पष्ट-सा कहा "उन्होंने यह भी बताया था कि उस पुण्यात्मा को भगवान ने स्वयं सपने में दर्शन दिये और हुक्म दिया "

लगा मैं ने उस के स्वर्ग को अगर अभी नष्ट नहीं किया था, तो भी एक सेंध जरूर लगा दी थी। और मैं ने कहा 'भगवान ऐसा हुक्म देने के लिए सिर्फ किसी पुण्यात्मा को ही चुन सकता है '

खयाल था—वह चौंककर पूछेगा—क्या हुक्म? कैसा हुक्म? पर उस ने कुछ नहीं पूछा। सिर्फ यह लगा कि वह कुछ कांपा सा जरूर था। फिर वह कुछ देर सामने पेड़ों की तरफ देखता रहा, जिन की टहनियां पल पल झड़ते पत्तों से नंगी-सी हो रही थीं।

'हां उस पुण्यात्मा को ही मैं ने यह हुक्म देने के लिए चुना था। यह मेरा हुक्म था उस ने हमेशा मुझे भगवान समझा है उस ने कहा।

लगा—यह कहते हुए न उस का मुंह दीन-सा हो रहा था, और न उस की आवाज़ हीन-सी थी।

याद आया—पांच छह दिन पहले, जब उस के घर गया था, उस ने भी कुछ ऐसा ही कहा था, 'मेरे ऐसे करम कभी नहीं हुए कि भगवान मुझे सपने में दर्शन देते, और कुछ कहते मैं ने सिर्फ उस का हुक्म माना जिसे मैं ने सारी उम्र भगवान समझा। दर्शन उसे हुए थे, मैं ने सिर्फ हुक्म माना

लगा—एक फांस थी जो मेरे सीने की हड्डियों में अटक गयी थी

वह ऐसी नेक औरत है कि मैं अगर उसे सीधा-सादा हुक्म देता, वह रोती और मेरे पैरों पर गिर पड़ती कि मैं इस हुक्म को वापस ले लूं। मैं उस का भगवान

था, पर जो भगवान सामने न्खिता हो, उस का यह भी ता कहा जा सकता ह कि हुक्म को वापस ले ले इसलिए मैं ने अपना हुक्म उस को उस भगवान के मुह से सुनवाया, जो दिखता नही। कहा कि मुझे सपने में भगवान के दशन हुए ह और उन्होने हुक्म दिया है कि तेरा मजोग "

लगा—एक अनन्त पीडा उस आदमी की छाती में उठी थी। उस ने पेड के एक तने से पीठ लगा ली, और पल भर के लिए अपनी आखें, आखा की पल्का से नीचे ढांप ली।

फिर उस की आखो की पल्कें धीरे से हिली, उस के होठा की तरह। और उस ने कहा, "मुझे शिव की मूर्ति के आगे चढाकर जब महन्त किरपामागरजी ने कहा था कि यह बालक आज से शिवजी का पुत्र ह उन्होने सच कहा था। क्या हुआ जो तन उन का था तेरी मा ने जब उन के तन से पुत्र मांगा था तो उन्होने अपने तन में शिव का मन डालकर उसे पुत्र दिया था

और लगा—अब उस के मुह पर आया हुआ अनन्त दद उस का बल बन गया था। उस ने पेड के तने से लगी हुई पीठ पेड से हटा ली, और एक पेड की तरह तन कर खडा हो गया। और फिर पेड पर नये सिरे से लगे पत्ता की तरह मुसकरा दिया, "वह मन मरा था। मैं आप शिव हू। मै ने शिव की तरह जहर का प्याला पिया है "

उस ने सचमुच जहर का प्याला पिया ह यह सामने दिख रहा था। मैं ने आँखें नीची कर ली।

"तू सोचता होगा कि तू मेरा पुत्र नही। पर मैं ऐसे नही सोचता। हिसाब सिफ लोक का नही होता, परलोक का भी होता ह। असली सयाग तन का नही होता, मन का होता है। तन साथ नही देता था इसलिए तन की जगह मैं ने मन को बरत लिया। उस का तन, मेरा मन, और तू इस सयोग में से पैदा हुआ। मैं किस तरह कहूँ कि तू मेरा पुत्र नही "

लगा—मेरा माथा झुक गया था। वह कह रहा था, "मैं ने तेरी मा पर काई एहसान नही किया था। वह बेचारी अब भी समझती ह कि मैं उसे भगवान का रूप होकर मिला हू। पर यह मेरा पाप ह कि मैं ने उसे कभी कुछ और नही बताया। पता नही, उस की आखा में भगवान् का रूप हाकर रहने का लालच ह ' यह कहता कहता हँस-सा दिया और फिर कहने लगा, "तू उस का बेटा है इसलिए तुझे अपना बेटा समझकर बताता हूँ कि मैं ने अपनी जवानी में उस के साथ ब्याह किया था। वह अभी डाली में से निकली थी कि मैं उसे छोडकर परदेश चला गया था। धन कमाने के लिए। कमाया भी बडा, उजाडा भी बडा। पर धन से ज्यादा मैं ने अपनेआप को उजाडा। ऐसी बीमारी लगा कि जिस के इलाज के वक्त सयाना ने मुझे बताया कि अब मेरा वश कभी नही चलेगा। बीमारी का खाया हुआ जब घर लौटा उस नेकबख्त

के माथे लगने लायक नहीं था। मन फटकारें देता था। पर मैं ने उसे बताया कुछ नहीं। बरस बीत गये। रोज देखता था कि वह एक पुत्र के मुँह का तरसती थी। कितनी देर देखता ? उस का कुछ तो कर्जा चुकाना था जैसे-तैसे उसे तेरा मुँह दिखाना था "

लगा—उस के पाँव धरती से ऊंचे हो गये थे। इतने ऊँचे कि मेरे माथे तक पहुँच गये थे

और शायद उस के पाँव चल रहे थे, मुझे लगा, मेरा माथा भी उस के पैरों के साथ-साथ चल रहा था

एक बहुत ही लम्बी राह थी, कुछ नहीं दिख रहा था। शायद शाम का अँधेरा बहुत गाढ़ा हो गया था, कि शायद मैं मन्दिर की गुफा में चल रहा था

और फिर एक उजाला-सा हुआ। देखा—उस के हाथ में एक लालटेन थी। शायद उस ने लालटेन अभी जलायी थी

और देखा—लालटेन की चिमनी पर एक भी दाग नहीं था। उस ने चिमनी के शीशा को पोंछ पोंछकर उस के सारे दाग उतार दिये थे

और लालटेन की रोशनी में देखा—मेरे सामने मेरी ओर बिटर बिटर देखता मेरी मा का मुँह था

मन्दिर के पिछवाड़ेवाले जंगल में से चलता हुआ पता नहीं किस तरह मैं वहाँ उस के घर पहुँच गया था

मेरा बाहें उस के गले की ओर बढ़ीं—जैसे कोई बहुत अँधियारी गुफा में से निकलने के लिए गुफा का द्वार ढूँढ़ता है

उस की साँसें मेरे माथे को छू रही थी कहीं से बहुत ठण्डी और ताज़ी हवा का झोंका आया है और मेरी साँसों में मिल गया है

शायद अब सामने एक जन्म की दूरी पर, कैलाश पर्वत है

बीस

सारे के सारे आसमान ने जैसे धरती को अपने हाथों धोया हो

बादल मेरे पाँवों के नीचे कुछ रेशम-सा बिछा रहे हैं

अचानक पत्तों की टहनियों ने मेरे गिर्द कुछ लपेट-सा दिया है

अभी माथे पर एक ठण्डी फुहार सी पड़ी है, कुछ उड़ते पक्षी सिर के ऊपर से गुज़रे हैं शायद उन्होंने अपने पंखों से कुछ कुहरा झाड़ा है

एक सरसराहट सी भी शायद उन के पंखों से झड़कर मेरे सीने में पड़ गयी है

सूरज की कुछ किरणें शायद सोयी हुई बर्फ को जगाने के लिए आयी हैं।

नन्दियो का पानी ऐसे ठुमकर चल रहा है जैसे उस ने पैरों में चांदी की खड़ाऊँ पहनी हुई हों

लगता है—कैलास पर्वत की सारी सुन्दरता, सारी ऊँचाई, और सारा एकाकीपन मेरा है

एक बड़े निर्मल पानी का सोता मेरी माँ के मुँह जैसा है, जिस में मेरी परछाइँ ऊँघ रही है

कमल फूलों के तालाब को देखकर अनायास ही महन्त किरपासागरजी का खयाल आ गया है

अभी किसी टहनी से एक फूल गिरा था और अडोल एक हथेली की तरह मेरे पैर को छू गया था। एक पल लगा, पैर जैसे मूर्च्छित-सा हो गया था

दूर वह गुफा दिख रही है जिस के अँधेरे में मैं कई बरस चला हूँ। मेरा खयाल है कोई उस अँधेरे में अब भी लालटेन लेकर खड़ा है

मेरा खयाल है शिव और पार्वती पत्थर नहीं हुए, सिर्फ वहाँ मन्दिर की छत के नीचे, एक जगह खड़े, हाथ के इशारे से बता रहे हैं कि यह गुफा कैलास पर्वत पर पहुँचती है

लगता है—कैलास पर्वत की सारी सुन्दरता, सारी ऊँचाई और सारा एकाकीपन मेरा है

आख़िरी पंक्तियाँ

शॉपिनहावर की जेब में पड़े हुए सोने के सिक्के की तरह हम भी कई लोग—छोटे-छोटे शॉपिनहावर—सोने की डली जैसा किसी न किसी सोच का सिक्का जेब में डाले घूमते हैं शॉपिनहावर बरसों उस घड़ी का इन्तज़ार करता रहा—जिस घड़ी वह सोने का सिक्का दान कर सकता। वह घड़ी उस की ज़िन्दगी में नहीं आयी। सिक्का उस की जेब में ही पड़ा रहा। और ज़िन्दगी की आख़िरी साँस तक उसे अपनी जेब का भार ढोना पड़ा। शायद हमारी भी, कइयों की, यही तकदीर है

कहते हैं शॉपिनहावर जिस होटल में दो वक्त रोटी खाता था, रोटी की मेज़ पर रोज़ सोने का एक सिक्का रखकर रोटी खाना शुरू करता और आख़िर मेज़ से उठने लगता तो वह सोने का सिक्का फिर जेब में डाल लेता। बरसों बाद एक बैरे ने उस से यह भेद पूछने की जुरत की। उस ने सोचा था कि यह कोई शॉपिनहावर की ख़ानदानी रस्म होगी। पर शॉपिनहावर ने उसे अपनी एक अजीब हसरत बतायी—"मैं ने आज तक कभी दान नहीं दिया पर यह सोने का सिक्का मैं रोज़ इस आस से जेब में से निकालता हूँ कि मैं उस पहली घड़ी यह सिक्का दान करूँगा जिस दिन मैं

किसी अँगरेज को घाडा, औरता और कुत्ता के मिवा किमी चीज के बारे में बात करते सुनूँगा '

गॉपेनहावर होने का कोई दावा नही—यह सिफ आस-पास दूर-दूर तक फैले हुए स्वि की बात है। मारलिटी के सीमित अर्थो, और सिकुडे हुए घेरों की बात है। और उस दष्टिकोण की बात, जो बहुसख्यकों की आँखो में गुमार हो तो स्वीकृत माना जाता है पर जो गिने चुने लोगो का चिन्तन हो तो अस्वीकृत।

('डेमोक्रेसी सिफ उन्नत और विचारशील लोगों का मुआफिक आती है पर मानसिक और आर्थिक तौर पर पिछडे हुए लोगा को यह नसीब नही हो सकती। मूर्ख बहुसख्यक के मूख फसले वक्त की लगाम सभालते है—और जिन्दगी की विशाल सीमाएँ उन के खुरों के नीचे कुचली जाती हैं। ये लोग आपरस्ड हो तो एक रवड की तरह हाँके जाते है, 'आपरसर' हो तो एक लाठी की शक्ल में हाँकते है। हालतें दोनो ही भयानक है।)

नीत्शे न सीमित अर्थोवाले इनसान से विशाल अर्थोवाले इनसान को अलग करने के लिए सुपरमन शब्द माना था मैं ने ऐसा कोई शब्द नही माना पर मेरे सब से पहले नावल के डाक्टर देव को कुछ ऐसे ही अर्थो में लिया गया था। हमेशा सोचती रही हू क्या यथार्थवाद के अथ इतने सिकुड गये है? क्या बहुसख्यक का जाना-पहचाना जो कुछ है सिफ वही यथार्थ है? और क्या अल्पसख्यक कहे जानेवाले लोगो का अमल यथार्थ नही?

पर सच की तलाश जिस की प्यास हो और सिफ 'सर्वाइवल' जिस की तसल्ली न हो यकीनन वह मारलिटी के जाने-पहचाने अर्थो से टूट जायगा। डाक्टर देव' की ममता पर, 'एक सवाल' की रेखा पर 'बन्द दरवाजा' की करमी पर, 'एक थी अनीता' की अनीता पर धरती, सागर, सीपियाँ की चेतना पर 'चक नम्बर छत्तीस' की अल्का पर और 'एरियल' की एकता पर, इस जुरत का दोष है। ये दोषी है क्योकि सिफ सर्वाइवल इन्हें कबूल नही था।

अधेरे म भोगे जाते झूठ के बजाय इन्होने उजाले में सच को भोगना चाहा—चाहे इम्मारल कहलाने की कीमत दे। अधेरे की मारलिटी स उजाले की इम्मारलिटी इन का चुनाव था।

सुपर' जैसा कोई शब्द मैं इन पात्रो के साथ जोडना नही चाहती—इन का वजूद और उस का इजहार सिफ एक लेखक के तौर पर जेब में डाले हुए साचो के सिक्को का खचने का यत्न है—इस आस से कि अगर बहुत नही तो शायद कुछ लोग, घोडा, औरता और कुत्तों के सिवा किसी और चीज की बात भी सुनना चाहगे (पश्चिमी स्तर के मुकाबले म जो पूर्वी स्तर के अनुसार कहना चाहें तो औरत, पैसा और परलोक कहा जा मकता है।)

मैं ने अपने नावेला में जिस औरत की बात कही है, वह सिर्फ 'सेक्स चिह्न' के अर्थों से टूटकर चलती है, इसलिए वह अलग है। और इसलिए चाहे वह 'एरियल' की एकता (एक औरत) के मुँह से हो या 'जलावतन' के मलिक (एक मर्द) के मुँह से—वह इनसान की बात है। एकता का दुखान्त है कि उस के साबुत अस्तित्व के लिए, इनसान का सिर्फ टुकड़ा मंजूर करनेवाले समाज की व्यवस्था में, कोई जगह नहीं। और मलिक का दुखान्त है कि उस की उम्र से बड़े उस के मानसिक स्तर के वास्ते, कुछ लकीरों में लिपटे हुए समाज के ढाँचे में, उस की कोई पूर्ति नहीं।

सचाई का जिज्ञासु मर्द भी हो सकता है और औरत भी। सिर्फ सच की परिभाषा अपने-अपने मानसिक विकास के अनुसार होती है।

इस नये नावल का नायक एक मर्द है—कोई बीस बरसों की उम्र का, जवानी की पहली सीढ़ी पर खड़े होकर अपने वजूद को एक बेबसी से देखता, अपने माहौल को घूरता, और उस का कारण बने लोगों से क्रुद्ध। अपने क्रोध को वह आग की तरह जलाता है और उस के अंगारों से खेलता, अपने हाथ पर भी छाले डलवाता है और अगर बस चले तो उस की चिनगारी उन की झोली में भी फेंकता है जिन का अस्तित्व उस के अस्तित्व से सम्बन्धित है। यह सचाई को उसी एक कोण से देखने का प्रतिक्रम है, जिस कोण से देखने की आदत उसे उस के जन्म से मिली है—और जिस कोण से यह अक्सर देखी जाती है।

'क्रोध' इनसान को एक कोण पर नहीं खड़ा होने देती। यह नायक क्रोध का चिह्न है, इसलिए जब वक्त आता है, वह किसी और कोण पर खड़ा होकर सचाई को देखने से इनकार नहीं करता। न उस को समझने से इनकार करता है।

जिन्दगी अपने जाने पहचाने अर्थों में जिस दायरे का नाम है उस को एक नज़्म में मैं ने कुछ इस तरह कहा था

छे कदम पूरे ते इक अधा
जेल दी इक काठड़ी
कि बन्दा बठ उठ सके
ते निमल वा ही लवे,
'रब दी इक बही रोटी
सबर' दा बकल सलूणा
चाहवे ताँ रजपुज के
उह दावें डग खा लवे
ते जेल दे हाते दी गुठठे
इक छप्पड पान दा
कि बन्दा हथ मुँह धावे

पर नान का खड पाना या जोहड बनाना ग्यान का हुनर है और उस बासीपन का चुल्लू भर पीकर एक तृप्ति हासिल करना इनसान की हुनर। और कुछ लोग ऐसे होते हैं—जो यह हुनर नहीं कर सकते

इनसान के ऊँचे मानसिक स्तर की सम्भावना को अगर एक पंक्ति में कहना हो तो कुछ एम कह सकती हूँ—इनसान हर खाई के ऊपर आप ही एक पुल बन सकता है आप ही उस पुल पर से गुजरनेवाला और आप ही अपने से आगे पहुँचनेवाला।

इस नावल के नायक को मैं उस की जन्म-कहानी से लेकर जानती हूँ उस दिन से जिस दिन उस को साधुओं के किसी डेरे में चढाया गया था—यह बहुत बरसों की बात है। अब दसे हुए बरसों गुजर गये, पर अब भी याद करूँ तो बडे तराशे हुए नक्शोंवाला उस का सावला चेहरा, उस की उदासी समेत आँखों के आगे आ जाता है। उस के बचपन का, उस का बार-बार कुछ सोचता हुआ चेहरा मुझे याद है पर नहीं जानती कि उस ने अपनी भरी जवानी में जिन्दगी को कितना हँसकर कबूल किया, कितना रोकर। मेरे नावल के पन्नों में चलता हुआ वह आखिर में जिस अवस्था को पहुँचता है वह मेरी कल्पना है।

रवायती मय्यार खुले आसमानों की सचाई नहीं होते, यह फालमरूफ की एक सिकुड़ी हुई दानाई होते हैं। फालमरूफ में कोई चाहे तो चाँद सितारे भी जड सकता है पर चाँद सितारों की लौ नहीं जल सकता

इस नावेल के नायक को मैं ने इसी लिए यात्री कहा है क्योंकि सिर को छूती छत को तोडकर वह चाँद सितारों की लौ की यात्रा आरम्भ करता है। अँधेरे से पैदा

---

१ छह कदम पूरे और एक आधा
जेठ की एक बाखरी
कि आदमी बैठ-उठ सके
और निवृत्त भी हो ले,
'मधु' की एक बासी रोटी
'सब्र' का सलोना बक्कल
वह चाहे तो इसे ही
दोनों वक्त खा
और जल के अहाते के पास
ग्यान का एक जोहड
कि आदमी हाथ मुँह धोये
(उस के मच्छर निथारकर)
और घूँट भर पी भी ले।

हुई एक तीखी नफरत म से उस की यह यात्रा गुरु होती ह—यहा नफरत उस का हथियार है, जिस के साथ वह सिर के ऊपर तनी हुई छत को तोडने का यत्न करता ह

छत का तोडना, या मीलो लम्बी एक गुफा को लाघना एक ही अर्थो में ह—

सिफ एक पक्ति में कहना हो ता कह सकती हूं कि यह चाद सितारा की लौ के आशिको के लिए, चाद सितारा की लौ के एक आशिक की कहानी ह। अपने से आगे अपने तक पहुँचने की यात्रा।



जंगली बूटी

अंगूरी, मेरे पड़ोसियों के पड़ोसियों के पड़ोसियों के घर, उन के बड़े ही पुराने नौकर की बिल्कुल नयी बीवी है। एक तो नयी इस बात से कि वह अपने पति की दूसरी बीवी है, सो उस का पति 'दुहाजू' हुआ। जू का मतलब अगर 'जून' हो तो इस का पूरा मतलब निकला 'दूसरी जून में पड़ चुका आदमी,' यानी दूसरे विवाह की जून में, और अंगूरी क्योंकि अभी विवाह की पहली जून में ही है, यानी पहली विवाह की जून में, इसलिए नयी हुई। और दूसरे वह इस बात से भी नयी है कि उस का गौना आये अभी जितने महीने हुए हैं, वे सारे महीने मिलकर भी एक साल नहीं बनेंगे।

पाँच-छह साल हुए, प्रभाती जब अपने मालिकों से छुट्टी लेकर अपनी पहली पत्नी की 'किरिया' करने के लिए अपने गाँव गया था, तो कहते हैं कि किरियावाले दिन इस अंगूरी के बाप ने उस का अंगोछा निचोड़ दिया था। किसी भी मर्द का यह अंगोछा भले ही अपनी पत्नी की मौत पर आँसुओं से नहीं भीगा होता, चौथे दिन या किरिया के दिन नहाकर बदन पोंछने के बाद वह अंगोछा पानी से ही भीगा होता है, पर इस साधारण-सी गाँव की रस्म से किसी और लड़की का बाप उठकर जब यह अंगोछा निचोड़ देता है तो जैसे वह कह रहा होता है—"उस मरनेवाली की जगह मैं तुम्हें अपनी बेटी देता हूँ और अब तुम्हें रोने की जरूरत नहीं, मैं ने तुम्हारा आँसुओं से भीगा हुआ अंगोछा भी सुखा दिया है।'

इस तरह प्रभाती का इस अंगूरी के साथ दूसरा विवाह हो गया था। पर एक तो अंगूरी अभी आयु की बहुत छोटी थी, और दूसरे अंगूरी की माँ गठिया के रोग से जुड़ी हुई थी इसलिए गौने की बात पाँच सालों पर जा पड़ी थी। फिर एक-एक कर पाँच साल भी निकल गये थे। और इस साल जब प्रभाती अपने मालिकों से छुट्टी लेकर अपने गाँव गौना लेने गया था तो अपने मालिकों को पहले ही कह गया था कि या तो वह अपनी बहू को भी साथ लायेगा और शहर में अपने साथ रखेगा, या फिर वह भी गाँव से नहीं लौटेगा। मालिक पहले तो दलील करने लगे थे कि एक प्रभाती की जगह अपनी रसोई में से वे दो जनों की रोटी नहीं देना चाहते थे। पर जब प्रभाती ने यह बात कही कि वह कोठरी के पीछेवाली कच्ची जगह को पोतकर, अपना अलग चूल्हा बनायेगी, अपना पकायेगी, अपना खायेगी, तो उस के मालिक यह बात मान गये थे। सो अंगूरी शहर आ गयी थी। चाहे अंगूरी ने शहर आकर कुछ दिन महल्ले के मर्दों से तो क्या औरतों से भी घूँघट न उठाया था, पर फिर धीरे धीरे उस का घूँघट झीना हो

गया था। वह पैरा में चाँदी की झाजरें पहनकर छनक-छनक करती महल्ले की रौनक बन गयी थी। एक झाजर उस के पावा में पहनी होती, एक उस की हँसी में। चाहे वह दिन का अधिकतर हिस्सा अपनी कोठरी में ही रहती थी पर जब भी बाहर निकलती, एक रौनक उस के पावो के साथ साथ चलती थी।

"यह क्या पहना ह, अगूरी ?'

"यह तो मेर पैरो की छल चूडी ह।'

"और यह उँगलिया में ?"

"यह तो बिछुआ ह।"

"और यह बाँहो म ?"

"यह तो पछेला है।'

"और माथे पर ?'

"आलीव द कहते है इसे।"

"आज तुम ने कमर में कुछ नही पहना ?

तगडी बहुत भारी लगती ह कल को पहनूँगी। आज तो मैं ने तौक भी नही पहना। उस का टाका टूट गया ह। कल सहर में जाऊँगी, टाँका भी गढाऊँगी और नाक की कील भी लाऊँगी। मेरा नाक को नकमा भा था, इत्ता बडा, मेरी सास ने दिया नही।'

इस तरह अगूरी अपने चादा के गहने एक नखरे से पहनती थी, एक नखरे से दिखाती थी।

पीछे जब मौसम फिरा था, अगूरी का अपनी छोटी कोठरी मे दम घुटने लगा था। वह बहुत बार मेरे घर के सामने आ बठती थी। मेरे घर के आगे नीम के बडे-बडे पड ह और इन पेडा के पास जरा ऊँची जगह पर एक पुराना कुआं ह। चाहे महल्ले का कोई भी आदमी इस कुएँ से पानी नही भरता पर इस के पार एक सरकारी सडक बन रही ह और उस सडक के मजदूर कई बार इस कुएँ को चला लेते ह जिस से कुएँ के गिद अक्सर पानी गिरा हाता ह और यह जगह बडी ठण्डी रहती ह।

"क्या पढती हो, बाबी जी ?' एक दिन अगूरी जब आयी, मैं नीम के पेडो के नीचे बठकर एक किताब पढ रही थी।

'तुम पढागी ?

'मेरे का पढना नही आता।'

"सीख लो।

"ना।

"क्यो ?

'औरता को पाप लगता ह पढने से।'

"औरत को पाप लगता ह, मद को नही लगता ?

"ना, मन को नहीं लगता ?"

"यह तुम्हें किस ने कहा है ?'

"मैं जानती हूँ।"

"फिर मैं तो पढ़ता हूँ। मुझे पाप लगेगा ?

"शहर की औरत को पाप नहीं लगता, गाँव की औरत को पाप लगता है।"

मैं भी हँस पड़ी और अंगूरी भी। अंगूरी ने जो कुछ सीखा-सुना हुआ था, उस में उसे कोई शंका नहीं थी इसलिए मैं ने उस से कुछ न कहा। वह अगर हँसती-खेलती अपनी ज़िन्दगी के दायरे में सुखी रह सकती थी तो उस के लिए यही ठीक था। वैसे मैं अंगूरी के मुँह की ओर ध्यान लगाकर देखती रही। गहरे साँवले रंग में उस के बदन का मांस गुँथा हुआ था। कहते हैं—औरत आटे की लोई होती है। पर कइयों के बदन का मांस उस ढीले आटे की तरह होता है जिस की रोटी कभी भी गोल नहीं बनती और कइयों के बदन का मांस बिलकुल खमीर आटे जैसा, जिसे बेलने से फैलाया नहीं जा सकता। सिर्फ़ किसी किसी के बदन का मांस इतना सख्त गुँधा होता है कि रोटी तो क्या चाहे पूरियाँ बेल लो। मैं अंगूरी के मुँह की ओर देखती रही, अंगूरी की छाती की ओर, अंगूरी की पिण्डलियों की ओर वह इतने सख्त मैदे की तरह गुँथी हुई थी कि जिस से मठरियाँ तली जा सकती थीं और मैं ने इस अंगूरी का प्रभाती भी देखा हुआ था, ठिगने कद का, ढलते हुए मुँह का, कसोर जैसा। और फिर अंगूरी के रूप की ओर देखकर मुझे उस के खाविन्द के बारे में एक अजीब तुलना सूझी कि प्रभाती असल में आटे की इस घना गुँथी लोई को पकाकर खाने का हकदार नहीं—वह इस लोई को ढककर रखनेवाला कठवत है। इस तुलना से मुझे खुद ही हँसी आ गयी। पर मैं अंगूरी को इस तुलना का आभास नहीं देना चाहती थी। इस लिए उस से मैं उस के गाँव की छोटी-छोटी बातें करने लगी।

माँ-बाप की, बहन भाइयों की, और खेतों-खलिहानों की बातें करते हुए मैं ने उस से पूछा 'अंगूरी, तुम्हारे गाँव में शादी कैसे होती है ?

"लड़की छोटी-सी होती है, पाँच-सात साल की, जब वह किसी के पाँव पूज लेती है।'

"कैसे पूजती है पाँव ?"

"लड़की का बाप जाता है फूलों की एक थाली ले जाता है साथ में रुपये, और लड़के के आगे रख देता है।'

"यह तो एक तरह से बाप ने पाँव पूज लिये। लड़की ने कैसे पूजे ?'

"लड़की की तरफ से तो पूजे।"

"पर लड़की ने तो उसे देखा भी नहीं ?

"लड़कियाँ नहीं देखतीं।

'लड़कियाँ अपने होनेवाले खाविन्द को नहीं देखतीं ?'

"ना।"

"कोई भी लडकी नही देखती ?"

ना।"

पहले तो अगूरी ने 'ना' कर दा पर फिर कुछ सोच साचकर कहने लगी, "जा लडकियाँ प्रेम करती ह, वे देखती ह।

"तुम्हारे गाव में लडकिया प्रेम करता ह ?"

"कोई-काई।

'जो प्रेम करती ह उन को पाप नही लगता ? मुझे असल में अगरी की वह बात स्मरण हो आयी थी कि औरत को पढने से पाप लगता ह। इसलिए मैं ने सोचा कि उस हिसाब से प्रेम करने से भी पाप लगता होगा।

पाप लगता ह बडा पाप लगता ह। अगूरी ने जल्दी मे कहा।

"अगर पाप लगता ह तो फिर वे क्या प्रेम करती ह ?

"जे ता बात यह होती ह कि कोई आदमी जब किसी छोकरी को कुछ खिला देता ह तो वह उस से प्रेम करने लग जाता ह।

कोई क्या खिला देता ह उस को ?

'एक जगली बूटी होती ह। बस वही पान में डालकर या मिठाई में डालकर खिला देता ह। छोकरी उसे प्रेम करने लग जाती ह। फिर उसे वही अच्छा लगता ह दुनिया का और कुछ भी अच्छा नही लगता।'

'सच ?

"मैं जानती हू, मैं ने अपनी आँखो से देखा ह।"

किसे देखा था ?'

मेरी एक सखी थी। इत्ती बडी था मेर से।'

'फिर ?'

'फिर क्या ? वह ता पागल हो गया उस के पीछे। सहर चली गयी उस के साथ।

यह तुम्हें कसे मालूम ह कि तरी सखी को उस ने बूटी खिलायी थी ?

'बरफी में डालकर खिलायी थी। और नही तो क्या वह ऐसे हा अपने मा बाप को छोडकर चली जाती ? वह उस को बहुत चीजें लाकर दता था। सहर से धोती लाता था, चूडिया भी लाता था शीशे की और मोतियो की माला भी।

'ये तो चीजें हुइ न! पर यह तुम्ह कसे मालूम हुआ कि उस ने जगली बूटी खिलायी थी!'

नही खिलायी थी तो फिर वह उस को प्रेम क्या करने लग गयी ?'

'प्रेम तो या भी हो जाता ह।'

नही एसे नही होता। जिस से मा-बाप बुरा मान जायें भला उस से प्रेम कसे

हो सकता है ?"

'तू ने वह जगली बूटी देखी है ?"

'मैं ने नहीं देखी। वो तो बडी दूर से लाते है। फिर छिपाकर मिठाई में डाल देते है, या पान में डाल देते है। मेरी मा ने तो पहले ही बता दिया था कि किसी के हाथ से मिठाई नहीं खाना।"

तू ने बहुत अच्छा किया कि किसी के हाथ से मिठाई नहीं खायी। पर तेरी उस सखी ने कैसे खा ली ?"

'अपना किया पायेगी।"

किया पायेगी।' कहने को तो अगूरी ने कह दिया पर फिर शायद उसे सहेली का स्नेह आ गया या तरस आ गया, दुखे हुए मन से कहने लगी बावली हो गयी थी बेचारी। बालो में कघी भी नहीं लगाती थी। रात को उठ-उठकर गाने गाती थी।'

क्या गाती थी ?

'पता नहीं क्या गाती थी। जो कोई बूटी खा लेती है बहुत गाती है। रोती भी बहुत है।'

बात गाने से रोने पर आ पहुची थी। इसलिए मैं ने अगूरी से और कुछ न पूछा।

और अब यह थोडे ही दिनो की बात है। एक दिन अगूरी नीम के पेड के नीचे चुपचाप मेरे पास आ खडी हुई। पहले जब अगूरी आया करती थी तो छन छन करती, बीस गज दूर से ही उस के आने की आवाज सुनाई दे जाती थी, पर आज उस के पैरो की झाजर पता नहीं कहा खोयी हुई थी। मैं ने किताब से सिर उठाया और पूछा "क्या बात है, अगूरी ?

अगूरी पहले कितनी ही देर मेरी ओर देखती रही फिर धीरे से कहने लगी बीबीजी, मुझे पढना सिखा दो।'

"क्या हुआ अगूरी ?

मुझे नाम लिखना सिखा दो।

किसी को खत लिखोगी ?'

अगूरी ने उत्तर न दिया एकटक मेरे मुँह की ओर देखती रही।

'पाप नहीं लगेगा पढने से ? मैं ने फिर पूछा।

अगूरी ने फिर भी जवाब न दिया और एकटक सामने आसमान की ओर देखने लगी।

यह दुपहर की बात थी। मैं अगूरी को नीम के पेड के नीचे बैठी छोडकर अन्दर आ गयी थी। शाम को फिर कही मैं बाहर निकली, तो देखा, अगूरी अब भी नीम के पेड के नीचे बैठी हुई थी। बडी सिमटी हुई थी। शायद इसलिए कि शाम की ठण्डी हवा देह में थोडी थोडी कँपकँपी छेड रही थी।

लटा को भिगा दिया। और फिर इन आँसुओं ने वह कहकर उस के होंठों को भिगा दिया। अंगूरी के मुँह से निकलने अक्षर भी गीले थे 'मुझे कसम लगे जो मैं ने उस के हाथ से कभी मिठाई खायी हो। मैं ने पान भी कभी नहीं खाया। सिर्फ चाय जाने उस ने चाय में ही "

और आगे अंगूरी की सारी आवाज उस के आँसुओं में डूब गयी।

गुलियाना का एक ख़त

टहनी पत्तों से भर गयी थी पर उस पर फूल नहीं लगते थे। मैं रोज पत्तों का मुह देखती थी और सोचती थी कि चम्पा कब खिलेगी। गमला कितना भी बड़ा हो, पर गमले में चम्पा नहीं फूलता—मुझे एक माली ने बताया था और कहा था कि इस पौधे की जड़ों को धरती की जरूरत होती है। और मैं उस पौधे को गमले में से निकालकर धरती में रोप रही थी कि एक औरत मुझ से मिलने के लिए आयी।

"तुम्हें कहा कहा से पूछती और कहा-कहा से खोजती आयी हूँ।"

तुम? नीली आखोंवाली सुन्दरी?

"मेरा नाम गुलियाना है।"

"फूल-सी औरत।

"पर लोहे के पैरों चलकर पहुँचा हूँ। मुझे दो साल होने को आये हैं चलते हुए।"

"किस देश से चली हो?'

"यूगोस्लाविया से।"

"भारत में आये कितना समय हुआ?

एक महीना। बहुत लोगों से मिली हूँ। कुछ औरतों से बड़ी चाह से मिलती हूँ। तुम से मिले बगैर मुझे जाना नहीं था इसलिए कल से तुम्हारा पता पूछ रही थी।"

मैं ने गुलियाना के लिए चाय बनायी और चाय का प्याला उसे देते हुए भूरे बालों की एक लट उस के माथे से हटाया और उस की नीली आखों में देखा और कहा, "अच्छा, अब बताओ गुलियाना! तुम्हारे पाव लोहे के ही सही, पर ये क्या अभी तुम्हारे हुस्न और तुम्हारी जवानी का भार उठाकर थके नहीं? ये देश-देशान्तर में भटकने क्या खोज रहे है?'

गुलियाना ने एक लम्बी सास लेकर मुसकरा दिया। जब किसी की हँसी में एक विश्वास घुला हुआ हो, उस समय उस की आखों में जो चमक उतर आता है, मैं ने वह चमक गुलियाना की आँखों में देखी।

'मैं ने अभी तक लिखा कुछ नहीं, पर लिखना बहुत कुछ चाहती हूँ। मगर कुछ भी लिखने से पहले मैं यह दुनिया देखना चाहती हूँ। अभी बहुत दुनिया बाक़ी पड़ी है जो मैं ने देखी नहीं है, इसलिए मैं अभी थकने की नहीं। पहले लल्ली गयी

"ईरान में। मैं ऐतिहासिक इमारतों को दूर दूर तक जाकर देखना चाहती थी, पर मेरे होटलवाले ने मुझे कहीं भी अकेले जाने से मना कर दिया। मैं वहां दिन में भी अकेले नहीं घूम सकती थी।"

"फिर ?"

"बीच-बीच में कुछ अच्छे लोग भी होते हैं। उसी होटल में एक आदमी ठहरा हुआ था जिस के पास अपनी गाडी थी। उस ने मुझ से कहा कि जब तक वह होटल में है, मैं उस की गाडी ले जाया करूं। वह मेरे साथ कभी कहीं न गया, पर उस ने अपनी गाडी मुझे दे दी। ड्राइवर भी दे दिया। मुझे वह सहारा ओढना पडा। पर ऐसा कोई भी सहारा हमें क्या ओढना पडे ?'

"जापान में भी मुश्किल आयी ?'

"वहां मुझे सब से कम मुश्किल पडी। सिर्फ एक रात एक शराबी ने मेरे कमरे का दरवाजा खटखटाया था। मैं ने उसी समय कमरे में से टेलिफोन कर के होटल वालों को बुला लिया था। एक बार फ्रांस में जाने क्या हो जाता, अगर कहीं जोरों की बरसात न शुरू हो गया होती। मैं एक बगीचे में बैठी हुई थी। सामने कुछ दूरी पर एक पहाड था। मैं वहां जाना चाहती थी। दो आदमी काफी देर से मेरा पीछा कर रहे थे। मैं जानती थी कि अगर मैं पहाड की किसी निर्जन जगह पर चली गयी, तो ये आदमी वहां जाकर जाने क्या करें। पर मेरे दिल में गुस्सा खौल रहा था कि मैं इन गुण्डों से डरकर पहाड पर क्या न जाऊं। इसलिए मैं बगीचे में से उठकर उस तरफ चल पडी। कुछ दूर गयी थी कि जोरों से बरसात होने लगी। मुझे अपने होटल में लौटना पडा। पर यह सब गलत है। मैं यही सोचती हुई चलती जाती हूं कि आखिर यह सब अभी तक इतना गलत क्यों बना हुआ है जब मनुष्य अपने को इतना सभ्य और इतना उन्नत मानने लगा है।"

'तुम अपने गुजारे के लिए क्या करती हो गुल ?

"छोटे छोटे सफरनामे लिखती हूं। छपने के लिए अपने देश में भेज देती हूं। कुछ पैसे मिल जाते हैं। कुछ अनुवाद कर के भी कमा लेती हूं। मुझे फ्रेंच अच्छी आती है। मैं फ्रेंच की पुस्तकों का अपनी भाषा में अनुवाद करती हूं। वापस जाकर मैं एक बड़ा सफरनामा लिखूंगी। शायद गीत भी लिखूं। आजकल जब मैं सोती हूं, तो एक गीत भर दिल में मंडराने लगता है। पर जब मैं जागती हूं तो मैं उसे खोज नहीं पाती।'

'अच्छा गुलियाना और बातें छोडो मुझे उस गीत की बात सुनाओ। मैं ने गीत नहीं कहा गीत की बात कही है।'

बात ही तो मुझे अभी तक मालूम नहीं है। मैं वह बात खोज रहा हूं जिस में से गीत उगते हैं। बिना बात के ही दो पंक्तियां आती हैं। इस से आगे नहीं जुटती। बात के बिना भला गीत कैसे जुडेगा ? गुलियाना ने कहा और एक टूटे हुए गीत की

तरह मेरी ओर देखा। फिर गुल्यिाना ने गीत को दो कड़ियाँ सुनायीं—

"आज किस ने आसमान का जादू तोड़ा ?
आज किस ने तारों का गुच्छा उतारा ?
और चाबियों के गुच्छे की तरह बांधा,
मेरी कमर से चाबियां का बांधा ?

और गुल्यिाना ने अपनी कमर की ओर संकेत कर मुझ से कहा—'यहाँ चाबियों के गुच्छे की तरह मुझे कई बार तारे बँधे हुए महसूस होते हैं।'

मैं गुल्यिाना के चेहरे की ओर देखने लगी। तिजोरियों की चाबियों का चांदी के छल्लों में पिरोकर बना गुच्छा उस ने अपनी कमर में बाँधने से इनकार कर दिया था और उस की जगह वह तारों के गुच्छे अपनी कमर में बाँधना चाहती थी। गुल्यिाना के चेहरे की ओर देखती हुई मैं सोचने लगी कि इस धरती पर वे घर कब बनेंगे जिन के दरवाज़े तारों की चाबियों से खुलते हों।

'तुम क्या सोच रही हो।'

'सोचती थी कि तुम्हारे देश में भी औरतें अपनी कमर में चाबियों का गुच्छा बांधती हैं ?'

'हमारी मां-दादियां अपनी कमर में चाबियां बांधा करती थीं।'

'चाबियों से घर का खयाल आता है और घर से औरत के आदिम सपने का।'

'देखो, इस सपने को खोजती-खोजती मैं कहां पहुँच गयी हूँ। अब मैं अपने गीतों को यह सपना अमानत दे जाऊंगी।

"धरती के सिर तुम्हारा कर्ज़ और बढ़ जायेगा।"

कर्ज़ की बात सुनकर गुल्यिाना हँसने लगी। उस की हँसी उस लेनदार की तरह थी जिस के कागज़ों पर लिखा हुई क़र्ज़ की सारी गवाहियाँ झूठी निकल आयी हों।

गुल्यिाना के चेहरे की ओर देखते मुझे ऐसा लगा कि थाने के किसी सिपाही को अगर गुल्यिाना का हुलिया अपने कागज़ों में दर्ज करना पड़े, तो वह इस तरह लिखेगा—

नाम गुल्यिाना सायेनोविया।
बाप का नाम निकोलियन सायेनोविया।
जन्म शहर मसेन्तनिया।
क़द पांच फुट तीन इंच।
बालों का रंग भूरा।
आँखों का रंग सलेटी।

पहचान का निशान उस के निचले होंठ पर एक तिल है और बायीं ओर की भौं पर छोटे-से ज़ख्म का निशान है।

और गुल्यिाना की बातें सुनते हुए मुझे इस तरह लगा कि किसी दिलवाले इनसान को अगर अपनी ज़िन्दगी के काग़ज़ों में गुलियाना का हुलिया दर्ज करना हो, तो वह इस तरह लिखेगा—

नाम फूल की महक-सी एक औरत।

बाप का नाम इनसान का एक सपना।

जन्म शहर धरती की बड़ी ज़रखेज़ मिट्टी।

कद उस का माथा तारों से छूता है।

बालों का रंग धरती के रंग जैसा।

आंखों का रंग आसमान के रंग जैसा।

पहचान का निशान उस के होंठों पर ज़िन्दगी की प्यास है और उस के रोम-रोम पर सपनों का बौर पड़ा हुआ है।

हैरानी की बात यह थी कि ज़िन्दगी ने गुलियाना को जन्म दिया था पर जन्म देकर उस की ख़बर पूछना भूल गयी थी। पर मैं हैरान नहीं थी, क्योंकि मुझे मालूम था कि ज़िन्दगी को बिसार देनेवाली बड़ी पुरानी आदत है। मैं ने हँसकर गुल्यिाना से कहा "हमारे देश में एक बूटी होती है जिसे हम ब्राह्मी बूटी कहते हैं। हमारी पुरानी किताबों में लिखा हुआ है कि ब्राह्मी बूटी पीसकर जो कुछ दिन पी ले, उस की स्मरणशक्ति लौट आती है। मेरा ख़याल है कि ज़िन्दगी को ब्राह्मी बूटी पीसकर पीना चाहिए।

गुल्यिाना हँस पड़ी और कहने लगी, "तुम जब कोई प्यारा गीत लिखती हो, या कोई भी जब कोई बड़ा प्यारा लिखता है तो वह जंगल में से ब्राह्मी बूटी की पत्तियाँ ही तोड़ रहा होता है। शायद कभी वह दिन आयेगा जब ज़िन्दगी को हम अपनी बूटी पिला देंगे कि उसे भूल जाने की यह आदत नहीं रहेगी।"

गुलियाना उस दिन चली गयी, पर ब्राह्मी बूटी की बात पीछे छोड़ गयी। मैं जब भी कहीं कोई प्यारा गीत पढ़ती, मुझे उस की बात याद आ जाती कि हम सब मन के जंगल में से ब्राह्मी बूटी की पत्तियाँ बीन रहे हैं। हम किसी दिन ज़िन्दगी को शायद इतनी बूटी पिला देंगे कि उसे हम याद आ जायेंगे।

पांच महीने होने को हैं। मुझे गुल्यिाना का एक भी ख़त नहीं मिला। और अब महीने पर महीने बीतते जायेंगे गुल्यिाना का ख़त कभी नहीं आयेगा। क्योंकि आज के अख़बार में यह ख़बर छपी हुई है कि दो देशों की सीमा पर कुछ फ़ौजियों ने एक परदेसी औरत को खेतों में घेर लिया। औरत को बड़ी चिन्ताजनक हालत में अस्पताल पहुँचाया गया। अस्पताल में पहुँचते ही उस की मौत हो गयी। उस का पासपोर्ट और उस के काग़ज़ आग से जली हुई हालत में मिले। औरत का कद पांच

फुट तीन इंच है। उस के बालों का रंग भूरा और आंखों का रंग सलेटी है। उस के निचले होंठ पर एक तिल है और उस की बायीं भौं पर एक छोटे-से ज़ख्म का निशान है।

यह अख़बार की ख़बर नहीं! सोच रही हूँ यह गुलियाना का एक ख़त है। ज़िन्दगी के घर से जाते हुए उस ने ज़िन्दगी का एक ख़त लिखा है और उस ने ख़त में ज़िन्दगी से सब से पहला सवाल पूछा है कि आख़िर इस धरती में उस फूल को आने का अधिकार क्या नहीं दिया जाता जिस का नाम औरत है? और साथ ही उस ने पूछा है कि सभ्यता का वह युग कब आयेगा जब औरत की मरज़ी के बिना कोई मर्द किसी औरत के जिस्म को हाथ नहीं लगा सकेगा? और तीसरा सवाल उस ने यह पूछा है कि जिस घर का दरवाज़ा खोलने के लिए उस ने अपनी कमर में तारों के गुच्छे को चाबियों के गुच्छे की तरह बांधा था, उस घर का दरवाज़ा कहां है?

वू

घोडी हिनहिनायी। गुलेरी दौडकर अन्दर से बाहर आयी। उस ने घोडी की आवाज पहचान ली थी। वह घोडी उस के मायके की थी। उस ने घोडी की गरदन के साथ अपना सिर टेक दिया। जसे वह घोडी की गरदन न होकर उस के मायके का द्वार हो।

गुलेरी का मायका चम्बे शहर में था। ससुराल का गाव लक्कडमण्डी एव खजियार के रास्ते में एक ऊँची समतल जगह पर था। खजियार से लगभग एक मील आगे चलकर पहाडी का एक ऐसा मोड आता था, जहा पर खडे होकर चम्बा शहर बहुत दूर और बहुत नीचा दिखाई देता था। कभी कभी गुलेरी जब उदास हो जाती तो अपने मानक को साथ लेकर उस मोड पर आकर खडी हो जाती। चम्बे शहर के मकान उस को एक जगमगाते बिन्दु के समान दिखाई देते, फिर वे बिन्दु उस के मन में एक चमक पैदा कर देते।

मायके वह वर्ष भर में एक बार आश्विन के महीने में जाती थी। हर साल इन दिनों उस के मायके में चुगान का मेला लगता था। माता पिता उस को लिवाने के लिए आदमी भेज देते थे। सिर्फ गुलेरी के ही नहीं गुलेरी की सभी सहेलियों के मायके अपनी लडकियों का बुलावा भेज देते थे। सभी सहेलियाँ जब एक दूसरे से गले मिलती तो वर्ष भर की सभी ऋतुओं के दुख-सुख की बातें एक दूसरी से कह सुन लेती और अपने मायके की गलियों में हिरनियों के समान चौकडी भरती स्वच्छन्द घूमती।

दो दो तीन तीन बच्चों की माताएँ बडे बच्चों को उन के दादा-दादी के पास छोड आती और गोदवाले को मायके पहुँचते ही ननिहालवालों के हवाले कर देती। मेले के लिए नये कपडे सिलवाती। चुनरिया को रंगवाती और अबरक लगवाती। मेले में से काच की चूडिया और चादी की बालियाँ खरीदती। मेले में से खरीदी हुई सुगन्धित साबुन की टिकिया को अपने बदन पर ऐसे मलती जसे वह अपने खोये हुए कुँआरे यौवन की गन्ध को फिर सूँघना चाहती हो।

गुलेरी कितने ही दिनों से आज के दिन की इन्तजार कर रही थी। आश्विन का आसमान जब सावन भादों की बरसात के साथ हाथ पाँव धोकर निखर बठता था, गुलेरी और गुलेरी जसी ससुराल में बठी लडकियाँ पशुओं को दाना-पानी डालती, सास ससुर के लिए दाल चावल राधती और हर रोज हाथ-पाव धोकर बन सँवर बठती तो मन में सोचने लगती आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों कोई न कोई उन के मायके से उन को लेने के लिए आता होगा।

आज गुलेरी के घर के दरवाजे के सामने उस के मायके की घोड़ी हिनहिनायी तो गुलेरी चंचल हो उठी। घोड़ी लेकर आये नत्थू कामे को गुलेरी ने बैठने के लिए चौकी दी।

गुलेरी को कुछ कहने की जरूरत नहीं थी। उस के मुंह का रंग स्वयं सब कुछ बता रहा था। मानक ने तम्बाकू का एक लम्बा कश खींचा और आंखें बन्द कर ली जाने उस से तम्बाकू का नशा न झेला गया या गुलेरी के मुंह का रंग।

"इस बार तो मेला देखने आयेगा न, चाहे दिन का दिन ही सही।" गुलेरी ने मानक के पास बैठकर बड़े दुलार से कहा।

मानक के हाथ कांपे, उस ने हाथों में पकड़ी हुई चिलम को एक ओर रख दिया।

"बोलता क्यों नहीं?" गुलेरी ने रोष के साथ कहा।

"गुलेरी, एक बात कहूं?"

"मैं जानती हूं, तू ने क्या कहना है। क्या यह बात तुझे कहनी चाहिए? साल भर में एक बार तो मैं मायके जाती हूं। फिर तू मुझे ऐसे क्यों रोकता है?"

"आगे तो मैं ने तुझे कभी भी कुछ नहीं कहा?"

"फिर इस बार क्या कहता है?"

"इस बार... बस इस बार...." मानक के मुंह से एक लम्बी आह निकल गयी।

"तेरी मां तो मुझे कुछ कहती नहीं, फिर तू क्या रोकता है?" गुलेरी की आवाज में बच्चों जैसी जिद थी।

"मेरी मां...." मानक ने अपना मुंह बन्द कर लिया। जैसे आगे की बात को उस ने दांतों तले दबा लिया हो।

दूसरे दिन गुलेरी मुंह अंधेरे बन-संवरकर तैयार हो गयी। गुलेरी का न कोई बड़ा बच्चा था न गोद का। न किसी को ससुराल में छोड़ना था, न किसी को मायके ले जाना था। नत्थू ने घोड़ी पर काठी कसी और गुलेरी के सास-ससुर ने उस के सिर पर प्यार दिया।

"चल, दो कोस मैं भी तेरे साथ चलूंगा।" मानक ने कहा। गुलेरी ने खुश होकर मानक की बांसुरी अपने आंचल में रख ली।

वे खजियार पार कर गये। आगे एक कोस और लांघ गये। फिर चम्बे की उतराई आरम्भ हो गयी। गुलेरी ने आंचल में से बांसुरी निकाली और मानक के हाथ में थमा दी।

सामने कठिन उतराई थी। पांव जैसे फिसल रहे थे। गुलेरी ने मानक का हाथ पकड़ा और हंसकर कहने लगी "बजाता क्यों नहीं बांसुरी?"

सोच भी जैसे उतराई उतर रही थी। मानक का मन फिसलता जा रहा था। गुलेरी ने जब मानक का हाथ पकड़ा तो मानक ने चौंककर उस की ओर देखा।

"बजाता क्या नहीं बाँसुरी ?" गुलेरी ने फिर कहा।

मानक ने बाँसुरी होठों के साथ लगायी, फूँक मारी पर बाँसुरी में से ऐसा स्वर निकला जैसे बाँसुरी की जबान पर छाले पड़ गये हों।

'गुलेरी तू मत जा ! मैं तुझे फिर कहता हूँ, मत जा। इस बार मत जा।'

मानक ने हाथ की बाँसुरी गुलेरी को वापस कर दी।

"कोई बात भी तो हो ? अच्छा तू मेले के दिन चला आइयो। मैं तेरे साथ लौट आऊँगी। पीछे नहीं रहूँगी सच्च कहती हूँ, पक्की बात।'

मानक ने कुछ न कहा पर उस ने गुलेरी के मुँह की ओर ऐसे देखा जैसे वह कहना चाहता हो, 'गुलेरी यह बात पक्की नहीं। यह बहुत कच्चा है। पर मानक ने कुछ न कहा जैसे उस को कुछ कहना न आता हो।

गुलेरी और मानक सड़क से थोड़ा-सा हटकर एक पत्थर के साथ अपनी पीठ टेककर खड़े हो गये। नत्थू ने दस कदम आगे बढ़कर घोड़ी खड़ी कर दी थी पर मानक का मन कहीं भी खड़ा नहीं हो रहा था।

मानक का मन घूमता फिसलता आज से सात वर्ष पीछे तक चला गया। यही दिन थे जब मानक अपने मित्रों के साथ इस सड़क को लाँघता हुआ चौगान का मेला देखने चला गया था। मेले में काच की चूड़ियों से लेकर गायों-बकरियों तक कुछ न कुछ खरीद और बेच रहे थे। इसी मेले में मानक ने गुलेरी को देखा था और मानक को गुलेरी ने। फिर दोनों ने एक-दूसरे का दिल खरीद लिया था।

वे दोनों अवसर देखकर एक दूसरे को मिले थे। तू तो दुधिया भुट्टे जैसी है। मानक ने यह कहकर गुलेरी का हाथ पकड़ लिया था।

पर कच्चे भुट्टे को पशु मुँह मारते हैं।' यह कहकर गुलेरी ने हाथ छुड़ा लिया था और मुसकराते हुए कहा था इनसान तो भुट्टे को भूनकर खाते हैं। यदि साहस है तो मेरे पिता से मेरा रिश्ता माँग ले।'

मानक के दूर-पास के सम्बन्धियों में जब भी किसी का ब्याह होता था तो लड़केवाले मूल्य चुकाते थे।

मानक डर रहा था कि पता नहीं गुलेरी का पिता कितना रुपया माँग ले। पर गुलेरी का बाप खाता पीता आदमी था। और फिर वह दूर शहर में भी रह आया था। वह अपने मन में यह निश्चय किये हुए था कि वरवाला से बेटी के पैसे नहीं लूँगा। जहाँ पर अच्छा घर और वर मिलेगा वहीं पर अपनी लड़की का ब्याह कर दूँगा। मानक के इस काम में कोई कठिनाई नहीं हुई। दोनों के दिल मिले हुए थे। दोनों ने ब्याह का रास्ता ढूँढ लिया था।

आज तू क्या सोच रहा है ? तू मुझे अपने मन की बात क्यों नहीं बताता ?' गुलेरी ने मानक के कंधे को हिलाते हुए कहा।

मानक ने गुलेरी की ओर ऐसे देखा जैसे उस की जबान पर छाले पड़ गये हों।

घोडी हिनहिनायी। गुलेरी का आगे का रास्ता स्मरण हो आया। वह चलने के लिए तयार हुई और मानक से कहने लगी, "आगे चलकर नीले फूलों का बन आता है। ढाई दो मील होगा। तू जानता है न, उस वन को पार करनेवालों के कान बहरे हो जाते हैं।"

"हाँ," मानक ने धीरे से कहा।

"मुझे ऐसा लग रहा है जैसे हम उस वन में से गुजर रहे हैं। तुझे मेरी कोई बात सुनाई ही नहीं देती है।"

"तू सच कहती है, गुलेरी। मुझे तुम्हारी कोई बात सुनाई नहीं देती और तुझे मेरी कोई बात सुनाई नहीं देती।" मानक ने एक लम्बी सांस ली।

दोनों ने एक-दूसरे के मुँह की ओर देखा। पर दोनों एक-दूसरे की बात नहीं समझ सके।

"मैं अब जाऊँ? तू वापस चला जा। तू बडी दूर आ गया है।" गुलेरी ने धीरे से कहा।

"तू इतना रास्ता पैदल चलती आयी, घोडी पर नहीं बैठी। अब घोडी पर बैठ जाना।" मानक ने उसी प्रकार धीरे से कहा।

"यह ले पकड अपनी बांसुरी।"

"तू अपने साथ ही ले जा।"

"मेरे के लिए आकर बजायेगा?" गुलेरी हँस दी। उस की आंखों में धूप चमक रही थी।

मानक ने अपना मुह दूसरी ओर कर लिया। शायद उस की आंखों में बादल उमड आये थे।

गुलेरी ने मायके का रास्ता लिया और मानक लौट आया।

"मां!" घर पहुँचकर मानक इस तरह खाट पर गिर पड़ा जैसे वह बडी मुश्किल से खाट तक पहुँच पाया हो।

"बडी देर लगायी। मैं तो सोचती थी शायद तू उस को आखिर तक छोडने चला गया है।" मां ने कहा।

"नहीं, मां, आखिर तक नहीं गया। रास्ते के बीच ही छोड आया हूं।" मानक का गला रुँध गया।

"औरतों की तरह रोता क्या है? मर्द बन।" मां ने रोष से कहा।

मानक के मन में आया कि वह मां से कहे, पर तू तो औरत है, एक बार औरतों की तरह रोती क्यों नहीं?"

मानक को गुलेरी की एक बात स्मरण हो आयी।

"हम नीले फूलोंवाले वन में से गुजर रहे हैं जहाँ पर सभी के कान बहरे हो जाते हैं।" मानक को ऐसे महसूस हुआ कि आज किसी को उस की बात सुनाई नहीं

देती। सारा ससार जसे नीले फूलो का वह वन ह और सभी के कान बहरे हो गये ह।

सात वष हो गये थे। गुलेरी की अभी तक कोख नही हरियायी थी। माँ कहती थी, "अब मैं आठवाँ वष नही लगने दूँगी।" मा ने पाँच सौ रुपया देकर भीतर ही भीतर मानक के दूसरे व्याह की बात पक्की कर ली थी। वह उस समय के इन्तजार में था कि जब गुलेरी मायके जायेगी वह नयी बहू का डोला घर ले आयेगी।

इस के बाद मानक को ऐसे महसूस हुआ जसे उस के दिल का मास सो गया था। गुलेरी का प्यार उस के दिल में चुटकी भर रहा था। पर उस के दिल को कुछ महसूस नहीं हो रहा था। नयी बहू की कोख से उत्पन्न होनेवाले बच्चे की हँसी उस के दिल को गुदगुदा रही थी, पर उस के दिल को कुछ नही हो रहा था। जाने उस के दिल का मास सो गया था।

सातवें दिन मानक के घर उस की नयी बहू बठी हुई थी।

मानक के सभी अग जाग रहे थे, एक उस के दिल का मास सोया हुआ था। दिल के सोये हुए मास को उस के जाग रहे अग सभी स्थानो पर ले गये थे। नयी ससुराल में भी और नयी बहू के बिछौने पर भी।

मानक मुँह अँधेरे अपने खेत में बठा हुआ तम्बाकू पी रहा था जब मानक का एक पुराना मित्र वहाँ से गुजरा।

"इतने बडे सवेरे कहा चला है भवानी?'

भवानी एक मिनट चौंककर ठहर गया। चाहे उस ने अपने कन्धे पर एक छोटी-सी गठरी उठायी हुई थी फिर भी धीरे से कहने लगा "कही नही।"

'कही तो चला ह। आ बठ तम्बाकू पी ले।' मानक ने आवाज दी।

भवानी बैठ गया और मानक के हाथ से चिलम लेकर पीता हुआ कहने लगा, 'चम्बे चला हूँ, आज वहाँ मेला ह।"

मेले के शब्द ने मानक के दिल में जाने कसी सुई चुभो दी, मानक को महसूस हुआ उस के भीतर कही पीडा हुई थी।

'आज मेला ह? मानक के मुँह से निकला।

"हर वष आज के दिन ही होता ह। भवानी ने कहा। फिर मानक की ओर ऐसे देखा जसे वह यह भी कह रहा हो तू भूल गया ह इस मेले को? सात वष हुए जब तू मेले में गया था। मैं भी तो तेरे साथ था। तूने तो इसी मेले में मुहब्बत की थी।

भवानी ने कहा कुछ नही पर मानक को ऐसे महसूस हुआ कि जसे उस ने सब कुछ सुन लिया था। उस को भवानी पर गुस्सा आ रहा था कि वह सब कुछ क्यो सुन रहा ह।

भवानी मानक की चिलम छोडकर उठ खडा हुआ। उस की पीठ पर लटक रही गठरी में से उस की बाँसुरी का सिरा बाहर निकला हुआ था। भवानी चलता

जा रहा था।

मानक उस की पीठ का देखता रहा। पीठ पर रखी हुई छोटी-सी गठरी का देखता रहा। गठरी म से निकले हुए बासुरी के सिरे को देखता रहा।

'भवानी और भवानी की बाँसुरी मेले जा रहे ह।' मानक को अपनी बासुरी स्मरण हो आयो जब उस ने मायके जा रही गुलेरी को अपनी बासुरी देते हुए कहा था, इसे तू साथ ले जाना' फिर मानक को खयाल आया, 'और मैं ?'

मानक का मन आया कि वह भी भवानी के पीछे-पीछे दौड पडे। वह अपनी उस बासुरी के पीछे दौड पडे, जो उस से पहले मेले में चली गयी थी।

मानक ने हाथ से चिल्म फेंक दी और भवानी के पीछे-पीछे दौड पडा। फिर मानक की टाँगें कापने लग पडी। वह वहीं का वहीं बठ गया।

मानक को सारा दिन और सारी रात मेले जा रहे भवानी की पीठ दिखाई देती रही।

दूसरे दिन तीसरे पहर का समय था जब मानक अपने खेत में बठा हुआ था। उस को मेले म से आते हुए भवानी का मुँह दिखाई दिया।

मानक ने मुँह एक ओर कर लिया। उस ने सोचा कि मुझ को न तो भवानी का मुह दिखाई दे और न भवानी की पीठ। इस भवानी को देखकर उस को मेले की याद आ जाती थी और यह मेला उस के सोये हुए दिल के मास को जगा देता था। और जब वह मास जाग पडता था उस में बहुत पीडा होती थी।

मानक ने मुह फेर लिया पर भवानी चक्कर काटकर भी मानक के सामने आ बैठा। भवानी का मुह ऐसा था, जैसे किसी ने जल रहे कोयले पर अभी अभी पानी डाला हो। और उस के ताप का रग अब लाल न होकर काला हो।

मानक ने डरकर भवानी के मुह की ओर देखा।

"गुलेरी मर गयी।'

"गुलेरी मर गयी ?'

'उस ने तुम्हारे विवाह की बात सुनी और मिट्टी का तेल अपने ऊपर डालकर जल मरी।"

'मिट्टी का तेल" इस के बाद मानक बोला नहीं।

पहले भवानी डरा। फिर मानक के मा-बाप डर गये, और फिर मानक की नयी बहू डर गयी कि मानक को पता नहीं क्या हो गया था। वह न किसी के साथ बोलता था, और न किसी को पहचानता दीखता था।

कई दिन बीत गये। मानक समय पर रोटी खाता, खेती का काम भी करता और सभा के मुँह की ओर ऐसे देखता जैसे वह किसी को भी न पहचानता हो।

"मैं उस की औरत काहे की हूँ ? मैं तो सिफ इस के फेरो की चोर हूँ।" नयी बहू दिन रात रोने लगी। यह फेरो की चोरी अगले महीने मानक की नयी बहू

की ओर मानक की मा की आशा बन गयी। बहू के दिन चढ गये थे। माँ ने मानक को अकेले में बैठाकर यह बात सुनायी। पर मानक ने मा के मुह की ओर ऐसे देखा जैसे यह बात उस की समझ में न आयी हो।

मानक को चाहे कुछ समझ में नहीं आया था पर वह बात बहुत बडी थी। मा ने नयी बहू को हौसला दिया कि तू हिम्मत से यह वेला काट ले। जिस दिन मैं तुम्हारा बच्चा मानक की झोली में रखूँगी तो मानक की सभी सुधिया पल्ट आयेंगी। फिर वह वेला भी कट गयी। मानक के घर बेटा पैदा हुआ। मा ने बालक को नहलाया धुलाया कोमल रेशमी कपड में लपेटकर मानक की झोली म डाल दिया।

मानक झोली में पडे हुए बच्चे को देखता रहा फिर जैसे चीख उठा, "इस को दूर करो, दूर करो! मुझे इस में मिट्टी के तेल की बू आती है।

अजनबी

न जाने क्या, लोकनाथ को अपने जीवन की हर बात किसी न किसी जानवर की सूरत में याद आती थी। बचपन के कितने ही पल एक अघायी हुई बिल्ली की तरह म्याऊँ-म्याऊँ करते हुए उस के पास से गुज़र जाते थे। इन पलों को जैसे उस की माँ ने अभी अभी दूध से भरी हुई कटोरी पिलायी हो, और उस के भूरे मखमले बालों को उस के बाप ने जैसे अभी-अभी अपने हाथों से सहलाया हो।

लोकनाथ का छोटा भाई प्रेमनाथ अब नेवी में था। इकहरे बदन का खूबसूरत सा नौजवान। पर छुटपन में वह पढ़ाई में भी उतना ही कमज़ोर था जितना कि वह शरीर से दुबला था। लोकनाथ जब उसे पढ़ाने के लिए कभी अपने पास बिठाता था तो किताब के अक्षरों पर सिकुड़ी हुई उस की आँखें कई बार अचानक सहमते-से पलट कर लोकनाथ का चेहरा ताकने लगती थीं। और फिर जब लोकनाथ उसे दिलासा देता था तो जैसे मिन्नत-सी करती हुई उस की आँखें पिघलने लग जाती थीं। और अब नेवी का अफ़सर बनकर वह नये-नये बन्दरगाहों पर जाता था और वहाँ से तसवीरें खींचकर लोकनाथ को भेजता था तो लोकनाथ को उस के साथ बिताये हुए पलों की याद ऐसे आती थी जैसे एक छोटा-सा पिल्ला पूँछ हिलाते हुए अपनी गीली जीभ से उस की तली को चाटने लगा हो।

उस ने किसी राजनीतिक पार्टी में कभी दखल देना नहीं चाहा था। पर अनुभव की भूख कई बार उसे मीटिंगों में ले जाती थी। वह नहीं जानता कब खुफ़िया पुलिस ने अपने कागज़ों में उस का नाम दर्ज कर लिया था और उस के बारे में अपनी लम्बी चौड़ी राय बना रखी थी। उस की डिग्रियों से घबराकर जब कभी कोई सरकारी दफ़्तर उसे नौकरी का वचन दे देता तो पुलिस की यही लम्बी-चौड़ी राय उस वचन को एक ही झटके में तोड़कर रख देती। अब जब कि लोकनाथ एक कॉलेज का प्रोफ़ेसर था और अपने लिए उस ने एक निश्चित स्थान बना लिया था तो कई परेशान लमहों की याद उसे उन चीलों और बन्दरों की सूरत में याद आती थी जो न जाने कहाँ से आते थे और उस के हाथों को खरोंचकर रोटी का टुकड़ा छीनकर ले जाते थे।

सरकारी दफ़्तरों की ढीली रफ़्तार उसे केंचुआ-सी लगती। किसी भी क़ाब-लियत के रास्ते में पड़ आनेवाली ईर्ष्या उसे साँप की तरह फुँकारती सुनाई देती। सहयोगियों की ईर्ष्या और जलन को उस ने अपने शरीर पर झेला था—भेड़ के सींगों की तरह। अपने सगे-सम्बन्धियों के फ़िज़ूल उलाहनों और रूठने के पल उसे अलमारी में घुने

हुए चूहे मालूम होते थे जो कीमती कागज़ों को फुतरते चले जाते हैं।

लोकनाथ को अपनी बीवी बहुत पसन्द थी। इस बीवी को, लोकनाथ का दिल कहता था, कि उस ने किस्सा-कथाओं के इश्क से भी ज्यादा इश्क किया था। उस के साथ बितायी और बीत रही घड़ियाँ लोकनाथ की नज़र में ऐसे थी जैसे नन्ही-नन्ही चिड़ियाँ उस के आसपास चहकती हों, जैसे कुंजों की एक कतार बादलों को काटकर गुज़री हो, जैसे घुग्गियों के कुछ जोड़े उस की खिड़की में आकर बैठ गये हों, जैसे सुग्गों का एक झुण्ड उस के आँगन के पेड़ पर आ बैठा हो। अपनी बीवी के खत, और बीवी के नाम लिखे हुए अपने खत लोकनाथ को हमेशा उन कबूतरों से लगते थे जो किसी दीवार की ओट में घोंसला बनाने के लिए तिनके जोड़ते रहते हैं।

विवाह से पहले लोकनाथ अपनी बीवी को उस के जन्मदिन पर एक किताब भेंट किया करता था। विवाह के बाद हर साल उस के जन्मदिन पर उस के होंठ चूमता था और कहता था, 'मेरी उमर का यह साल एक किताब की तरह तुम्हारी नज़र।' इस तरह लोकनाथ अपनी बीवी को अब तक अपनी उमर के पचीस साल पचीस किताबों की तरह सौगात में दे चुका था। उसे यकीन था कि उस के जीते जी उस की बीवी का कोई ऐसा जन्मदिन नहीं आयेगा जब कि वह अपनी ज़िन्दगी का कोई साल एक खुली किताब की तरह उसे भेंट नहीं करेगा।

सिर्फ एक बार ऐसा हुआ था—बाईस साल पहले की बात है—एक सुबह लोकनाथ चारपाई से उठा तो उस का बदन तप रहा था। रात को वह अच्छा भला सोया था। गरीवाला एक केक लाकर उस ने अपनी अलमारी में रखा था। इस बार न जाने क्यों उस की बीवी को अपना जन्मदिन याद नहीं रहा था। शायद इसलिए कि उस की एक बहुत पुरानी सहेली कई सालों बाद उस दिन विदेश से लौट रही थी और उस ने उसे मिलने के लिए जाना था। लोकनाथ ने सुबह अपनी बीवी को चौंकाने के लिए केक लाकर अल्मारी में छिपा दिया था। पर सुबह जब वह उठा तो उस के माथे में ज़ोरों का दर्द हो रहा था। बीवी के साथ उस ने चाय भी पी और केक भी खाया, उसे चौंकाया भी उस के होंठ चूमकर उसे अपनी उमर का एक साल किताब की तरह सौगात में भी दिया। पर उस के बाद वह सारा दिन चारपाई से नहीं उठ सका। उस दिन वह सोच रहा था कि जो किताब इस बार उस ने अपनी बीवी को दी था, उस किताब का एक पन्ना उस में से फटा हुआ था। उस रात वह फटा हुआ पन्ना किसी जानवर के टूटे हुए पंख की तरह उस की छाती में हिलता रहा।

लोकनाथ की ज़िन्दगी के कुछ पल मासूम उड़ते परिन्दों की तरह थे, कुछ पालतू परिन्दों की तरह और कुछ जंगल के जानवरों की तरह। पर किसी पल से वह कभी डरा नहीं था चौंका भी नहीं था। पर एक—लोकनाथ की ज़िन्दगी में एक वह घड़ी भी आयी थी—मुश्किल से पन्द्रह मिनटों के लिए—जो एक बार एक चमगादड़ की तरह उस के मन में चली आयी थी और बेशक होश-हवास की सारी खिड़कियाँ

खुली थी, पर वह घडी एक अंधे चमगादड की तरह बार-बार दीवारो से टकराती रही थी और बार-बार लोकनाथ के कानो पर झपटती रही थी। लोकनाथ ने घबराकर कानो पर हाथ रख लिये थे और कुछ मिनटो के लिए उसे आवाजें सुनाई नही दी थी, उस की जमीर की आवाज भी नही, पर एक आवाज थी जो उस समय भी कनपटियो म उसे सुनाई देती रही थी, और खून की इस आवाज से छुटकारा पाने के लिए उस ने

बाईस साल बीत गये थे। पर वह घडी, मुश्किल से पंद्रह मिनटो की वह घडी, लोकनाथ को जब कभी याद आ जाता—याद नहीं आता थी बल्कि चमगादड की तरह उस के सिर पर उडती थी—तो लोकनाथ घबराकर उसे जल्दी बाहर निकाल देने के लिए उस के पीछे दौडने लगता था।

इस चमगादड जैसी घडी के आने का कोई समय नही था। कभी 'फ्रायड के पन्ने उलटते हुए वह अचानक आ जाती थी तो कभी किसी खूबसूरत कविता को पढते हुए भी वह दिखाई दे जाती। एक बार अपने नये जनमे बेटे की गरदन में से दूध की महक सूँघते हुए भी लोकनाथ को वह चमगादड दिखाई दी थी। और आज जब लोकनाथ की बडी बेटी सुचेता, मायके में प्रसूत काल काटकर ससुराल जाने लगी थी, और नन्हे से बालक को झोली में लेकर जब उस ने अपने बाप से मिन्नत की थी कि उस की छोटी बहन रीता को वह कुछ दिनो के लिए उस के साथ ससुराल भेज दें क्योंकि छोटा सा बालक शायद उस से अकेले न सँभले, तो लोकनाथ के चेहरे का रंग पीला पड गया था। एक चमगादड उस के सिर पर मँडराने लगा था। आगन में खडी उस की बीवी, उस की बेटी, उसे लेने आया उस का खाविन्द, झोली में पडा बच्चा, कुछ दूर पर बठी उस की दूसरी बेटी, आगन में कैरम खेल रहा उस का बेटा—सारे के सारे जसे ओझल हो गये। होश हवास की सारी खिडकियाँ खुली थी, पर एक अंधा चमगादड दीवारो से सिर पटक रहा था, लोकनाथ के कानो पर झपट रहा था, और लोकनाथ उसे जल्दी से बाहर निकाल देने के लिए अपने मन की सारी नुक्कडो में दौडने लगा।

यह चमगादड एक स्मृति थी। बात बाईस साल पहले की थी—लोकनाथ के घर जब पहला बच्चा हुआ था, यही सुचेता। लोकनाथ की बीवी बेहद कमजोर हो गयी थी। अपनी बीवी को मायके से अपने घर लाने की जगह वह उसे पहाड पर ले गया था। छोटा-सा बच्चा न उस से सँभल पा रहा था न उस की बीवी से। इसलिए वह अपनी बीवी की छोटी बहन को भी अपने साथ पहाड पर ले गया था। पंद्रह सालो की वह उर्मी उसे बिलकुल अपनी बहन-सी दिखाई देती थी या अपनी बेटी की तरह जो कुछ सालो बाद उसी की उमर की हो जानी थी। कई बार बच्ची जब सो रही होती थी तो उर्मी को घुमाने के लिए वह अपने साथ ले जाता था। उस की बीवी अभी चल नहीं सकती थी। कहीं-कहीं चीड के पेडो के नीचे झरे हुए तिनकों की तहें बन जाती

थी। उर्मी दौड़ पड़ती थी तो लोकनाथ उसे फिसलने से बचाने के लिए उस का हाथ पकड़ लेता था। उस ने यह कभी नहीं सोचा था कि इस उर्मी को उस के हाथों कभी ठेस भी लग सकती थी। एक बार सैर के लिए जाते वक्त उस ने अपनी बच्ची की गरदन को चूमा। सो रही बच्ची में से सौंफिया दूध और पाउडर की अजीब सी गंध आ रही थी। बच्ची की माँ भी बच्ची के पास लेटी हुई थी। लोकनाथ ने उस के कान के पास होकर धीरे से अपने होंठ छुआये तो बच्चीवाली गंध उसे अपनी बीवी के बालों में से भी आयी। और फिर उसी दिन की बात है सैर करते हुए जब उस ने उर्मी का हाथ पकड़कर उसे फिसलती चढ़ाई पर चढ़ने के लिए सहारा दिया तो उस के कंधे का छूना हुई उस की साँस में से भी वही गंध आयी। लोकनाथ अपनी बीवी का मज़ाक करता आया था और उर्मी से भी बोला, 'बच्ची का सौंफिया दूध, लगता है तुम दोनों को भी अच्छा लगने लगा है।'

इस के आगे लोकनाथ को नहीं मालूम कि क्या कैसे हुआ। एक गंध थी जो उस के गले सिमट आयी थी—सौंफिया दूध की पाउडर की गुलाब चमड़ी की औरत के अंगों की और चीड़ के पेड़ों की। और लोकनाथ को लगा कि जंगल की खुली हवा में भी उस का दम घुट रहा है। और फिर यह गंध कुहासे की तरह उठी और उस के गले से होकर माथे में छा गयी। और फिर सारे चेहरे उस कुहासे की ओट में छिप गये—उर्मी का चेहरा उस की बीवी का चेहरा, उस की बच्ची का चेहरा। चेहरों का अहसास होता था—पर पहचाने नहीं जाते थे। फिर लोकनाथ को लगा कि दूर पास कहीं कोई बस्ती नहीं थी। जहाँ तक नज़र जाती थी—वहाँ तक सिर्फ खँडहर ही थे। फिर किसी खंडहर में से चमगादड़ों की एक तेज़ गंध उठी और उस के सिर में छा गया। फिर उसे लगा कि किसी दीवार की ओट से निकलकर एक चमगादड़ उस के कानों पर झपटने लगा था। उस ने घबराकर दोनों हाथ कानों पर रख लिये थे। कुछ मिनटों के लिए उसे कोई आवाज़ सुनाई नहीं दी थी—ज़मीर की आवाज़ भी नहीं, पर एक आवाज़ उसे अब भी सुनाई दे रही थी—सुनाई कानों में नहीं दे रही थी बल्कि खून की हरेक बूँद से उठ रही गिरती थी।

यह जैसे एक बहुत बड़ी साज़िश थी। ज़मीर की आवाज़ के खिलाफ खून की आवाज़ की साज़िश थी—चेहरे की हर पहचान के खिलाफ एक गंध की साज़िश थी—जंगल की खुली हवा के खिलाफ एक गंध की साज़िश थी—हर आबादी के खिलाफ हर खँडहर की साज़िश थी।

लोकनाथ किसी को कोई साज़िश न समझा सका। पंद्रह मिनटों का वह समय जब उस की उमर से टूटकर एक अंग की तरह दूर जा पड़ा तो लोकनाथ को लगा कि उस की सारी ज़िन्दगी अपाहिज बनकर रह गयी थी।

उस शाम जब वह घर लौटा उस की बीवी के कमरे में जो मासूमियत जल रही थी। लोकनाथ को लगा उस मासूमियत की लपट उस के चेहरे को तरह दागकर

थरथराती हुइ जमे जल्दी से बुझ जाना चाहती थी।

जब रात घिर आयी तो अँधेरा लोकनाथ का अच्छा लगा। पर फिर उसे लगा कि एक अँधेरा उस की छाती में घिर आया था। अँधेरे का एक टुकड़ा रात के अंधेरे से टूटकर अलग जा पडा था। रात का अँधेरा तालाब के पानी की तरह ठहरा हुआ था जिस में से एक गध उठ रही थी। उस रात लोकनाथ को कितने ही खयाल आये। उसे लगा कि वे सारे खयाल इस तालाब म तैरते हुए मच्छर जमे ये।

दूसरे दिन वह पहाड से लौट आया था। उर्मी को उस के मा-बाप के पास छोड आया था। और फिर उर्मी को उस के विवाह के दिन एक बार भरे आँगन में मिलने के सिवा वह कभी नही मिला था। यह एक माफी थी जिसे वह सारी उमर अपने का गरहाजिर रखकर उर्मी से मागता रहा था।

"पापाजी!" सुचेता ने एक मिन्नत से लोकनाथ की खामोशी तोडनी चाही। और धीरे से बोली, "आप क्या सोच रहे ह पापा? वैसे मैं जानती हू, आप 'न' नही करेंगे।"

"क्या?" लोकनाथ ने हरान होकर अपनी बेटी की तरफ देखा। यह बेटी उसे बहुत प्यारी थी। उस का बात उस ने कभी नही टाली थी। पर वह हरान था कि अगर कोई होनी वक्त के साथ मिलकर एक साजिश करने लगी था, तो उस की बेटी को इस साजिश की समझ क्या नही लग रहा थी।

"रीता का कुछ दिन मैं अपने साथ ले जाऊँ? यह नानी मुझ से सँभलती नही" सुचेता फिर कह रहा थी। साथ में मा ने भी हामी भरी, "एक महीने तक रीता का कॉलिज खुल जायेगा। यही छुट्टिया का एक महीना ही ह एक महीना ही सही राजेंद्र भी जोर डाल रहे ह।"

"राजेंद्र बडा होनहार ह," लोकनाथ को खयाल आया और फिर अपने जँवाई के चेहरे की तरफ देखते हुए उसे लगा कि कोई होनी एक पागल कुत्ते की तरह— इस अच्छे लडके को काटने के लिए तिलमिला रही थी। वह तनकर खडा हो गया ऐसे जैसे वह उस पागल कुत्ते से बचा सकता था। "मैं अगले महीने खुद आकर रीता को छोड जाऊँगा" राजेंद्र ने धीरे से कहा।

"नही बिल्कुल नही।" लोकनाथ ने जरा सख्ती से कहा। सब ने घबराकर पहले लोकनाथ का ओर देखा, फिर एक-दूसरे की ओर, ऐसे जस उन्होंने लोकनाथ की आवाज नहा सुनी थी, किसी बने अजनबी की आवाज सुनी थी।

एक निश्वास

करमो ने लोटे में लस्सी डलवायी और फिर आधे से भी कम भरे हुए लोटे को देखती हुई बोली, 'आज बड़ी सरदारिन नहीं दिखती कहाँ ! राज़ी-खुशी तो है ?'

सरदारिन निहालकौर अभी एक घड़ी पहले चौके में आयी थी। चूल्हे पर रखी खीर के नीचे ज़्यादा आँच देखकर उस ने लकड़ियाँ पीछे खींच ली थीं, 'क्या री, बीरो ! खीर भी कभी इतनी आँच पर बनी है ? इस के नीचे बहुत हल्की आँच चाहिए।' उस ने कहा था और फिर चूल्हे के पास लकड़ी की पटरी रखकर और उस पर बैठकर पतीले में कलछी घुमाने लग गयी थी। सुबह दही उस ने खुद बिलोया था पर लस्सी छानते हुए उस ने बीरो को कहा था कि वह कुछ पल अब आराम करेगी। जो भी आये, बीरो उसे लस्सी दे दे।

शायद औरों ने लस्सी लेते हुए यह बात पूछी थी पर निहालकौर नहीं जानती। वह अन्दर के कमरे में थी। पर अब जब वह आँगन में थी तो दहलीज़ से बाहर बैठी करमो की आवाज़ उस ने खुद सुनी थी।

'राज़ी हूँ करमो ! तुम तो ठीक हो ?' निहालकौर ने अन्दर से पूछा।

करमो ने जल्दी से दहलीज़ के पास आकर झाँका और अपने एक हाथ को माथे से छुआती हुई बोली, 'जुग-जुग जियो सरदारिन ! आज तुम्हें देखा नहीं था ! मैं ने सोचा मेरी सरदारिन ठीक तो है !'

सभी लोग निहालकौर की बलाएँ लेते थे। यह नयी बात नहीं थी फिर भी निहालकौर को लगा कि लस्सी लेते हुए करमो ने उसे याद किया था तो ज़रूर कोई बात होगी। तभी जब निहालकौर ने करमो की तरफ देखा तो वह लोटा निहालकौर की तरफ झुकाकर खड़ी हुई थी। निहालकौर समझ गयी। वह बीरो की तरफ देखती हुई बोली, 'सुनो ! करमो का लोटा भर दिया कर ! इस के छोटे छोटे बच्चे लस्सी पर पलते हैं।'

'राम तुम्हें दुगना दे ! तुम्हारे हाथ इतने सन्तोषी हैं कि अनजाने ही दो-दो बार लस्सी डाल जाते हैं !' लोटे में और लस्सी लेती हुई करमो बोली। और चाहे इस समय उस को तसल्ली देनेवाले हाथ बीरो के थे, पर वह कह रही थी निहालकौर के हाथों को।

करमो के चले जाने पर निहालकौर उस की दी हुई दुआएँ भूल गयी, उस का कहा हुआ सिर्फ एक शब्द उसे याद रह गया 'बड़ी सरदारिन'

निहालकौर एक ही दिन में सरदारिन से बडी सरदारिन बन गयी थी। मालूम नहीं उसे बडी सरदारिन कहने का खयाल सब से पहले किसे आया था। शायद सब को एक साथ ही आ गया था। घर की महरी से लेकर कारखाने के सारे मुंशी, मुनीम उसे बडी सरदारिन कहकर बुलाने लगे थे। यहां तक कि घर के मालिक सरदार ने भी कल उसे बडी सरदारिन कहकर बुलाया था। और फिर निहालकौर को खयाल आया कि परसों उस ने खुद ही तो महरी से कहा था कि जाकर छोटी सरदारिन को कमरे से बुला लाये। अगर कोई छोटी सरदारिन हो तो बडी सरदारिन खुद ही बन जाती थी। निहालकौर ने सोचा और फिर कितने ही खयाल छोटे छोटे धान के दानों की तरह उस के मन के दूध में रधने लगे।

रँधते हुए खयालों में एक खयाल यह भी था कि बीरो जब से इस घर में छोटी सरदारिन बनकर आयी थी, तभी से वह रात को सोने से पहले नियमपूर्वक निहालकौर के कमरे में आती थी और उस की चारपाई के पाये पर बैठकर उस के पांवों को दबाती थी। निहालकौर ने न तो बेटी की डोली भेजनी थी न बेटे की डोली लानी थी, पर जब उस के हाथों ब्याही बीरो उस के पांवों को दबाती थी तो उसे लगता था कि उस ने बेटी भी पा ली थी और बहू भी। और निहालकौर ने एक गहरा सांस लेकर हँसते हुए होठों से अपनेआप को मना लिया था कि बीरो उस की बेटी भी थी और बहू भी।

निहालकौर ने अपने सरदार के दूसरे विवाह के लिए यह लडकी बीरो खुद ही तलाश की थी। रिश्ते अच्छे घर से भी मिल रहे थे पर वे सारे सरदार के लिए नहीं मिल रहे थे, सरदार की हवेली के निमित्त थे। सरदार की ढलती हुई उमर से डरते हुए जो भी लोग रिश्ता लेकर आते थे वे रिश्ता करने से पहले हवेली को अपनी बेटी के नाम करवा लेना चाहते थे। सरदार अपनी हवेली का वारिस तो जरूर खोज रहा था, पर हवेली को उस औरत के नाम नहीं लिख सकता था जिस की कोख ने किसी वारिस को जाने कब जन्म देना था, और फिलहाल जिस ने वारिस की भविष्य वाणी ही करनी थी।

और सरदार ने दूसरा विवाह करने से इनकार कर दिया था। पर इस इनकार में एक निश्वास मिला हुआ था। निहालकौर ने इस निश्वास को सुना था और इस तरह उस ने एक अदने-से परिवार का यह बीरो खोजकर अपने सरदार को दे दी थी, और उस के बदले में उस का निश्वास खुद ले लिया था।

एक दिन सरदार ने दीवार में लगी अपनी लोहे की अलमारी खोली तो वह कितनी ही देर खुली अलमारी के सामने खडा कुछ सोचता रहा। 'बडी सरदारिन कहाँ गयी है?' सरदार ने बीरो से जल्दी से पूछा। बडी सरदारिन घर नहीं थी। सरदार ने अलमारी को बन्द कर दिया और चाबी जेब में रख ली और कारखाने को जाते हुए बीरो से कह गया कि निहालकौर जब भी घर आये, वह नीचे से मुंशी को आवाज

देकर उस थानेदार से छुड़ा के। जब निहालकौर घर पहुँचा तो वीरो बाहर के दरवाज़े में घबरायी हुई बैठी थी। उस ने अभी कुछ पी था।

निहालकौर ने वीरो का हाथ थामा, उस के कन्धे दबाये और उसे चारपाई पर लिटाया। पर वीरो काँपते पैरों से चारपाई से नीचे उतरी और निहालकौर के पाँवों से लिपट गयी।

सरदारनि, तुम ने मुझे उस दिन कहा था कि मैं तुम्हारी बेटी भी हूँ और बहू भी। आज तू मुझे अपनी बेटी समझकर बचा ले, और चाहे बहू समझकर। वीरो बिलख उठी। बिलखते बिलखते वीरो ने निहालकौर को बताया कि जब कुछ दिन पहले उस का भाई उस से मिलने आया था तो उस के भाई को कुछ पैसों की बहुत ज़रूरत थी। वीरो ने उसे कुछ पैसे भी दिये थे, पर पैसे उस के पास बहुत कम थे। इसलिए उस ने सरदार की जेब से चाबी चुराकर लोहे की अलमारी खोली थी और अलमारी में से चाँदी के बरतन निकालकर अपने भाई को दे दिये थे।

यह तुम्हारा अपना घर है वीरो! अगर तुम अपने घर की अपने हाथों चोरी कराओगी— बात अभी निहालकौर के मुँह में ही थी कि वीरो रोकर बोली, "यह घर मुझे अपना न कभी लगा है न कभी लगेगा। पर यह मैं तुम से इकरार करती हूँ, सरदारनि, आइन्दा मैं इस घर की बात कभी बाहर नहीं दूँगी। मैं ने उस दिन भी गलती की थी। यों ही मन घटा। बाद में पछतायी भी। तुम्हें तो पता है मेरे विवाह के समय मेरे बाप ने मेरे भाई के कारोबार का वास्ता देकर तुम से दो हज़ार रुपया माँगा था। तुम ने वह दे दिया था। मेरे बाप ने विवाह कर लिया। मुझ बेचारी में बगैर ही क्या रह गया? दो हज़ार रुपये के लिए मुझे इस बूढ़े खूँटे से बाँध दिया गया। बाप और भाई भी क्या सगे हुए—मैं किसी का घर बसाकर उस का घर ना बसा भई।'

वीरो!' निहालकौर पोंछकर वीरो के चेहरे की उदासी देखने लगी।

निहालकौर ने वीरो का राज़ रख लिया। उस ने सरदार से कह दिया कि अलमारी में रखे थे वे बरतन पुराने हो गये थे। उस ने वह बरतन गिरवाकर साथ में कुछ और चाँदी मिलाकर सुनार को नये बरतन बनाने को दिये थे।

सरदार को विश्वास आ गया। पर निहालकौर अब भी वीरो के चेहरे की तरफ देखती तो उस के मन में एक फ़िक्र घर कर जाती। वीरो का बदन भरा जैसे मार्गे था। रंग की गोरी, पर गालों पर जवानी लहू आग का उमड़ रुकी हुई था। उस की बाँहें बच्चों की तरह नरम और लम्बी था। माथे में झुँझला का एक पल भी नहीं लगता था। सरदारनि को लगा कि सरदार से जो निकाह लगा उस में अपने जिस्म से निकलता वीरो ने उस निकाह बनना उमग से टाल दिया था।

और फिर वीरो के पाँव भारी हो गये। इलाज बहुत करी थी, पर सूखाएँ इतनी थी कि इलाज में लगता नहीं था। सरदार का एक बहाना पर नहीं पड़ता था

और निहालकौर बीरा का पैर जमीन पर नही लगने देती थी। पर लोग न सरदार का इतना मुबारक दे रहे थे न बीरो का ही, जितनी मुबारक वे निहालकौर को दे रहे थे।

"मैं इस का जनम होते ही इसे अपनी झोली में ले लूँ? बाद म मत कहना मैं बडी सरदारिन हूँ तुम छोटी सरदारिन। पहला बेटा बडी का होगा। बाद म जो जनम लेंगे वे तुम्हारे निहालकौर हसकर बीरो से कहती। निहालकौर खुद ही नही जान पा रही थी कि उस के मन में जरा-सी भी मलाल क्या नही था। उस ने अपने हाथा अपना खाविन्द एक परायी औरत को दे दिया था और अब उस ने सारी जमीन जायदाद भी एक पराये बेटे को दे देनी थी।

"अरी टोनाहारिन! मैं ने कसे तुम्हे अपनी बेटी और बहू कहा था! मैं इस समय सचमुच एक मा की तरह खुश हूँ। मुझे यह कभी याद ही नही रहता कि तू मेरी" निहालकौर की इस बात पर बीरो बीच म ही हसकर कहती, "सरदारिन! मैं बेशक तुम्हारी और कुछ लगती होऊँ या नही पर यह तुम जानती हो कि मैं तुम्हारी सौत नही लगती।'

निहालकौर ने बर्ई से जो झूला बनवाया, उस झूले म चादी के घुँघरू बाधे। सच्चे रेशम की उस ने छोटी-सी रजाई बनवायी। शहर का एक अगरेज अफसर एक महीने की छुट्टी पर विलायत जा रहा था, 'विलायती स्वेटर रेशम जसे हाते ह' निहालकौर ने कहा और अँगरेज से दो छोटे छोटे स्वेटर विलायत से लाने की बात पक्की कर ली।

अपने समय म निहालकौर ने खुद का दाइया को भी दिखाया था और बडे शहरा में जाकर डाक्टरा का भी, पर उस ने अपने समय म कभी किसी देवता की मनौती नही की थी। बीरा को जब पूरे तीन दिन कमर में दर्द होता रहा, और फिर एक दिन जब जरा-सा खून का दाग भी नजर आया तो निहालकौर ने पहली बार अपनी जिन्दगी म मनौती मानी।

यह 'मान' करने का समय था। बीरा चाहती तो अन देश-देशान्तरा की फर माइशें कर सकती थी। सरदार उस की आवाज़ के लिए अब उस का चेहरा ताकता रहता था। पर निहालकौर जानती थी कि अब भी बीरा अचार के एक छोटे-स टुकडे के लिए झिझककर दो बार उस का चेहरा निहारती थी। इसलिए निहालकौर खुद ही बीरा की इच्छाओं का ध्यान रखती। इन सारे दिना में बीरो ने अपने मुँह से जोर देकर किसी बात को कहा था तो सिर्फ इतनी-सी बात को कि आँगन म रस्सी से टागे हुए सलजमा के हार उतारकर परे रख दिये जायें। "इन्हें देखकर मेरे मन में कुछ होता ह। सलजमा का लटकना इस तरह लगता ह जसे किसी की चमडी लिजलिजा गयी हो।' बीरो ने कहा था और सूखते हुए सलजमों का देखती हुई उबकाने लगी थी।

फिर बीरा के मन में जाने क्या आया, जब उसे नवा महीना हो आया तो उस

ने ज़िद् पकड ली कि वह अपने मायके जाकर ही प्रसूत काल काटेगी। सरदार उस की ज़िद् नहीं मान रहा था। निहालकौर उस की मिन्नतें कर रही थी, पर वीरो ने एक ही ज़िद् पकड रखी थी कि उस के गाँव की एक बूढी दाई बहुत सयानी है। उसे सिर्फ उसी दाई पर भरोसा है, और किसी पर नहीं। और उस का विश्वास था कि अगर वह यहीं रहेगी तो शहरी डाक्टरनियों के हाथों वह मर जायगी।

यह डर बडी बुरी बला है' डॉक्टरों ने भी सरदार को राय दी। पर सरदार के मन में दूसरा ही डर था। वह निहालकौर को अलग ले जाकर बोला, "मुझे डर है कि अगर उसे वहाँ लडकी हुई तो वह किसी के लडके से उसे बदल देगी। मैं ने पहले भी ऐसी कई बातें सुनी हैं। उसे लालच है कि अगर लडका हुआ तो बडा होकर जायदाद का वारिस होगा"

तो फिर इस का तो एक ही इलाज है। मैं इस के साथ चली जाती हूँ। मेरे पास रहते वह कुछ नहीं कर सकेगी।' निहालकौर ने कुछ देर सोचने के बाद कहा।

सरदार मान गया। वीरो ने भी कोई आपत्ति न की। निहालकौर ने घर की महरी को भी खिदमत के लिए साथ ले लिया और वीरो के साथ उस के मायके चली गयी।

वीरो का प्रसव कठिन नहीं था। वह भर-जवान थी और तन्दुरुस्त भी थी। उस की माँ और भाभी चुटकी काटती हुई उसे कहतीं 'यों ही डर जा रही है। जनम देने में क्या लगता है। एक बार चीख भर दिया कि बेटे ने जनम लिया।

निहालकौर वीरो के मायके पर किसी तरह भी भार न बनी। खुले हाथ खर्च करती थी। घर के सब लोग उसे सरदारिन-सरदारिन कहते अघाते नहीं थे। निहालकौर हँसकर कहती, 'एक बार चीख दिया कि बेटे ने जनम लिया। पर अगर बेटी को जनम देना हो तो ?

वीरो की भाभी खिलखिलाकर हँसती हुई कहती, "दो बार चीखने से बेटी को जनम दिया जा सकता है।

"बेटी के लिए दो चीखें ? निहालकौर हँसकर पूछती।

एक चीख पीड़ा की और एक चीख ग़म की वीरो की भाभी कहती, 'खुशी तो बेटों की होती है। बेटियों की क्या खुशी होगी।'

निहालकौर के दिल में एक गहरी टीस उठी। उस ने सोचा, मैं ने ज़िन्दगी में न एक बार चीखकर देखा न दो बार। पर उस ने अपने मुसकराते हुए होंठों से अपनी कसक को इस तरह पी लिया कि उस का दर्द भी उस के चेहरे को देखकर लज्जित होकर रह गया।

और फिर जिस रात वीरो का प्रसव की पीडाएँ शुरू हुई तो दाँतों तले दबे उस के जवान होठों ने उन पीडाओं को इस तरह सह लिया कि किसी को खबर भी न हुई। सिर्फ एक बार उस की एक चीख सुनाई दी तो वीरो के सिरहाने बैठी

निहालकौर की तरफ देखकर दाई ने कहा, "सरदारनि, मुबारक हो ! आओ तुम्हारी झोली बेटे से भर दूँ !"

निहालकौर ने बेटे को भी आचल में ले लिया और मुबारकबाद को भी। पर सुबह होते ही जब वह सरदार को तार भेजने लगी तो वीरो ने निहालकौर को अपने पास बुलाकर अपने दोनों हाथ उस के पावों पर रख दिये और बोली, "सरदारनि ! मैं दुनिया से झूठ बोल सकती हूँ, पर तुम से नही। यह लडका तुम्हारे सरदार का नही "

"वीरो " निहालकौर को लगा जैसे उस की जबान लडखडाकर रह गयी हो।

"मैं सरदार की किसी तरह ऋणी नही हू। पर मैं तुम्हारी ऋणी हूँ। अगर यह लडका सिर्फ सरदार के आगन में ही खेलता तो मुझे कोई उजर नही था। पर इसे मैं तुम्हारी झोली में नही डाल सकती। यह तुम्हारी झोली के योग्य नही है।

'क्या कह रही हो वीरो !'

"किया तो मैंने हँसी हँसी में था, शायद हँसी को समय इसी तरह डँसता है। सच कहती हूँ तुम से, मुझे अपने लिए कोई पछतावा नही। अगर दिल में पछतावा है तो तुम्हारे लिए "

"वी रा !"

'तुम्हें याद होगा कि मैं पिछले साल एक बार मायके आयी थी आप का मुशी मेरे साथ आया था मुझे मायके मिलकर ले जाने के लिए। वहाँ सारे गाँव में यह बात फैली हुई थी कि मेरे मा-बाप ने रुपया लेकर मेरा विवाह एक बूढे सरदार से कर दिया था। सरदार कभी इस गाव में नही आया। मेरा बाप ही मुझे आप के शहर ले गया था और गुरुद्वारे में विवाह के बाद मुझे आप के घर छोड आया था मेरे गाव आने पर हर कोई मुझ से पूछने लगा कि मेरा सरदार कितना बूढा था ? मुझे जाने क्या सूझा मैं ने उन से पीछा छुडाने के लिए कह दिया कि मेरा विवाह बूढे से नही हुआ था। आप का मुशी बडा जवान था, सुदर भी था। उसे दिखाकर मैं ने उन से कहा कि यह मेरा घरवाला है। सारी की सारी बस्ती हैरान होकर रह गयी। मुशी को मैं ने यह बात बता दी। मुशी ने भी झूठ का ओढ लिया। जब मेरी सहेलियों ने उस से बुन्दों की माँग की तो अपने सुनार से चाँदी के बुदे खरीदकर उन्हें दे दिये। पाच-छह दिन मैं वहा रही। रोज हँसते-हँसाते मुझे भी यह महसूस होने लगा कि मेरा विवाह उसी के साथ हुआ था, और किसी के साथ नही।

"हमारा मुशी मस्तसिंह "

'मैं अब लौटकर सरदार के घर नही जाऊँगी। न ही इस लडके को ले जाऊँगी। इसलिए जिद पकडकर मैं यहाँ आयी हूँ। मेरा किया मेरे सामने आयेगा। मैं तुम से और कुछ नहीं माँगती सरदारनि ! बस एक बात माँगती हूँ कि सरदार को उस मुशी का नाम मत बताना। नही तो उस मुशी को वह नौकरी से निकाल देगा।'

"पर मस्तसिंह विवाहित है वीरो ! उस के घर दो बच्चे हैं "

'इसी लिए वह डरता है कि सरदार को पता चल गया तो उस की नौकरी जाती रहेगी। उस ने कौन-सा मुझे अपने घर बसाना है कि मैं उस की नौकरी छुड़वाऊँ। वह जहाँ भी रहे खुश रहे। मैं ने एक बार देखा तो सही कि जवान आदमी कैसा होता है—'

निहालकौर ने घबराकर आँखें बन्द कर लीं। और फिर जब उस ने आँखें खोलीं तो उस ने देखा कि बीरो की झोली में पड़ा हुआ उस का बेटा उस की छाती का दूध पीने के लिए मुँह फिरा रहा था।

और निहालकौर को लगा—सरदार का जो 'निरवाण' उस ने अपने जिम्मे ले लिया था और बीरो ने उस से वही 'निरवाण' लेकर अपनी छाती में रख लिया था, वह लड़का बीरो की छाती में से उसी निरवाण को पाने की कोशिश कर रहा था।

लटिया की छोकरी

पावती ने जब डोली में से पैर उतारा, सब से पहले उस के ससुर ने रुपया की थैली में उस का हाथ डलवाया, फिर उस की सास ने सोने की कण्ठी उसे मुँह दिखाई दी, फिर उस के देवर ने उसे सफेद मोतिया की अँगूठी घूँघट-उठायी में दी और फिर बाकी सगे-सम्बन्धियों ने अपने अपने सम्बन्ध के अनुसार पाँच-पाँच या दो-दो रुपये उस की मुट्ठी में दिये। देसराज की बारी आधी रात के करीब आनी थी। सुहाग की सेज पर बैठी पावती सोच रही थी कि उस के ससुर ने उस का घर में स्वागत कर उसे बहू से बेटी बना लिया था उस की सास ने उस का मुँह देखते हुए उसे घर का सिंगार कहा था, उस के देवर ने उस के रूप को सराहते हुए उसे फूल जैसी भाभी कहा था और सगे सम्बन्धियों ने उसे चन्दन की डाली कह-कहकर प्रशंसा की थी और वह सोच रही थी कि अगर देसराज उस का मुँह देखकर उसे अपने मन में उतार लेगा तब ही यह सब कुछ सार्थक होगा, नहीं तो यह सब कुछ निष्फल जायेगा।

देसराज ने बड़ी कोमलता से पावती का घूँघट उठाया और नज़र भरकर उस के मुँह की ओर निहारते हुए धीरे से कहने लगा "पारो!"

जिस कोमल आवाज में देसराज ने पावती को पारो बना दिया—पावती का तन मन पूर गया। उस ने पलकें झपककर देसराज के मुँह की ओर देखा। देसराज के मुँह पर एक गहरी तसल्ली थी उस ने कोट की जेब में से एक तसवीर निकाली और पारो की झोली में डालकर कहने लगा, 'तुम्हारी मुँह दिखाई।"

पारो तसवीर की ओर देखती की देखती रह गयी। यह एक भरपूर जवान लड़की की तसवीर थी। लड़की के बदन पर एक छोटी सी चोली थी, लाँगवाली धोती बँधी थी और बालों में फूलों के गुच्छे टके थे। लड़की के मुख पर रूप का ज्वार था और यह रूप जंगली फूल जैसा था। पारो को क्षण भर के लिए ऐसा लगा जैसे उस का दिल धड़कने से रह गया हो।

दूसरे क्षण देसराज ने पारो को उस के दिल की धड़कन लौटा दी। कहने लगा, "यह चारू की तसवीर है। मैं सोचता था, अगर तुम्हारा मुख उतना ही सुन्दर हुआ जितना मेरे मन में बसा हुआ है तो मैं चारू की तसवीर तुम्हें मुँह दिखाई दूँगा।'

और देसराज ने पावती को अपनी पारो बनाकर चारू की कहानी इस तरह सुनायी

'एक बार हमारा हाथ बहुत तंग हो गया था। पिताजी किसी के साथ

साझेदारी कर बैठे थे। अधिक विश्वास का बदला हमें यह मिला था कि घर का सारा छाप छल्ला बेचकर बाजार का कर्ज चुकाया था। पैसा डूब गया था और हम रोटी के भी मुहताज थे। मेरे ताऊ के बेटे बाघराज और रूमचन्द, पिछले कुछ सालों से मध्य प्रदेश में रहते थे। सुना था ठेकेदारी करते हैं। वे कुछ सालों में ही बड़ी असामी बन गये थे। उन्होंने मुझे लिख भेजा कि मैं भी अगर कुछ थोड़ा-बहुत पैसा लेकर उन के पास पहुँच जाऊँ तो कुछ दिनों में ही घर की हालत सुधर सकती है।

'मैं सोनीपत छोड़कर बिलासपुर चला गया। बाघराज और रूमचन्द जिस ढंग से लखपती बने थे, वह ढंग देखकर मेरा दिल काँप गया। वे बीस रुपये सैकड़ा ब्याज लेकर अपना रुपया ब्याज पर दे देते थे। दाव लगे तो पचीस रुपये भी लगा लेते थे। आसपास के गाँवों में गरीबों का जीना भी गिरवी पड़ा हुआ था और मरना भी। मैं साहूकारी का काम न कर पाया लेकिन पास-पड़ोस के गाँवों में काम का अवसर देखते हुए मैं ने बिलासपुर से उन्नीस मील दूर अकलतरे में साबुन का कारखाना खोल लिया।

'जो गाँव रेलवे लाइन के पास पड़ते हैं वहाँ के आदिवासी चाहे अपनी जंगल की आजादी को खो बैठे हैं फिर भी नाच-गाने की आजादी उन की हड्डियों में रमी हुई है। होली के दिनों में मैं ने किसी से पूछा कि अगर मैं लोगों के नाच गाने की महफिल में चला जाऊँ तो किसी को एतराज तो नहीं? मालूम हुआ कि किसी को एतराज नहीं था। मैं एक साँझ को गाँव के उस इकट्ठ में चला गया जहाँ मृदंग और बाँसुरी बज रही थी स्त्रियाँ और पुरुष काँसे की कटोरियों में ताड़ी पी रहे थे और गा रहे थे। लाल-पीले रंग में डूबी हुई औरतों ने पूरे हाथों में काँच की चूड़ियाँ पहनी हुई थीं पैरों में चाँदी की नाग मोरियाँ और नाक में मोटी मोटी तीलियाँ। गेंदे के फूल उन के बालों में बँधे हुए थे। उन का गीत आज तक याद है

'मोर अँगना में आयो रसिया
का करूँ दाई एक न माने।
चले न मोरे बसिया
मोर अँगना में आयो रसिया।'

'यह जवान लड़की गजब की खूबसूरत थी। उस ने सारे 'इकट्ठ' की फेरी ली और बाह लटकाकर एक लम्बा सा गान गाया। उस गीत की एक ही पंक्ति मुझे याद रह गयी है लटपट पाग से लपेट मन ले गयो।—हर बार जब वह यह पंक्ति गाती थी सारे इकट्ठ' की स्त्रियाँ उस के साथ मिलकर इस पंक्ति को गुँजा देती थीं। उस ने बड़ा रंग बाँधा। पर मृदंगवाला उस से भी अधिक मस्ती में था उस ने बड़ी लय से एक गीत गाया

'ताला देवे रहियो री
लटिया की छोरी मारे जिया में मा गयी।

नागन सा छारा मारे हिया म छा गयी ।
जहिर चडह गया री,
तोला देखे रहियो री ।'

"राग यह गीत गा रहे थे और साथ म गुटक रहे थे । मैं ने देखा कि मृदग वाला भी और कई दूमर भी, वार वार जिस आर देख रहे थे, वहाँ पद्रह-सोल्ह साल की एक वहा लम्बी खडी थी जिस ने लडका की तरह कमर म एक अगोछा वाँधा हुआ था और गले म एक चारखानी कुरती पहनी हुई था । उस आर औरतें अपने बाल खूब लम्बे रखती ह । पर उस लडका ने लडका की तरह अपने वाल काटे हुए थे और गानेवाला औरता से परे खडा वीडा पी रही थी ।

मैं ने पिछले दिना गाव की वाली सीख ली थी । मेरे पास सावुन की फेरी लगानेवाला चेटू काका खडा था, मैं ने उस से पूछा कि यह लडकी कौन थी । चेटू काका ने बडा ताकीद से मुझे बताया, 'अरे, ए छाकरी चारू ! ए वडी चट ए । ऐकर नजीक झन जावे, थाड कुन बोना एल्ल छन्ही से, कि जूती एकर हाथ में आयी से । ए जौन ननकी मृदग वजावत ए, एकर मोत आये ऐमना मौला दीखत ए, ए चाह ला प्यार करत ए ।' और चेटू काका ने मुझे यह भी बताया कि यह चारू लटियापारे में रहती थी इसी लिए यह मृदगवाला ननकी अपने गीत म कह रहा था कि लटिया की छोरी मार जिया में भा गया ।

'मैं कितनी ही दर चारू की आर देखता रहा । मैं हैरान था कि चारू ने जान बूझकर अपना रूप क्या विगाडा हुआ था । वह अगर दूसरी लडकियो की तरह रगीली धाती वाधती, वाँहा में काच के गजरे पहनती आखा में काजल डालती और लम्बे वाला का जूडा वनाकर उस म फूल टाकना, तो वह बहुत सुन्दर लग सकती थी पर ग्वाला जसी यह लडकी उस समय विलकुल लडकी नही लग रही थी । सिफ उस के मुख पर उस की आखें ऐसी थी जो उस के रूप की चुगली खा रही था । नही ता उस की ओर दूसरी बार देखने का भी खयाल न आता ।

"दूसरे दिन चेटू काका ने मुझे फिर बताया कि वह लटियापारे का छाकरी बडा खतरनाक थी । आठ आने महीना पर एक खपरल किराये पर लेकर अकेली रहती थी । छुटपन म माँ डूबकर मर गयी थी । बाप पागल हो गया था और अब वह शेरनी की तरह किसी स भी नहीं डरता थी । बीडियाँ फूँकती थी, जुआ खेलती थी और ठेके पर जाकर पउवा शराब एक ही सास चढा लेती थी । कभी वह ओखली में लागा का धान कूटकर चार पाँच आने राज कमा लेती थी और कभी वह स्टेशन पर जाकर एक एक आने म लोगा का सामान ढो देती थी । और चेटू काका ने मुझे चेताया कि कभी राह चलते में उस बुला न लूँ । वह किसी की इज्जत नही देखती थी और दूसरे का हाथ झटककर पाँव में स जूती निकाल लेती थी ।

'यह सब कुछ बडा अजीब था । मैं अक्सर बठा-बठा चारू के बारे में सोचता

गया थी। पर वह जब आया, बडी बेपरवाही से मेज की ओर खडी होकर बीडी पीने लगी। मेज पर इन्सपेक्टर ने अपने कागज़ आदि के साथ शराब का पउआ रखा हुआ था। गाव के मुखिया से कागज पर दस्तख़त करवाने हुए, उस ने बोतल दिखायी। बोतल का हाथ में लेकर जब एक आदमी ने हिलाया तो शराब की झाग न उठा। दूसरे ने हैरान होकर ढक्कन उतारा और उसे सूँघा। शराब का बू भी नही था। एक आदमी का एक घूँट पिलाया गया तो उस ने बताया कि यह तो निरा पानी है। इस्पेक्टर बडा हैरान हुआ। ऊँची ऊँची गालियाँ सिपाहियों को देने लगा कि उन्होंने रात को चारू से रिश्वत लेकर शराब को पानी में बदल दिया था। इस्पेक्टर ने मकडा गालिया दी। पर अब क्या हो सकता था! बात टल गयी और चारू उसी तरह बीडी पीती हुई शान से मुस्कराकर चली गयी।

एक-दो दिनों के बाद मैं ने चारू को अपने पास बुलाया और कहा देख चारू! तू अकेले रहते अस ना? ऐकर खातर तोर ऊपर ए सब मुसीबत आत है ए।

"मैं जानत हो ठाकुर!" चारू ने बडी हलीमी से जवाब दिया।

'मैं ने फिर उस से कहा, मोर समन म तनकी बहुत अच्छा छोकरा ए, अऊ तोर सिऊ प्यार करत है ए।

'मैं जानत हो। उस ने फिर वही जवाब दिया।

तू उकर सेया ब्याह काहे नही कर लेत अस?' मैं ने उस से सीधा सवाल किया।

' करिहो पर थोडा ठहरि के? चारू ने बडी तसल्ली से मुझ बताया।

' कतक दिन ठहिर के वे? मैं ने उस से जब पूछा तो चारू कितना देर कुछ न कह सकी फिर धीरे से यह कहकर कि को जाने यह बीडी पीती मेरे कमरे में से चली गयी।

चारू के मन की गहराई कोई न नाप पाया। दिन उसी तरह गुमसुम बीतने लगे। सिर्फ मेरे कहने पर चारू ने इतना कर लिया कि उस ने अगाछा बाँधने की जगह औरतो की तरह रंगदार धोती बाधनी शुरू कर दी और औरतो की तरह बाल भी लम्बे करने लगी।

एक दिन गाँव में बडा शोर मचा कि गाँव का पुराना मालगुज़ार कितने ही दिनो के बाद गाव लौटा था और रात अपने खेतो की झोपडी में सोया पडा था कि झोपडी को आग लग गयी। मालगुज़ार बीच म ही जल मरा था। चेटू काका ने मुझे विस्तार से बताया 'अरे, वो मानसिंह मालगुज़ार रही म ना! जोन गाजा के चिलम में अफीम डाल के नशा करत रही से, आज रात के उपर झोपडी म आग लग गये, उई म बिचारा जल मरी म। लोग कहते थे कि सठियाये हुए बूढे ने शायद रात को चिलम में अफीम की डली अधिक डाल ली थी जिस के नशे में चिलम उस के हाथ से छूट गिरी थी और उस की खाट का आग लगती लगती पूरी खपरैल म लग गयी थी।

फिर धीरे धीरे यह खबर भी चल निकली कि रात का मालगुजार ने अपने किसी आदमी के हाथ चारु का अपनी झापडी में बुलवाया था और उस पर जबरदस्ती हाथ डालना चाहा था। यह सारे गाँव को मालूम था कि अगर कोई चारु को हाथ डालना चाहे तो उस का क्या हश्र होता था। लोग कहते थे कि चारु ने जरूर उसे अपनी जूती से पीटा होगा और चोपडी से भाग गयी होगी। बूढे को उसी की आह लग गयी थी, इसलिए वह रात को दवी आग से जल मरा था।

"चारु से पूछने की किसी को हिम्मत नही थी। मैं ने भी कुछ न पूछा।

"तीसरे दिन पूर्णिमा थी। पूर्णिमा के दिन ननकी दौडता-भागता मेरे पास आया उस की साँस फूली हुई थी। कहने लगा, 'ठाकुर साहिब! आज मार मन खूब खुस ए! का जाने लठिया की छोकरी के मन म का आयी से कि मोला बुला के आपन मुँह ले मार सग ब्याह करे कर कही से।

सच ?' मैं ननकी की तरह खुश भी हुआ और हैरान भी।

" 'सच ठाकुर साहिब! मैं तो तुमन ला न्योता दे कर आये हो। आज रात के चारु तुमन ला आपन घर में खाये पिये कर बुलायी से। ननकी ने मुझे कहा और मुझ से दिन भर की छुट्टी लेकर चला गया।

'मैं ने उपहार के रूप म चारु के लिए एक रगीली धोती खरीदी और रात को उस के घर चला गया। चारु की खपरैल में ढोलकी बज रही थी। खपरैल के दरवाजे में बहुत-से फूल टँके गये थे और बरामदे में चावल पक रहे थे।

रायोता की जाति में और दूसरी छोटी जातियो में विवाह की कोई रस्म नही होती। लडका लडकी के हाथो में काच की चूडियाँ पहना देता ह बस विवाह हो जाता ह। ननकी की मा रायोतो की तीन चार और स्त्रिया और गाव के मुखिया इस दावत म आये हुए थे। बस और कोई नही था। राहू मछली पकी हुई थी, उबली चावल बने हुए थे और चारु सब का महुए की शराब पिला रही थी। मैंने चारु आज कोई दूसरी ही चारु दिखाई दे रही थी। उस ने पीले रग की कुरती पहनी हुई थी, लाल रग की धोती बाधी थी हाथो में काँच की चूडियाँ और गीले के गजर पहने हुए थे। माथे पर बिन्दु लगाया था और बालो में मोगरे के फूल गुँथे हुए थे।

रायोता की स्त्रियाँ और गाव के मुखिया जब खा-पीकर विदा हो गये तो मैं ने शराब की बोतलो की ओर देखकर चारु से पूछा चारु, तोला डर नही लगे जो ऊपर ले थानेदार आ जाये तो ?

'चारु के मुख पर पहले रूप ही चढा हुआ था, अब मद और चमक आ गयी और वह बिजली की तरह चमककर बोली अब मोला थानेदार कभी डर करीसे तो मैं उला उही जगा भेजू जहा मालगुजार गये से।

' मैं भौचक्का रह गया। मेरी तरह ननकी का मुँह भी खुले का खुला रह गया। ननकी बोल न पाया मैं ने ही चारु से पूछा 'सच बता, चारु! मालगुजार ला

तही मारे अस ?'

" 'मैं कायर मारोआ उकर पाप ही उला मारे ई।' चारू तमककर बोली।

" 'ओ तोला छेडी रही से ? इस बार ननकी ने चारू से पूछा।

"चारू ने दाँत पीसकर जवाब दिया, 'ओ कऊ के का हिम्मत रही से जग मोला छेडताम।'

" 'फिर ?' मैं ने और ननकी ने हैरान होकर पूछा।

ओ मार दाई ला मरवाये रहो स।' चारू के मुख पर रोष का एक नया रूप चढ़ गया।

' तोर दाई ला ? मेरे मुँह से निकला।

'चारू ने हाथ में पकड़ी हुई नराव की कनेरी एक बार रख दी और अँगड़ाई लेकर कहने लगी मोर दाई गाऊँ भर में सब से खूबसूरत रही स। मालगुजार के मन खराब हो गयी से। मो दाई एला खूब डाँटा स। आउ एक दिन जब मार दाई कुआ ले पानी भरत रहा से सो ए आपन काको आदमी के हाथ उला कुआँ में धकेल देई से। मोर दाद मर गये। एइ दुख मा मार दादा पागल हो गये। मैं आपन मन में करम खाये रहिया के अपन दाई के बदला चुका के छाडिया।

' चारू ! इहि खातर तैं ब्याह नहीं करत रहे अस ? ननकी ने चारू की बाह अपने हाथ में पकड़ ली और उसे गव से पूछा।

'हाँ, ननकी ! मैं आपन मन में प्रतग्या करे रहओ कि मैं आपन हाथ में काँच की एक चूरी तक ना पहनूँ '

"ननकी ने चारू को गले से लगा लिया। उस के मुँह से बार-बार यही निकल रहा था, 'ए मार चारू ! ओ मोर लटिया की छोकरी ! त अतका दुख अकेले बोहे-बोहे घूमत रहे अस मोला पहिले काबर नहीं बताय अस। मैं तोर सब के सब दुख ला आपन ऊपर ले लेत।'

"चारू ने ननकी को बड़ा दुलराया और कहने लगी 'आ ननकी ! मैं तोल गुरू ले प्यार करत रहिया। मैं तोला कोई खतरा में कसे डालत ? अऊ फिर जब तक मैं आपन हाथ ले बदला नहीं लेते, मोर दाई के आतमा कसे चर पातीस।' "

और पारो ' कहानी सुनाते हुए देसराज की आवाज़ भर्रा गयी थी, वह पारो को गले से लगाकर कहने लगा

'चारू के रूप में मैं ने औरत के मन का जो रूप देखा है उस के आगे मेरा सिर झुक जाता है। मैं ने इसी लिए चारू की तसवीर तुम्हें मुह दिखाई में दी है।"

देसराज के सीने से सिर लगाकर पारो ने एक बार फिर चारू की तसवीर की ओर देखा और उसे अपनी आत्मा म सजोती हुई सोचने लगी कि वह चारू के रूप को अपने रोम रोम में बसा लेगी और वह देसराज के मन म उसी तरह अंकित हो जायेगी जिस तरह उस के मन में चारू के मन का रूप अंकित है।

गाँजे की कली

"अघनिया ! ओ अघनिया !'

'जा मैं नही गुठियाऊँ।"

"कावर नही गुठियावे ?"

'त मोर नाम अघनिया कावर रखे अस ?"

'मैं तोला क बार बता चुके हा के त 'अघन' में पदा होए रहे अम, एकरे सेती तोर दादा तोर नाम अघनिया रख दे रही से, ए मा मार का कसूर ए ?'

'दाई, माला तो ए नाम अच्छा नही लगे। अच्छा बता ता भला जो मैं कहो जेसठ म पैदा हा जाती तो मोर दादा मोर नाम जेसठी रख दतीस ?'

अघनिया का मा मन म गुटक उठी। अघनिया उस की बडकी बेटी थी। और वह भी ढलती उमर में हुई थी। वह कई साल पीपला तले नहाती रही थी। कोई टोना उस ने छोड़ा नही था। एक बार किसी अघारी के कहने पर उस ने अपनेआप को शिवलिंग का भी समर्पित किया था। और फिर कही जाकर यह बेटी उस की झाव में पडी थी। एक ता बेटी लाडली और वह भी झलमला गाँव के मालगुजार की बेटी। और वह भी किस्मतवाली। क्योंकि उस के बाद उस की माँ ने एक के बाद एक तीन बेटे जन्मे थे। मा ने लाड से पूछा

"तोर का नाम रखे के मन ए ? जौन नाम तोर मन ला अच्छा लग त ओई रख ल। सगुणा नाम तोला अच्छा लागत ए ? सगुणा शबरी पोखरी मगली पर एमन सब नाम तो नीच जातीवाला मन के नाम एँ। हमर जाति में तो पुस्कर, राधा, सीता ऐसना नाम अच्छा लगे।'

'ना दाई ना ! मार ता गुलवती नाम रखे के मन एँ। एई नाम माला खूब अच्छा लागत ए।'

'तो जा नारियल लेके मन्दिर में चढा आ, और पुजारी जी ला कहो आज ले मैं आपन नाम गुलवती रख ल हा।

अघनिया उर्फ गुलवती खुशी से मचल उठी और दानो बाहें माँ के गले में डालकर कहने लगी

'देख दाई ■ आज मोर एक और बात ला मान ले, बता तो मानबे ना ?"

"हा ल, मोर गला ला तो छाड ! त जौन बात कबे ओई ला मै मान लूँ।"

"ओ जो दादा टोपा में सोफिया दाम रखे एना ओमा के थोडकुन मोला द दे,

आज मोर पिए के अडवड मन ए।"

"चल हट! देख ता एकर बात ला, साल के छोकरी अऊ दारू पिए बर मागत ए कौनो सुनी ता का कही?

"त अब मैं बारह साल के तो हो गये आ।"

'बारह साल के हो गये अस ता कौन मार तं जवान हो गये अस, दारू पिए बर दारू पिए बर करत ए, जाना जा के खेत मन ला, देख सब तो खेता होत ए ओती दादा दारू म जूआ में उडात ए ओती नौकर मन सब कुछ खाँवजात ए।'

'त फिकर झन कर मैं सब देख लूँ अब तो मैं बडे हो गये ऊँ।'

बडे हो गये अस तो तँवर खेती तो तोर दादा तोला घर से निकालत।"

"मोर दादा मोला घर से निकाली?"

"हाँ अब तो तोर ब्याह के सब बात पक्का हो गये हुए।"

अघनिया से अभी-अभी बनी गुल्बत्ती के मन में एक घबराहट-सी उठी। वह नारियल की बात भी भूल गयी और दारू की भी। कमर में बँधी हुई चाँदी की करधनी जसे उस के गले में लिपट गयी। और वह खुल्कर साँस लेने के लिए एक ही झटके से करधनी उतारकर बाहर कँवल फूलो के तालाब की ओर चल दी।

गुल्बत्ती को लडकिया के साथ मिलकर आँखमिचौनी खेलना बिलकुल पसन्द नही था। वह जब गाव के जवान लडका को 'डुडुवा! कबड्डी!' खेलते देखती थी तो वह भी साँस रोककर 'डा डो करती हुई उन की जवानी के बराबर उतरना चाहती थी। पर गुल्बत्ती हमेशा अपनी माँ के कहने में रहती थी, उस की माँ ने उसे लडकों के साथ खेलने से मना किया हुआ था इसलिए गुल्बत्ती ने अपने मन को एक लगाम डाली हुई थी—आज जब वह तालाब की ओर जा रही थी, मन्दिर के पीछे कितने ही कुर्मी लम्बे डुडुवा खल रहे थे—गुल्बत्ती को लगा कि आज उस के मन की लगाम टूट जायेगी। यों तो जवानी सब की खूबसूरत होती है वह सोचने लगी 'पर चमरों (चमारो) राउता (मालकिया) और पनको (जुलाहो) के लडको से कुर्मी लडके बडे तीखे-तने होते ह' गुल्बत्ती सोचने लगी शायद इसलिए कि वे मछलियाँ का पकडते हुए पानी में मछलिया की तरह तरना भी जानते ह।

गुलबत्ती कुछ दर जवान कुर्मी लडका के तेल से चुपड हुए बदन दखती रही। उन की बाहो म मछलियाँ फडक रही थी। और गुल्बत्ती को लगा कि अगर वह भी डो डा करती हुई उन के पास खेलने चली जाये तो वह इन लडको की बाँहो में से मछलियाँ पकड सकती थी।

शिवाले का घण्टा बजा और गुल्बत्ती ने देखा कि उस की सहेली सानिया मन्दिर से प्रसाद लेकर बाहर निकल रही थी। गुल्बत्ती को नारियल की बात याद हो आयी और कुर्मी लडको का बाहो में से मछलिया पकडने की बात भूल गयी।

गुल्बत्ती ने सहेली का साथ लेकर मन्दिर में नारियल चढाया और शिव की

मूर्ति के सामने खड़ी होकर अघनिया से पक्की तरह गुलबत्ती बन गयी।

गुलबत्ती बनकर वह खुश थी पर उतनी खुश नहीं जितनी खुश उसे होना चाहिए था। आज मा ने उस जो विवाह की बात बतायी थी, वह बात उस के दिल में डूब उतरा रही थी। वह अपनी सहेली का साथ लेकर जब कँवल फूलों के तालाब की ओर गयी तो फूलों की नीली और गुलाबी आभा उस के कलेजे में घिर उठी। गुलबत्ती की सहेली गुलबत्ती से दो साल बड़ी थी। वह कभी-कभी एक गीत गाया करती थी जो गुलबत्ता की समझ में कभी नहीं आया था। आज गुलबत्ती ने उसे वही गीत गाने के लिए कहा

"घर ला फाड़ के बनाये हो दुरिया
तोर मया के मारे जाओ नही दुरिया।

सहेली ने आज जब यह गीत गाया तो गुलबत्ती को लगा कि आज यह गीत उस की समझ में आ गया था। उसे लगा कि कँवल फूलों की नीली और गुलाबी आभा थी जिस की माया उस के मन को लग गयी थी। वह इस माया की मारी कहीं दूर नहीं जा सकती थी और शायद इसी लिए विवाह की बात से उस का मन घबरा रहा था।

गुलबत्ती का बाप इस झलमला गाव का मालगुजार था—कचकौलप्रसाद पुष्करणा। गाव में कोई सौ घर होंगे। ये सभी कुर्मिया, पनका और नीची जातिवालो के घर थे। पुष्करणा के केवल चार घर थे और उन में से भी कचकौलप्रसाद का एक घर था जो पक्का बना हुआ था बाकी सभी खपरैलें थी।

कचकौलप्रसाद को ढलती आयु में औलाद हुई थी। अब चाहे इस बड़की बेटी के अलावा उस के घर तीन बेटे थे पर तीनों बेटे अभी बहुत छोटे थे। एक तो अभी पालने में था। कचकौलप्रसाद को कामकाज सँभालने के लिए सहारा चाहिए था, इसलिए वह चाहता था कि अपनी बेटी को किसी समझदार आदमी से ब्याह कर अपना सहायक बना ले।

झलमला गाँव से कुछ कोस के फासले पर चण्डीपारा गाव था। इस चण्डीपारे का मालगुजार रगीलाल कचकौलप्रसाद के मिलने-जुलनेवालों में से था। कई बार वे नशा-पानी भी एक साथ करते थे। रगीलाल की औरत जब मर गयी तो कचकौलप्रसाद ने इस मौके को जाने नहीं दिया। रगीलाल कचकौलप्रसाद जैसा बड़ा मालगुजार नहीं था पर कचकौलप्रसाद जानता था कि वह कारोबार में उस से भी बढ़कर था। बीस साल आयु का अन्तर कचकौलप्रसाद की दृष्टि में कोई बड़ा अन्तर नहीं था। उस ने गुलबत्ती की सगाई रगीलाल से कर दी।

अकस्मात गुलबत्ती ने देखा कि एक दिन उस के पैरों को महावर लगने लगा। घर के आगन में शामियाना लगा और गाँव की औरतें गुलबत्ती के गिर्द घेरा डालकर गाने लगी

"ए बेरा कौन जगी
जगी ता दुलहन छोरी
ऐ बेरा कौन जगी।
दुल्हन जगी तो काहे जगी
गोरी नहाये तो कावर नहाये
गारी घर दूल्हा के जाये
ऐ बेरा कौन जगी !'

गुलबत्ती की भावरें पडी। महाने भर म उस का गाना हुआ, उस की पठौनी। पठौनी की रात गुलबत्ती ने देखा कि एक जो अधेड उमर का काला कंकाल सा आदमी बठक में बठकर दाना तलिया में गाँजे की कलियाँ मसलकर गुडगुडी पी रहा था वह उस का खाविन्द रगीलाल था। उस का दूल्हा। जिस के लिए वह मल-मल न्हायी था, और जिस के लिए गाव की औरता ने गीत गाये थे, 'गोरी नहाये ता कावर नहाये, गारी घर दूल्हा के जाये।'

रौतायन ! आ रौतायन ! चूल्हा ले थाउकुन आगि तो ला !" गुडगुडी पीते हुए रगीलाल ने महरी को जब एक बार आवाज दी तो गुलबत्ती का जाने क्या यह खयाल आया कि वह गाजे की एक कली थी नशे की एक कली, जिसे इस रगीलाल ने सारी उमर अपनी तलिया में ममलकर अपनी गुडगुडी की आग में फूँकना था। गुलबत्ती का मन डूबने लगा। वह किसी के मन की आग में जलना जरूर चाहती थी, किसी का नशा भी बनना चाहती थी पर जाने क्या उस का कलेजा छीज रहा था कि वह इस रगीलाल की गुडगुडी में जलने के लिए नही बनी था।

उस ने एक एक कर कई जवान कुर्मी युवका की कल्पना की। पर किसी भी देखे हुए और परिचित चेहरे का उसे ध्यान न आया। शायद इसलिए कि उस की माँ ने उसे आरम्भ से ही चेता दिया था कि कुर्मी युवक बहुत नीची जाति के थे, और गुलबत्ती हमेशा अपनी माँ के कहने में रही थी। गुलबत्ती का न कोई कुर्मी युवक याद आया और न कोई और। पर उस का मन उस से पूछ रहा था कि यह रगीलाल किस जाति से था। पर फिर उस का मन उसे खुद ही कह रहा था कि यह रगीलाल चाहे कितनी भी ऊँची जाति का हो, उस की अपनी जाति से मेल नही खाता।

समाज की बनायी हुई जाति भले खा गयी, पर गुलबत्ती के सपना से सपना की जाति न मिली, और गुलबत्ता रगीलाल की गुडगुडी में गाँजे का कली की तरह सुलगने लगी। सुलगती का एक-एक कर पाँच वर्ष हो गये।

हर साल की तरह इस साल भी धान के खेत लहलहा उठे। रौनाही का त्योहार आया। मुजारा के गाता से धरती गुनगुना उठी—और हर साल की तरह इस साल भी गुलबत्ता सूनी आँखा स यह सब कुछ देखती रही। फिर फसल की कटाई हुई। वर्षा ऋतु आ गयी और माजली का त्योहार आ गया। औरतो ने थालिया में जौ

बोये और हरियायी थालियां में दिये जलाकर मंदिरों में चढ़ा आयी।

गुलबत्ती की महरी सोगिया बात बात पर चहक उठती थी। वह जबरदस्ती गुलबत्ती को रंगीला 'लुगड़ा' पहनाती, उस की कुरती पर कौड़ियां टांक देती और आती जाती उस के मन को कचोट जाती। इस बार भी माडली के मेले पर जाने का गुलबत्ती का मन नहीं था, पर सोगिया ने उस का प्यार से सिंगार किया और हठ ठान कर उसे मेले में ले गयी।

मेले में तरह-तरह की चीजें थीं। कलकत्ता अधिक दूर नहीं पड़ता था। कई बनजारे शहरों की सौगातें लाये थे। गुलबत्ती साबुनों की खुशबूदार टिकिया को सूँघती रही, तरह-तरह के मोतियों की मालाएँ देखती रही। दो मालाएँ उस ने खरीदीं भी। पर मेले में घूमते एक फेरीवाले ने उस के मन को विचलित कर दिया, जिस से खीझ कर उस ने सोगिया से कितनी बार कहा कि वह मेला देखते-देखते थक गयी है इसलिए अब वह घर लौटना चाहती है।

फेरीवाला छरहरे बदन का बांका जवान था। पर वह इतना गोरा रंग का था कि उस का परदेशी होना गुलबत्ती को खल रहा था। उस की आंखें शोख भी लगती थीं और शर्मीली भी। उस ने कितनी ही बार गुलबत्ती के मुख की ओर देखते हुए होका लगाया, "कुरती जम्पर का कपड़ा ले लो, धोती ले लो लुँगड़ा ले लो।" पर जब गुलबत्ती नजर भरकर उस की ओर देखती थी तो वह अपनी आखें झुका लेता था। गुलबत्ती चाहती तो कपड़ों की गठरी खुलवाकर जितनी देर मन में आता देखती रहती पर वह गठरी खुलवाकर कपड़े देखने की जगह उस से आखें चुराने लगी। आँखें चुराते हुए उस ने कितनी ही बार रास्ता बदला। पर जाने यह किस्मत का कौन सा छल था, कि गुलबत्ती का बार-बार उस फेरीवाले से सामना हो जाता। आखिर में वह घबराकर मेले से लौट पड़ी। इस बार जब फेरीवाला लौटती हुई गुलबत्ती के सामने पड़ा तो उस के मुंह से अनायास निकल पड़ा

'ठाकुर कौन गांव के अस?"

"नरिएरा के।" फेरीवाले ने चौंककर जवाब दिया।

"कौन देस से आये अस? गुलबत्ती फिर पूछ बैठी।

'पंजाब ले'।

'वतन दूर ए इयाँ ले? गुलबत्ती के मुँह से यों आहिस्ता से निकला जैसे वह मन ही मन में ये दूरी नाप रही हो।

'खूब दूर पड़त ए।"

खूब दूर पड़त ए? गुलबत्ती होंठों में इन गिनती के अक्षरों को दोहराती मेले में से लौट आयी।

घर लौटकर आयी गुलबत्ती ने जब रसोई की, और फिर बाहर आँगन में दीया जलाया तो उस ने बाहर चौंककर देखा कि सामने मंदिर के बरामदे में वही

फेरावाला चटाई बिछाकर बैठा हुआ था और उपलों की आग जलाकर अपने लिए रोटी सेंक रहा था। गुलबत्ती जल्दी से बाहर का दरवाजा भिड़काकर चौके में लौट आयी और अपने उखड़े हुए मन को भुलाने लगी।

उस दिन तो नहीं पर दूसरे दिन गुलबत्ती की रोतायन न टटकी बाँधकर गुलबत्ती की ओर देखा और फिर हँसकर पूछने लगी, "नोना! आज त बस चुप के चुपे अस? काल मेला में कुछ भवा तो नहीं आये अस?"

"मला में?" गुलबत्ती ने हैरान होकर सोगिया की ओर देखा, पर आग न कुछ महरी ने कहा और न गुलबत्ती ने बात को बढ़ाया।

महरी जब सन्ध्या समय अपने घर चली गयी तो गुलबत्ती ने बाहर का दरवाजा भिड़काते हुए मन्दिर के बरामदे की ओर देखा। वही फेरीवाला आज फिर उपले जलाकर रोटी सेंक रहा था। गुलबत्ती आज फिर जल्दी से चौके में लौट आयी और मन को सँभालने के लिए अपना निचला होठ दाँतों में काटने लगी।

बाहर के दवाजे पर आहट हुई। महरी जाने क्या लौट आयी थी फिर और हँसकर गुलबत्ती से पूछ रही थी 'नोनी! आज कौन चावल राँधे अस? खूब सुगंध आवत ए।

'क्यू तोर खाये के मन ए का? आज मैं तो तिलकस्तूरी चावल राँधे हो।

'ए नानी! हमर एसन भाग कहा, हमन लाइ तो गुरमटिया ही तिलकस्तूरी ए।

'चल आज तो खा क देख ले। रमकेलिया के साग औ राहर के दाल के साथ तिलकस्तूरी चावल कमना मिठात ए?

'ए दाई त अतन कुछ राधे अस, तोर घर क सामने जौन पंजाबी ठाकुर पड़े ए, ओ ला सुक्खा बाटी खात ए।'

मालो का करना।' गुलबत्ती ने एक लापरवाही से कहा। पर उस का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा।

सोगिया हँस उठी और कहने लगी, 'अच्छा तो नोनी थोड़कुन आमा के अथान ही द द मैं ओ बेचारा ला द आओ।

"चल कुटनी! तोर आपन खाये के मन हाई ना?"

नहीं नानी! तोर कसम।"

सोगिया कसम खाती रही गुलबत्ती हँसकर यही कहती रही कि उस का अपना मन था अचार खाने का। वह यों ही पंजाबी ठाकुर का बहाना बना रही थी। पर साथ ही गुलबत्ती ने एक कटोरी में आम का अचार डाल दिया। एक में अरहर की दाल, और एक ढक्कन में तिलकस्तूरी चावल।

कई दिन बीत चले। फेरीवाले ने मन्दिर के बरामदे में डेरा लगा दिया। दिन भर वह इस गाँव में और आसपास के गाँवों में कपड़ा बेचता। रात को इस मन्दिर के

बरामदे में लौट आता। रोज उपले जलाता गेहूँ का आटा मलकर उस के पेड़े बनाता, उन में घी भरता और उन्हें उपलों की आग पर सेंक लेता। रोटी बनाने का यह ढंग पजाबी नहीं था। और इस पजाबी यात्री ने मध्यप्रदेश की छत्तीसगढी भाषा की तरह यह ढंग भी सीख लिया था। और इस तरह वह रोटी जिसे मध्यप्रदेश की भाषा में बाटी कहते ह, सेक लेता। गुलवत्ती की महरी ने रोज उस दाल, सब्जी या अचार देने का नियम बना लिया था।

'कमे सोगिया तोर फेरीवाला ठाकुर के का हाल चाल ए ? आजकाल तो तोर-ओकर खूब पटत ए कभी अथान ले जात अस कभो साग ले जात अस, ए का रग ढग ए ?'

एक दिन गुलवत्ती ने महरी को चुटकी भरी।

सोगिया ने हँसकर ऐसी नजरों से गुलवत्ती को देखा कि गुलवत्ती को लगा यह नजर गहरे तक उस के मन म झाक गयी थी। गुलवत्ती ने खुद ही सोगिया से मजाक किया था, खुद ही लजा गयी। सोगिया का साहस बढा। कहने लगी 'हमन ला तो मालिक के मन ला देखना पडत ए।'

'मोर मन ?' गुलवत्ती ने घबराकर पूछा।

'त घबरा काबर गये बस नोनी ? तोर मन के बात, मोर मन के बात ए। मोर जी छूट जाई, तो छूट जाई, पर तोर बर तो मोर जान भी हाजर ए।'

सोगिया ने यह बात जाने कितने सच्चे दिल से की थी। गुलवत्ती का मन स्नेह के सेंक से पिघल गया और दो मोटे मोटे आसू उस की आखो में भर आये।

'तोर दुवा ला मैं जानत हो नोनी, तोर दादा तोला धमनीपारा में ब्याह के भारी गलती करी से।'

गुलवत्ती को महरम मिल गयी। गुलवत्ती की जिन्दगी म यह पहली रात थी जिस रात उस ने अपने मन में खुलकर सोचा कि—उस की जिन्दगी अगर गाँजे की कली थी तो वह इस पजाबी ठाकुर की चिलिया में मसली जाकर उस की उपलों की आग में सुलगना चाहती थी। वह एक तीखा नशा बनकर इस गोरे, चिट्टे और सुकुमार युवक की आखों में चढ जाना चाहती थी, वह गुलवत्ती आगे सोचती-सोचती काँप भी गयी और झूम भी गयी।

दूसरे दिन प्रात काल गुलवत्ती ने घर के पीछे बने कँवल फूलों के तालाब पर जाकर बहुत-से फूल तोडे और थाली में डालकर मन्दिर में ले गयी। मन्दिर के बरामदे में से गुजरते हुए गुलवत्ती ने पजाबी ठाकुर को जी भरकर देखा और आज स पाँच साल पहले की एक छोटी-सी बात उस बहुत याद आयी।—आज से पाच साल पहले, जिस दिन उस ने अघनिया से अपना नाम गुलवत्ती रखा था और अपनी सहेली सोगिया को लेकर कँवल फूलों के तालाब पर गयी थी, उस दिन जब उस की सहेली ने गाया था, 'घर ला फोडके बनाय हो दुरिया, तोर मया म मारे जाओ नहीं दुरिया'

और उस दिन उसे लगा था कि कँवल फूला की नीली और गुलाबी आभा की उसे माया लग गयी थी। वह वास्तव में कँवल फूल की माया नहीं थी, वह इस आनेवाली घटना की परछाइं थी। वह इस पजाबी ठाकुर की कँवल फूल जसी माटी और काली आखा की माया थी

पजाबी सरदार ने बडी तरसी हुई आवा से गुल्बत्ती की आँखा का हुकारा भरा जसे वह रहा हो, माया तुझे तो नही लगी सुन्दरी! माया तो मुझे लग गयी तुम्हारी— देख म कितने दिना से तुम्हारे घर के आगे घूनी लगाकर बठा हूँ।'

पजाबी सरदार हेमसिंह से गुल्बत्ती का मन मिल गया। सोमिया के बगैर और चाँद-तारों के बगर इस बात की खबर किसी को न हुई। पर गुल्बत्ती जानती थी कि यह खुशबू अधिक देर गाँठ में बाँधकर नही रखी जा सकता था। इसलिए एक रात गुल्बत्ती ने हेमसिंह के हाथा का सहारा लेकर चण्डीपारा गाँव छोड दिया।

रात गुजरनी थी, गुजर गयी। पर चण्डीपारे का दिन नही गुजर सकता था। रगीलाल ने पहले अपना गाँव ढुँढवाया। फिर गुलबत्ती के बाप बचकौलप्रसाद को साथ लेकर आसपास के गाँव ढुँढवाये और अगली रात ढलने से पहले नरिएरा गाव में उस ने गुलबत्ती का और हेमसिंह का पता पा लिया।

एक ओर चण्डीपारे वाले और झलमला गाँव के लोग थे और दूसरी ओर नरिएरे के। नरिएरवालों का कहना था कि उन के गाँव में जो भी कोई औरत सहारा लेने के लिए आयी थी वे उसे जरूर सहारा देंगे। दोना गाँवा के मुखिया मिल बठे और बात को लम्बाई झगडे से बचाने के लिए उन्हाने पचायत बाध ली। गुलबत्ती ने हेमसिंह का हाथ पकडा। भरी पचायत में बठकर अपने हाथों की चूडियाँ ताड दी और रगीलाल से कहने लगी, 'ले ए पडे ए तोर चूडी आज ले तोर मोर कोई रिस्ता नही ए।'

पचायत ने हेमसिंह को दो सौ रुपये का दण्ड दिया और रगालाल को दो सौ रुपया दिलाकर गुल्बत्ती हेमसिंह क साथ कर दी।

हेमसिंह की खपरैल में जब गुल्बत्ती ने पचायत की आर स सुर्खरू होकर चूल्हा जलाया तो उस के अगो में स खजूर के चीर खाये हुए तने स बूँद-बूद बहता ताडी की तरह मस्ती टपक रही थी।

उन रात, और हर रात जब गुल्बत्ती हेमसिंह की बाहाम साती थी तो उसे एक ही खयाल आता था कि वह गाजे की कली थी जा हेमसिंह के सासों की आग में सुलगकर पूरी नशा बन गयी थी। वह जी भरकर हेमसिंह की आखा म देखती। उन का आखो म एक बावलापन होता और वह सोचती, यह उसी के नशे की गुलाबी धारिया थी। और वह सोचती कि उस की निष्फल जाती जिन्दगी सफल हो गयी थी।

तीन महीने बीत गये। एक दिन बठी-बठी गुलबत्ती के अन्तर से एक लल्क

उठी, 'को जाने का बात ए, आज मोर मन बीह खाये वर करत ए,' और गुल्वत्ती ने जब तक तीन बड़े बड़े अमरूद न खा लिये उस का मन अमरूदों में भटकता रहा। एक दिन, दो दिन, और फिर गुल्वत्ती का मन शकरकन्दी खाने के लिए मचलने लगा। गुल्वत्ती ने शकरकन्दी भूनी और पेट भरकर खायी। अगले दिन गुल्वत्ती हैरान थी, 'आज मोर जादरी खाये के मन ए।' और गुलवत्ती ने दूधिया भुट्टे भूनकर खाये। घर में झीना परायी चावल भी पड़े हुए थे और लुचई चावल भी, पर गुल्वत्ती के अन्दर से उठकर उस की नाक को दुवराज चावलों का सुखबू चढ़ गयी थी। चावलों के माँड से उस के मन को उबकाई आ रही थी। उस ने प्याज भूनकर दुवराज चावलों का पुलाव पकाया। साथ तेल में मछली भूनी और उस का मन खिल उठा। 'आज मोर समय म आयी स। मैं भी कहूँ बसे मोर मन खाये-खाये कर करत ए।' और गुल्वत्ती मटक मटक उठी कि आज जब हेमसिंह रात को घर आयेगा तो वे दोनों मिलकर अपने आनेवाले बच्चे की बातें करेंगे।

हेमसिंह फेरी लगाकर अभी घर नहीं लौटा था, मालगुजार के घर से एक आदमी ने आकर एक खत दिया। हेमसिंह को पहले भी कभी-कभी अपने गाँव से अपने मा-बाप का खत आया करता था और हमेशा मालगुजार के पते पर आता था। गुलवत्ती ने खत को सँभालकर रख दिया और बाहर दहलीज में बैठकर हेमसिंह की राह देखने लगी—आज वह मन में हेमसिंह के लिए दोहरी खुशी लेकर बैठी हुई थी।

हेमसिंह की झलक वह घने कुहासे में भी पहचान लेती थी। आज तो अभी साँझ झीनी झीनी थी। उस ने सामने खेत की मेंड पर से आते हुए हेमसिंह को देख लिया। खुशी की एक लहर उस के मन में उठी और वह सोचने लगी कि वह हेमसिंह को पहले कौन-सी बात बतायेगी। बच्चेवाली बात बहुत बड़ी थी। और बड़ी बात हमेशा अन्त में खोली जाती है गुल्वत्ती ने सोचा और अन्दर से खत लाकर अपने आँचल में छिपाती वह आगे उल्चकर हेमसिंह से मिली।

तोर बर एक ठा चीज लाये हों बता ता भला का ए'

"महूँ तोर बर एक ठा चीज लाये हा। मोर सऊँ बदली कर ले।'

पहले तो गुल्वत्ती ने हेमसिंह को बनाया और कहने लगी, 'पहले मोर मन के साथ आपन मन के बदला-बदली कर ले।'

पर जब हेमसिंह ने गुल्वत्ती को अपनी बाँहों में लेकर कहा, "आ ता कब के हो चुके ए। अब मैं ओ नया मन कहाँ ले लाऊँ," तो गुल्वत्ती ने आँचल में छिपाया हुआ खत हेमसिंह का दे दिया और हेमसिंह से मोंगरे के फूल लेकर अपने बालों में टाँगने लगी।

हेमसिंह ने खत पढ़ा और उस के माथे पर पसीने की बूँदें झलक आयी। गुल्वत्ती ने जल्दी से हेमसिंह का हाथ थामा और अपनी खपरैल में चले आये। पर हेमसिंह का मुख इस तरह हो आया था जैसे भरे दरिया में उस के हाथ से चप्पू छूट

गया हो। गुलबत्ती ने महुए का शराब कसोर में डाली और कसोरा हेमसिंह के आगे बढ़ाती हुई कहने लगी, "ए मा घबराये के का बात ए ? जितना पैसा का ताला जरूरत होई, मैं देहा।"

पिछले दिनों हेमसिंह को जब गुलबत्ती के बन्ले इकट्ठे दो सौ रुपये देने पड़े थे तो उस का हाथ तंग हो गया था। उस ने बताया था कि पीछे पंजाब में उस के बूढ़े माँ-बाप उसी के सहारे थे। वह उन्हें हर महीने कम से कम डेढ़ सौ रुपया भेजा करता था तो गुलबत्ती ने एक रात अपने बाप से चोरी अपनी माँ से हेमसिंह को दो सौ रुपये ला दिये थे। इसलिए अब भी गुलबत्ती ने यही सोचा कि हेमसिंह को रुपयों की जरूरत आ पड़ी थी।

हेमसिंह की आँखों से आँसू बह निकले और वह गुलबत्ती के मुँह की ओर बनी भरी आँखों से देखने लगा। गुलबत्ती घबरायी भी पर घबराहट की अपेक्षा वह दिल थामकर तन बैठी। उस का मन हेमसिंह के हिस्से का हिम्मत भी अपने पास से जुटा रहा था। धीरे धीरे हेमसिंह ने मन की बात कही। और उस ने गुलबत्ती का जो प्रेम किया था वह प्रेम सच्चा था। पर वह एक बहुत बड़ा झूठ बोल बैठा था उस ने गुलबत्ती को यह नहीं बताया था कि पीछे गाँव में उस की एक औरत भी थी और एक बच्चा भी। और आज उस की औरत का मिन्नत भरा खत आया था कि उन का इकलौता बेटा एक मोटर के नीचे आ गया था और अब वह अस्पताल में पड़ा हुआ था। और उस की औरत ने दुहाई दी थी कि वह घर लौट आये।

हरी टहनी जैसी गुलबत्ती एक पल भर में मर गयी। बोली कुछ नहीं केवल हेमसिंह के मुँह की ओर देखती रही। देखते-देखते उस के मन में आया कि उस की सूखे पत्ता जैसी जान अपनी आग से आप ही जल उठे। वह भी जलकर राख हो जाये और उस की डाल पर बैठा हुआ यह पंछी भी जलकर राख हो जाये।

उदासी का एक सियाह बादल गुलबत्ती के मन में उठा और अंधेरी रात जैसे इस बादल को गुलबत्ती के मन में आयी एक बात बिजली की तरह चीर गयी। गुलबत्ती का सारा बदन बिजली की तरह चमका और बिजली की तरह काँपा। उस ने बिजली की लकीर की तरह हेमसिंह की ओर देखा और कहने लगी, "मा ताला एक ठन बात बताता हा।

"का ?

'मोर बच्चा होइ लागत ए।'

हेमसिंह चकित रह गया। उस ने सोचा कि चाहे वह गुलबत्ती को पंचायत के सामने अपनी औरत बनाकर उसे पूरे अधिकार दे चुका था पर इस समय गुलबत्ती ने अपने अधिकारों को और पक्का करने के लिए शायद बच्चेवाली बात अपने मन में गढ़ ली थी।

'सच कहत अस ?'

"मैं तोरा सच कहत हौं, ठाकुर। जौन दिन मैं तार घर आये रहऊँ, मालो बिलकुल मालम नहीं रही से कि मार घर में कुछ होनेवाला है ।"

"तोर कहे के मतलब ए कि ए बच्चा रंगीलाल के हँव ?"

हां।"

हेमसिंह के मन से एकबारगी सारा भार उतर गया। उस ने मुसक होकर गुलबत्ती की ओर देखा। पहले तो गुलबत्ती के मन में धरती को कँपा देनेवाली बिजली की कड़क उठी, पर फिर यह कड़क उस के मन के सूने आसमानों में ही खो गयी। और गुलबत्ती ने शांत होकर हेमसिंह का गांव लौटने के लिए तयार कर दिया। अपने बारे में उस ने यही कहा कि वह रंगीलाल के पास लौट जायेगी और उस के बच्चे को उस के बाप के घर जन्म देगी।

हेमसिंह को रात की गाड़ी से गांव भेजकर गुलबत्ती ने वह रात नरिएरा गांव में ही काटी। रात का चौथा पहर था जब वह झलमला गांव के लिए चल पड़ी।

गुलबत्ती से भी पहले गुलबत्ती की बात गांव में पहुँच गयी थी। हेमसिंह जाते हुए नरिएरा गाँव के मालगुजार को मिलकर गया था। उस ने मालगुजार को यह बात बतायी थी और उस ने यह बात रातों रात गुलबत्ती के बाप को पहुँचा दी थी।

गुलबत्ती जब झलमला गांव में पहुँची, बाप का मुख खिंचा हुआ था पर गुलबत्ती की माँ ने उसे गले से लगा लिया और उस का दिल बहलाने लगी।

गिनती के तीन दिन निकले थे कि कचकौलप्रसाद ने रंगीलाल को बुला भेजा। रंगीलाल ने कुछ हेकड़ी तो दिखायी पर मन से शायद वह खुश था। उस ने कचकौलप्रसाद के घर आकर दारू पानी पिया और गुलबत्ती को फिर से अपने घर डालने के लिए मान गया। गुलबत्ती पहले अपने बाप से उलझी, फिर रंगीलाल के सामने जाकर तन गयी, "तोर सच कहत हो, ए तोर नाहू।" और उस ने रंगीलाल के घर बसने से इनकार कर दिया।

मां हैरान थी। सारा गाँव हैरान था। पर गुलबत्ती के लिए जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। उस ने धय से मां की सयानी बेटी की तरह मां का चौका-चूल्हा सँभाल लिया और बाप के सयाने बेटे की तरह बाप के खेतों का काम सँभाल लिया और अपने मन को समझा लिया कि हेमसिंह की आखों में दिखते कँवल फूल की जो माया उस के मन को लग गयी थी वह वास्तव में हेमसिंह की आँखों की माया नहीं थी, वह उस की अपनी कोख से पैदा होनेवाले कँवल फूल जैसे बच्चे की माया थी। और वह बड़ी उत्सुकता से अपने बच्चे के जन्म का इन्तज़ार करने लगी।

गुलबत्ती के मन की गहराई किसी ने न पायी। गांव की औरतें और गाँव के मर्द कुछ इधर-उधर की चर्चा करते—खेतों की कटाई की बात कर सकते थे और मामले की बात भी कर सकते थे, पर कोई गुलबत्ती की छाती में धड़कते हुए दिल की बात

नहीं कर सकता था, गुलबत्ती की नाल में पड़ हुए बच्चे की बात नहीं कर सकता था। केवल एक बार जब उस के बचपन की सगी सानिया जब ससुराल से आयी, उस ने हिम्मत बाँध ली और गुलबत्ती का कनेरा के तले बठाकर पूछने लगी

"गया। एक ठन बात पूछत हा बताव ?'

' पूछ ना। का पूछत अस ? '

ए तोर बच्चा काकर अस ए ? '

"मोर ए।

' एकर दाना कौन ए ? '

मैं ही एकर दाई हा, मैं ही एकर दाना।'

सानिया की जैसे जबान पथरा गयी। पर फिर भी उस ने हिया बाँधकर पूछा, "तोर मद कौन ए गुलबत्ती ? '

' मोर मद अबा पता नही होए ए। जौन बच्चा मोर पर म जनमे आई हर मोर मद हाई। ना ता रंगीलाल मोर मच्चा मद ए अऊ ना हुमसिंह। अब मोर सच्चा मद मोर पट ले जनम मोर बच्चा मोर मद और गुलबत्ती एक नशे में झूम गयी। उसे लगा कि वह गाँजे की कली जैसर थी पर किसी भी मद के पास उसे पीने के लिए दिल की आग नही थी। इस कली को पीने के लिए, उसे आग भी अपने दिल में ही जलानी पड़ी थी। कली भी वह खुद था आग भी वह खुद था पीनेवाली भी वह खुद थी।

पाँच बरस लम्बी सडक

सेंक मौसम का था, मन का नहीं।

हवाई जहाज वक्त पर आया था, पर नीचे एयरपोर्ट से अभी सिगनल नहीं मिल रहा था। जहाज को दिल्ली पहुँचने को खबर दकर भी, अभी दस मिनट और गुजारने थे, इसलिए शहर के ऊपर उस को कुछ चक्कर लगाने थे।

उस ने खिड़की में से बाहर झाकते हुए शहर के मुँडरे पहचाने, मुँडेरे, किले, खँडहर, खेत

'क्या पहचान सिर्फ आखो की होती ह? आखें इस पहचान को अपने से आगे, कही नीचे तक, क्या नही उतारती?'—उसे खयाल आया। पर एक धुन जैसी सोच की तरह नही, ऐसे ही राह जाता खयाल।

मुँडेरे, किले, खँडहर, खेत—उस ने कई देशो के दखे थे। हर देश मे इन चीजो के यही नाम होते ह चाहे हर देश में इन चीजो का अलग-अलग इतिहास होता ह। इन के रग, इन के कद, इन की मुँह मुहार भी अलग अलग होती ह—एक इनसान से अलग दूसरे इनसान की तरह। पर फिर भी इनसान का नाम इनसान ही रहता है। मुँडेरो का नाम भी मुँडेरे ही रहता ह, किले का नाम भी किला ही

सिर्फ एक हलका-सा फर्क था—हर देश में इन चीजो को देखते वक्त एक खयाल सा रहता था कि वह इन्हें पहली बार देख रहा था। पर आज अपने देश में इन्हें देखकर उसे लग रहा था कि वह इन्हें दूसरी बार देख रहा था और उसे खयाल आया अगर वह फिर कुछ दिना बाद परदेश गया तो वहा जाकर, उन्हें देखकर भी, इसी तरह लगेगा कि वह उन को दूसरी बार देख रहा ह। बिल्कुल आज की तरह। यह देश और परदेश का फर्क नही था। यह सिर्फ पहली बार, और दूसरी बार देखने का फर्क था।

जहाज ने 'लैण्ड' किया। एयरपोर्ट भी जाना-पहचाना-सा लगा, दूसरी बार देखने की तरह। इस से ज्यादा उस के मन में कोई सेंक नही था।

ओवरकोट उस के हाथ में था। गले का स्वेटर भी उतारकर उस ने कन्धे पर रख लिया।

सेंक मौसम का था, मन का नहीं।

कस्टम में से गुजरते वक्त उसे एक फार्म भरना था कि पिछले नौ दिन वह कहाँ-कहाँ रहा था। पिछले नौ दिन वह सिर्फ जरमनी में रहा था। उस ने फार्म भर

दिया। और उसे ख्याल आया—अच्छा है, कस्टमवाले सिर्फ नौ दिनों का ही पता पूछते हैं, बीस-पचीस दिनों का नहीं। नहीं तो उसे सिलसिलेवार याद करना पड़ता कि कौन सी तारीख वह किस देश में रहा था। उस ने वापस आते समय कोई एक महीना सिर्फ इसी तरह गुज़ारा था—कभी किसी देश का टिकट ले लेता था कभी किसी देश का। अगर किसी देश का वीज़ा उसे नहीं मिलता था तो वह दूसरे देश चल पड़ता था

पासपोर्ट की चेकिंग करते समय और पासपोर्ट वापस करते हुए एक अफ़सर ने मुसकरा के कहा था, 'जनाब पांच बरस बाद देश आ रहे हैं।'

बिलकुल उस तरह जिस तरह एयर होस्टेस ने राह में कई बार बताया था कि इस वक्त तक हम इतने हज़ार किलोमीटर तय कर चुके हैं। गिनती अजीब चीज़ होती है चाहे मीलों की हो या बरसों की। उसे हँसी-सी आयी।

जहाज़ में से उस के साथ उतरे हुए लोगों को लेने आये हुए लोग—हाथ मिलाकर भी मिल रहे थे, गले में बाहें डालकर भी मिल रहे थे। कइयों के गले में फूलों के हार भी थे। पसीने की और फूलों की गंध से शायद एक तीसरी गंध और भी होती है उसे ख्याल आया। पर तीसरी गंध की बात उसे एक थीसिस लिखने के बराबर लगी। वह अभी-अभी एक परदेशी ज़बान सीखकर और उस के लिटरेचर पर थीसिस लिख के, एक डिगरी लेकर आया था। नये थीसिस की कोई बात वह अभी नहीं सोचना चाहता था। इसलिए सिर्फ पसीने और फूलों की गंध सूँघता हुआ वह एयरपोर्ट से बाहर आ गया।

घर में सिर्फ मां थी।

जाते वक़्त बाप भी था छोटा भाई भी और एक लड़की नहीं वह लड़की घर में नहीं थी वह सिर्फ उसी दिन उस के जानेवाले दिन आयी थी। मां को सिर्फ ऐसे ही कुछ घण्टों के लिए भ्रम हुआ था कि वह लड़की छोटा भाई ब्याह करा के अब दूर नौकरी पर रहता था, घर में नहीं था। बाप अब इस दुनिया में कहीं नहीं था। इसलिए घर में सिर्फ मां था।

कई चीज़ें अन्दर से बदल जाता है, पर बाहर से वही रहता है। कई चीज़ें बाहर से बदल जाती हैं, पर अन्दर से वही रहती हैं।

उस का कमरा बिलकुल उसी तरह था—उस का पीला ग़लीचा उस की खिड़की के टसरी परदे, उस की मेज़ पर पड़ा हुआ हरी धारियों का फूलदान और दहलीज़ों में पड़ा हुआ गहरा खाकी पायदान। चांदनी का पौधा भी उस की खिड़की के आगे उसी तरह खिला हुआ था। पर पहले इस सब कुछ की गंध—दीवारों की ठण्डी गंध के समेत—उस के साथ लिपट-सी जाती थी। और अब उसे लगा कि वह उस के साथ लिपटने से सकुचाती सिर्फ उस के पास से गुज़रती थी और फिर परे हो जाती थी। पता नहीं, उस के अन्दर कहां क्या बदल गया था।

माँ कश्मीरी सिल्क की तरह नरम होती थी और तनी-सी भी। पर उम्र ने उसे जैसे धो-सा दिया था। वह सारी की सारी सिकुड़ गयी लगती थी। मा से मिलते वक्त उस का हाथ मा के मुँह पर ऐसे चला गया था जैसे उसे हथेली से मास की सारी सिकुड़नें निकाल देनी हों। माँ की आवाज भी बड़ी धीमी और क्षीण-सी हो गयी लगती थी। शायद पहले उस की आवाज का जोर उस के कद जितना नहीं, उस के मद के कद जितना था और उस के बिना अब वह नीचा हो गया था, मुश्किल से उस के अपने कद जितना। जब उस ने बेटे का मुँह देखा था उस की आँखें उसी तरह सजग हो उठी थीं जैसे हमेशा होती थीं। उस के सीने की साँस उसी तरह उतावली हो गयी थी, जैसे हमेशा होती थी। वह वहीं किसी जगह बिल्कुल वही थी, जो हमेशा होती थी। सिर्फ उस के बाहर बहुत कुछ बदल गया था।

"मुझे पता था, तू आज या कल किसी दिन भी अचानक आ जायेगा," माँ ने कहा।

उस ने अपने कमरे में लगे हुए ताजे फूलों को देखा और फिर मा की तरफ।

मा की आवाज सकुचा-सी गयी—' यह तो मैं रोज ही रखती थी।

'रोज? कितने दिनों से?" वह हँस पड़ा।

"रोज' मा की आवाज उस के जिस्म की तरह और सिकुड़ गयी, 'जिस दिन से तू गया था।"

"पाँच बरसों से? वह चौंक-सा गया।

मा सकुचाहट से बचने के लिए रसोई में चली गयी थी।

उस ने जेब में से सिगरेट का पैकेट निकाला। लाइटर पर उँगली रखी, तो उस का हाथ ठिठक गया। उस ने मा के सामने आज तक सिगरेट नहीं पी थी।

मा ने शायद उस के हाथ में पकड़ा हुआ सिगरेट का पैकेट देख लिया था। वह धीरे से रसोई में से बाहर आकर, और बैठक में से ऐश-ट्रे लाकर उस की मेज पर रख गयी।

उसे याद आया—छोटे होते हुए मा ने उसे एक बार चोरी से सिगरेट पीते देख लिया था, और उस के हाथ से सिगरेट छीनकर खिड़की से बाहर फेंक दी थी

मा शायद वही थी पर वक्त बदल गया था।

मा फिर रसोई में चली गयी। वह चुपचाप सिगरेट पीने लगा।

'मुझे पता था, तू आज या कल किसी दिन भी आ जायेगा ' उसे मा की अभी कही गयी बात याद आयी। और उस के साथ मिलती-जुलती एक बात भी याद आयी। 'मुझे पता लग जायेगा जिस दिन तुम्हें आना होगा, मैं खुद उस दिन तुम्हारे पास आ जाऊँगी।"

बहुत देर हुई जब वह परदेश जाने लगा था, उसे एक लड़की ने यह बात कही थी।

उस लडकी से उस की दोस्ती पुरानी नही थी, वाकफियत पुरानी थी, दोस्ती नही थी। पर पाँच बरसो के लिए परदेस जाने के वक्त जाने की खबर सुनकर, अचानक उस लडकी का उस के साथ मुहब्बत हो गयी थी—जैसे जहाज़ में बैठे किसी मुसाफिर का अगले बन्दरगाह पर उतर जानेवाले मुसाफ़िर से अचानक ऐसी तार जुडी-सी लगन लगती है कि पलों में वह उसे बहुत कुछ दे देना और उस से बहुत कुछ ले लेना चाहता है।

और ऐसे वक्त पर बरसो में गुज़रनेवाला पलो में गुज़रता है।

उस ने यह गुज़रना देखा था। अपने साथ नही उस लडकी के साथ।

'तुम्हारा क्या खयाल है, मैं जो कुछ जाते वक्त हूँ, वही आते वक्त होऊँगा?" उस ने कहा था।

'मैं तुम्हारी बात नही कहती, मैं अपनी बात कहती हूँ" लडकी ने जवाब दिया था।

"तुम यही होगी यह तुम्हें किस तरह पता है?"

'लडकियो को पता होता है।

'तो लडकियाँ बावरी होती है।'

वह हँस पडा था। लडकी रो पडी थी।

जाने में बहुत थोडे दिन थे। पाँच दिन और पाच रातें लगाकर उस लडकी ने एक पूरी बाँहोंवाला स्वेटर बुना था। उसे पहनाया था और कहा था, 'बस एक इकरार माँगती हूँ और कुछ नही। जिस दिन तुम वापस लौटो गले में यही स्वेटर पहनकर आना।"

'तुम्हारा क्या खयाल है, मैं वहाँ पाँच बरस " उस ने जो कुछ लडकी को कहना चाहा था, लडकी ने समझ लिया था।

जवाब दिया था, मैं तुम से अनहोने इकरार नही मांगती। सिर्फ यह चाहती हूँ कि यहाँ का यहाँ ही छोड आना।"

वह कितनी देर तक उस लडकी के मुँह की तरफ देखता रहा था।

और फिर उस का यह सब कुछ एक अनादि औरत का अनादि छल लगा था। वह बेवफ़ाई की छूट दे रही थी पर उस पर वफ़ा का भार लादकर।

कह रही थी, "मैं तुम्हें खत लिखने के लिए भी नही कहूँगी। सिर्फ उस दिन तुम्हारे पास आऊँगी, जिस दिन वापस आओगे।"

'तुम्हें किस तरह पता लगेगा, मैं किस दिन वापस आऊँगा? लडकी को टीज़ करने के लिए उस ने कहा था।

और उस ने जवाब दिया था 'मुझे पता लग जायेगा, जिस दिन तुम्हें आना होगा।'

उस दिन वह हँस दिया था।

उम ने परदेश देखे थे, बरस देखे थे, लडकियां भी देखी थी ।

पर किसी चीज में उस ने डूबकर नही देखा था, सिर्फ किनारो से छूकर ।

और वह सोचता रहा था—शायद डूबना उस का स्वभाव नही, या वह चलता है, तो एक भार भी उम के साथ चलता है और उस के पैरो को हर जगह कुछ रोक-सा लेता है

इन बरसो में उस ने कभी उस लडकी को खत नही लिखा था । लडकी ने कहा भी इसी तरह था ।

हर देश की दोस्ती उस ने उसी देश में छोड दी थी । यह शायद उस का अपना ही स्वभाव था, या इसलिए कि उस लडकी ने कहा था ।

सिर्फ वापस आते वक्त, जब वह अपना सामान पैक कर रहा था, उस स्वेटर को हाथ में पकडकर वह कितनी देर सोचता रहा था कि वह उस और चीजों के साथ पैक कर दे या उस लडकी की बात रख ले, और उसे पहन ले ।

जो स्वेटर पहनकर जाना पाच बरसो बाद वही पहनकर आना, उसे एक मूर्खता की सी बात लगी थी । मूर्खता की सी भी और जज्बाती भी ।

और एक हद तक झूठी भी । क्योंकि जिस बदन पर यह स्वेटर पहनना था वह उस तरह नही था जिस तरह वह लेकर गया था ।

पर उस ने स्वेटर को पैक नही किया । गले में डाल लिया । ऐसे जब वह स्वेटर पहनकर शीशे के सामने खडा हुआ—उसे आर्ट गैलरियों में बैठे वे आर्टिस्ट याद आ गये, जो पुरानी और क्लासिक पेन्टिंग्ज की हूबहू नकलें तैयार करते हैं ।

और स्वेटर पहनकर उसे लगा—उस ने भी अपनी एक नकल तैयार कर ली थी ।

इस नकल से वह शर्मिन्दा नही था, सिर्फ इस नकल पर वह हँस रहा था ।

मा को वह सब कुछ याद था, जो कभी उसे अच्छा लगता था । लेकिन वह स्वय भूल गया था ।

"देख तो अच्छा बना है ?" माँ ने जब पनीर का पराठा बनाकर उस के आगे रखा, तो उस को याद आया कि पनीर का पराठा उसे बहुत अच्छा लगता था । मा ने जानेवाले दिन भी बनाया था ।

उस ने एक कौर तोडकर मक्खन में डुबाया और फिर माँ के मुँह में डालकर हँस पडा—'वहा लोग पनीर तो बहुत खाते है पर पनीर का पराँठा कोई नही बनाता ।"

यह छुटपन से उस की आदत थी । जब वह बडा गौ में होता था, रोटी का पहला कौर तोडकर मा के मुह में डाल देता था ।

'तू सात विलायत घूमकर भी वही का वही है," माँ के मुँह से निकला और उस की आँखो में पानी भर आया । भरी आखो से वह कह रही थी, 'तू आया है, सब कुछ फिर उसी तरह हो गया है ।"

वह 'वह नही था। कुछ भी वह नही था, जाते वक्त जो कुछ था वह सब बदल गया था। उस ने बाप की बात नही छेडी थी, सिर्फ उस के खाली पलग की तरफ देखा था, और फिर आखें परे कर ली थी। मा के दिन-ब दिन मुरझाते मुँह की बात भी नही की थी। छोटे भाई की खर-खबर पूछी थी, पर यह नही कहा था कि माँ को अकेला छोडकर उसे इतनी दूर नही जाना चाहिए था। पर माँ कह रही थी 'सब कुछ फिर उसी तरह हो गया है

'झटपट जो कोई भुलावा पड जाये क्या हरज है' उस ने सोचा भी यही था। मा के मुँह में अपनी रोटी का कौर भी इसी लिए डाला था।

उस ने कोई और भी मा की मरजी की बात करनी चाही। पूछा, 'भाभी कैसी है? तुम्हें पसन्द आयी है?

माँ ने जवाब नही दिया। सिर्फ सवाल-सा किया, 'मेरा खयाल था, तू विलायत से कोई लडकी '

वह हँस पडा।

'बोलता क्या नही?

विलायत की लडकियां विलायत म ही अच्छी लगती है सब वही छोड आया हूँ।'

'मैं ने तो इस महीने पिछले दोनो कमरे खाली करवा लिये थे। सोचा था तुझे जरूरत होगी।'

'ये कमरे किराये पर दिये हुए थे?

'छोटा भी चला गया था। घर बडा खाली था इसलिए पिछले कमरे चढा दिये थे। जरा हाथ भी खुला हो गया था

तुम्हें पैसा की कमी थी? उसे परेशानी-सी हुई।

नही पर हाथ में चार पैसे हो तो अच्छा होता है।

'छोटे की तनख्वाह थोडी नही वह '

पर वह भी अब परिवारवाला है आजकल में हो उस के घर

'सो मेरी मा दादी बन जायेगी

उस ने मा को हँसाना चाहा, पर मा कह रही थी मुझे तो कोई उज्र नही था जो तू विलायत से कोई लडकी '

वह माँ को हसाने के यत्न में था। इसलिए कहने लगा, 'लाने ता लगा था पर याद आया कि तुम ने जाते समय पक्की की थी कि मैं विलायत से किसी को साथ न लाऊँ।

उसे याद आया—जानेवाले दिन, वह लडकी जब मिलने आयी थी वह मा को अच्छी लगी थी। माँ ने उन दोनो को इकट्ठे देखकर, ताकीद की थी, देख, कही विलायत से न कोई ले आना। कोई भी अपने देश की लडकी की रीस नही कर

सकती '

पर इस वात माँ कह रही थी "वह तो मैं ने वैसे ही कहा था। तेरी खुशी से मैं ने मुनकिर क्या होना था। पीछे एक खत म मैं ने तुम्हे लिखा भी था कि जो तेरा जी चाहता हो "

"यह तो मैं ने सोचा, तुम ने ऐसे ही लिख दिया होगा,' वह हँस पडा और फिर कहने लगा, "अच्छा, जो तुम कहो तो मैं अगली बार ले आऊँगा।

'तू फिर जायेगा ?' मा घबरा-सी गयी।

"वह भी जो तुम कहो तो, नही तो नही।"

उसे लगा, उसे आते ही जाने की बात नही करनी चाहिए थी। आते वक्त उसे एक यूनिवर्सिटी से एक नौकरी आफर हुई थी। पर वह इतने बरसो बाद एक बार वापस आना चाहता था। चाहे महीनो के लिए ही।

'जो तुम कहोगी तो नही जाऊँगा,' उस ने फिर एक बार कहा।

मा को कुछ तसल्ली आ गयी। कहने लगी, 'तू सामने होगा, चूल्हे में आग जलाने की तो हिम्मत आ जायेगी, वसे तो कई बार चारपाई पर से नही उठा जाता।"

"मा, तुम इतनी उदास थी, तो छोटे के साथ, उस के घर "

मैं यहा अपने घर अच्छी हूँ। अब तू आ गया ह, मुझे और क्या चाहिए।"

उस को लगा माँ बहुत उदास थी। और शायद उस की उदासी का सम्बन्ध सिर्फ उस के अकेलेपन से नही, किसी और चीज से भी था।

खिडकी में से आती धूप की लकीर दीवार पर बडी शोख-सी दिख रही थी। उस ने खिडकी के परदे को सरकाया। और उसे गलीचे का पीला रग ऐसे लगा जैसे निश्चिन्त-सा होकर कमरे म सो गया हो।

"तू थक गया होगा। कुछ सो ले,' माँ ने कहा, और मेज पर से प्लेटें उठा कर कमरे स जाने लगी।

'नही, मुझे नींद नही आ रही," उस ने हल्का-सा झूठ बोला, और कहा, "मैं तुम्हारे लिए एक-दो चीजें लाया हू देखूँ पूरी आती ह कि नही।"

उस ने सूटकेस खोला। एक गरम काली ऊन की शाल थी, पतली जसी हल्की। मा के कधो पर डालकर कहने लगा "यह जाडे की चीज ह, पर एक मिनट अपने ऊपर ओढकर दिखाओ। यह तुम्हें बडी अच्छी लगेगी।'

फिर उस ने फर के स्लीपर निकाले। मा के पैरो में पहनाकर कहने लगा, 'देखो, कितने पूरे आये ह! मुझे डर था, छोटे न हो।"

"इस उम्र म मुझे अच्छे लगेंगे ? माँ की आखो म पानी सा भर आया था।

वह माँ का ध्यान बटाने के लिए और चीजें दिखाने लगा। प्लास्टिक की एक छोटी-सी डब्बी म कुछ सिक्के थे—इटली के लीरा यूगोस्लाविया के दीनार, बल्गारिया के लेवा, हगरी के फारेंटस, रोमानिया के लेई, जर्मनी के दीनार उस ने सिक्को को

सब की, जिन्ह तुम ने पार्टी पर बुलाया था व माम म डर से "
"मैं उन की बात नहीं कर रहा, सिफ अपनी कर रहा हूँ।'
'हाँ देख ला नीशे म—तुम्हारा वही चन्दन की गेली जसा जिस्म। माथा, आँखें नाक जसे कुरा ने फुरसत में बठकर गढे हो औरत ने कहा। वह अभी भी रिजाई का रो में थी।
"यह शादावरी शायरा क लिए रहने दो ' मद खीझ-सा गया।
मेरा खयाल ह तुम थक गये हो। वसे भी रात आधी होने का ह
'पर तुम शीशे म क्या नही देखती? दखन से डरती हो?
'शीशे में कुछ और हो जायेगा?'
"हो जायेगा नही, हो गया ह।"
कहाँ? कुछ भी नही हुआ "
अभी हुआ था मैं न खुद दखा था मैं जब हँसा था, शीशे म मेरा यही मुँह रो पड़ा था यह शीशा डारियन ग्रे की पेण्टिंग की तरह "
मैं गुसलखाने में स नाइट-सूट ला देती हूँ, तुम कपडे बदल लो।"
कपड सभ्यता की निशानी होते ह, इस निशानी के बगर मैं क्या होऊगा तुम ने ही कहा था कि इस पार्टी क लिए मुझे नया सूट सिलवाना चाहिए
'मैं न ठीक कहा था, वह सब तुम से बडे इम्प्रेस हुए लगते थ '
"इसलिए मैं यह सूट उतारना नही चाहता।'
'पर अब घर में कोई नही।
'अभी मैं हू '
औरत का अब यकीन हो गया था कि वह अब बहक गया ह इसलिए बोली नहीं।
मद ने ही कहा "उस वक्त मैं न उन का इम्प्रस किया था, पर इस वक्त अपनेआप को करना ह, इसलिए अभी यह सूट नही उतार सकता।
औरत चुप थी।
कुछ ह्विस्की बची ह?' मद न पूछा।
औरत के मुँह पर स एक सोच की परछाइ गुजर गया। परछाइ का पसीने की तरह पाछकर बोली वह, 'नही।'
मेरा खयाल है, तुम्हें झूठ बोलने का अभी ढग नही आया। मद हँस दिया।
"पर इस वक्त मैं और नहीं पीने दूँगी।"
'सिफ एक गिलास '
नही।
"तुम ने उन्हे किसी गिलास के लिए मना नही किया था।
"वे गेस्ट थे

"रिस्पेक्टेबल गेस्ट   रिस्पेक्टेबल सिर्फ वे थे, मैं नहीं ?'

"मैं ने रिस्पेक्टेबल नही कहा, सिर्फ गेस्ट कहा है।"

"तुम मुझे भी अपना गेस्ट समझ लो   "

"क्या ?'

"यह घर तुम्हारा है, मैं तुम्हारा गेस्ट हूं।"

"यह घर सिर्फ मेरा है ?'

"घर सिर्फ औरत का होता है।

औरत को इस वक्त कुछ भी कहना ठीक नही लगा। उसे लगा कि इस वक्त सिर्फ सो जाना चाहिए। वह चुपचाप गुसलखाने में गयी, और मर्द का नाइट-सूट लाकर, पलंग की बांहों पर रख दिया।

मर्द ने कमरे के हल्के नीले आयल-पेण्ट की तरफ देखा, पलंग की रेशमी सलेटी चादर की तरफ, फिर टेबल लैम्प के आसमानी शेड की तरफ और उस का जी चाहा, वह औरत से कहे—इस कमरे का सारा कुछ बरसों से उस की कल्पना थी। इस कमरे की भी और बाहर के बड़े कमरे की भी इस सब कुछ को चाहती वह खुद कहती थी कि उस के दफ्तर से उसे कोई वास्ता नही, पर अपना घर वह अपनी मरज़ी से बनायेगी, घर औरत का होता है

फिर उस ने नाइट-सूट की तरफ देखा। और सिर्फ इतना कहा, "यू आर ए वण्डरफुल होस्ट आई मीन होस्टेस "[१]

औरत अभी भी चुप थी।

सिर्फ वही कह रहा था, "मेरी मेहरबान, अब एक गिलास ह्विस्की दे दो।'

औरत को लगा कि इस वक्त गिलासवाली बात को टाला नही जा सकता। वह बाहर के कमरे में गयी, और कुछ मिनटों के बाद, उस ने एक गिलास लाकर मेज़ पर रख दिया।

"यू आर रीयली ए डार्लिंग।[२] मर्द ने ह्विस्की के पहले नही, पर तीसरे घूंट के साथ कहा।

औरत को कुछ याद आया—और वह खोल सी गयी—"मुझे यह शब्द अच्छे नही लगते।

"क्या ?"

"आज की पार्टी में बिल्कुल यही शब्द तुम्हारे एक मेहमान ने तुम्हारी सेक्रेटरी को कहे थे।

"पर वह नाराज नहीं हुई थी।"

"वह सक्रेटरी है, मैं बीवी हूं।'

---

१ तुम बहुत अच्छी मेजबान हो

२ तुम सच में प्रिय हो।

"डिस्गस्टिंग।"[1]

"डिस्गस्टिंग बीवी होना या कि सेक्रेटरी होना ?"

'मेरे खयाल में सेक्रेटरी होना।'

'यू आर राइट।'

"मर्द ने ह्विस्की का घूँट भरा और कहने लगा, "एक मैरिड औरत की पोजीशन सचमुच बड़ी शानदार होती है। वह जब चाहे नाराज हो सकती है। जिस बात पर, और जब चाहे पर बेचारा सेक्रेटरी"

"इस तंज का मतलब ?

'यह तंज नहीं।'

'फिर यह क्या है ?'

'एक फैक्ट।'

"उस से बड़ी हमदर्दी है ?"

"उस के साथ नहीं सिर्फ उस के सेक्रेटरी होने से।'

'इसी लिए उस की हर दूसरे महीने तरक्की हो जाती है ?"

'यह तरक्की नहीं डियर, यह रिश्वत है। सिर्फ यह रिश्वत का नया तरीका है।'

'किस चीज की रिश्वत ?'

"हमारी एजेन्सी को जिस सेठ ने अपने मिल का ऐडवरटाइजिंग एकाउण्ट दिया है, यह उस की शर्त थी उस लड़की की तरक्की भी उसी की शर्त है

'यह उस सेठ की

'ए कैप्ट विमन'[2]

"इट इज आल डिस्गस्टिंग।'[3]

येस इट इज आल डिस्गस्टिंग।

'पर तुम्हें उस से हमदर्दी किस बात की है ?'

'क्योंकि मैं उस का हमपेशा हूँ।

"क्या मतलब ?

'हम सब सब उस के हमपेशा हैं"

'किस तरह ?'

"वी आर नाट मैरिड टु अवर वर्क वी आर आल लाइक कैप्ट विमन"[4]

मर्द हँसा फिर कहने लगा आज की पार्टी से भी यह जाहिर था। मैं ने उन को खुश

---

१ घृणित।

२ रखैल।

३ यह सब कुछ घृणित है।

४ हमारी शादी अपने काम से नहीं हुई है हम सब रखैलों की तरह हैं।

करने के लिए यह सब कुछ किया था। पाँच लाख एक साल के बिज़नेस का सवाल था ''

मद ने ह्विस्की के गिलास का आखिरी घूँट भरा, शीशे की तरफ देखा। पता नहीं उसे क्या नज़र आया, उस ने एक बार आँखें बन्द-सी कर ली। फिर खोली तो वे उस शीशे की तरफ नहीं, खाली गिलास की तरफ देख रही थी।

"मेरी मेहरबान, एक गिलास और।"

"नहीं, और नहीं।'

"आज जश्ने-गुलामी है।"

औरत ने अपनी घबराहट का माथे पर से पसीने की तरह पोंछा।

"देख मेरी जान, आज की पार्टी ने अगले साल का बिज़नेस भी पक्का कर दिया है। इस का मतलब है—अगले साल भी पाँच लाख का बिज़नेस। इसलिए मैं ने नया सूट पहना था वे औरतें मेरा मतलब है कप्तान विमन इसी तरह नयी साड़ी पहनती हैं फिर सारा वक्त दिलफरेब बातें उन्हें किसी भी बात से नाराज़ होने का हक नहीं होता मैं भी किसी बात से नाराज़ नहीं हुआ ''

औरत ने मर्द के पास होकर उस के कोट के बटन खोले। बटन खोलते हुए वह काफी देर तक उस के सीने के पास खड़ी रही। शायद मर्द के हाथ की किसी हरकत का इन्तज़ार कर रही थी

रात कमरे में भी अडोल थी, दूर परे तक भी अडोल थी। मद के अंगों की तरह।

और फिर अचानक एक कुत्ते के भूँकने की आवाज़ आयी। और औरत को लगा—उस की छाती में भी कुछ था, जो इस वक्त

कुत्ते के भूँकने की आवाज़ बायें हाथवाली कोठी की तरफ से आयी थी। फिर अगले मिनट दायें हाथवाली कोठी की तरफ से भी आयी। शायद जवाब की सूरत में।

"ह्वाट ए इन्सल्ट ' मद ने खाली गिलास की तरफ देखा, और औरत को हाथ से परे करता हुआ, बाहर के कमरे में से और ह्विस्की लाने के लिए चला गया।

गिलास में बर्फ का टुकड़ा शायद उस ने ऊपर से और डाला था, गिलास छलक सा गया था। गिलास को छलकने से बचाने के लिए उस ने दहलीज़ ही में खड़े होकर एक घूँट भरा, और फिर कमरे में आता हुआ कहने लगा, "आई एम सलीब्रेटिंग दिस इन्सल्ट [1]"

कुत्ते भूँक रहे थे—बारी बारी।

' दिस इज़ फार द हेल्थ ऑफ डाग्ज़ "[2]

---

१ मैं इस गुलामी का जश्न मना रहा हूँ।

२ यह जाम कुत्तों की सेहत के लिए।

उस ने गिलास में से एक घूंट भरा।

औरत ने घबराकर पहले कमरे की बायीं दीवार की तरफ देखा, और फिर दायीं की तरफ। बाहर भूंकने कुत्तों की आवाज़ों में से, एक आवाज़ बायीं दीवार से टकरा रही थी, एक दायीं से।

"रात को सिर्फ डुइट होता है।" मर्द हंस-सा पड़ा और कहने लगा "पर सवेरे पूरा कोरस होता है। बायें हाथवाली कोठी में कोई अमरीकन है। उस के सारे कमरे एयरकन्डीशन्ड हैं, इसलिए उसे कोई फर्क नहीं पड़ता पर सुबह के वक्त उस का खानसामा उस का बैरा, और कोठी का जमादार, जिस तरह एक-दूसरे पर भूंकते हैं, लगता है कोठी में एक नहीं पूरे चार कुत्ते भौंक रहे हैं"

'डार्लिंग तुम सोने की कोशिश क्यों नहीं करते?' औरत ने, थक गयी औरत ने, कहा।

'आई एम ड्रिंकिंग फार दी हेल्थ आफ डाग्ज़'

औरत चुप-सी पलंग की बाहीं पर बैठ गयी।

'तुम ने मेरा पूरी बात नहीं सुनी। मैं तुम्हें बता रहा था सुबह बिल्कुल सुबह एक कोरस होता है हर रोज़! क्या तुम नहीं सुनती? बायें हाथवाली कोठी अमरीकन की है, पर दायें हाथवाली किसी सेना कर्नल की। वह एयरकन्डीशन्ड नहीं— इसलिए उस के हरेक कमरे में से आवाज़ आती है। उस की बीवी—वह कर्नैलिनी— रोज़ सवेरे अपने नौकरों पर कुत्ते की तरह भूंकती है सिर्फ नौकरों पर नहीं कर्नल पर भी वी आर सराउण्डेड बाई डाग्ज़ मी हाऊ मेनी डाग्ज़[1] और फिर मेरे दफ्तर में रोज़ किसी मिल मालिक की चिट्ठी, कोई शिकायत कोई तकाज़ा कोई और नयी डिमाण्ड माई गाड आई कान्ट काउण्ट दीज़ डाग्ज़[2]

प्लीज़ डार्लिंग औरत ने पलंग की बाहीं से उठकर, मर्द की बाँह पकड़ी और उसे पलंग के पास लाकर बिठाना चाहा। उस के हाथ का गिलास उस ने मेज़ पर रख लिया।

क्या अपनी रात वीरान करते हो औरत ने हलीमी से कहा।

'रात नहीं डार्लिंग, उम्र

तुम इस सब कुछ को वीरानी क्यों कहते हो? औरत ने ज़रा ज़ोर से कहा अभी नया कारोबार है शुरू में कुछ रिश्वतें, खुशामदें होती ही हैं फिर जब अपने पैरों पर हो जायेगा'

यह अपने पैरों पर हो जायगा यानी मैं अपने पैरों पर अपने पैरों पर कभी कुछ नहीं होता डार्लिंग। यहां जो किसी को चलना है तो किसी दूसरे के पैर लेकर चलना है एक ने दूसरे के, दूसरे ने तीसरे के तीसरे ने चौथे के सब ने

१ हम कुत्तों से घिरे हैं कितने कुत्ते हैं

२ मैं इन कुत्तों की गिनती नहीं कर पाता

उधार लिये पैरा स, अपाहिज होकर यह मेरा कारोबार नया है, पर बाकी और सब के "

"डार्लिंग "

'मेरे पैर " मद ने एक बल सा खाया, पलग की बाही पर से उठकर खडा हो गया। फिर शीशे के सामने आया—"देख सामने। यह मैं बूटो के तसमे खोलता हूँ उस में देख किस के पर हैं—माई गाड। निरे उस सेठ के पर यह शीशा आज डोरियन ग्रे की पेण्टिंग का तरह

"इस बरस यह एक सेठ के पैर ह पिछले बरस यह जरूर एक वकर के पैर होगे। पिछले बरस मैं ने यह शीशा नही देखा था। इस तरह नही देखा था और उस से पिछले बरस " मद ने एक बार बौखलाकर औरत की तरफ देखा, और पूछा, "कितने बरस हुए ह ? जिस बरस मैं ने तुम्हारे साथ विवाह किया था उसी बरस "

'सिर्फ पाच बरस ' औरत न धीरे से कहा।

और सिर्फ पाच बरसो में मेरी शक्ल बदल गयी ह ? और पाच में या और पाच में यह शक्ल "

'तुम्हारी शक्ल उसी तरह ह।' औरत ने कहना चाहा। पर कहा नही। पहले भी वह यह बात कह चुकी थी। कोई फर्क नही पडा था।

तुम चुप क्या हो ? मद ने अचानक पूछा।

औरत फिर भी नही बोली।

'ह्वाई डोण्ट यू बार्क लाइक ए डाग "[1]

औरत के मन म एक बेचनी सी हुई। उसे लगा कि वह सचमुच कुछ कहना चाहती थी—कहना नही, एक कुत्ते की तरह और औरत ने अपनी छाती पर एक हाथ रख लिया। उसे लगा, उस की छाती धौक रही थी।

'तुम अब भी चुप हो, उस वक्त भी चुप थी " अचानक मद ने कहा।

"उस वक्त ? किस वक्त ?' औरत चौंक-सी गयी।

मद फिर हँस-सा पडा, कहने लगा, "तुम्हारा खयाल ह मैं ने देखा नही था ? जिस वक्त उस सेठ ने तुम से हाथ मिलाया था, कहा था 'थक यू मडम ' और उस ने तुम्हारा हाथ भीचा था तुम्हारी तरफ देखते हुए उस की नजर एक शिकारी कुत्ते का तरह "

औरत कुछ देर मद की तरफ देखती रही फिर कहने लगी 'एक हमारे पहले घर की पडोसिन थी, उस का मद आये दिन घर म नयी औरत लाता था। वह हमेशा चुप रहती थी। मुझे भी कुछ ऐसा ही लगा था उस बात का इस बात से कोई

---

१ तुम कुत्ते का तरह क्यों नहीं भूँकते

सम्बन्ध नहीं, पर फिर भी कुछ इसी तरह लगा था मैं ने सोचा, मेरे कुछ कहने से तुम्हारा कारोबार '

औरत ने आँखों में आये हुए पानी को पसीने की तरह पोंछा।

'मैं भी चुप रहा था," मर्द ने कहा और मेज़ पर रखा हुआ गिलास फिर हाथ में पकड़ लिया। गिलास का आखिरी घूँट तक पीता हुआ कहने लगा, "इट इज़ फ़ार आल द डाग्ज़ मैड वन्स द हण्टिंग वन्स द बार्किंग वन्स एण्ड[1] " मर्द ने पहले मुस्कराकर औरत की तरफ़ देखा, फिर शीशे में, और कहा— ऐण्ड द साइलण्ट वन्स[2]

१ यह अब मर्द कुत्तों के लिए है—पागल कुत्तों के लिए, शिकार करनेवाले कुत्तों के लिए, भूकनेवाले कुत्तों के लिए और

२ और उन कुत्तों के लिए भी जो चुप रहते हैं

शाह की कजरी

उसे अब नीलम कोई नही कहता था, सब शाह की कजरी कहते थे।

नीलम को लाहौर हीरामण्डी के एक चौबारे में जवानी चढी थी। और वहा ही एक रियासती सरदार के हाथो पूरे पाच हजार में उस की नथ उतरी थी। और वहा ही उस के हुस्न ने आग जलाकर सारा शहर झुलस दिया था। पर फिर एक दिन वह हीरामण्डी का सस्ता चौबारा छोडकर शहर के सब से बडे होटल फलैटी में आ गयी थी।

वही शहर था, पर सारा शहर जैसे रातारात उस का नाम भूल गया हो, सब के मुँह से सुनाई देता था—शाह की कजरी।

ग़ज़ब का गाती थी। कोई गानेवाली उस की तरह मिरजे की 'सद' नही लगा सकती था। इसलिए लोग चाहे उस का नाम भूल गये थे पर उस की आवाज नही भूल सके। शहर म जिस के घर भी तवेवाला बाजा था, वह उस के भरे हुए तवे जरूर खरीदता था। पर सब घरा म तवे को फ़रमाइश के वक्त हर कोई यही कहता था, 'आज शाह की कजरीवाला तवा जरूर सुनना ह।"

हकी छिपी बात नही थी शाह के घरवालो को भी पता था। सिर्फ पता ही नही था, उन के लिए बात भी पुरानी हो गयी थी। शाह का बडा लडका जो अब ब्याहने लायक था, जब गोद में था तो सेठानी ने जहर खाकर मरने की धमकी दी थी, पर शाह ने उस के गले म मोतियो का हार डालकर उसे कहा था, "शाहनीये! वह तेरे घर की बरकत है। मेरी आँख जौहरी की आख ह, तू ने सुना हुआ नही कि नीलम ऐसी चीज होता ह, जो लाखो का ख़ाक कर दता ह और खाक को लाल बनाता है। जिसे उल्टा पड जाये, उस के लाख के खाक बना देता ह। पर जिसे सीधा पड जाये उस खाक से लाख बना देता है। वह भी नीलम ह, हमारी राशि से मिल गया है। जिस दिन से साथ बना ह, मैं मिट्टी में हाथ डालूँ तो सोना हो जाती है"

"पर वही एक दिन घर उजाड देगी, लाखो को खाक कर देगी," शाहनी ने छाती की साल सहकर उसी तरफ से दलील दी थी, जिस तरफ से शाह ने बात चलायी थी।

"मैं ता बल्कि डरता हूँ कि इन कजरियो का क्या भरोसा, कल किसी और ने सब्जबाग दिखाये, और जो यह हाथो से निकल गयी, तो लाख से खाक बन जाना ह।" शाह ने फिर अपनी दलील दी थी।

और शाहनी के पास और दलील नही रह गया थी। सिफ वक्त क पास रह गयी थी और वक्त चुप था, कई बरसो से चुप था। शाह सचमुच जितने रुपये नीलम पर बहाता उस स कई गुना ज्यादा पता नही कहा-कहाँ से बहकर उस के घर आ जाते थे। पहले उस की छोटी-सी दुकान शहर के छोटे-से बाजार म होती थी पर अब सब से बडे बाजार में लोहे के जंगलेवाली सब से बडी दुकान उस की थी। घर की जगह पूरा महल्ला ही उस का था जिस में बडे खाते-पीते किरायेदार थे। और जिस में तहखानेवाले घर को शाहनी एक दिन के लिए भी अकेला नही छोडती थी।

बहुत बरस हुए शाहनी ने एक दिन माहरोवाले ट्रक को ताला लगाते हुए शाह से कहा था 'उसे चाहे होटल में रखो और चाहे उसे ताजमहल बनवा दो, पर बाहर की बला बाहर ही रखो उसे मेरे घर ना लाना। मैं उस के माथे नही लगूगी।"

और सचमुच शाहनी ने अभी तक उस का मुह नही देखा था। जब उस ने यह बात कही थी उस का बडा लडका स्कूल म पढता था और अब वह ब्याहने लायक हो गया था पर शाहनी ने न उस के गानेवाले तवे घर म आने दिये और न घर म किसी को उस का नाम लेने दिया था।

बस उस के बेटो ने दुकान दुकान पर उस के गाने सुन रखे थे, और जने-जने से सुन रखा था—'शाह की कजरी।

बडे लडके का ब्याह था। घर पर चार महीने से दर्जी बैठे हुए थे कोई सूटों पर सलमा काढ रहा था, कोई तिल्ला, कोई किनारी और कोई दुपट्टे पर सितारे जड रहा था। शाहनी के हाथ भरे हुए थे—रुपयो की थैली निकालती खोलती फिर और थैली भरने के लिए तहखाने में चली जाती।

शाह के यार दोस्तो ने शाह की दोस्ती का वास्ता डाला कि लडके के ब्याह पर कजरी जरूर गवाना है। बस यात उन्होने बडे तराके से कहा था ताकि शाह कभी बल न खा जाये "वैसे तो शाहजी की बहुतेरी गाने-नाचनेवाली है जिसे मरजी हो बुलाओ। पर यहा मलिका-ए-तरन्नुम जरूर आये, चाहे मिरजे की एक ही 'सद लगा जाये।

फ्लैटी होटल आम होटलो जैसा नही था। वहा ज्यादातर अंगरेज लोग ही आते और ठहरते थे। उस में अकेले-अकेले कमरे भी थे पर बडे बडे तीन कमरो के सेट भी। ऐसे ही एक सेट में नीलम रहती थी। और शाह ने सोचा—दोस्तो यारो का दिल खुश करने के लिए वह एक दिन नीलम के यहा एक रात की महफिल रख लेगा।

"यह तो चौबारे पर जानेवाली बात हुई" एक ने उज्र किया तो सारे बोल पडे 'नही शाहजी! वह तो सिर्फ तुम्हारा ही हक बनता है। पहले कभी इतने बरस हम ने कुछ कहा है? उस जगह का भी नाम नही लिया। वह जगह तुम्हारी अमानत है। हमें तो भतीजे के ब्याह की खुशी मनाना है उसे खानदानी घरानो की

तरह अपने घर बुलाओ, हमारी भाभी के घर ''

बात शाह के मन भा गयी। इसलिए कि वह दास्ता-यारों को नीलम की राह दिखाना नहीं चाहता था (चाहे उस के कानों में भनक पडती रहती थी कि उस की गैर-हाजिरी में कोई-कोई अमीरजादा नीलम के पास आने लगा था)—दूसरे इसलिए भी कि वह चाहता था नीलम एक बार उस के घर आकर उस के घर की तड़क भड़क देख जाये। पर वह शाहनी से डरता था, दोस्तों को हामी न भर सका।

दास्ता-यारों में से दो ने राह निकाली और शाहनी के पास जाकर कहने लगे, 'भाभी, तुम लडके की शादी के गीत नहीं गवाओगी? हम तो सारी खुशियाँ मनायेंगे। शाह ने सलाह की है कि एक रात यारों की महफिल नीलम की तरफ हो जाये। बात तो ठीक है पर हजारों उजड जायेंगे। आखिर घर तो तुम्हारा है, पहले उस कजरी को खाना खिलाना है? तुम सयानी बनो। उसे गाने बजाने के लिए एक दिन यहाँ बुला लो। लडके के ब्याह की खुशी भी हो जायगी और रुपया उजडने से बच जायेगा।

शाहनी पहले तो, भरी भरायी बोली, 'मैं उस कजरी के माथे नहीं लगना चाहती,' पर जब दूसरों ने बडे धीरज से कहा, यहां तो भाभी तुम्हारा राज है। वह बांदी बनकर आयेगी तुम्हारे हुक्म में बंधी हुई, तुम्हारे बेटे की खुशी मनाने के लिए। हठी तो उस की है, तुम्हारी शाहे की? जैसे कमीन-कुमने आये, डोम मिरासी, तभी वह।''

बात शाहनी के मन भा गयी। वैसे भी कभी सोते-बैठते उसे खयाल आता था—एक बार देखूँ तो सही कैसी है?

उस ने उसे कभी देखा नहीं था पर कल्पना जरूर की थी—चाहे डरकर, सहमकर, चाहे एक नफरत से। और शहर में से गुजरते हुए, अगर किसी कजरी को टांगे में बैठी देखती तो न सोचते हुए ही सोच जाती—क्या पता, वही हो?

"चलो एक बार मैं भी देख लूँ," वह मन में घुल-सी गयी, "जो उस को मेरा बिगाडना था, बिगाड लिया, अब और उसे क्या कर लेना है! एक बार चन्दरा का दरस तो लूँ।"

शाहनी ने हामी भर दी, पर एक शर्त रखी—"यहां न शराब उडेगी, न कबाब। भले घरों में जिस तरह गीत गाये जाते है, उसी तरह गीत करवाऊँगी। तुम मर्द-मानस भी बैठ जाना। वह आये और सीधी तरह गाकर चली जाये। मैं वही चार बताशे उस की झोली में भी डाल दूँगी जो और लडकियों-बहुओं को दूँगी, जो यहाँ मंगल गायेंगी।'

'यही तो भाभी, हम कहते है। शाह के दोस्तों ने फेंक दी, "तुम्हारी समझदारी से ही तो घर बना है नहीं तो कैसा खबर क्या हो गुजरना था।

वह आयी। शाहनी ने खुद अपनी बग्घी भेजी थी। घर मेहमानों से भरा हुआ था। बड़े कमरे में सफेद चादरें बिछाकर, बीच में ढोलक रखी हुई थी। घर की औरतों ने बन्ने-सेहरे गाने शुरू कर रखे थे

बग्घी दरवाजे पर आ रुकी, तो कुछ उतावली औरतें दौड़कर खिड़की की एक तरफ चली गयी और कुछ खाल्यो की तरफ

'अरी बदशगुनी क्यों करती हो, सेहरा बीच में ही छोड़ दिया।' शाहनी ने डाट-सी दी। पर उस की आवाज खुद ही धीमी-सी लगी। जैसे उस के दिल पर एक धमक-सी हुई हो

वह सीढ़ियां चढ़कर दरवाजे तक आ गयी थी। शाहनी ने अपनी गुलाबी साड़ी का पल्ला सँवारा जैसे सामने देखने के लिए वह साड़ी के शगुनवाले रंग का सहारा ले रही हो

सामने उस ने हरे रंग का बादलोंवाला गरारा पहना हुआ था, गले में लाल रंग की कमीज थी और सिर से पर तक ढलका हुई हरे रेशम की चुनरी। एक झिलमिल-सी हुई। शाहनी को सिर्फ एक पल यही लगा—जैसे हरा रंग सारे दरवाजे में फैल गया था।

फिर हरे काच की चूड़ियों की छनछन हुई तो शाहनी ने देखा—एक गोरा गोरा हाथ एक झुके हुए माथे को छूकर आदाब बजा रहा है और साथ ही एक घन कती हुई सी आवाज—'बहुत-बहुत मुबारिक शाहनी! बहुत-बहुत मुबारिक

वह बड़ी नाजुक-सी पुतली सी थी। हाथ लगते ही दोहरी होती थी। शाहनी ने उसे गाव-तकिये के सहारे हाथ के इशारे से बैठने को कहा तो शाहनी को लगा कि उस की मांसल बाँह बड़ी ही बेडौल लग रही थी

कमरे के एक कोने में शाह भी था। दोस्त भी थे, कुछ रिश्तेदार मर्द भी। उस नाजनीन ने उस कोने की तरफ देखकर भी एक बार सलाम किया और फिर परे गाव-तकिये के सहारे ठुमककर बैठ गयी। बैठते वक्त काच की चूड़ियां फिर छनकी थीं, शाहनी ने एक बार फिर उस की बाँहों को देखा हरे काच की चूड़ियों को और फिर स्वाभाविक ही अपनी बाहू में पड़े हुए सोने के चूड़े को देखने लगी

कमरे में एक चकाचौंध-सी छा गयी थी। हरेक की आँखें जैसे एक ही तरफ उलट गयी थीं शाहनी की अपनी आँखें भी, पर उसे अपनी आँखों को छोड़कर सब की आँखों पर एक गुस्सा सा आ गया

वह फिर एक बार कहना चाहती थी—अरी बदशगुनी क्यों करती हो? सहरे गाओ ना पर उस की आवाज गले में घुटती-सी गयी थी। शायद औरों की आवाज भी गले में घुट गयी थी। कमरे में एक खामोशी छा गयी थी। वह अधबीच रखी हुई ढोलक की तरफ देखने लगी और उस का जी किया कि वह बड़ी जोर से ढोलक बजाये

खामोशी उस ने ही तोड़ी जिस के लिए खामोशी छायी थी। कहने लगी, "मैं तो सब से पहले घोड़ी गाऊँगी, लड़के का 'सगन' करूँगी, क्या शाहनी ?" और शाहनी की तरफ ताकती, हँसती हुई घोड़ी गाने लगी 'निक्की निक्की बूँदी निकिया मीह वे वरे, तेरी मां वे सुहागन तेरे सगन करे'

शाहनी को अचानक तसल्ली सी हुई—शायद इसलिए कि गीत के बीच की मां वही थी, और उस का मर्द भी सिर्फ उस का मर्द था—तभी तो मां सुहागन थी

शाहनी हँसने से मुंह से उस के बिल्कुल सामने बैठ गयी—जो उस वक्त उस के बेटे के सगन कर रही थी

घोड़ी खत्म हुई तो कमरे की बोलचाल फिर से लौट आयी। फिर कुछ स्वाभाविक-सा हो गया। औरतों की तरफ से फरमाइश की गयी—"ढोलकी रोड़ेवाला गीत।" मर्दों की तरफ से फरमाइश की गयी—"मिरजे दिया सद्दा।"

गानेवाली ने मर्दों की फरमाइश सुनी-अनसुनी कर दी, और ढोलकी को अपनी तरफ खींचकर उस ने ढोलकी से अपना घुटना जोड़ लिया। शाहनी कुछ रौ में आ गयी—शायद इसलिए कि गानेवाली मर्दों की फरमाइश पूरी करने के बजाय औरतों की फरमाइश पूरी करने लगी थी

मेहमान औरतों में से शायद कुछ एक को पता नहीं था। वह एक दूसरे से कुछ पूछ रही थीं, और कई उन के कान के पास कह रही थीं—"यही है शाह की कंजरी"

कहनेवालियों ने शायद बहुत धीरे से कहा था—खुसुरफुसुर-सा, पर शाहनी के कान में आवाज़ पड़ रही थी, कानों में टकरा रही थी—शाह की कंजरी शाह की कंजरी और शाहनी के मुंह का रंग फिर फीका पड़ गया।

इतने में ढोलक की आवाज़ ऊंची हो गयी और साथ ही गानेवाली की आवाज़, "सूहे वे चीरे वालिया मैं कहना हाँ" और शाहनी का कलेजा थम-सा गया—यह सूहे चीरेवाला मेरा ही बेटा है, सुख से आज घोड़ी पर चढ़नेवाला मेरा बेटा

फरमाइश का अन्त नहीं था। एक गीत खत्म होता, दूसरा गीत शुरू हो जाता। गानेवाली कभी औरतों की तरफ की फरमाइश पूरी करती, कभी मर्दों की। बीच बीच में कह देती, "कोई और भी गाओ ना मुझे सांस लेने दो।" पर किस की हिम्मत थी, उस के सामने होने की, उस की टल्ली सी आवाज़ वह भी शायद कहने को कह रही थी, वैसे एक के पीछे झट दूसरा गीत छेड़ देती थी।

गीतों की बात और थी, पर जब उस ने मिरजे की हेक लगायी, 'उठ नी साहिबा सुत्तीये! उठ के दे दीदार" हवा का कलेजा हिल गया। कमरे में बैठे मर्द बुत बन गये थे। शाहनी को फिर घबराहट-सी हुई, उस ने बड़े गौर से शाह के मुँह की तरफ देखा। शाह भी और बुतों सरीखा बुत बना हुआ था, पर शाहनी को लगा वह पत्थर का हो गया था

शाहनी के कलेजे में हौल-सा हुआ, और उसे लगा अगर यह घड़ी छिन गया तो वह आप भी हमेशा के लिए बुत बन जायेगी वह करे, कुछ करे, कुछ भी करे पर मिट्टी का बुत ना बने

काफी शाम हो गयी, महफिल खत्म होनेवाली थी

शाहनी का कहना था आज वह उसी तरह बताशे बाटेगी जिस तरह लोग उस दिन बाटते ह जिस दिन गीत बठाये जाते ह। पर जब गाना खत्म हुआ तो कमरे में चाय और कई तरह की मिठाई आ गयी

और शाहनी ने मट्ठी म लपेटा हुआ सौ का नोट निकालकर अपने बटे के सिर पर से वारा और फिर उसे पकडा दिया जिसे लोग शाह की कजरी कहते थे।

"रहने दे शाहनी। आगे भी तेरा ही खाता हू।" उस ने जवाब दिया और हँस पडी। उस की हसी उस के रूप की तरह झिलमिल कर रही थी।

शाहनी के मुँह का रग हल्का पड गया। उसे लगा जसे शाह की कजरी ने आज भरी सभा में शाह से अपना सम्बन्ध जोडकर उस की हतक कर दी थी। पर शाहनी ने अपनाआप थाम लिया। एक जेरामा किया कि आज उस ने हार नही खानी थी। और वह जोर से हस पडी। नोट पकडाती हुई कहने लगी 'शाह से तू ने नित लेना ह पर मेरे हाथ से तू ने फिर कब लेना ह? चल आज ले ले

और शाह की कजरी सौ के नोट को पकड़ती हुई एक ही बार म हीनी सी हो गयी

कमरे में शाहनी की साडी का सगुनवाला गुलाबी रग फैल गया

-

दो खिडकियाँ

इमारतो जसी इमारत थी, पाच मंजिलावाली। जसी और, वसी वह। और जसे औरो में पन्द्रह पन्द्रह घर थे, वसे ही उस म भी। बाहर से कुछ भी भिन्न नहा था सिर्फ अन्दर म

'यह जो एक सा दिखने हुए भी एक-सा नही होता, यह " डाबा इस 'यह के आगे की खाली जगह को देखने लगती

' खाली जगह का क्या होता ह उसे अब तक चाहे देखने रहो पर जा खाली दिखता ह क्या सचमुच ही खाली होता है " और डाका को लगता जसे ऐसी बहुत सी बातें थी जिन के शब्द उस के पास रह गये थे और अब उस खाली जगह चले गये थे

आज भी डाका अपने बडे कमरे की एक एक चीज को देखती हुई शब्दो को ढूँढने लगी, "न सही अब, शब्द ही सही, पर वे भी कहा ह ?

डाका के बडे कमरे में दो खिडकिया थी। आगवाली खिडकी की तरफ बडी सडक थी, वहाँ बडी रात तक लोग आते जाते रहते थे। पर पीछे का खिडकी की तरफ एक जगल था, जिस के पेड कही आते जाते नही थे। और डाका दोनो खिडकिया का देखते देखते रो-सी पडती, लगता ह, शब्द आगवाली खिडकी म से निकलकर बाहर बडी सडक पर चले गये है, और अब पीछे की खिडकी में से निकलकर बाहर जगल म चले गये है "

और उन दोनों खिडकियो के बीच जो जगह थी डाका को लगा—वह दो देशो की सरहदो के बीच छोडी गयी थोडी-सी जगह थी, जहा वह कई वर्षो स खडी थी। बडी अकेली थी, पर वर्षों से वही खडी थी। उसे खयाल आया कि वह कभी इधर की या उधर की सरहद पार कर किसी एक तरफ क्या नही चली गयी थी? पर उसे लगा—उस के पाव जसे वर्षों से हिलने नही थे। और वह हमेशा वही की वही खडी रही थी।

आगे की खिडकी में से बडा शोर आता था—लोगो के पाव ट्रामो के पहिये—जसे शब्द का खडाक होता ह—पर पीछे की खिडकी में से कोई खडाक नही आता था—जसे अर्थो का कोई खडाक नही होता और वे सिर्फ पेडो के पत्तो की तरह चुपचाप उग आते ह, और चुपचाप झड जाते ह।

कमरे की चीजें भी वैसी ही थीं, जसी वह आप। एक गहरा लाल मखमल

का शाही किस्म का दीवान था, जिस के ऊँचे बाजुओं पर सोने के रंग का पत्तर चढ़ा हुआ था। एक तरफ काला और चमकती हुई लकड़ी का मेज था, जिस पर नक्काशी का काम किया हुआ था। एक तरफ अलमारी थी जिस में लम्बी गरदनवाली काँच की सुराहियाँ थीं, नीले फूलों से चित्रित प्लेटें थीं और चाँदी के काँटे और चाँदी के चम्मच थे। तीनों दीवारों पर आयल पेण्ट की तीन बड़ी तसवीरें थीं, जिन के बड़े-बड़े चौखटे सोने के रंग के पत्तरों से मढ़े हुए थे। और इस बड़े कमरे के दूसरे कोने में खाना खाने के लिए एक बहुत बड़ी मेज थी जिस के गिर्द मखमल की, बड़ी ऊँची पीठवाली आठ कुरसियाँ थीं। इसी बड़े कमरे में से एक दरवाजा एक छोटे कमरे में खुलता था जिस में एक पलंग था जिस पर रेशम की एक बहुत बड़ी चादर बिछी हुई थी। उस के दोनों तरफ रखी हुई पीतल की तिपाइयों पर मीनाकारी की हुई थी। इसी कमरे की एक दीवार के साथ किताबों की अलमारी थी, जिस के खाना में बड़ी महँगी जिल्दोंवाली किताबें चुनी हुई थीं।

इन सब कुछ की उमर भी डांका जितनी थी—क्योंकि डांका के बाप ने बनाया था कि उस ने यह सब डांका के जन्म पर खरीदा था। और अब जैसे डांका की जवानी ढल गयी थी इन चीजों की चमक-दमक भी ढल गयी थी—सोने के रंग के पत्तर घुस गये थे, मखमल फीका पड़ गया था।

ये चीजें भी डांका की तरह बड़ी अकेली थीं—वह मेज पर खाना खाने बैठती तो आठ में से सात कुरसियाँ खाली रह जातीं। नीले फूलोंवाली प्लेटों में से सिर्फ एक पानी से धुलती। चाँदी के चम्मचों में से सिर्फ एक चम्मच इस्तेमाल होता। और रेशमी चादरवाले बड़े पलंग पर सिर्फ एक काया किसी जिन्दा आदमी की साँसें सुनती।

आज पीछे की खिड़की में खड़े-खड़े डांका को वह वक्त याद आ गया—जब ये सब की सब चीजें कहीं अलोप हो गयी थीं। उस उम्र की माँ को, और उस के बाप को नाजियों ने आधी रात को उन के घर से निकाल दिया था घर और घर की एक-एक चीज छीन ली थी। फिर उन तीनों को एक कम्प में रखा गया था, जहाँ से वे एक दिन उस के बाप को कहीं ले गये थे जहाँ से वह कभी वापस नहीं आया था। और माँ पगलायी-सी मांस की एक गठरी बन गयी थी। तब डांका—एक घुँआरी कन्या

उस का सौभाग्य डांका को लगा कि मद ने नहीं राजनीति की एक घटना ने भंग किया था राज बदला और राज्य का प्रबन्ध बदला। किसी का किसी चीज पर कोई हक नहीं रह गया था। किसी का किसी तरह के एतराज पर कोई अधिकार नहीं रह गया था। काम भी वही करना होता था, जिस का हुक्म मिले सोचना भी वही होता था जिस का फ़रमान हो। डांका को उस के बाप ने तीन जुबानों की तालीम दी थी—एक अपने देश की जुबान एक फ्रेंच और एक जरमन। इतनी तालीम किसी विरले के पास थी इसलिए नयी राजनीति को उस की जरूरत थी। और डांका ने जब इन जुबानों में वही लिखना शुरू किया जिस का उसे हुक्म मिला था, तो उसे लगा

जसे सरकारी हुक्म ने एक उचक्के मद की तरह उस का कौमार्य भंग कर दिया था।

बाप कत्ल हुआ था, पर डाका ने कत्ल होते अपनी आखों से नही देखा था। मा जिस तरह से जी रही थी, उसे तब आखों से देखना ऐसे था जैसे कोई रोज किसी का तिल तिल कत्ल होते देखे। मा चारो तरफ देखा करती थी पर पहचानती कुछ नही थी। कभी डाका का हाथ पकडकर दूर तक देखते हुए पूछा करती, "हम कहा आ गये ह ? हमारा शहर कहा गया ? यह किस का घर ह ? तो डाका रोने रोने को हो उठती थी

और जब कुछ शान्ति-सी हुई थी डाका को रहने के लिए यह घर मिला था, तब डाका को एक खयाल आया था—उस ने ऊँची पदवी के अधिकारियों की मिन्नत की थी कि वह पहले से भी ज्यादा उन के हुक्म में रहेगी सिर्फ अगर कभी उस की खिदमतों के बदले में उसे कुछ वह सामान लौटा दिया जाये जो कभी उस के बाप के वक्त घर में हुआ करता था।

डाका की यह दरख्वास्त मंजूर हो गयी थी और डाका के इस खयाल ने सचमुच ही उस की मदद की थी—मां की आखों में कुछ पहचान लौट आयी थी। कई बार वह उठकर मेज़ और कुरसियों को खुद पोछने लगती थी। और फिर उस ने यह पूछना छोड दिया था कि यह किस का घर है।

सो डाका के घर में कुछ वही चीजें थी, जो एक दिन अलोप भी हुई थी और प्रकट भी।

'पर, डाका सोचा करती, जो कुछ खयालों और सपनों में से अलोप हो गया है, वह ? ' और डाका उस 'वह' के आगे की खाली जगह को कितनी कितनी देर तक घूरती रहती

(२)

डाका ने मेज़ की एक दराज खोली। इस दराज में वह कुछ सिगरेट रखा करती थी, जो उन खास पलों में पिया करती थी—जब उस के प्राण, सिगरेट के धुएँ की तरह, एक धुआँ-सा बन हवा में घुल जाना चाहते थे

उसे वह दिन भी याद था, जब उस ने पहला सिगरेट पिया था। एक दिन मा पलंग की रेशमी चादर को पलंग पर बिछा रही थी कि उसे अचानक याद हो आया था, "डाका ! यह चादर तुम्हारे पिता चीन से खरीद कर लाये थे। देखो, मैं ने इसे कितना सँभाल कर रखा है !"

जवाब में डाका की आवाज कॉप गयी थी, उसे खौफ-सा हुआ था कि अभी मा को अपने मर्द की याद आ जायेगी और फिर वह बैठी-बैठी रोने लगेगी। पहले भी कई बार उसे बैठे-बैठे कुछ हो जाया करता था, पर गनीमत यह था कि उस की मां को यह नही पता था कि उस के मर्द का कत्ल हो चुका है। उस के अचानक गुम हो जाने के

सदमे ने उस के होश कुछ इस तरह छीन लिये थे कि उस ने खुद ही अपना और खुद ही विश्वास बना लिया कि उस का मद किसी दूर देश में तिजारत करने के लिए चला गया, पर उस दिन डांका को लगा—माँ के होश लौट रहे थे, घर का चाजा ने उस की कुछ पहचान लौटा दी थी और अगर उस कम्प के दिनावाला लागा की गुगुरगुमुर याद हो आयी

डांका ने उस का ध्यान चीजों में ही लगाये रखने के लिए जल्दी से पूछा था, 'माँ, यह इतना खूबसूरत पलंग कहाँ से बनवाया था ?'

"तुम्हारे पिता एक तसवीरोंवाली किताब लाये थे। मालूम नहीं कहाँ से। उस में इस पलंग का नमूना था

कुरसियों का नमूना भी उस में था ?'

'हां कुरसियों का भी ऐसी रगीली तलवारें थीं उन कुरसियों पर सचमुच हो मखमल लगी हुई है '

और माँ, ऐसी प्लेटें भी तो किसी और के पास नहीं

"ये तो वह प्राग से लाये थे देखा मैं ने इन में से एक भी नहीं टूटने दी, अभी तक पूरी बारह हैं गिनो तो भला "

डांका चाहती थी कि माँ का ध्यान कहीं लगा रहे भले ही प्लेट और चम्मच गिनने में ही। पर उस इस में भी कठिनाई सी अनुभव होती थी जब माँ को कुछ और ऐसी ही चीजें याद आ जाती थीं जो अब वहाँ नहीं थी। एक दिन तो माँ ने मोतियों की एक कंघी के लिए सारा दिन मुसीबत किये रखी थी—एक एक चीज को खोलती और रखती वह कंघी को ऐसे ढूंढ रही थी जैसे सुबह वह खुद ही कहीं रखकर भूल गया हो।

पर उस दिन मां को किसी और चीज की याद नहीं आयी थी। डांका कुछ आश्वस्त हो चली थी कि अचानक माँ ने मेज की एक दराज खोलते हुए पूछा था, "अरी डांका, तुम्हारे पिता का यहां खत पड़ा हुआ था वह कहाँ गया ?

खत डांका चौंक उठी।

कल तुम्हारे पिता का खत आया था कि अब वह बड़ी जल्दी आ जायगा, मैं ने कल तुम्हें बताया नहीं था ?

'नहीं।

'फिर खुशी में भूल गयी हूंगी ? मैं ने यहां मेज की दराज में रखा था '

डांका को लगा—जैसे मां को रात कोई सपना आया हो।

बोलती क्यों नहीं ? तुम ने लिया है खत ?' माँ पूछ रही थी पर डांका से कुछ नहीं बोला जा रहा था।

मां फिर खुद ही पूछ रही थी 'पेरिस से आया था न ?' और खुद ही दलीलों में पड़कर कह रही थी वहां से वह कहीं इटली ना चला जाय अगर इटली

चला गया '

"इटली डाका ने मा का ध्यान दूसरी तरफ लगाने के लिए धीरे से कहा, 'मा, तुम कभी इटली गयी हो ?"

"नही पर मुझे यह पता है कि इटली गया मर्द जल्दी नही लौटता। कई तो लौटते ही नही। क्या पता, तुम्हारे पिता भी " और मा कुछ ऐसी दलीलों में पड गयी थी कि वह खडी नही रह सकी थी। वह पलंग की एक बाही पर गुमसुम-सी बैठ गयी थी।

डाका के लिए मा की यह हालत भी बुरी थी, जब वह पत्थर सी हो जाया करती थी। उस ने मा को एक असीम चुप्पी से बचाने के लिए पूछा, 'पर मा, लोग इटली जाकर लौटते क्यों नही ?"

मा कितनी ही देर उस के मुह की तरफ देखती रही फिर हँस-सी पडी मर्द किसी देश भी जाये उस की औरत डरती नही, पर अगर इटली जाये तो औरत को उस का भरोसा नही रहता '

'पर क्या ?" डाका भी हस-सी पडी थी।

"तुम तो पगली हो " मा को यह बात बताने में शर्म-सी आ रही थी पर फिर वह सकोच से कहने लगी थी, इटली की औरतें मर्दों पर जादू कर देती है '

और फिर मां ने एक गहरी साँस लेकर कहा था, हाय रे ! वह कही इटली न चला जाये ! फिर मैं उमर भर यहां इतजार करती रहूँगी वह नही आयेगा '

उस दिन अकेले बैठकर डाका ने जिन्दगी में पहला सिगरेट पिया था

(३)

'सिगरेट का इतिहास कौन लिखेगा ? डाका को एक खयाल-सा आया "देखने को लगता है कि सिगरेट का इतिहास उस के नाम में होता है। अलग-अलग नाम में अलग अलग ब्राण्ड में—किसी का इतिहास पैंतीस वर्ष का, किसी का पचास वर्ष का—फिल्मों में जब किसी का इश्तिहार रहता है, उस का इतिहास ऐसे ही बताया जाता है—पर यह सिगरेट का इतिहास कैसे हुआ ? यह तो उस कम्पनी विशेष का इतिहास हुआ '

डाका ने हाथवाले सिगरेट की आखिरी आग से एक और सिगरेट सुलगाया और सोचने लगी "एक बार मेरे पिता ने मुझे खुद बताया था कि उस ने पहला सिगरेट अपनी पहली कमाई के जशन के मौके पर पिया था। उस दिन वह बहुत खुश था। पढाई के दिनों में उस ने इस तरह से सयम रखा था और मन से इकरार कर लिया था कि जब तक वह अपनी हथेली पर अपनी कमाई के पैसे नही रखेगा, तब तक वह सुख की कोई चीज नही खरीदेगा सो उस के लिए यह सुख का निशानी थी "

डाका के सिर का एक चक्कर-सा आया—शायद इसलिए कि उस ने सुबह से

कुछ नहीं खाया था। रविवार था काम पर नहीं जाना था इसलिए कुछ भी बनाने का उपक्रम नहीं किया था। काफी की जगह भी उस ने सिगरेट पी थी रोटी और पनीर के टुकड़े की जगह भी सिगरेट और सिगरेट की जगह भी सिगरेट।

और डॉका को खयाल आया कि एक बार उस ने खलील जिब्रान की एक किताब में पढ़ा था खलील के अपने हाथों का लिखा हुआ खत, कि उस ने एक दिन में दस लाख सिगरेट पिये थे

डॉका फिर खयालों में डूब गयी—सिगरट का असली इतिहास यह होता है कि किसी को किस वक्त सिगरट की तलब महसूस होती है

और डाका को पहाड़ी पर का वह गिरजा याद हो आया—जिस में पत्थरों की कुछ कन्दराएँ बनी हुई थी। कहते हैं कि दो वर्ष पहले जब यहां तुर्कों का राज्य स्थापित हुआ था लोगों पर बड़े जुल्म हुए थे। तब कुछ विद्वान इन कन्दराओं में चले गये थे और तुर्कों की नजर से छिपकर समय का इतिहास लिखते रहे थे जंगलों के कन्द मूल और तम्बाकू के पत्ते खाकर वे गुजारा करते और इतिहास लिखते

डाका के मन में पहाड़ों की कन्दराओं में बैठकर इतिहास लिखनेवालों के चेहरे और खलील जिब्रान का उस की तसवीरों में से देखा हुआ चेहरा गडमड-से हो गये। सोचने लगी—सो यह भी सिगरेट का इतिहास है—किसी रचना की जरूरत के वक्त

फिर एक और याद उस के बदन में झुरझुरी सी पैदा कर गयी। यह कौमारक की याद थी। उस के अन्दर भूख की एक लहर दौड़ गयी— एक जिस्म को रोटी की भूख भी लगती है और दूसरे जिस्म की भी

डाका ने सिगरेट का लम्बा कश लिया और आँखें मीच ली। हाथ वही उस के होठों के पास सो सा गया। सिगरेट के साथ इकट्ठी होती रही राख जब झड़कर उस के मुंह पर गिरी तो उस की तपिश से वह चौंक उठी।

कमरगन न जाने कहां होगा? डाका के मन में कुछ हुआ तो उसे लगा—उस के कमरे की दोनों खिड़कियां अचानक बन्द हो गयी थी। और हर शब्द जो आगे की खिड़की में से बाहर चला गया था हमेशा के लिए बाहर रह गया था। और हर अर्थ जो पीछे की खिड़की में से बाहर चला गया था, हमेशा के लिए बाहर रह गया था

कमरे में सिगरेट जलता रहा डाका सुलगती रही

'सिगरट का इतिहास ' डाका की आँखों के आगे धुंध सी छा गयी—शायद सिगरट का धुआं।

यह पल यह घड़ी इस जैसे कई पल, कई घड़ियां ये भी सिगरट का इतिहास है बेशक इन के लिए शब्द भी कोई नहीं और अर्थ भी कोई नहीं "

डाका ने पोरों में थामे हुए सिगरट के आखिरी टुकड़े को वहीं पर फेंक दिया।

वह खुद बुझे हुए सिगरेट की तरह वहीं निढाल हो गयी जहां बैठी हुई थी।

"डाका, तुम्हें मेरी नज़्म अपना ध्यान रखना। बोलो, रखोगी?"

'रखूँगी।'

"यह मैं तुम्हें अमानत दे रहा हूँ।'

'अमानत?'

"यह मेरी डाका, मेरी अमानत।"

डाका बुझी हुई भी सुलग उठी। उस के कानों में कामारव की आवाज़ भर रही थी

"कामारव कहां है? कहीं भी नहीं" डाका का मन व्याकुल हो उठा, "यहां सिर्फ मैं रह गयी हूँ, और उस की आवाज़"

डाका को एक बेचैनी भी महसूस हुई, एक चैन-सा भी मिला, "अगर व्यतीत की कुछ आवाज़ें भी आदमी के पास न रहतीं आदमी का क्या बनता"

साथ ही डाका का अपना इकरार याद हो आया कि वह कोमारव की अमानत थी, और उसे अमानत का ध्यान रखना था। उस ने उठकर काफी का प्याला बनाया, पनीर का एक टुकड़ा प्लेट में रखा, और जब खाने लगी उसे याद हो आया—कोमारव का जो नज़्म कभी जल्सों में बड़े जोश के साथ सुनी जाती थी वह नज़्म लिखने वक्त उस ने कोई एक सौ सिगरेट पिये थे। कोमारव घर में भी कभी-कभी वह नज़्म बड़े मन से पढ़ा करता था—

"मैं शहीदों की कब्र पर जाकर
इक छुरी तेज़ कर रहा हूँ—
इस छुरी के दम से, इक बगावत आयेगी
जो उन के लहू का बदला चुकायेगी

और डाका हँसा करती थी 'एक नज़्म लिखते हुए तुम ने एक सौ सिगरेट पिये हैं अभी तो तुम छुरी को तेज़ ही कर रहे हो, जब इस से बगावत लाओगे तब कितने सिगरेट पीओगे?'

पुरानी हँसी में से डाका को नयी रुलायी आ गयी, "इन सिगरेटों का इतिहास कौन लिखेगा? ये जो कामारव ने इस नज़्म को लिखते वक्त पिये थे?'

डाका ने काफी का आखिरी घूँट भरा, और फिर एक सिगरेट पीते हुए ख्याल में डूब गयी—"इस नज़्म का इतिहास भी कौन जानता है? उस ने न जाने किस के लिए लिखी थी, लोगों ने किस के लिए समझी"

'लोग जब इस नज़्म पर तालियाँ बजाते हैं, मैं कुछ हैरान हो जाता हूँ,' कोमारव कहा करता था।

'वे समझते हैं, यह जो बगावत है, यह नज़्म उस का इतिहास है,' डाका उसे जवाब दिया करती थी।

"यही तो मुश्किल है यह जो कच्ची-पक्की-सी बगावत आया है, इस से क्या बदला है ? हुक्म नहीं बदले सिर्फ हाकिमों के मुँह बदले हैं, कोमारव की आवाज़ कुछ ऊँची हो जाया करती थी।

डाँका उस की आवाज़ को अपने होठों से ढक दिया करती थी, "खुदा का वास्ता है यह बात किसी और से आगे न कहना।"

'मुझे कुछ भी कहने में विश्वास नहीं सिर्फ करने में विश्वास है," कोमारव हँस पड़ा करता था।

'पर तुम्हारे मर जाने से क्या होता है डाँका उदास-सी हो जाया करती थी।

तुम्हें एक बात बताऊँ ? एक दिन कोमारव ने अचानक उस से कहा था कि डाँका बिल्कुल ही नहीं जान सकी थी कि वह कौन-सी बात कहने लगा था, जिस का पहले उसे पता नहीं था।

'क्या ?'

"वह मेरी नज़्म है न '

'कौन-सी ? मरे हुओं की कब्र पर छुरी तेज़ करनेवाली कि बाई और ?

'वही।

हाँ।

यह बड़ी देर से मेरे मन में था तब से जब इस पिछली बगावत का चेहरा कुछ निखर रहा था

सो यह नज़्म इसी की देन है ?

जब इस की कल्पना की थी, तब इसी की थी पर जब लिखी तो इस की न रही।

किस तरह ?

'इसलिए कि यह बगावत अपने ही कहे पर कायम न रही। जो हथियार इस की हिफाज़त के लिए पकड़ा था वही फिर इस से बचने के लिए पकड़ना पड़ गया डाँका!

हाँ।

तुम्हारे पिता एक अमीर ताजर थे न ?

हाँ।

इस बगावत ने उसे इसलिए मरवाया कि धरती पर गल्ले और टाले न रहें पर बाद में अगर नये गल्ले और टाले ही बनाने थे

डाँका ने जहाँ तक अपने बाप को देखा था एक रहमदिल इनसान ही पाया था। सोचा करती थी शायद उस जगह वाले बाकी लोग उस जैसे न होते हों पर जो था उस के लिए यह सज़ा क्यों थी ?

जवाब कहीं से भी नहीं मिला था इसलिए उसे अवसर चुप रह जाने की

आन्त पड गयी थी ।

'क्या डाना ?' कामारक के मन में जो कुछ था, उस दिन उस के मन में समा नहीं रहा था ।

'तुम्हें पता है, मैं कभी गिरजे में क्या नहीं जाती ? माँ कई बार जाने की जिद् करती है, पर मैं टाल जाती हूँ । डाना कुछ कहने-कहने को हो उठी थी । कहने लगी, "वहाँ के लोगों के उदास चेहरे मुझ से देखे नहीं जाते । शायद वही एक ऐसी जगह है जो लोगों की उदासी को पनाह देती है—या लोग ही उस से तसल्ली का भ्रम लेने जाते हैं—जाने से कुछ नहीं सँवरता, पर जाते हैं—कामारक !"

"हाँ !'

"असल में करना तो उन की उदासी का करना था ' डाँना के ये शब्द उस के मुँह में ही थे कि कामारक ने उसे बाहों में भर उस के शब्द चूम लिये थे । डाँना की आँखों में पानी भर आया था । उस ने सहमकर कोमारक के चेहरे की तरफ देखा था, जैसे भरी दुनिया में उसे मुश्किल से इस जैसा एक ही चेहरा मिला हो, और उसे विश्वास न हो रहा हो कि यह चेहरा उसे सदा दिखाई देता रहेगा ।

(४)

आज डाँना को कामारक याद आया तो इस तरह याद आया जिस तरह उसे याद करने से वह मुद्दत से डर रही थी, और आज उस डर की मियाद खत्म हो गयी थी ।

कामारक को गये हुए पाँच वर्ष हो गये थे डाँना उसे जी भरकर याद करने का मौका बने यत्न से टालती रही थी । जानती थी—वह इस तरह याद आया तो जिन्दगी का एक दिन भी उस से, उस के बिना गुजारा नहीं जा सकेगा । पर दिन तो गुजारने ही थे यह कामारक की नसीहत भी थी और जिन्दगी का तकाजा भी ।

जब कामारक को उस ने खुद अपने हाथों विदा किया था डाना के हाथ बहुत मजबूर थे

'यह भी जिन्दगी का रहम था—यह जिन्दगी में मिल गया, तीन साल मैं ने उस के साथ गुजार लिये ' डाना को अपनी उमर के सारे वर्ष इस तरह याद आये, जैसे उस ने रेत के किनारे पर बैठकर कुछ खाली सीपियाँ बटोरी हों । और कामारक से मिलन इस तरह, जब एक दिन अचानक एक सीपी में से मोती निकल आया हो

उन की मुलाकात एक सरकारी दफ्तर में हुई थी—बड़ी गहरी और लम्बी चुप में से । देखने को तो डाँना उसे रोज देखा करती थी, पर चेहरों की पहचान तो मिलाप नहीं होता

एक दिन डाँना दफ्तर में बड़ी उदास थी । जो लिख रही थी उस से नहीं लिखा जा रहा था । और दफ्तर में ही उस की आँखें भर भर आयी थीं । कोमारक

न उस बीमार समझा था हाल पूछा था पर डॉका जब तेज गिर दद बहकर, दफ्तर से छुट्टी लेकर घर लौटी थी, कोमारक उस घर तक छोड़ने आया था। घर आकर डॉका ने उस के और अपने लिए काफी बनायी था। किसी पर विश्वास करने की डाका की आदत नहीं थी पर उस दिन कॉफी पीते हुए कोमारक के सामने उस के मुह से निकल गया ' रोज इतना झूठ नहा तौला आता हिम्मत नहीं रह गयी "

और डाका की आँखों में फिर पानी भर आया था, लोग सांस रोके जी रह ह, मैं रोज उन की सुरा के इश्तिहार लिखती हूँ। यह सब कुछ किस लिए करती हूँ, इसी लिए न कि जिन्दा रह सकूँ '

यही विश्वास एक जड था जिस म स डॉका और कोमारक की दोस्ती उगी थी। और फिर कुछ महीनों के बाद उन्होने विवाह कर के अपने ख्याल भी एक कर लिए थे और सपने भी।

माँ के चहर पर एक रौनक-सी लौट आयी था। सिफ एक दिन उस ने कहा था, ' डॉका तुम इटली अपने पिता को खत लिख देती तो तुम्हारा खत पढकर वह जरूर आ जाते। तुम उन के आने पर विवाह करती तो अच्छा था   पर फिर कभी उस ने कुछ नहीं कहा था।

कोमारक न ही एक बार माँ के चेहरे की तरफ देखकर डॉका से अकेले में कहा था डॉका यह जो नक्श ह न—कब्रो पर छुरी की तेज करनेवाली तुम्हे पता है ये कौन-सी कब्रें ह ?

'शहीदो की। डाका न जवाब दिया था।

हा शहीदो की पर इस शान के बड़ अथ होते है

किस तरह ? '

' ये उन मासूम लोगो की कब्रें भी ह, जिन के ख्वाहमख्वाह कत्ल होते ह—जसे तुम्हारे बाप की कब्र—और ये उन उदासियो की कब्रें भी ह, जिन म मर हुए नहीं, जिन्दा लोग रहते ह जस माँ

उस दिन कोमारक की छाती से सिर सटा डॉका बहुत रोयी थी।

डॉका और कोमारक का रिश्ता एक विश्वास की जड म स उगा था। और इस के साथ बेशुमार आंसू थे, जो शायद इस पौधे का पानी बन के लिए बने थे। डाका को यह याद आया—कि वह अपने विवाह की पहली रात भी रोयी थी

यह वह रात थी—जब एक पूरी औरत एक पूरे मद स मिलता ह—और उस रात डाका ने कोमारक को बताया था, 'दफ्तर म जब भी बहुत झूठे लेख लिखती हूँ घर आकर लगता ह जसे पराये मद के साथ सोकर आयी हू। सारा जिस्म गलीज लगता ह ' और डाका की आखो म पानी भर आया था सिफ आज पहली बार देखा ह कि जिस्म पवित्र कसे होता ह।'

उस रात कोमारक की बाहे डाका के गिद से खुलती नहीं थी। बार-बार

कहता था, "तुम इतनी पाकीजा हो कि सोचता हूँ तुम्हें कहाँ छिपाऊँ।"

फिर साल गुजर गया, दो गुजर गये, तीसरा भी गुजरने को हो आया। डांका औरत थी उस ने एक मर्द को पाकर अपनी सारी दुनिया उस तक समेट ली। पर कोमारक मर्द था उस के लिए दुनिया के अर्थों का बड़ा विस्तार था। इर्द गिर्द जो कुछ भी बदला था, सिर्फ शब्दों में बदला था, अर्थ वही थे जो एक हुकूमत के हुआ करते हैं। और नयी हुकूमत के और भी सख्त हुआ करते हैं। कोमारक इन वर्षों में जो कुछ भी देख रहा था उस बारे में किसी से कुछ नहीं कहता रहा था, पर अपनी नज्मों को बताता रहा था—शायद चुप की कब्र पर वह कुछ तेज करता रहा था।

और फिर अचानक खबर मिली कि कोमारक की जान खतरे में थी

शायद एक रात का भी भरोसा नहीं था। सिर्फ एक ही रास्ता था कि कोमारक रात रात में ही देश में से निकल जाये, सरहद पार कर जाये

डांका सारी-की-सारी उस में समा जाना चाहती थी। उस ने कोमारक को जाने के लिए तैयार किया था, पर उस की छाती से अलग किये अलग नहीं हो रही थी

पीछे मां थी, मां को वहीं भी अकेला नहीं छोड़ा जा सकता था। नहीं तो एक बार तो डांका अनहोनी सोच गयी थी

"अगर कहीं अनहोनी हो जाती—' डांका की छाती में उबाल आया मां तो बाद में एक साल भी जिन्दा नहीं रहती, वही जिन्दा रहती—यहां बस मैं रह गयी और ये दीवारें "

और डांका के लिए मां का दुख भी ताजा हो आया—कोमारक ने जाते वक्त मां से प्यार लिया। बताया कि उसे दूसरे देश में कुछ काम पड़ गया है इसलिए वह अरसे बाद लौटेगा और मां ने उसे ताकीद की थी कि वह चाहे जिस देश जाये पर इटली नहीं "

आज डांका की आंखों में उस मां के आंसू भर आये, 'मां जितनी देर जिन्दा रही, कहती रही—डांका! उस का कोई खत आया? नहीं आया? वह जरूर इटली चला गया होगा

खत डांका ने यह शब्द जहर के घूँट की तरह पी लिया—उसे सिर्फ एक खत का पता था जो उस ने एक बार आंखों से देखा था। उसे पुलिस के महकमे में बुलाकर उस के नाम से आया हुआ कोमारक का खत उसे दिखाया गया था। उस में सिर्फ इतनी भर खबर थी कि वह जिन्दा रोम पहुँच गया था। तब से डांका का पुलिस से वास्ता पड़ा हुआ था, उसी रात से जिस रात कोमारक घर से गया था। उस के जाने और पुलिस के आने में कुछ घण्टों का फासला रहा था। कई महीने तो उसे यही चिन्ता रही थी कि वह जिन्दा भी था कि नहीं। फिर पुलिस ने उस का खत दिखाकर बेशक उसे कई हिदायतें दी थीं कि अगर फिर कभी उस का खत आया और उस ने खत का

जवाब दिया तो अपनी जान की वह खुद जिम्मेदार होगी, पर डाका की एक चिंता दूर हो गयी थी और उस घड़ी यही तसल्ली उस के लिए काफी थी कि कामारक ज़िंदा था

डाका ने कभी उस के खत का इंतजार नहीं किया था। उसे मालूम था कि कभी कोई खत उस तक नहीं पहुंचेगा। पर वह साल बिताती जा रही थी। ये साल चुप थे व्यथ थे और डाका को लग रहा था कि इन के शब्द आगे की खिड़की में से बाहर चले गये थे और इन के अर्थ पीछे वाली खिड़की में से बाहर गिर पड़े थे—पर पर

और डाका पर के आगे पड़ी हुई खाली जगह पर जैसे खुद खड़ी हो गया, "कामारक! मैं तुम्हारा इंतजार करूंगी तब तक इंतजार करूंगा जब तक तुम सब कब्रों पर जाकर अपनी छुरी तेज नहीं कर लेते।'

डाका को लगा—इन बेशुमार कब्रों में एक कब्र उस के इंतजार के सालों की भी थी

और डाका ने उठकर एक आगे से कमरे की दोनों खिड़कियां खोल दीं—एक शब्दों के लौट आने के लिए और एक अर्थों के पलट आने के लिए। पता नहीं कब—पर कभी

एक शहर की मौत

अपनी बात करने से पहले पामपेई की बात करूँगी। पामपेई नेपल्ज के पास इटली का एक प्राचीन शहर था। इस से भी पहले यह समुद्री किनारे का शहर ईसापूर्व आठवीं शताब्दी में यूनान के समुद्री जहाजों का बन्दरगाह हुआ करता था। ३१० ई० पू० में एक रोमन जहाज यहां आया था, पर पामपेई ने उसे तट से लौटा दिया था। पर आखिर यह शहर जीत लिया गया था, और ८० ई० पू० में यह रोमन कालोनी बन गया था।

फिर इस ने रोमन जबान, रोमन कानून और रोमन वास्तुकला अपना ली। कारोबारी जगह के साथ साथ यह आरामगाह भी था। इस की आबादी बीस या बाईस हजार थी।

फरवरी '६३ में यहां एक भयानक भूचाल आया। बहुत कुछ ढहकर ढेरी हो गया। पर इस का निर्माण फिर शुरू हो गया।

निर्माण जारी था कि २४ अगस्त '७९ को यहां लावा फूट पड़ा। और हँसता शहर आग की गरम राख के नीचे दब गया।

यह गरम राख मेंह की तरह बरसी थी—धरती पे छह फुट ऊँची इस की तह जम गयी थी। और इस के लोग जहां बैठे या खड़े थे, वस के वसे उस गरम राख में दब गये थे।

और इस तरह सारा शहर गरम राख और बरसती धूल की बारह फुट ऊँची तह के नीचे ढक गया। और कई सदियों तक ढका रहा।

सोलहवीं सदी में एक नहर निकालते हुए कुछ इमारतों के निशान मिले। और नेपल्ज़ के बादशाह ने मार्च १७४८ में बाकायदा खुदाई शुरू करवायी। और १७६३ में शिलाओं की लिखाई से पता लगा कि वह पामपेई के खंडहर हैं।

पहली चीज जो मिली, इस के बुत थे। फिर १८६० में इस में से मरे हुए लोगों के निशान मिले। राख में गड्ढे जहां-जहां भी थे वहां प्लास्टर आफ पैरिस डाल कर ठीक वही रूपरेखा ताजी—जैसे लोग खड़े हुए, बैठे, या भागते उस राख में गड़ गये थे।

और इसी तरह खोजा कि उस शहर के घर किस तरह के हुआ करते थे, पीढ़े पलंग और पालने कैसे हुआ करते थे। हाउस आफ सिल्वर वैडिंग, हाउस ऑफ गोल्डन क्यूपिड और बहुत से मूर्ति कला यानी बुतकारी और वास्तु कला में यह एक बड़ा

अमीर शहर था

मैं भी थी पामपेई की तरह

पूरे पन्द्रह बरस मैं अपनी चुप और लगन की धुंध में लिपटी रही। रोज सबेरे उठ कर मिस सिंह का जामा पहन लेती या, और ईलिंग के एक स्कूल में नौकरी पर चली जाती थी।

पर इन छुट्टियों में मैं रोम गयी थी। मैं ने रोम के गिरजे देखे, वहाँ कई औरतें मोमबत्तियाँ जला रही थी, पर मुझे कोई मोमबत्ती जलाने का खयाल नहीं आया था। रोम का वह चश्मा भी देखा, जिस में एक सिक्का डाल कर लोग मुरादें माँगते हैं। पर मैं ने जेब में हाथ डाल कर कोई सिक्का नहीं निकाला था। फिर रोम से फ्लोरेंस गयी थी। वहा माइकल ऐंजलो के चौक में लोग कबूतरों को चुग्गा चुगा रहे थे और उन को हथेली पर बिठा कर तसवीरें उतरवा रहे थे पर मुझे अपनी तसवीर उतरवाने का कोई खयाल नहीं आया था। फिर एक दिन रोम से नेपल्स गयी थी और वहा से आती बार रास्ते में पामपेई देखा था। पर पामपेई के खंडहरों में से घूम कर जब शहर के दरवाजे के पास आयी तो लोहे के दरवाजे ने मेरा हाथ पकड़ लिया था।

इस तरह तो कभी किसी मर्द ने भी मेरा हाथ नहीं पकड़ा था मैं काँप गयी।

और लोहे का दरवाजा पिछली तरफ—उन खँडहरों की तरफ ताकने लगा। जहा कई स्तम्भ और कई दीवारों के टुकड़े खड़े थे।

और उस के कहने पर मैं भी उन्हें देखने लगी

कहीं कोई भी ओट नहीं थी—कभी होती होगी—कुछ चारों तरफ से बन्द कमरे रहे होंगे। और फिर उन के भी अन्दर कुछ कोठरियाँ। पर अब सब कुछ चौपट खुला हुआ था। सारे रहस्य नीचे बिछे हुए थे। और पता नहीं लगता था कि कौन सी राह किधर निकलती थी और जाती कहा थी। राह राहों के गले लगी हुई थी

एक लोहे के हाथ ने मेरा हाथ पकड़ा हुआ था—मेरा हाथ सुन-सा होने लग पड़ा

पहले मेरा दायाँ हाथ सुन्न हुआ, फिर दायीं बाँह, दायाँ कन्धा। फिर बायाँ हाथ बायीं बाँह और बायाँ कन्धा।

मैं ने लोहे के दरवाजे से परे होने के लिए एक जोर लगाया—पर अब मेरे पैर भी सुन्न हो गये थे लातें भी।

लगा—मैं भी पामपेई शहर की बीस हजार लाशों की तरह एक लाश थी वहा से जल्दी से बाहर निकलने के लिए दायाँ पैर आगे किया हुआ था और बायें को आगे करने के लिए उस की एड़ी जरा-सी उठी हुई—और फिर वहीं की वहीं एक गरम राख में हमेशा के लिए लाश बन कर खड़ा रह गयी

मैं किस दरवाजे में से निकली थी, और किस राह पर जाना था कुछ पता नहीं।

अब तो सब पर ढह गये थे, और सभी राहें रो रोकर एक-दूसरे से गले लग रही थी

फिर पता नहीं कितनी देर तक मेरी आखें जलती और बुझती रही

और फिर मेरी छाती में कुछ सुलगने लगा कि इस पामपेई शहर की तरह मैं भी कभी हुआ करती थी

पिछले पद्रह बरस मैं अपनी चुप में और लन्दन की धुन्ध में ढँपी रही हूँ। पता नहीं यह चुप और यह धुन्ध कितने फुट ऊँची थी—छह फुट जरूर होगी—मेरे कद से दो बालिश्त ऊँची कि मैं सारी की सारी उस के नीचे आ गयी थी

और मैं ने भी इस 'मैं' को कभी नहीं देखा था

अब देख रही हूँ, मेरी छाती में एक शहर हुआ करता था, जैसे हर जवान हो रही लड़की की छाती में एक शहर होता है।

और मेरे शहर में एक सब से बड़े आगनवाला घर था—मेरे मा-बाप का घर, जहाँ एक सघन छायावाला पीपल का पेड़ था, एक लम्बी गली थी मेरी सग-सहेलियो की और गली के माथे पर एक बड़ का पेड़ था जो थके राहियों को सुख की सास देता था और वहाँ, मेरी गली के मोड़ से, दूर एक ऊँची अटारी दिखा करती थी जहा रात को कितनी ही बत्तियाँ तारों सरीखी जलती थीं और रोज़ सुबह सवेरे जिस की दीवार में से सूरज उगता था और मैं भी जैसे हर जवान हो रही लड़की अपने शहर की ऊँची अटारी को देखती है इस अटारी को बार-बार देखा करती थी

यह मेरा छोटा-सा शहर फिर बड़ा हो गया। मैं कॉलेज में पढ़ती थी, और कॉलेज के नाटकों में खेलती थी। अगर हजारों नहीं तो सकड़ो वह पात्र मेरे शहर में बस गये थे, जिन्हे कहानियों में से निकालकर मैं मच पर लायी थी।

मेरा कितना बड़ा शहर था—कितना सुन्दर पामपेई सरीखा।

यह भी समुद्र के किनारे था—मेरा दिल समुद्र की तरह बहता था। और जब दूसरे देशों की किताबें पढ़ती थी उन के पात्र नावों में बैठकर मेरे बन्दरगाह पर आ जाते थे

और फिर एक दिन लावा फूटा, काली और जलती राख मेंह की तरह बरसती रही थी और सारा शहर उस राख के नीचे दब गया था

मैं ने—आज से पद्रह बरस पहले—जब उस शहर में से भाग निकलने के लिए दायाँ पर आगे रखा था, और बायें पर को आगे करने के लिए उस की एडी ज़रा-सी उठायी थी तो वहीं की वहीं उस जलती राख में हमेशा के लिए लाश बन गयी थी

पामपेई शहर का, और मेरे शहर का इतिहास एक-सा है। शायद इसी लिए मैं पामपेई खँडहरों में चलती पता नहीं किस वक्त अपने शहर के खँडहरों में पहुँच गयी

सिर्फ एक फर्क है—पामपेई के किसी इनसान को अपनी लाश देखनी नसीब नहीं

हुई थी और मैं खुद अपनी लाश को देख रही हूँ।

बाकी सब कुछ उसी तरह है—यह भी कि जब पामपई में किसी भी आदमी को कफ़न नसीब नहीं हुआ था, मेरे मर चुके शहर में भी किसी आदमी को कफ़न नसीब नहीं हुआ। हर लाश में मुँह लग है पहचान सकती हूँ—और उस पहचान में से सब के नयन-नक्श याद कर सकती हूँ।

यह मेरी लाश—लचकीले-से जिस्म पर एक बड़ा सलोना चेहरा था। सीधी माँग निकालकर लम्बे बाल सँवारे होते थे। कमर में गहरे रंग की सलवार और गले में अगर हरे रंग की कमीज़ और हरे रंग का दुपट्टा होता था। कानों में पतली तार की बालियाँ। चेहरा भारा भी था पर उस पर ताँबे रँगी लिप भी होती थी, जिस से वह कभी बड़ा कोमल दिखता था कभी बड़ा सख्त।

शनिवार और इतवार स्कूल बन्द होता है। कभी-कभी यह दो दिन अकेले को मुहाल हो जाते थे। इसी लिए छुट्टियों में रोम गयी थी। नहीं तो इकट्ठे दो-दो दिन घर के कमरे में रहती तो चारों दीवारों के बीच में पाँचवीं दीवार बन जाती। पर रोम से आकर मैं लन्दन के अपने कमरे में नहीं, खंडहरों में घूम रही हूँ।

खंडहरों में मैं अकेली नहीं, और कितनी ही लाशें हैं।

आज शनिवार था, कल इतवार। सोचा था—दो दिन इन खंडहरों में रहूँगी, और एक-एक लाश को पहचानूँगी। पर रात जॉर्ज का फोन आया। उस ने एक फिल्म के लिए दो टिकट लिये हुए थे—एक अपने लिए, एक मेरे लिए। और मुझ से 'ना' न की गयी। शाम को उस के साथ फिल्म देखने चली गयी।

'डी कमरन'—मशहूर इतालवी फिल्म थी। इस में एक जवान हो रही लड़की को एक लड़का अच्छा लगता है। लड़का लड़की को सलाह देता है कि आज रात वह कमरे में सोने के बजाय अपने घर की छत पर सो जाये, वह आधी रात घर के पिछवाड़े छत पर आ जायेगा। लड़की अपनी माँ से शाम के वक्त कहती है कि आज रात वह छत पर अपना बिस्तर बिछायेगी और बुलबुल का गीत सुनेगी। माँ मान जाती है, बाप भी। और फिर वह लड़की उस रात छत पर जाकर सो जाती है। सुबह-अँधेरे लड़की का बाप जब जागता है, सोचता है कि छत पर जाकर लड़की को देखूँ, कहीं उसे ठण्ड न लग गयी हो। और वह जब छत पर जाता है—वहाँ उस की बेटी के पास एक लड़का सोया होता है। दोनों के गले में कोई कपड़ा नहीं होता। वह घबराकर वापस आ जाता है और बेटी की माँ को जगाता है, कहता, 'तेरी बेटी आज कोठे पर सोयी थी क्योंकि उसे बुलबुल का गीत सुनना था। जाकर देख! उस ने बुलबुल पकड़ ली है।'

जॉर्ज मेरे साथ की सीट पर बैठा हुआ था। फिल्म देखते हुए उस ने मेरा हाथ अपनी टाँग पर रख लिया और कहने लगा, 'यह बुलबुल तेरी है, ले ले।"

और फिल्म के बाद वह मुझे मेरे घर छोड़ने के लिए आया। रात मेरे पास रह

गया। और रात फिल्म की उस लड़की की तरह मैं ने बुलबुल पकड़ी था।

इस तरह की रात मैं ने जाज के साथ पहली बार गुजारी है, पर वसे पहली बार नहीं। ऐसी रातें कभी-कभी गुजार लेती हूँ—किसी के साथ भी।

पहली बार—बहुत घबराकर ऐसी रात गुजारी थी। एक दिन मेरे जिस्म का रोम रोम इस तरह वज उठा था जसे मेरे जिस्म का एक ही अग मेरे अग-अग में समा गया हो—और मेरे एक एक रोम का मुँह रहम की तरह खुल गया हो

उस दिन एक अजीब सबब बना था, नहीं तो मेरे सस्कार मेरे गिर्द इस तरह कसे हुए थे कि म गरम पानी की जगह रात को ठण्डे पानी से नहाकर जिस्म को वर्फ की डली बना लेती और रजाई मे बेसुध सा जाती। पर उम दिन मैं अपनी एक दोस्त औरत का मिलने चली गयी। यह मेरी अँगरेज दोस्त क्लेअर बडी उमर की औरत ह। उम दिन उस ने मुझे एक चीज दिखायी—एक मरदाना अग, जा उसी हफ्ते वह बाजार से खरीदकर लायी थी। उस म बटरी के दो सेल पडे हुए थे। उस ने बताया कि वह बटरी के जोर स चलता ह और उस के लफ्ज जैस उस दिन उस पर तरस खा रहे थे 'क्या करूँ, अब इस उमर म कोइ मद पास नहीं फटकता। तलाक लिये सात बरस हो गये ह। पहले तो कभी दो चार दिनो के लिए कोई जुड जाता था, पर अब ज्यो-ज्यो उमर ढल रही है' और मुझे लगा, अगर मैं ने अपनी जवानी अपने सस्कारो को दे दी तो आनेवाली उमर म मुझे भी एक दिन क्लेअर की तरह बाजार जाना पडेगा, और बटरीवाला यह रबड का टुकडा मेरी किस्मत बन जायेगा

और उस शाम मैं ने अपने एक थोडे से वाकिफ आदमी को खाना खाने बुलाया था। अपने मरण दिन को अपना जन्म दिन बताया था। फिर जल्दी से खाना बनाया था। उस के लिए 'स्काच' खरीद कर लायी थी, और कमरे को ताजे फूलो से सजाया था। अकेली औरत के पास अकेले मद ने मुश्किल से घण्टा भर किताबो और फिल्मों की बातें की था फिर उस ने लालसा से मेरा हाथ पकड लिया था। मेरा हाथ बेजान भी हो गया था, पर याकुलता भी। और मेरे हाथ की तरह मेरा अग अग

उस दिन की तरह आज भी पछतावा नहीं। सिर्फ रात जब जाज मेरे पास सोया पडा था, दिल में आया कि आज इसे अपने साथ अपने मरे हुए शहर म ले जाऊँ। जिस तरह लोग पामपेई के खंडहरा को देखने जाते है, मैं जाज को साथ ले जाऊँ और उसे अपने शहर के खंडहर दिखाऊ।

फिर पता नहीं क्या, मैं ने जॉज को कुछ नहीं बताया। सुबह उठकर वह चाय का प्याला पीकर चला गया ह, और मैं अकेली अपने शहर के खंडहरा में लौट आयी हूँ

यह मेरा लाश

और वे ऊँची ऊँची दीवारें उस अटारी की ह, जिस म वीरेन्द्र रहा करता था यह दीवार के पास उस की लाश उस के सारे नक्श मेरी चाय में उभर आये

ह—चौड कन्धा पर तना हुआ सिर, चेहरे का रग गेहुँआ, पर आखे बडी काली, गहरी और तराशी हुइ। वह आखा से मेरा जान का खीच लिया करता था

उस की इस अटारी में मैं कई बार रात सपना में गयी थी, और अपने महन्दी रचे हाथा से उस की चारपाई पर उस का बिछौना किया था

उस के कौल-करारा से भरी हुई मैं उस को उस की गली के मोड पर मिलकर, जब अपने बाप के खुले आगनवाले घर म आया करती थी तो घर की दीवारें मेरे जिस्म को भीच लिया करती थी। मेरे बाप की गुस्सल नजर से पीपल के पत्ते थर जाते थे और मैं धूप में झुलस जाती थी

और एक दिन मेरा अछूता कुँआरा जिस्म छिन गया। घर पर आयी ता मा ने अगारा जमी आँखा स देखा चूल्हे में से एक लकडी खीचकर कहा 'तुझे उस की इतनी आग लगी हुई ह, ता यह बलती लकडी अपने अन्दर डाल ले' सपना म और सहेलिया से मर्दों की बातें सुनी हुई थी, मद्दक सरीखी बातें पर मा की बात सुनकर ऐसा लगा जसे एक बलता लकडी मेरी टागा में रख दी गयी हा

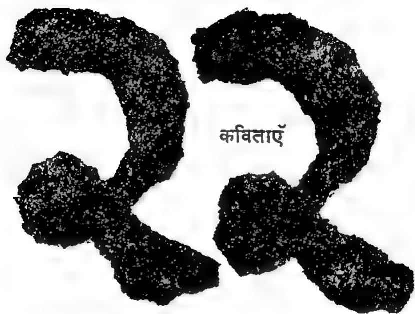
मैं कितन दिन तक अपने कमरे में बन्द पडा राती रही। और एक दिन मा किसा साधु का पकडकर ले आयी और उस का दिया हुआ तावीज घालकर मुझे जबरन पिला दिया। सारी रात मैं चारो चारा से उलटियां करता रही पर सुबह जब वह मुझे मेरी सगाई का छुहारा खिलाने लगी पता लगा कि किसी दुहाजू के साथ वह मेरा ब्याह करने लगी थी। वीरन्द्र हमारे मजहब का नही था और यह दुहाजू हमारे मजहब का था। मैं ने छुहारे को मुँह में से थूक दिया और मा के हाथ से बाह छुडाकर वीरन्द्र क घर की ओर दौड पडी

और अचानक धरती म स लावा निकल पडा—चारो तरफ काली और बलता राख उडने लगा—वीरन्द्र न पिछले हफ्ते किसी लडकी स ब्याह कर लिया था

और उस बलते शहर म स निकलने के लिए मैं ने दाया पैर उठाया हुआ था, और बायाँ पर आगे रखन के लिए एडी उठायी हुइ थी कि मैं वहीं का वैसी उस गरम राख में एक लाश बन गया

और यह ह मरे शहर के खँडहरा म मेरी लाश




२२
कविताएँ

ऐ मेरे दोस्त! मेरे अजनबी!

एक बार अचानक तू आया
तो वक्त बिल्कुल हैरान मेरे कमरे में खड़ा रह गया।
साँझ का सूरज अस्त होने को था पर हो न सका
और डूबने की किस्मत वह भूल-सा गया।
फिर अज़ल के असूल ने एक दुहाई दी,
और वक्त ने उन खड़े क्षणों को देखा
और खिड़की के रास्ते बाहर को भागा।
वह बीते और ठहरे क्षणों की घटना—
अब तुझे भी एक बड़ा आश्चर्य होता है
और मुझे भी एक बड़ा आश्चर्य होता है
और शायद वक्त को भी फिर वह गलती गवारा नहीं,
अब सूरज रोज़ वक्त पर डूब जाता है
और अँधेरा रोज़ मेरी छाती में उतर आता है।
पर बीते और ठहरे क्षणों का एक सच है—
अब तू और मैं मानना चाहें या नहीं यह और बात है।
पर उस दिन वक्त जब खिड़की के रास्ते बाहर को भागा
और उस दिन जो खून उस के घुटनों से रिसा
वह खून मेरी खिड़की के नीचे अभी तक जमा हुआ है।

अश्वमेध यज्ञ

एक चत की पूनम थी
कि दूधिया श्वेत मर इश्क का घाडा
देश और विदेश में विचरने चला
सारा शरीर सच सा श्वत
और श्यामकण विरही रग के।
एक स्वणपत्र उस के मस्तक पर
यह दिग्विजय का घाडा—
काई सबल ह ता इसे पकडे और जीते'
और जसे इस यन का एक नियम ह
यह जहा भी ठहरा मैं ने गीत दान किये
और कई जगह हवन रचा
सो जो भी जीतने को आया वह हारा।
आज उमर की अवधि चुक गयी ह
और यह सकुशल मेरे पास लौटा ह
पर कसी अनहोनी—
कि पुण्य की इच्छा नही, न फल की लालसा शेप
यह दूधिया श्वत मेरे इश्क का घोडा
मारा नही जाता मारा नही जाता
बस यही सकुशल रहे पूरा रहे।
मेरा अश्वमेध यन अधूरा है, अधूरा रहे।

बहुत समकालीन है—
सिर्फ एक 'मैं' मेरा समकालीन नहीं।
'मैं' बिना मेरा जन्म—
पुण्य की थाली में पड़ा अपराध का एक सगुन है।
मास में बन्दी हुआ मास का एक क्षण है।
और मास की हर जीभ पर
जब भी कोई लफ्ज़ आता, खुदकुशी करता,
जो खुदकुशी से बचता—
कागज़ पर उतरता, तो कत्ल होता है।
बन्दूक की गोली—
जो एक बार मुझे हनोई में लगती है
तो दूसरी बार प्राग में लगती है
और एक धुआं हवा में तरता है,
और मेरा 'मैं' अठवासे बच्चे की तरह मरता है।
क्या किसी दिन यह मेरा 'मैं' मेरा समकालीन बनेगा?

एक मुलाकात

मैं चुप शान्त और अडोल खड़ी थी
सिर्फ पास बहते समुद्र में तूफान था
फिर समुद्र को खुदा जाने क्या खयाल आया
उस ने तूफान की एक पोटली सी बाँधी
मेरे हाथों में थमायी और हँसकर कुछ दूर हो गया।

हैरान थी पर उस का चमत्कार ले लिया
पता था कि इस तरह की घटना कभी सदियों में होती है

लाखों खयाल आये—
माथे में झिलमिलाये

पर खड़ी रह गयी कि इस को उठाकर
अब अपने शहर में मैं कैसे जाऊँगी ?
मेरे शहर की हर गली तंग है
मेरे शहर की हर छत नीची है
मेरे शहर की हर दीवार चुगली है।

सोचा अगर तू कहीं मिले
तो समुद्र की तरह इसे छाती पर रखकर
हम दो किनारों की तरह हँस सकते थे
और नीची छतों—
और सँकरी गलियों के शहर में बस सकते थे

पर सारी दोपहर तुझे ढूँढते बीती
और अपनी आग को मैं ने खुद ही पी लिया
मैं एक अकेला किनारा किनारे को मैं ने छोड़ दिया
और जब दिन ढलने को था—
समुद्र का तूफान समुद्र को लौटा दिया

अब रात घिरने लगी तो तू मिला
तू भी उदास, चुप, शान्त और अडोल
मैं भी उदास, चुप, शान्त और अडाल
सिफ—दूर बहते समुद्र में तूफान ह

एक मुलाकात
४१

एक घटना

तेरी यादें
बहुत दिन बीते जलावतन हुई
जीती कि मरी—कुछ पता नहीं ।

सिर्फ एक बार—एक घटना घटी
खयालों की रात बड़ी गहरी थी
और इतनी स्तब्ध थी
कि पत्ता भी हिले
तो बरसों के कान चौंकते ।

फिर तीन बार लगा
जैसे कोई छाती का द्वार खटखटाये
और दबे पाँव छत पर चढ़ता कोई
और नाखूनों से पिछली दीवार को कुरेदता

तीन बार उठकर मैं ने साँकल टटोली
अँधेरे को जैसे एक गर्भ-पीड़ा थी
वह कभी कुछ कहता और कभी चुप होता
ज्यों अपनी आवाज़ को दाँतों में दबाता
फिर जीती-जागती एक चीज़
और जीती जागती आवाज़ ।

' मैं काले कोसों से आयी हूँ
प्रहरियों की आँख से इस बदन को चुराती
धीमे से आती
पता है मुझे कि तेरा दिल आबाद है
पर कहीं वीरान सूनी कोई जगह मेरे लिए !

सूनापन बहुत है पर तू ''

चौंककर मैं ने कहा—
"तू जलावतन नही कोई जगह नही
मैं ठीक कहती हूँ कि कोई जगह नही तेरे लिए
यह मेरे मस्तक, मेरे आका का हुक्म ह"

और फिर जसे सारा अँधियारा काप जाता ह
वह पीछे को लौटी
पर जाने से पहले कुछ पास आयी
और मेरे वजूद को एक बार छुआ
धीरे से—
ऐसे, जसे कोई वतन की मिट्टी को छूता ह

कुमारी

मैं ने जब तेरी सेज पर पैर रखा था
मैं एक नहीं थी—दो थी
एक समूची ब्याही और एक समूची कुमारी
तेरे भोग की खातिर—
मुझे उस कुमारी को कत्ल करना था
मैं ने कत्ल किया था—
यह कत्ल, जो कानूनन जायज होते हैं
सिर्फ उन की जिल्लत नाजायज होती है।
और मैं ने उस जिल्लत का जहर पिया था
फिर सुबह के वक्त—
एक खून में भीगे अपने हाथ देखे थे
हाथ धोये थे—
बिलकुल उस तरह ज्यों और गन्दले अंग धोने थे।
पर ज्यों ही मैं शीशे के सामने आयी
वह सामने खड़ी थी
वही जो अपनी तरफ से मैं ने रात कत्ल की थी
और खुदाया!
क्या सेज का अँधेरा बहुत गाढ़ा था?
मैं ने किसे कत्ल करना था और किसे कत्ल कर बैठी

गली का कुत्ता

कई बरसों की बात है—
जब तू और मैं बिछुड़े
कोई पश्चात्ताप नहीं
सिर्फ—एक बात कुछ समझ में नहीं आती

तू और मैं जब विदा कह रहे थे
और हमारा मकान बिक रहा था
चौके के खाली बरतन आंगन में पड़े थे—
शायद मेरी या तेरी आंखों में देखते,
कुछ औंधे भी थे—
शायद मुंह छिपा रहे थे।

एक द्वार की लता, मुरझायी-सी
शायद मुझे और तुझे कुछ कह रही थी
—या पानी के नल का उलाहना दे रही थी

यह सब कुछ और इस सरीखा
कभी याद नहीं आता
सिर्फ एक बात कुछ हूबहू याद आती है—
कि एक सड़क का कुत्ता—
कैसे, और क्या सूंघता
एक खाली कमरे में जा घुसा
और कमरे का द्वार बाहर से बन्द हो गया

फिर तीसरे दिन—
मकान का सौदा जब निबट गया
और चाबियों से हम ने नाते बदलाये,
नये मालिक को हर ताला जब सौंपा

और एक-एक कमरा दिखाया
तो एक कमरे में उस कुत्ते की लाश थी

मैं ने उस का भूँकना कभी नाना न सुना
सिर्फ उस की बू सूँघी थी
और वही बू अब भी अचानक—
मुझे कई चीजों से आती है

सफरनामा

गंगाजल से लेकर वोदका तक,
यह सफरनामा है मेरी प्यास का
सादा पवित्र जन्म के, सादा अपवित्र कर्म का, एक सादा इलाज
और किसी महबूब चेहरे को एक छलकते गिलास में देखने का यत्न
और अपने बदन से एक बिल्कुल बेगाने ज़ख्म को भूलने की ज़रूरत

यह कितने तिकोन पत्थर हैं—
जो किसी पानी के घूंट से गले से उतारे हैं
कितने भविष्य हैं जो वर्तमान से बचाये हैं
और शायद वर्तमान भी—मैं ने वर्तमान से बचाया है

सिर्फ एक ख़याल आया है
कई बार आता है—
ज्यों कई बार एक सारंगी का गज़—
अचानक किसी राग की छाती में चुभता है।
या चुपचाप एक पियानो—
काले और श्वेत दांतों में संगीत चाबता है।

एक ख़याल आता है—
पर जैसे कोई मौत का एक घूंट भरे
डरे, और फिर जल्दी से उस ख़याल की कै सी करे
पर मेरे सीनों में भी कुछ सांस जीवित हैं
और अटके सांसों के साथ आज मैं कह सकती हूँ
कि हर एक सफर सिर्फ वहीं शुरू होता है
—जहाँ यह सफरनामे खत्म होते हैं।

रचना प्रक्रिया

नज़्म कभी कागज़ को दसे और या मुँह मोड़
ज्या कागज़ पराया मन होता ह

पर कभी, एक कुआरी जसे करवे का व्रत रखती ह
और उस रात उसे एक सपना-सा आता ह।
सहसा कोई मरदाना अग छूता ह
और सपने में उस का कम्न काँपता ह

पर कभी आग चाटती वह चौंक जाती
जाग पड़ती
गदराये अगो को टटोलती
चोली के बटनो को खोलती
चाँदनी के चुल्लू तन पर डालती
और तन को सुखाती का हाथ सिमट-सा जाता ह

कम्न का अँधेरा चटाई-सा बिछता
वह औंधी चटाई पर लेटती
उस के तिनके से ताड़ती
और उस का अग-अग सुलग पड़ता
और उसे लगता ह कि उस के कम्न का अधेरा
किसी सबल बाँहो में टूटना चाहता ह

अचानक एक कागज़ आगे को बढता है
और उस के कापते हाथो को छूता ह
एक अग जलता ह
एक अग पिघलता ह
और वह एक अजनबी गन्ध सूँघती
और उस का हाथ तन म उतर आयी लकीरो को देखता ह

हाथ ऊँघता बदन छटपटाता
और माथे पर एक पसीना-सा छूटता
एक लम्बी लकीर टूटती
और साँस—
जन्म की और मौत की दोहरी गन्ध में भीग जाता है

यह सब काली और पतली लकीरें
जैसे एक लम्बी चीख के कुछ टुकड़े-से होते
वह चुप और हैरान निचुड़ी-सी खड़ी, देखती
सोचती—
कि कोई अन्याय हुआ है
उस का कोई अंग मर गया है
शायद एक कुँआरी का गर्भपात ऐसे ही होता है

शहर

मेरा शहर एक लम्बी बहस की तरह
सड़कें—बेतुकी दलीलों सी
और गलियां इस तरह—
जैसे एक बात को कोई इधर घसीटे कोई उधर

हर मकान एक मुट्ठी सा भिंचा हुआ
दीवारें किचकिचाती-सी
और नालियां, ज्यों मुंह से झाग बहती है

यह बहस जाने सूरज से शुरू हुई थी
जो उसे देखकर यह और गरमाती
और हर द्वार के मुँह से
फिर साइकिलों और स्कूटरों के पहिये
गालियों की तरह निकलते
और घण्टियाँ-हार्न एक-दूसरे पर झपटते

जो भी बच्चा इस शहर में जनमता
पूछता कि किस बात पर यह बहस हो रही है ?
फिर उस का प्रश्न भी एक बहस बनता
बहस से निकलता, बहस में मिलता

शंख घण्टों के श्वास सूखे
रात आती सिर पटकती और चली जाती
पर नींद में भी बहस खत्म न होती
मेरा शहर एक लम्बी बहस की तरह

ऐश-ट्रे

इलहाम के धुएं से लेकर सिगरेट की राख तक
उम्र का सूरज ढले
माथे की सोच बले
एक फेफड़ा गले
एक वीभत्सनाम जले

और रागनी—अंधेरे का वदन ज्यों ज्वर में तपे
और ज्वर की अचेतना में—
हर मजहब बरडाये
हर फ्लसफा लँगडायें
हर नज़्म तुतलाये
और कहना-सा चाहे
कि हर सल्तनत सिक्के की होती है बारूद की होती है
और हर जन्मपत्री—
आदम के जन्म की एक झूठी गवाही देती है।

घर में लोहा ढले
कान में पत्थर ढले
सोचों का हिसाब रुके
सिक्के का हिसाब चले
और मैं आदम—अन्त में बनता मास की एक ऐश-ट्रे
इल्हाम के धुएँ से लेकर सिगरेट की राख तक
मैं ने जो चित्र पिये
उन की राख झाड़ी था
तुम भी झाड़ सकते हो

और चाहो तो मास की यह ऐश-ट्रे मेज पर सजाओ
या गान्धी, लूथर और कनेडी कहकर
चाहो तो तोड़ सकते हो

वैराग्य

मुद्दत से एक बात चली आती थी
कि वक्त का ताक़त रिश्वतें देती
इतिहास से चोरी इतिहास के पन्नों को खरीदती,
वह जब भी चाहती रही
कुछ पंक्तियाँ बदलती और कुछ मिटाती रही
इतिहास हँसता रहा, खीझता रहा
और हर इतिहासकार को वह माफ करता रहा।
पर आज शायद बहुत ही उदास है—
एक हाथ उस की जिल्द को उठाकर
कुछ पन्नों को फाड़ता
और उन की जगह कुछ और पन्ने सी रहा है
और इतिहास—चुपके से उन पन्नों से निकलकर
एक पेड़ के नीचे खड़ा एक सिगरेट पी रहा है

एक सोच

भारत की गलियां में भटकती हवा
चूल्हे की बुझती आग को कुरेदती
उधार लिये अन्न का एक ग्रास तोडती
और घुटनों पे हाथ रख के फिर उठती है

चीन के पीले और जर्द हाथों के छाले
आज बिलखकर एक आवाज देते हैं
वह जाती और हर एक गले में मूकती
और चीख मारकर वह वीयतनाम में गिरती है

श्मशान घरों में से एक गंध सी आती
और सागर पार बैठे—श्मशान घरों के वारिस
बारूद की इस गंध को शराब की गंध में भिगोते हैं।

बिल्कुल उस तरह, जिस तरह—
कि श्मशान घरों के दूसरे वारिस
भूख की एक गंध को तकदीर की गंध में भिगोते हैं
और लोगों के दुखों की गंध को—
तकदीर की गंध में भिगोते हैं

और इसराइल की नयी-सी माटी
या पुरानी रेत अरब की जो खून में है भीगती
और जिस की गंध—खामखाह शहादत के जाम में है डूबता

छाती की गलियों में भटकती हवा
यह सभी गंधें सूंघती और सोचती—
कि धरती के आंगन से सूतक की महक कब आयगी ?
कोई इड़ा—किसी माथे की नाड़ी
—कब गर्भवती होगी ?
गुलाबी मास का सपना—
आज सदियों के ज्ञान से खाय का बूंद मांगता

एक खत

मैं—एक आले म पडी पुस्तक !
शायद सन्त-वचन हूँ, या भजन माला हूँ,
या काम सूत्र का एक काण्ड
या कुछ आसन, और गुप्त रोगो के टोटके
पर लगता ह मैं इन में स कुछ भी नही।
(कुछ हाती तो जरूर काई पढता !)

और लगता—कि क्रान्तिकारियो की सभा हुई थी
और सभा में जो प्रस्ताव रखा गया
मैं उसी की एक प्रतिलिपि हूँ
और फिर पुलिस का छापा
और जो पास हुआ कभी लागू न हुआ
सिफ कारवाई की खातिर सँभालकर रखा गया।

और अब सिफ कुछ चिडियाँ आती ह
चोच में कुछ तिनके लाती ह
और मेरे बदन पर बठकर
वह दूसरी पीढी की फिक्र करती ह
(दूसरी पीढी का फिक्र कितना हसीन फिक्र ह !)
पर किसी भी यत्न के लिए चिडियो के पख हाते ह
पर किसी प्रस्ताव का कोई पख नही हाता।
(या किसी प्रस्ताव की कोई दूसरा पीढा नही हाती ?)
सिफ कभी साचती हू कि सूँघकर देखू
कि मेरा भविष्य कहा ह ?
और इस फिक्र म मेरी कुछ जिल्द उतरती ह
पर जब भी कुछ सूघना चाहू
सिफ चीटों की गन्ध आती ह
ओ मेरी धरती के भविष्य !
मैं—तेरी वतमान दशा !

राजनीति

सुना है, राजनीति एक क्लासिक फ़िल्म है
हीरो बहुमुखी प्रतिभा का मालिक रोज़ अपना नाम बदलता
हीरोइन हुकूमत की कुरसी, वही रहती है
ऐक्स्ट्रा राजसभा और लोकसभा के मेम्बर
फाइनान्सर दिहाड़ी के मज़दूर, और खेतिहर
(फाइनान्स करते नहीं, करवाये जाते हैं)
संसद इनडोर शूटिंग का स्थान
अखबार आउटडोर शूटिंग के साधन
यह फ़िल्म मैं ने देखी नहीं सिर्फ सुनी है
क्योंकि सेन्सर का कहना है—'नाट फार अडल्टस।

टोस्ट

कल शीशे की सुराही में
मैं ने ख़यालों की शराब भरी थी
ख़याल बड़ सुर्ख़ थे
दोस्तों ने जाम पिये थे
और उन लफ़्ज़ों के टोस्ट दिये थे
जो छाती में नहीं उगते।
वह कौन-से पेड़ों पे उगते हैं
और होठों के गमलों में किस तरह आते हैं!
यह सोचने का वक़्त न था
या इस तरह कहूँ कि सोचने में ख़ौफ़ लगता था
यह लफ़्ज़ों का जश्न था
भुलावों की वर्षगाँठ
मैं थी रात थी ख़यालों की शराब थी और बहुत दोस्त
दोस्त जो कुछ बुलाने पर आये थे कुछ बिन बुलाये।
सिर्फ़ एक कोई 'वह' था
जो बहुत बार बुलाने पर भी नहीं आया।

अभी सुबह हुई है—
रातों को चीरकर छाती में सूरज की किरण घुसी है
अभी मैं ने एक सघन वन देखा है
ख़ुदगर्ज़ियों के पेड़ देखे हैं
और पेड़ों पर आयी अजीब पतझड़ भी देखी है
पतझड़—जो लफ़्ज़ों पर नहीं आती
सिर्फ़ अर्थों पर आती है,
दोस्तों के लफ़्ज़ अभी भी गुलाबी हैं
बहार के फूलों की तरह
सिर्फ़ अर्थ झरते देख रही हूँ
और भरे जंगल में मैं बिल्कुल अकेली हूँ

मैं हूँ, चुप है, एक किरण है और शीशे की खाली सुराही है।

यह कैसी चुप है कि जिस में पैरों की आहट शामिल है
कोई चुपके से आया है—
चुप से टूटा हुआ—चुप का टुकड़ा
किरण से टूटा हुआ किरण का टुकड़ा
यह एक कोई वह है
जो बहुत बार बुलाने पर भी नहीं आया था।
और अब मैं अकेली नहीं, मैं आप अपने संग खड़ी हूँ
शीशे की सुराही में नज़रों की शराब भरी है—
और हम दोनों जाम पी रहे हैं
वह टोस्ट दे रहा है उन लफ़्ज़ों के
जो सिर्फ़ छाती में उगते हैं।
यह अर्थों का जश्न है—
मैं हूँ, वह है और शीशे की सुराही में नज़रों की शराब है

स्टिल लाइफ

यह जलियाँवाला—
और उस की दीवार में चुपके से बैठे गोलियों के छेद
यह सायबेरिया—
और उस की जमीन पर चीखों के टुकड़े बर्फ में जमे
कांसेन्ट्रेशन कैम्प—
इनसानी मांस की गन्ध भट्ठियों की राख में सोयी
यह बरागुयवाच—
जिस की कुल आबादी एक पत्थर के बुत में सिमटी
यह हीरोशिमा है—
जो एक कोने में एक फटे हुए दस्तावेज़ की तरह पड़ा है
और यह प्राग—
जो साम रात आज सागर की मुट्ठी में बैठा है।
हर चीज़ चुप और उदास है
सिर्फ मेरी छाती में से एक गहरा उच्छ्वास निकलता है
और धरती का हर टुकड़ा हिल सा जाता है।

मेरा पता

आज मैं ने अपने घर का नम्बर मिटाया है
और गली के माथे पर लगा गली का नाम हटाया है
और हर सड़क की दिशा का नाम पोंछ दिया है
पर अगर आप ने मुझे जरूर पाना है
तो हर देश के, हर शहर की हर गली का द्वार खटखटाओ
यह एक शाप है, एक वर है
और जहां भी आजाद रूह की झलक पड़े
—समझना, वह मेरा घर है।

चुप की साजिश

रात ऊँघ रही है
किसी ने इनसान की छाती में सेंध लगायी है
हर चोरी से भयानक यह सपनों की चोरी है।

चोरी के निशान—
हर देश के हर शहर की हर सड़क पर बैठे हैं
पर कोई आँख देखती नहीं, न चौंकती है।
सिर्फ एक कुत्ते की तरह एक जंजीर से बँधी
किसी वक्त किसी की कोई नज़्म भौंकती है।

काजान ज़ाकिस

मैं ने ज़िन्दगी को इश्क किया था
पर ज़िन्दगी एक वेश्या की तरह
मेरे इश्क़ पर हँसती रही
और मैं उदास एक नामुराद आशिक
सोचों में घुलता रहा
पर जब इस वेश्या की हँसी
मैं ने कागज़ पर उतारी
तो हर अक्षर के गले से एक चीख निकली
और खुदा का तख्त कितनी ही देर हिलता रहा।

इमरोज चित्रकार

मेरे सामने ईजल पर एक कनवस पडी ह
कुछ इस तरह लगता ह—
कि कनवस पर लगा रग का टुकडा
एक लाल कपडा बनकर हिलता है
और हर इनसान के अन्दर का पशु
एक सीग उठाता ह।
सीग तनता ह—
और हर कूचा गली बाजार एक 'रिंग' बनता ह
मेरी पजाबी रगो म एक स्पेनी परम्परा खौलती
गोया की मिथ—बुल फाइटिंग—टिल डथ

अमृता प्रीतम

एक दर्द था—
जो सिगरेट की तरह मैं ने चुपचाप पिया है
सिर्फ़ कुछ नज़्में हैं—
जो सिगरेट से मैं ने राख की तरह झाड़ी हैं।

१३

लेख

नेपाल की एक गाती हुई रात

सारा नेपाल जसे एक वृक्ष हैं, मंदिर के फूलों से ढका हुआ। सभी मौसम पास से गुजर जाते हैं, किसी का साहस नहीं कि कोई इन फूलों को छू ले। सदियों मनुष्य के मन की भटकन इन फूलों को प्रणाम करती है। गरीबी के आंचल में बसे हो प्रणाम के बिना कुछ नहीं होता। चढ़ी-बढ़ी अमीरी भी, जो अपनी रात किसी कुँआरे यौवन की खुशबू में गुज़ार लेती, सुबह उठकर सौ तोला सोना इन मन्दिरों की पडी पर रख जाती। आज भी इन कलाकृतियों के माथे पर सोना मढ़ा हुआ है, होठों में आहें जमी हुई हैं।

एक आर बागमती नदी है। लोक की हार, परलोक की जीत में विश्वास कर के, हमेशा गुज़र करती रही है। इस नदी का पानी लोगों के विश्वास को अच्छी तरह धाने के लिए सदा बहता रहता है। किसी आदमी की सास रुकती हुई लगे, तो उस के रिश्ते-नाते के लोग उसे इस नदी के किनारे पर ले आते हैं। चाहे उस की साँस कोई जिद ही कर बठे और आठ-आठ, दस-दस दिन उस के मुँह में अटकी रहे, पर वह इस के पानी की ओर देख-देखकर अपना विश्वास मैला नहीं होने देता कि उस का परलोक सँवर जायेगा।

पर्वतों के माथे सदियों से ऊँचे हैं। यद्यपि वादी का एक एक राजा सौ-सौ जवान कैरियों के आंसुओं में डूबता रहा और वादी का एक एक श्रमिक सौ-सौ श्रमों के पसीने में। और फिर इस वादी की मिट्टी में से क्रान्ति उगी। शुक्रराज को जिस वृक्ष के साथ फांसी दी गयी, लोगों ने पहरेदारों की आँख बचा ली, और उस वृक्ष को अगले रोज़ ही फूल-चन्दन से पूज लिया। गंगालाल, धर्मभक्त और दशरथचन्द को जिस ज़मीन पर खड़ा कर के गोलियों से मारा गया, लोगों ने वहां की मिट्टी को माथे पर लगा-लगाकर वहां गढे डाल दिये।

"आज हमारे कवि बेदाम बसर से मर रहे हैं और बेगम तपेदिक से, पर यह हिमालय हमारा गवाह है। हमारा कविता के साथ प्रेम नहीं टूट सकता।" एक नेपाली कवि ने कहा और फिर काठमाण्डू की शरद् सन्ध्या में जसे एक चिनगारी बल उठी।

पंजाबी कविता ने कहा—

> विरह की इस रात में कुछ आलोक आ रहा है!
> फिर याद की बत्ती कुछ और ऊँची हो गयी है।

इस बत्ती के गिर्द जाने कितनी बत्तियां बल उठीं। विरह की रात जिसे नसीब नहीं हुई थी।

एक घटना, एक घाव और एक टीस दिल के पास थी
रात को यह सितारा की रकम जरबें दे गयी।

और रात ने सारे दिलवालों को टीसों को सितारों से जरब दे दी। सुमन ने टैगोर के शब्दों में कहा—

दौलत भी है रूप भी, शोहरत भी
फिर यह पीड़ा कैसी ?
लगता है कोई सदियों की विरहिन
मेरे सीने में बैठी हुई है।

बर्फ से ढके हुए पर्वतों की पानी में आग जल गयी। दीवाने इस आग को लोहड़ी (पंजाब का एक त्योहार) बनाकर सेंकने लग गये। कोई लकड़ी नेपाली कविता की थी, कोई हिन्दी कविता की कोई बंगाली की और कोई पंजाबी की।

धर्मराज थापा ने किसी नेपाली लोकगीत की एक लकड़ी इस लोहड़ी की आग में डाल दी।

वृक्ष अपनी बेलों से लदा हुआ है,
मैं दुःख की बेला से ढका हुआ हूँ।
वृक्ष से यह जादू जाने किस बीज ने किया था,
मेरे साथ ये जादू तेरी लाल वेणी ने किया है।

माधवप्रसाद घीमीरे ने लाटा को ऊँचा किया—

जब कोई किन्नरी रोती है, तब पर्वतों के कोने से पहला
बादल उठता है।
जहाँ मेरी प्रेमिका अकेली बैठकर रोती है,
यह सतरंगी पेंग उसी गुफा से निकली है

गंगा बहती बहती जाने कहाँ पहुँच गयी
जिन्दगी भी रोती रोती जाने कहाँ चली जायेगी
जैसे बादल आ गये
और पर्वतों की चोटियाँ नीली साँवली हो गयी
ऐसे ही तेरा विरह मुझ पर छा गया है।

जैसे फूलों की पत्तियों ने
ओस-कण को अपनी बाहों में समेट लिया है
ऐसे ही मैं ने अपनी पलकों में तेरा आँसू छिपा लिया है।

उस महफिल में कौन था, जिस ने अपनी पलकों में किसी न किसी का आँसू नहीं छिपाया था ? किस का दिल था जिस ने किसी न किसी के वृक्ष पर सपनों का

घोसला नही बाधा होगा कि नेपाली लोकगीत के होठ हिले—

कई सुन्दर वृक्ष होंगे
चील को जो ऊँचा वृक्ष पहले दिखाई दिया,
उसी पर वह बैठ गयी।
मैं ने तुझे ही सब से पहले देखा,
और मेरे दिल ने नीड बना लिया।

यह नीड क्या बनते हैं, जहाँ कोई रह नहीं सकता ? इस राह में वे राही क्या मिलते है, जो दो कदम भी साथ नहीं चल सकते ? किसी को मालूम नही। सुमन को गालिब की तरह कोई राह-गुजर याद आया—

जिन्दगी तो मिल गयी थी
चाही या अनचाही,
बीच में यह तुम, कहा से मिल गये राही !

निराला वहा नही था, पर उस का स्वर वहा था—

बाधो न नाव इस ठाव बन्धु—पूछेगा सारा गाव बन्धु !

सिद्धिचरण श्रेष्ठ की एक पक्ति ने कभी उसे साढे पाच बरस जेल में रखा था 'क्रान्ति बिना शाति नही।' आज उस की प्यार-क्रान्ति कह रही थी—

मेरे कितने आँसू और कितनी आहें खर्च हो गयी,
मैं कुछ नही कहता।
पर मेरी मृत्यु के पश्चात तू मेरी कविता पढेगी,
आकाश से पूछेगी, "उस ने मुझे प्यार किया था ?"
एक बूँद तेरी आँखो मे अटक जायेगी
एक आह तेरे होठो पर जम जायेगी।

नेपाल का एक लोकगीत तिड तिड कर के बजने लगा—

मेरे हाथो की चूडियो ने
मेरे हाथ छील दिये
मेरे गाँव की बातो ने
मेरा मन खरोच डाला।

शकर लामी छाने की कविता 'भरा-पूरा जाडा जस रक्सी (नेपाल की शराब) का प्याला था—

आज पोखर के किनारे की सारी हवाएँ चुपचाप खड़ी हुई है,
उन की उँगलियाँ आज पानी को नही छेडती,
सारे सरोवर पर कुहरा जम गया है।

नेपाल में दशहरे के दिन बलि के समय पशु के सिर पर पानी का छिडकाव होता है, जिस से वह काँपता है। उस काँपने को उस की इच्छा समझा जाता है।

तू आज किसी छिन्दाव से मत काँप जाना
आज हिमालय की विजयादशमी है
और वह सारी धूप की शराब पीकर मतवाला हो गया है।

धूप की शराब हिमालय ने पी होगी। सुननेवालों ने इस खयाल की शराब का घूँट भरा और 'चीसो चूल्हो (ठण्डे चूल्हे)' महाकाव्य लिखनेवाले बालकृष्ण सम ने झूमकर कहा—

मैं कभी नहीं मरूँगा
मैं अमर—मैं खोऊँगा नहीं।
अँधेरे आकाश के खुले खेत में
मैं कल्पना की सीमा से भी पार गया
अनन्त समय बीत गया,
काल मर गया, मैं नहीं मरा।
अणु-परमाणुओं का आटा गूँधकर
आकाश के चकले पर
हवा के बेलन से बेल बेल,
मैं ने बादलों की रोटियाँ पकायीं
मैं ने ब्रह्माण्ड का अण्डा फोड़ा
असत्य से सत्य बना
किरणों की कूँची से मैं ने आकाश को रँगा

प्रबोधकुमार सान्याल स्वयं कवि था, अस्सी पुस्तकों का लेखक, अठारह फिल्मों का कहानी-लेखक। पर आज उस की ज़बान पर सिर्फ टैगोर बैठा था। सुमन के पास सिर्फ अपनी हिन्दी कविता की ही आग नहीं थी, उस ने बिहारी, कालिदास, निराला, नवीन टैगोर, गालिब फ़ैज़ और जाने किस किस की आग सँभालकर रखी हुई थी।

"ये नेपाल के कवि पहले दिन के सूरज की अन्तिम किरण को दूसरे दिन के सूरज की पहली किरण से गाँठना जानते हैं।" डा सुमन ने कहा, और सच ही यह वह रात थी जिस के हाथों से मैं ने किरणों की गाँठ पड़ती देखी।

"शैली बड़ी कि विषय ?" यह एक प्रश्न था। परन्तु दिनकरजी ने एक ही मिनट में इसे हल कर दिया, "अभी वह कारखाना नही बना, जहा ऐसी आरी का निर्माण किया जा सके, जिस के साथ शैली और विषय को चीरकर अलग-अलग किया जा सके।"

शचि रावत राय ने कहा—

मेरा गाँव छोटा-सा था
मेरा दिल पत्थर का टुकडा था
मेरे गाव में चन्द्र आया
उस ने मुझे कवि बना दिया
मेरे स्वप्नो ने सात रगो झूला डाला
मेरी कल्पना उस झूले पर झूलने लगी

दिनकरजी की कल्पना ने भी इसी झूले पर बठकर कहा—

चाद झील में उतर आया
आकाश कितना शान्त प्रतीत होता ह
तारा की खेती जल में तरती ह
शायद चाँद क्रांति बन फसल काटने आया ह।

मनोरमा महापात्र ने विकृत अधकार में विश्वास की चिनगारी को सुलगाते हुए कहा—

मेरे हृदय-वन में एक बात भटक रही है
मेरे हाथ वह आती नही
वह बात मैं तुम्हें सुनाऊँगी
मैं ने कितने मुँह देखे हैं
तेरा चेहरा नही मिला
जिस दिन तू मिल जायेगा
हृदय-आरण्य में भटकती
वह बात भी मुझे मिल जायेगी।

रमाकान्त रथ की आयु छोटी थी, परन्तु भटकन की एक बडी घटना उस के हृदय के साथ घट गयी थी।

उदित हो रहा सूर्य मेरे आँसुओं से भाग गया
खेतों की बाड़ से जाते हुए
मैं ने अपनी जूती को कई बार सिल्वाया
इन पाँवों से मैं ने बड़ी
ऊँची-नीची धरतियाँ पार की हैं
मेरा कमीज की जेबों में
आँखों के आँसू भरे हुए हैं
आज प्रभात के मुख पर
मेरे खून के छींटे पड़े हुए हैं

यह रमाकान्त का ही नहीं, हम सब का भाग्य था। कला निर्मित होती है। कलाकार उस की नींव में अपनाआप डालता है। दिनकरजी ने पहले उन नींवों की पीड़ा का उल्लेख किया और फिर उस के निर्माण का—

नित्य प्रात एक नयी नाव आती है
सागर वही होता है तीर भी वही
प्रत्येक नया दिन एक नूतन भाव दे जाता है
पीड़ा वही है आँखों के आँसू भी वही
कवि, रेत पर पड़ रहे मानव के पद चिह्नों को सभाल
भविष्य की भेंट चढ़ा देता है।

बुनियादें बहुत गहरी होती हैं। उन की पीड़ा का उल्लेख इतनी शीघ्रता से समाप्त होनेवाला नहीं था। कुमारी तुलसीदास कह रही थी—

मैं ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया
कुछ भी तो पास नहीं रखा
विश्वास का सिर नीचा हो गया
आराधना हार गयी
मेरे प्राण एक विष पी गये

दिनकरजी ने भी इस विष का एक घूँट भरते हुए कहा—

तुम जाती बार
उन शब्दों को भी साथ ले गये
जिन के साथ अर्थों का आलिंगन था
और तुम छन्द पीछे छोड़ गये
वह छन्द उस वायु के समान है
जो हवा से भरे वन में तड़प-तड़पकर चलती है
परन्तु किसी फूल को स्पर्श नहीं कर सकती

यह पीड़ा जिस अनुकम्पा का द्वार पार कर के आती है, कनकलता देवी ने उस

अनुकम्पा की देहली पर खडे होकर कहा—

किस का स्पर्श हुआ
सूना हृदय खिल गया
कहाँ से एक चिनगारी आयी
अँधेरी रात का शरीर प्रकाशित हो उठा
कहा से आयी ये पवित्र बूँदें
मेरा भीतर बाहर सब धुल गया
यह किस के बोल मेरे कानो म पडे
जीवन के सन्तप्त स्थल शान्त हो गये
कौन ह वह मोहन जिस ने बाँसुरी में फूँक मारी
मेरे हृदय के सुप्त स्वर जाग्रत हो गये
यह किस का इशारा था
जीवन के शब्दा में अर्थ भर गये ।
यह कैसा मन्त्र था
मुझे छोडकर चले गये
यह तेरा जादू
मेरे शरीर से दुखो का झाड गया
तू मेरी पारस मणि

यहा ऐसा कौन था जिस ने जीवन के शब्दा में अथ भरते हुए नही देखे थे ! कौन ऐसा था जिस से उस का 'वह' नहा बिछुडा था जो जाते हुए उन शब्दो को भी साथ ले जाता है, जिन से अर्थों के प्रगाढालिगन होते ह !

मनोरमा की पीडा कई गुना थी । कलाकार होने के नाते, एक पीडा उसे परम्परा से मिली थी और नारी होने के नाते दुनिया ने उस की पीडा का भी प्रति बधो से गुणा कर दिया था । वह कहने लगी—

कितनी ही पीडाएँ
मेरे हृदय में सुलग सुलग उठती ह,
तुम उन की जबान क्यो बन्द करते हो !
इतने अँधेरों में
मुझे गीतो का प्रकाश ढूँढ लेने दो,
लेखनी की डण्डी पर
कल्पना का फूल खिलने दो
मेरे प्राणा में
इन फूलों के बीज सुरक्षित पडे ह—
इन सुमनो को लिखने दो ।

मेरे हृदय की सारी पीड़ा
सौरभ का रूप धारण कर लेगी,
मेरा नाम साग है
स्वप्नों की लहरें उस में आती हैं,
एक दिन वे स्वप्न के मोती
मेरे हाथ में दे जायेंगी,
मेरी कला अभी एक छोटी कली है
यह कली एक दिन फूल बन जायेगी,
तुम इस कली की डण्डी मत मसलो
मेरी अर्चना के दीप को फूँकें न मारो,
मेरी कल्पना के आकाश पर
सूरज अस्त हो जायेगा
मैं फिर कला की मूर्ति नहीं
कला की कब्र बन जाऊँगी।

मनोरमा के बोल देखकर मुझे मोहनसिंह के बोल याद आ गये, "एक मद, दूसरा बादशाह, तीसरा सम्राट का बेटा। नूरजहाँ, तू ने फिर उस से वफ़ा की आशा कर ली।' मैं ने मनोरमा से कहा "तुम एक कलाकार, और फिर नारी इन पीडाओं का अन्त कहाँ होगा ?'

नारी, माँ होती है अथवा प्रेमिका। दो लोकगीत कह रहे थे—
मेरे बच्चे तुम विवाह करने जा रहे हो,
मेरे दूध का मूल्य चुका जाना,
मेरे प्यारे, तुम मुझे छोड़कर जा रहे हो
मेरे प्राणों का मूल्य देते जाना।

तमिल कवि वहाँ कोई नहीं था, परन्तु एक तमिल गीत वहाँ था। उस गीत में जिस माँ का उल्लेख था, वह सारे विश्व की माताओं के हृदय की सामूहिक आवाज थी—

ओ शिवजी,
तुम्हारी माँ कोई नहीं
क्या इसी लिए तुम भंग पीने लग गये हो ?
तुम्हारी माँ कोई नहीं
क्या इसी लिए तुम गले में साँपों की माला पहन रहे हो ?
तुम्हारी माँ कोई नहीं
क्या इसी लिए तुम श्मशानों में जा बैठे हो ?
भोले शंकर,

अब तुम्हें मा वहाँ से मिलेगी।
आओ, तुम मुझे अपनी मा बना लो।

पीडा और उस को सहन करने की क्षमता के सत्कार से कौन इनकार करेगा? अपना स्वय भी इस से इनकार नही कर सकता। अनन्त पटनायक कह रहा था—

यह मेरी वन्दना
अपनेआप को
आसुओ की नदी
ऊपर ममता का पुल
पास ही निर्माण हुआ
मित्रता का सफेद ताज
क्या यह मैं ने नही देखा?
खेतो का जन्म
गेहू की मुसकराहट
और बालियो का सगीत
क्या यह मैं ने नही सुना?
मैं दुखो से पिघल रहा हू
मेरा मौन मेरी मौत से सघर्ष कर रहा है
इस मौन का मेरा प्रणाम
यह मेरी वन्दना
अपनेआप को

दिनकरजी ने अनन्त पटनायक की वन्दना में एक पक्ति और जोड दी—

मैं वह झरोखा हूँ
जिस में से ससार बाहर की ओर देखता है।

बात भीतर की ही बहुत बडी थी, परन्तु बाहर तो कही इस का पार ही दिखाई नही देता था। शचि रावत राय ने कहा—

मैं शचि रावत राय–
मैं टैगोर नही,
मैं शैली नही
मेरे कागजो पर आकर्षक चित्र नही,
मेरी पुस्तक को खोलना
इस में नये मानव का स्पर्श है,
इस के होठो पर गाथा है,
मानवता की गाथा है।

एक भीतर के तूफान थे और आधी बाहर से आ रही थी। झरोखे खुले थे।

शचि रावत राय ने कहा—

एक प्रणाम
इस आ रही आँधी को।
मेरा प्रणाम
यह पर्वत यह दरिया, यह सागर—
इन सब को प्रणाम।
तुम ग्लिल हलका नहीं करना,
अपने घर का कोई द्वार बन्द न करना,
अपने घर की कोई खिड़की बन्द न करना
स्वागत इस आनेवाली आँधी का
प्रणाम इस आ रही आँधी को।

१९३८ की बात थी इस उड़ीसा में एक रियासत थी ढेंकानल। एक ओर लोकजागृति थी दूसरी ओर रियासती दमनचक्र। एक रात रियासती पुलिस को नदी पार करनी थी। किनारे पर एक ही नाव थी, नील कण्ठापुर का बारह वर्षीय नाविक पुत्र नाव के पास खड़ा था। पुलिस ने आवाज़ दी परन्तु नाविक-पुत्र ने हुंकारा न दिया। पुलिस ने पुनः आवाज़ दी। नाविक-पुत्र ने कहा 'मैं हत्यारों के लिए नाव नहीं चलाऊँगा।' पुलिस ने तत्क्षण मासूम नाविक-पुत्र को गोली मार दी। उस का नाम बाजी राउत था। उस की लाश कटक में लायी गयी। शचि रावत राय ने उस का मुख देखा तो उसे प्रतीत हुआ वह भारत की मिट्टी से उत्पन्न हुआ लाल फूल था। उस दिन शचि रावत राय को ऐसा प्रतीत हुआ था कि नन्हे बाजी राउत की मौत उसे कह रही थी—

मेरे कवि

अब तू जीवन का दुभाषिया बन जा
अब तू लोगों के रिसते घावों के गीत लिखना,
लोगों की आँखों से बह रहे अश्रुओं के गीत गाना।

उस दिन शचि रावत राय ने विद्रोह की आँधी को प्रणाम कर के बाजी राउत की माँ को कहा था—

माँ! अपने आँसू पोछ ले,
आज लोग गीत गा रहे हैं
तेरे रक्त की विजय के गीत
जो कभी तेरा था
आज उस को समस्त विश्व ने अपना लिया है,
देख तेरा बेटा पुनः जन्म ले रहा है
इस बार विश्व के गर्भ से उस का जन्म हुआ है।

आज रावत राय कह रहे थे—

इस शताब्दी के बडे द्वार से
एक दूत आया है
उस ने भविष्य का सन्देश दिया है
भविष्य
जहा जीवन जीवन के लिए होगा।

आज के कानो म चाहे दुखा की सलाइया चुभी हुई थी, परन्तु वे कान फिर भी भविष्य का सन्देश लेकर आनेवाले दूत के शब्दो को चूम रहे थे।

कभी नाग ने फण फलाया था, तो कृष्ण ने उस पर खडे हो बासुरी बजायी था। दिनकरजी ने आज साप को जीवन और कृष्ण को मानव कहा। मानव कह रहा था—

ऐ जीवन! जिस ने तुम्हें
विप का उपहार दिया
उसी ने मुझे गीतों की सौगात दी।
तुम सोच रही हो, तुम्हारा विप पराजित नही होगा,
मैं सोच रहा हूँ, मेरे गीत नही हारेंगे।

पजाबी कविता ने कहा, "यह मुहब्बत की बात, गीतों की कहानी कैसे समाप्त करेंगे, प्रति दिन तारे रात को इस बात का हुकारा भरते आ जाते है।

बासा के सहारे चटाइयो की छत डाली हुई थी। भीतर एक कपडा तना हुआ था। चटाइयो में से छनकर जो सूरज का प्रकाश आ रहा था, पहले कपडा उसे समेट लेता था और जितना प्रकाश उस के हाथों बचता, वह छोटे छोटे तारो का रूप धारण कर रहा था।

पाँवा के नीचे उडीसा की धरती थी। सिर पर तारों की छत। मुहब्बत अपनी कहानी सुना रही थी—एक मानव की मुहब्बत—सारी मानवता की मुहब्बत, और तारे हुकारा भर रहे थे।

धरती का सम्बन्ध

'यदि मेरा सम्बन्ध धरती से शेष रह गया होगा, तो यह हवाई जहाज अवश्य फिर से नीचे उतरेगा।" दिनकर ने मुझ से कहा। मुझे अनुभव हुआ कि जैसे दिनकर एक ऐसी सरल युवती है जो अपनी सहेलियों की नकल करती हुई व्रत रख बैठी है। व्रत के नियम के अनुसार सारा दिन भूखे रहकर रात चाँद निकलने पर ही जल-स्पर्श करना होता है। चाँद निकलने पर ही नहीं आता तो तंग आकर वह युवती सुन्दर कण्ठ से जल माँगती हुई कहती है अजी यह चाँद है कौन जाने कब का निकले! निकले निकले, नहीं निकले तो नहीं निकले। ठीक यही अवस्था मुझे दिनकर की लगी।

वसे देखा जाये तो दिनकर ने यह व्रत आज प्रथम बार नहीं रखा था इस के पूर्व भी कई बार अपनी सखियों का अनुकरण करते हुए व इस परीक्षा से निकल चुके थे—चीन जाते हुए पोलैण्ड जाते हुए, रूस जाते हुए। प्रत्येक बार दिनकर को यही अनुभव हुआ 'यह चाँद का मामला है यह हवाई जहाज की बात है क्या पता चाँद निकले भी कि नहीं क्या पता हवाई जहाज नीचे उतरे भी कि नहीं!

'मुझे धरती और नींद से बहुत प्यार है अमृता! प्रत्येक बार सोते समय मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि यदि भारत परतन्त्र होने लगे तो मुझे जगा लेना नहीं तो मुझे सो लेने देना।

कलकत्ता से भुवनेश्वर तक जाते हुए हवाई जहाज में हम कुल नौ यात्री थे। परन्तु तीन बड़े टोकरे छोटे छोटे मुर्गों से भरे हुए थे। यात्रियों से उन की संख्या कई गुना अधिक थी। उन की आवाज का शोर इतना था कि कोई बात सुन सकना सम्भव नहीं था। मैं ने यह शिकायत की तो दिनकर ने कहा ये हमारे आलोचक हैं अमृता! कला की कोई बात ये कानों में जाने ही नहीं देते '

हिन्दी लेखक दिनकर जब यह कह रहे थे मुझे स्मरण हो आया कि जब हम काठमाण्डू में पशुपतिनाथ के मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे, तो कई बड़े मोटे बन्दर हमारे पास चलने फिरने लगे थे। मैं डर गयी थी तो बंगाली लेखक सान्याल ने कहा *था "बस इन से बचने का एक ही उपाय है इन से आँख मत मिलाओ फिर ये कुछ* नहीं कहेंगे अमृता! ये हमारे समालोचक हैं। हमें इन से आँखें चार नहीं करनी चाहिए, मौन रहते हुए अपने कला के मार्ग पर बढ़ते रहना चाहिए।"

मेरे हाथ में 'लाइफ पत्रिका थी। उस में सामरसेट माम कह रहे थे

"समालोचक महाशय! तुम्हारे मन में जो आये लिखो, मुझे तुम्हारा लेख पढ़ना ही नहीं।'

सामरसट माामवाली बात पर हम ने भी अमल किया। मुर्गों की कुडकुड की ओर से जब हम ने कान ही बन्द कर लिये तो दिनकर ने कहा, "मैं कवि हूँ, एक कवि हूँ, एक झरोखा हूँ, जिस से संसार बाहर की ओर देखता है।"

इन झरोखों से संसार को देखने के लिए ही तो उड़ीसा के लोगों ने दिनकर को बुलाया था। अब वे भुवनेश्वर के हवाई अड्डे पर हमारा स्वागत करने के लिए खड़े थे।

अपने प्रदेश के अतिथिगृह में बठाकर वे पूछने लगे, "आप क्या खाना पसन्द करेंगे?"

"एक सांप और एक कछुए के अतिरिक्त आप जो कुछ मुझे खिलायेंगे, मैं खा लूँगा।' दिनकर ने कहा और जब उन्होंने प्लेटों में मछली और मुर्गा परोसा तो दिनकर ने मुसकराकर कहा, 'वाह वाह यह मछली भगवान का प्रथम अवतार है इसे तो मैं अवश्य खाऊँगा। मुर्गा यह तो भगवान राम का पक्षी है, इसे भी जरूर खाऊँगा।"

सांपवाली बात शायद दिनकर को भूली नहीं थी। कटक के पण्डाल में दिनकर ने कविता पढ़ी—

नागराज के व्यापक फणों पर खड़े हो
राधावर ने अपनी बांसुरी की तान अलापी
आज अखिल विश्व सांप का विस्तृत फण है
मैं मानवता की बांसुरी बजाता हुआ मानवता के गीत
गा रहा हूँ।
जिन्दगी! जिस ने तुम्हें विष का उपहार दिया है,
मुझे उस ने ही गीतों का वरदान दिया है
तुम सोच रही हो, तेरा विष पराजित नहीं होगा
मैं सोच रहा हूँ, मेरे गीत कदापि पराजित नहीं होंगे।

धरती का विष मानव से बार-बार अपना सम्बन्ध विच्छेद करता था, परन्तु मानव गीत के रक्त में यह सम्बन्ध इतना ओत प्रोत था कि यह सम्बन्ध टूटता ही नहीं था।

मेरे और उड़िया लोगों के बीच भाषा की एक दीवार थी। मैं ने कहा 'आप ने मुझे बुलाया मैं आ गयी, परन्तु मेरे हृदय की बात आप तक पहुँच जाये, यह कैसे हो?'

वैसे जब हम भाषा की दीवारें पार कर देखते हैं तो दूसरी ओर भी वही हृदय, और वही हमारी चिरपरिचित धड़कन ही हमें सुनाई देती है। पंजाबी का लोकगीत कहता है—

अय बनजारे, मुझे आकाश का लहँगा सिला दो
और उस पर धरती की किनारी लगी हो।

उड़ीसा का लोकगीत जब यह कहता है

मेरा द्वीप शुद्ध स्वर्ण से निर्मित है

मुझे चन्दन का तेल ला दो रामजी !

प्रकाश से यही अनुनय विनय है,

प्रभु मेरा मेरे प्यार से मेल हो !

यह मांग केवल उड़िया युवती की ही नहीं। हमें समस्त देशों की युवतियाँ दिये जलाकर अपने प्यारे से मिलाप की आकांक्षा करती दिखाई देती हैं।

जब नेपाल का कवि कहता है—

मैं ने आकाश के चकले पर वायु के बेलने से बेलकर

बादलों की रोटियाँ पकायी हैं।

हम सब को अनुभव होता है कि नेपाल के कविवर ने ही बादलों की रोटियाँ नहीं पकायी प्रत्युत हम सब ने भी ऐसी रोटियाँ बनायी हैं।

जब तिब्बत का गीत बोल उठता है—

बायें हाथ में अंगूठी दायें हाथ द्रान्ती

हमें अनुभव होता है कि प्रेम और परिश्रम के ये दोनों चिह्न युगों से हम सब निरन्तर अपने हाथों में लिये हुए हैं।

चेकोस्लोवाकिया की आवाज गूँज उठती है—

सूरज मेरा कवि है

उस के कर-कमलों में स्वर्णिम लेखनी है

धरा उस का कागज़ है

उस पर वह सुन्दर कविता की रचना कर रहा है।

और बाकुरे परिश्रम करते हैं

नवयुवतियां रंगीन वेश धारण कर रही हैं

बच्चे नयी उपमाओं की भाँति हैं

और सूरज का गीत बढ़ता जा रहा है।

हम अनुभव होता है सूर्य हमारा सभी का कवि है। उस का कागज़ हमारी समस्त धरती का कागज़ है। उस के गीत में केवल चेक बच्चे ही नवीन तुलनाएं नहीं, हमारे बच्चे भी उस की नयी उपमाएँ हैं।

जब मैं ने कहा 'वैसे तो इतने बड़े हिन्दी लेखक, दिनकर के समक्ष अशुद्ध हिन्दी में बातचीत करना गुस्ताखी है परन्तु इस गुस्ताखी के मार्ग से गुज़रकर ही मेरी बातें आप तक पहुंच सकती हैं" तब दिनकर ने शुद्ध हिन्दी की उपेक्षा और हृदय की भाषा का आदर करते हुए कहा, "नहीं अमृता! तुम्हारी हिन्दी अशुद्ध नहीं। तुम्हारे पास एक थाली है, शबनम की थाली, उस के लिए कोई भी भाषा हो ठीक है।'

इतने उदारहृदय कवि को जब मोटर में बैठा, हमारे मेज़बान बाजार से चीजें खरीदने के लिए चले गये, तो लम्बी प्रतीक्षा के पश्चात दिनकर ने कहा, "इस प्रकार तो हम बैठे-बैठे दलाई लामा बन जायेंगे आओ बाहर घूमें।"

"कितने बजे कोणाक चलेंगे?" हमारे मेज़बानो ने पूछा।

"सूर्योदय हम रास्ते में ही देखेंगे।" मैं ने कहा।

"इतनी प्रात जायेंगे कसे?" दिनकर ने पूछा।

"मैं जगा दूँगी, मुझे रात को नीद नही आती।"

'हे भगवान, पहले तो मैं प्रार्थना करता था, 'जब मेरा भारत गुलाम होने लगे तो मुझे जगा देना, नही तो मुझे सोने देना।' आज प्रार्थना करता हूँ कि अमृता को प्रगाढ निद्रा प्रदान करना।"

दिनकर की नीद में मैं ने तो विघ्न नही डाला, परन्तु सूर्य ने ऐसा कर दिया। जब हम कोणाक से होते हुए जगन्नाथपुरी पहुँचे, तो पुरी के सागर के तीर पर खडे दिनकर कह रहे थे

हम देर से आये ह
सागर हँस रहा ह
आकाश का मुख खुला ह
और उस में झाग के सफेद दाँत दिखाई दे रहे ह।

भगवान के प्रथम अवतार मछली और राम पक्षी मुर्गे को बडे प्रेम से खानेवाले दिनकर के सामने आज उबले हुए मटर परोसे गये थे क्योंकि पुरी भगवान की नगरी में दिनकर ने मास नही खाया था।

दिनकर ने एक लम्बी सास लेते हुए कहा "देखो आज मेरी स्थिति क्या हो गयी ह मुझे यह भी दिन देखना था। आप सब की प्लेटों में मछली और मुर्गा और मेरी प्लेट में उबले हुए मटर '

'यह इस बात की सज़ा ह, दिनकरजी, आप ने भगवान की धरती केवल पुरी की सीमाओं में ही सिकोड ली है हमारे लिए पुरी की सीमा के बाहर भी भगवान की धरती ह।' मैं ने कहा।

"भई क्या कहूँ? यहा साखी गोपाल का मन्दिर ह कही उस ने मेरी उल्टी साक्षी दे दी तो मेरा सत्कार "

"रात को भी आप यही खाना खायेंगे—उबले हुए मटर, दाल और चावल ?" मेज़बानों ने पूछा।

अरे रात को क्या? पुरी से आठ बजे गाडी चलती ह। आप इतने में मछली और मुर्गा बन्द कर के दे दो, जसे ही भगवान की पीठ दिखाई देगी अर्थात पुरी की सीमा पार हो जायेगी, मैं सब कुछ खा लूँगा।"

अभी भगवान के बिल्कुल सामने ही बठे थे। चाय का समय था, मेज़ के

ऊपर केक पड़ा था। दिनकर ने कहा, "इस केक में अण्डा पड़ा दिखाई ही नहीं देता। भगवान को भी दिखाई नहीं देगा यह मैं खा लेता हूँ।" अन्ततोगत्वा संस्कारों की गाँठों ने एक चूल ढीली कर ही दी।

'ये हैं चिकन सैंडविचेज़ इन में भी तो सब कुछ दाना ओर से ढका हुआ है। यह भी खा लो।' किसी ने कहा। दिनकर ने बड़े ध्यान से प्लेट की ओर देखा और कहा, 'भई! किनारों से भगवान को दिखाई दे जायेगा।'

रात आठ बजे गाड़ी चली। जैसे-जैसे पुरी पीछे छूट रही थी भगवान पीठ करता चला जा रहा था हम डब्बे खोज रहे थे। सामने भगवान का प्रथम अवतार था राम का पक्षी था

चाहे दिनकर के एक संस्कार ने चाय के समय अपनी एक गाँठ ढीली कर ली थी, परन्तु दूसरे संस्कार ने ढील नहीं दिखायी "यदि मेरी धरती के साथ सम्बन्ध लोप हुआ तो।" अब चाहे हम हवाई जहाज में नहीं बैठे थे गाड़ी में बैठे हुए थे, जिस के पग पहले ही धरती को छू रहे थे परन्तु कलकत्ता ही नहीं आ रहा था। रात व्यतीत हो गया थी दिन निकल आया था। लगता अगला स्टेशन अवश्य कलकत्ता होगा। स्टेशन आता पर वह कलकत्ता न होता। दिनकर कह रहे थे— हे भगवान! क्या अब इस संसार में कलकत्ता किसी और जगह चला गया है?

आँसुओं का रिश्ता

जुलफिया के दिल का जाम मुहब्बत से भरा हुआ था और जुल्फिया के दस्तरखान पर शीशे का प्याला अनारों के रस से। दोनों प्यालों में से मैं बारी बारी घूंट भरती उज़बेक की किताबों के पन्ने उलट रही थी। मेरे और किताबों के बीच भाषा की दीवार थी, परन्तु एक किताब की जिल्द पर बहुत ही सुन्दर लड़की की तसवीर थी, और एक आंसू उस लड़की की आँख में लटक रहा था। मुझे महसूस हुआ, जाने वह आंसू भाषा की दीवार फांदकर मेरी झोली में आ पड़ा था। मैं ने कहा

"जुल्फिया ! इन आंसुओं का औरत की आँखों के साथ पता नहीं क्या रिश्ता है ! कोई देश हो, यह रिश्ता चिरमहचर महसूस होता है "

जब कभी दो व्यक्ति इस रिश्ते को समझ जाते हैं, इस समय की बदौलत उन दो व्यक्तियों में भी एक रिश्ता बन जाता है—अटूट रिश्ता। मुझे महसूस होता है कि अमृता और जुल्फिया जाने एक ही चीज़ के दो नाम हों। इसी तरह जैसे आंसू और औरत की आँखें एक ही चीज़ के दो नाम हैं।"

इस किताब में उज़बेक औरतों का कलाम था १९वीं सदी की नादिरा कह रही थी

मेरे दोस्त,
यदि मेरे पास आने को
तुझे कोई बहाना चाहिए
तो मुझे दोस्ती का तरीका
सिखाने के बहाने आ जा,
तुझे हक है
हम इश्कवालों को मारने का।
जफ़ा का तार पकड़ ले
और मेरे सीने को बेंध दे।

नादिरा के बाद इसी १९वीं सदी की महिजूना ने अपना कलाम पढ़ा और उस के एक समकालीन फज़ली ने कहा

मैं ने तेरा मुँह नहीं देखा
तेरी आवाज़ सुनी है,
उस सीने की क्या किस्मत

वह निष्ठुर निकदरा
अच्छा मैं उस का नाम नहीं पूछती
तेरी जबान छाला से भर जायेगी।

तू एक खाली आकाश था
उस के मेल ने इन्द्रधनुष डाल दिया
और फिर साता रग खुर गये
आकाश और सावला हो गया।

और जुलफिया ने मुझ से पूछा, 'अमृता! तू ने भी कभी उस आसमान का गीत लिखा ह जिस पर सतरगा झूला पडा हुआ हो ?"

—हा अनेक गीत
तेरा खत हम आज मिला ह
जाने साता आसमाना पर घटा छा गयी
दोना मरी आखें झूम गयी
माथे म भाग्य का मोर नाच उठा।

'और फिर उस आसमान का गीत जिस पर स साता रग खुर गये हो ?

—हा बहुत गीत
क्यो किसी की नीद को स्वप्ना ने बुलावा दिया
तारे खडे रह गये अम्बर ने द्वार बन्द कर लिया
यह किस तरह की रात थी, आज जब भाग गुजरी
याद का एक फूल था
परो के नीचे रौंदा गया

'और फिर वह गीत जिन में शिकवे का धुआ हो ?

—हाँ वह गीत भी
रात जाने पीतल की कटारी थी
सफेद चाँद की कलई उतर गयी,
आज कल्पना कसर गयी ह
स्वप्न जसे कसर जाये
नीद जसे कडवी हो गयी ह।

"और अब ?'

—अब एक चुप ह
मन की इन घटौंची पर
सोचावाली गागर खाली ह,
चुप मेरी प्यासी बठी हुई

होठा पर जिह्वा फेरती
दो शद का पानी कही नही मिलता ।

समरकन्द के एक कवि आरिफ लाला के दो फूल लाये और हम दोना का एक एक फूल द दिया । दोना फूलो का एक जसा लाल रग था और दोना की एक जसी खुशबू थी । मैं ने और जुलफिया ने आपस म फूला का विनिमय कर लिया जसे दो सहेलिया अपनी चुनरी का विनिमय करती ह । और मैं ने कहा, 'दो फूल, पर एक खुशबू ।"

'दो देश, दो भाषाएँ, दो दिल पर एक दोस्ती । और जुलफिया ने मेरी बाहो में अपनी बाहें डाल दी ।

"लाला फूला का रग हमारे दिला क रक्त का रग ह ।' मैं ने कहा ।

"पर इन फूला में दद का दाग कोई नही । हमारे दिला म दद के दाग हैं ।' जुलफिया ने जवाब दिया ।

मुझे नादिरा का शेर याद आ गया है, उस ने बुलबुल को कहा था 'यदि तेरे गले में गीत समाप्त हो गये ह तो इस नादिरा के कलाम में से फरियाद ले जा । ' मैं लाला के इस फूल का कहती हूँ यदि इसे अपने दिल के लिए दद के दाग नही मिलते तो मुझ से अथवा जुलफिया से कुछ दाग उधारे ले जाये

जुलफिया को कुछ याद हो आया, वह कहने लगी लाला क वे फूल भी होते ह जिन की छाती में काले दाग होते ह—चल खेता म वे फूल तोडें "

खेता की ओर जाती कच्ची सडक के किनारे किनारे शीशम के वक्ष थे, जुलफिया ने उन वक्षा की ओर देखा और कहने लगी "यह ताल का वक्ष शायद सफल मुहब्बत का वृक्ष ह, पर इसी जात का एक वक्ष होता ह मजनूताल । यहाँ नही, वह केवल पानी क किनारे उगता है पहले उस के पत्ते आसमान की ओर जाते ह और फिर उस की शाखाएँ झुककर धरती की ओर लटक जाती ह, जसे पानी म अपने महबूब के चेहरे की तलाश कर रही हो हम जब असफल मुहब्बत की किसी वृक्ष के साथ तुलना करते ह, तो उस मजनूताल के वृक्ष के साथ ।

आसपास गहूँ के खेत थे । अभी पौधे छोटे छोटे थे, किनारे किनारे कई स्थाना पर लाला-फूल उगे हुए थे ।

'इन फूला के सीने में काले दाग़ होते ह, चल ये दागदार फूल तोडें ।"

मैं और जुलफ़िया फूल तोड रही थी कि एक बडा बाँका उजबेक मद लाला का बडा-सा फूल तोड लाया और मुझे कहने लगा, "इस फूल के सीने में हिज्र क काले दाग़ नही, ये रोशनी के दाग हैं ।'

लाला-फूल के सीने में उभरे हुए दाग़ सचमुच सिल्वी रग के थे । मैं ने उस का धन्यवाद किया परन्तु कहा

"दाग़ चाहे सियाह हों अथवा सिल्वी—दाग़ दाग़ ही होते ह । ये दाग शायद

किनारे रास्ता जाता है। जब कभी नगर से ऊब जाते हैं मिर्ज़ा तुरसद ज़ादा अपने एक और दोस्त मिम इद मिरताकार का साथ लेकर इस दर्रे में चले जाते हैं। सारा दिन अपने हाथ से पकाते खाते और लिखते हैं। आज वे इस जगह हम सब को ले गये थे।

यह एक हज़ार एकड़ से भी विस्तृत वह स्थान है जहां मैदानी और पहाड़ी वृक्षों को मिलाकर पहाड़ पर नये वृक्ष उगाने का प्रयोग किया जा रहा है। पहाड़ तथा जंगल की छाती में एक बूढ़ा कश्मीरी और नीली आंखोंवाली उसकी रूसी प्रेमिका—ये दोनों भी रहते हैं। गत बीस वर्षों से इस तरह दोनों आशिकों ने अपने निवास के लिए यह स्थान चुना हुआ है। इस समय दोनों की उमर साठ-साठ वर्ष से ऊपर है। मर्द का चेहरा बड़ा हँसमुख और औरत की आँखें बड़ी चमकीली हैं। दोनों घास के नीले फूल तोड़ लाये और शीशे की सुराही में नदी का ठण्डा पानी भर लाये।

"लिखारी घर हम राह में छोड़ आये हैं अब हम वहां जायेंगे।' मिर्ज़ा ने कहा ये लिखारी घर जिस नदी के किनारे पर बने हुए हैं उस नदी का नाम है वरज़आब (नाचते हुए पानी)।

शीशे के बरामदोंवाले ये सात घर हैं और आठवां घर सम्मिलित रूप से सगीतमय शामें गुज़ारने के लिए बाकियों से बड़ा और अलग से बना हुआ है। इस घर के बरामदे में बहुत बड़ा मेज़ सजी हुई थी। बाहर टीन की छत के नीचे बड़े-बड़े तीन चूल्हे बने हुए थे जहां कुछ लेखक हांडियाँ चढ़ा रहे और पुलाव पका रहे थे।

अमन के, दोस्ती के और कलमों की अमीरी के नाम पर जाम भरते हुए मिर्ज़ा तुरसन ज़ादा ने कहा, 'आज नगमा के पाँव लगाकर तुम ने जो पर्वत चीर लिये हैं कभी मैं ने भी इन पर्वतों को कहा था कि तुम राह में कितने भी तनकर खड़े रहो मेरा सलाम तुम्हारे ऊपर से गुज़र जायेगा।

आज के युवक और बड़े मकबूल शायर गुफार मिर्ज़ा ने पास से कहा, 'दिल की मुट्ठी में लावा शक्तियाँ समा सकती हैं परन्तु इतने बड़े आकाश में एक भी दुश्मन की उड़ान नहीं समा सकती।

कुछ थोड़ी दूर पहाड़ की कटाई हो रही थी। कभी-कभी बारूद की आवाज़ से धमाका उठता था। मिर्ज़ा तुरसन ज़ादा ने कहा 'पहाड़ का दिल कितना भी पत्थर का क्या न हो, लावे को अपनी छाती में नहीं सँभाल सकता आशिक का दिल कितना भी दर्द से छलनी हुआ हो हिज्र की आग को सँभाल लेता है।"

'और कभी जो कुछ नहीं सँभाला जाता, वह कविता बन जाता है। मैं ने कहा सब ने इस का समर्थन किया और मैं ने फिर मिर्ज़ा तुरसन ज़ादा से कहा, "कभी जो कुछ आप से न सँभाला गया हो और वह किसी कविता में प्रवाहित हो गया हो, यह देखने का हमें अधिकार है।

तेरी इस तीखी फरमाइश की हम कद्र करते हैं और अपनी फ़रमाइश भी साथ मिलाते हैं— पहले नियाज़ी और फिर सब ने इस सवाल को ऊँचा कर दिया।

"अमृता ने सवाल बड़ा गहरा डाला है, परन्तु मुझे जवाब देना ही पड़ेगा।" मिर्ज़ा ने कहा और कविता पढ़ी—

उजबेक सुन्दरी ! ज़रा देख

आज सारा जमाना खिला हुआ
बन्द कली की एक पोशाक
पर पत्तियों के बदन अलग-अलग हैं
तेरे और मेरे मन पर मुहब्बत की एक ही पोशाक।

ताजिक शायरों की आवाज़ में पता नहीं क्या ज़ोर था, आकाश के बादल हिल गये और बूँदें पड़ने लगीं।

'हम आज इस मिट्टी में दोस्ती का बीज डालते हैं। बूँदें पानी देने आ गयी हैं।" मिर्ज़ा तुरसन ज़ादा ने कहा।

अमृता एक शेर ? नियाज़ी ने फरमाइश की।

मैं जानती हूँ कि यह एक नामुराद इश्क के बीज हैं, पर बीज आख़िर बीज हैं, यह फल भी सकते हैं। मैं ने जवाब दिया। सभी के स्वर में फिर एक ताज़िक लोकगीत भर गया

मैं राख दिखाई देता हूँ
पर इस राख में आग दबी है
मैं किसी को डराता नहीं
मेरा एक ही दोष है,
मैं ने तुम्हें प्यार किया
और अब इस आग को
राख में छिपाये फिरता हूँ।

बादल गरजे और वर्षा तीखी हो गयी। ताजिकी शायरों में एक उज़बेक युवक भी था, कहने लगा 'हिज्र की घड़ी नज़दीक आ गया, आकाश ज़ोर ज़ोर से रोने लग पड़ा है।'

बिजली चमकी और मिर्ज़ा तुरसन ज़ादा ने कहा, एक सौदागर घोड़े पर नमक लादकर ले जा रहा था। मेंह बरसा और नमक गल गया। बादल गरजे और घोड़ा डरकर भाग गया, फिर बिजली चमकी तो सौदागर कहने लगा, "हे आसमान की बला, पहले तू ने मेरा नमक ले लिया, फिर घोड़ा। और अब हाथ में दिया लेकर मेरी तलाश में आयी है? आज का मेंह, बादल और अब ऊपर से बिजली"

सारे मेज़ पर हँसी की वर्षा होने लगी, उज़बेक युवक ने पानी की तरह विह्वल ऊँचा स्वर निकाला और एक हिन्दुस्तानी गीत छेड़ा 'तू गंगा की मौज मैं यमुना की धारा' और फिर उस ने मुझ से पूछा, मैं ने सुना है कि आप के देश में एक आशिकों का दरिया है, उस का नाम क्या है?'

"चनाब।"

"ताजिकिस्तान की इस नदी का नाम है 'वख़्शाब' और दोनों का क़ाफ़िया मिलता है।" मिर्ज़ा तुरसन ज़ादा ने कहा और पानियों का नाच और तीखा हो गया।

पैतालीस वर्षीय शहर यिरेवान

पत्थर जसी छाती म फूल जैसा दिल आरमीनिया की राजधानी यिरेवान का देखकर उस दिन कई बार ये शब्द मेरी जबान पर आये। सारे का सारा शहर दूधिया और स्लेटी पत्थरों की ऊँची ऊँची इमारतों का बना है—वास्तु कला के कई नमूना म। इस शहर की रचना चाहे दो हजार सात सौ पचास साल पुरानी है, पर इस का अस्तित्व भयानक हमलों से बहुत बार बन बनकर मिटा है मिट मिटकर बना है। आज से पचास साल पहले १९१५ में यह घमासान युद्ध का मैदान था। टर्की ने इस के अस्तित्व को अपनी तरफ से मानो खत्म ही कर दिया था पर १९२१ में इस ने सोवियत शक्ति के साथ अपनी शक्ति जोडकर शान्ति और सुरक्षा का माग तलाश कर लिया। कई छोटी छोटी पहाडियों के पहलू में यह शहर इस तरह फला है कि किसी भी पहाडी पर खडे होकर किसी भी ढलती शाम के वक्त इस का जगमग करता हुआ सौन्दर्य देखा जा सकता है। पत्थर की इमारतों के इस नये पतालीस वर्षीय शहर की बाहों म जगह जगह फूलों की क्यारियाँ और पानी की झीलें बनी हुई ह। फूलों की क्यारियों और पानी की झीलों के किनारे कोई पचास कफे होंगे, जिन म से कई को बहुत सीधे-सादे शब्दों म 'शीशे के कमरे' कहा जा सकता है। वास्तु कला के ये प्रयोग शायद इसलिए भी बहुत प्यारे ह कि आरमीनिया की वास्तु-कला का अतीत बहुत पुराना है। दुनिया का सब से पहला चच आरमीनिया में बना था—चौथी शताब्दी के आरम्भ में। और आठवी शताब्दी म फ्रांस ने आरमीनिया का एक वास्तुकार बुलाकर अपने देश में एक चच बनवाया था।

आरमीनिया के लोगों के पास अपनी विरासत को सँभालने और उसे प्यार करने के अजीब तरीके ह। मुश्किल घडियों में ये लोग दुनिया के बहुत सारे हिस्सों में बिखरते रहे ह, पर एक सचाई सब जगह पायी गयी है कि ये लोग जहा भी गये ह इन्होंने सब से पहला काम उस देश में जाकर यह किया ह कि अपना छापाखाना स्थापित कर अपना साहित्य हर वक्त मुद्रित किया (छापा) और उसे सँभाला है। पुरालेखागार संग्रहालय में जहाँ इन्होंने विद्वान माशटोटस की यादें सँभालकर रखी हैं जिस ने पाचवी शताब्दी में आरमीनियन लिपि बनायी थी, वहीं तामिल भाषा म लिखे इन के इतिहास के व पद्य भी सँभालकर रखे हुए ह जो इन्होंने कभी दक्षिण भारत में बसने के समय लिखे थे। वतमान शहर का शृंगार इन्होंने अपने दार्शनिकों और लेखकों की मूर्तियों से किया है। सयातनोवा इन का बहुत प्यारा कवि हुआ है। पेन

पौधों और फूलों से ढकी एक बगिया में सफेद पत्थर की दीवार बनाकर इन्होंने सयातनोवा की बहुत खूबसूरत—बहुत प्यारी मूर्ति बनायी है, जिस के नीचे उस की कविता की एक पंक्ति लिखी है 'मैं ने इस धरती का वह पानी पिया है जो किसी ने नहीं पिया। मेरा अतीत रेत का नहीं मेरा अतीत एक चट्टान का है।'

यिरवान के सब से बड़े होटल आरमीनिया में उस रात जो संगीत बज रहा था इन के एक कवि की रचना है ए दवत पंछी! तुम किस देश से आये हो? तुम उडते-उडते मेरी खिडकी के सम्मुख बैठ गये हो, तुम निश्चित हो मेरे देश से आये होगे। आओ, मेरी इस खिडकी में बैठ जाओ और मुझे मेरे देश का हाल सुनाओ। यह गीत कामिताम ने अपने देश से दूर फ्रांस में रहते हुए लिखा था।

इटली के साथ इस देश की दोस्ती दो हजार साल पुरानी है। इस दोस्ती की निशानी, एक बहुत बड़े पत्थर में तराशे दो हाथ—एक इटालियन और एक आरमीनियन।—कुछ पहले इटली ने इस देश को उपहारस्वरूप भेजे थे। यह निशानी—दो हाथ—आज इन्होंने बहुत ही सुन्दर बगिया में सजाकर रखे हैं।

हमारी दोस्ती हिन्दुस्तान के साथ भी उतनी ही पुरानी है। क्या मालूम हमारे परदादा, लकडदादा के दादा कभी एक ही होंगे। तभी तो आज हम ने तुम्हें आरमीनियन स्त्री समझ लिया था। मेरे मेजबान हंसकर मुझ से कह रहे थे। उस दिन सचमुच ऐसा ही हुआ था कि सवेरे हवाई अड्डे पर मेरे मेजबान जब मुझे लेने आये तो मुझे देखकर भी उन्होंने मुझे नहीं पहचाना। मुझे उन्होंने अपने ही देश की कोई आरमीनियन स्त्री समझ लिया और हिन्दुस्तान से आनेवाली परदेशी स्त्री की तलाश करने के लिए कितनी देर तक वे चारों तरफ देखते रहे।

'तुम्हें कभी किसी देश के लोगों में कोई खास तरह की समानता लगी है?' तबिलिसी में बरतानिया के एक लेखक ने मुझ से पूछा था और मैं ने उन्हें जवाब दिया था, 'इस तरह मुझे किसी देश में कभी नहीं लगी पर कई बार कई किताबों के कई पात्रों में जरूर महसूस होने लगती है और उसी दिन आरमीनिया के अजनबी शहर के वीरान कोने में एक पहाड़ी पर बनी आक के बीच खड़े हुए मेरी आँखें आस-पास का कुछ समेटकर अपने अन्दर जाड़न लग गयी थी। पैरों में माह की एक कपकँपी-सी उतर आयी थी—यह शायद सामने बर्फ से लदे हुए पहाड की ठण्ड थी। सामने दूर पर एक बड़ा-सा पहाड इस आक की बाँहों में लिपटी हुई किसी चीज की तरह है, शायद चीज की तरह नहीं, एक खयाल की तरह बाँहों के बीच भी है और बाँहों से बहुत दूर भी। नजदीक के पहाडों पर कोई पेड नहीं है उन के शरीर की नग्नता उन की अपनी ही बाँहों में लपेटी हुई लगती थी। हल्की सी धूप उन के बदन को छूती और कांपती सी महसूस हो रही थी

कुछ दूर तेरहवीं सदी का एक चर्च है—एक ऊँचे शिखर का काट-तराशकर बनाया हुआ चर्च। यह रविवार था, इसी लिए लोगों का एक मेला सा यहाँ लगा हुआ

था। छोटी छोटी ढोलकिया और बांसुरिया बिक रही थी, बड और लाल बेरों की तरह किसी फल के हार पिरोकर लडकिया उन्हें बेच रही थी। चर्च के बाहर कई लोग भेडों को बलि देने के लिए हाथ में चाकू पकडे खडे थे और कई लोग चर्च के अन्दर मोमबत्तियां जलाकर कम्पित हाथों से क्रास को चूमते हुए प्रार्थना कर रहे थे। एक स्थान पर चर्च के घेरे में एक छोटा-सा चश्मा है। लोग उस में सिक्के फेंकते, मन्नतें मानते और चुल्लू भरकर उस का पानी पी रहे थे। मैं सब कुछ एक मेले की तरह देख रही थी—खुशी की आवाज में भेडों का लहू मनुष्य के झुके हुए माथे का विश्वास एक ऊँचे से चबूतरे पर एक छोटी-सी सीढी पत्थर की एक कन्दरा (गुफा) में जाती है इस के प्रति मेरा एक मोह सा हो गया था और मैं ने ठिठकते हुए किसी से पूछा था, "मैं इस चबूतरे पर चढकर उस पत्थर की सीढी को लांघकर उस कन्दरा में जा सकती हू ?' 'शायद नहीं, मैं ने स्वयं ही झिझककर कह दिया था क्योंकि मैं देख रही थी कि उस चबूतरे को कई लोग हाथों से चूम रहे थे। पर नजरें कन्दरा के उस दायरे में से बाहर नहीं निकल रही थी और मुझे जवाब मिला था, 'उस कन्दरा में दीया जलाकर हमारे लेखक कभी इतिहास लिखते थे और प्राचीन दस्तावेजों, पाण्डुलिपियों की नकल उतारते थे। तुम इस चबूतरे को लांघकर उस कन्दरा में जितनी देर चाहो, बैठ सकती हो " सोच रही थी कि किताबों के पास ही नहीं कोई कोने किनारे भी इस तरह के होते हैं जो कि अजनबी देश में बरबस ही कुछ अपने-से जान पडते है।

दुनिया का सब से पहला चर्च चौथी शताब्दी के शुरू के वर्षों में बना था, समय के साथ इस का ढांचा अपना आकार प्रकार बदलता रहा है, पर इस के पैरों के नीचे जमीन वही है। इस जमीन की मिट्टी ने पता नहीं मनुष्य की कितनी प्रार्थनाएँ सुनी हैं, पर इस के कानों के पास कोई बहुत बडा धैर्य लगता है, लोग हजारों की गिनती में मिलकर आज भी प्रार्थनाएँ कर रहे है और यह बडी धीरज के साथ चुपचाप उन्हें सुन रही है। यहां हर समय मोमबत्तियों की रोशनी कांपती रहती है पता नहीं लोगों की प्रार्थनाओं के भार से या मिट्टी के धैर्य को देखकर।

इस चर्च के सब से बडे पादरी की इस पल्की के लिए उस दिन ग्यारहवी बरसी थी। प्रार्थना समाप्त हुई तो मैं मशालों की रोशनी में एक पालकी के आगे-आगे चलते पादरी के प्रभाव को आंक देखती रही—माथे पर चमकीला ताज, गले में मखमल का चमकीला चोगा, पैरों में मखमल के स्लीपर और हाथ में मोतियों से जडित क्रॉस। छोटे पादरियों के गलों में काले वस्त्र और काले वस्त्रों पर पडे हुए जरी के चमकीले चोगे। सिर पर काले कपडे और गले में सोने के क्रॉस।

संगमरमर की सीढियां चढ़कर एक बहुत बडा हाल है—सिंहासन पर सब से बडा पादरी बैठा हुआ था—बहुत गम्भीर चेहरा, बहुत गम्भीर नजर। सामने दो कतारों में बाकी सारे पादरी खडे हो गये और एक-एक कर के देश के इतिहास में इस

गिरजे की देन का दोहराने हुए कुछ दिद म पन्ते रह और फिर वारी-वारी आगे हो कर क्रास को चूमने रह। बहुत से लाग आस पास खड ये नम्रता के साथ झुरे हुए। मुझे कुरसी पर बठने के लिए कहा गया—मेरे परदेसी होन का लिहाज़। बडा मेहरबान सलूक था, पर सारा वातावरण किसी इतिहास का वह हिस्सा लगता था जिस हिस्से में खडी हुई भी मैं उस हिस्से से बाहर थी—बिल्कुल अजनबी और अकेली। कमरा के बल्ब जलने थे और बुझ जाने थे—कई शताब्दियाँ माना मिलकर एक स्थान पर खड़ी हो गयी हो और इन शताब्दियों में चौथी शताब्दी भी थी और बीसवीं शताब्दी भी। मानवीय हृदय की आवश्यकता के इन सामने दीखते पन्ना का मैं पढने की बहुत कोशिश करती रही, पर इस पन्ने का हर शब्द मेरे लिए उस विदेशी सिक्के की तरह था, जिस का मैं अपने मन की सीमा में आकर न ही खर्च कर सकती थी न ही बदल सकती थी। घबराकर मैं ने पन्ना पलटा पर अगला पृष्ठ अभी खाली था। सोच रही थी, इस अगले पन्ने पर पता नही कोई कलम क्या कुछ लिखेगा और जिस के शब्द उस सिक्के की तरह होंगे, जो कि मेरे जैसे अजनबी मन के देश म भी खर्च किये जा सकेंगे

पर ऐसा सोचना भी शायद बहुत ठीक नहीं है—विदेशी सिक्का की कीमत अपने स्थान पर होती है। मज़हबी मन के शासन में चलनेवाले सिक्के, मैं या मेरे जैसे कुछ लोग यदि खर्च नही कर सकते तो न सही—हरेक के लिए उन्हें खर्च करना ही क्या आवश्यक है? उस दिन शाम के वक्त अमरीका म रहता एक आरमीनियन मिला था पचीस साल के बाद अपने देश लौटा था वह भी कुछ दिना के लिए। शहर की हर गली का मोड वह परदेशियो की तरह देख रहा था पर वह मेरे जैसा परदेसी नहीं था। नयी इमारतें और उस के माथे पर लगी रोशनी की झालरें उस के लिए नयी थी पर इन इमारतो की बुनियादों में जो कुछ था, वह उस के लिए बडा पुराना था बडा अपना था। १९१५ के कत्लेआम में अपने सारे खानदान से मैं अकेला बचा था ' वह बता रहा था और फिर उस की खामोशी में युद्ध की भयानकता सिसकने लगी थी।

एक ऊँचा पहाडी पर खडे होकर उस ने जगमग करते शहर का देखा मैं ने भी देखा और फिर हम ने अपने मिस्रवानी दोस्त से पूछा था, "इस देश की सीमा अब कहाँ तक है?

वहाँ तक जहा तक रोशनी फैली हुई है। दूर जहा अँधेरा शुरू होता है वहाँ से टर्की का सीमा शुरू होती है।

इस उत्तर म एक स्वाभिमान था—खून की नदियों का तय-तरकर तलाश किया हुआ स्वाभिमान पर मैं देख रही थी इस स्वाभिमान के अर्थ जो कुछ मर लिए थे, अमरीका स आये आरमीनियन के लिए इस के अर्थ उस स बहुत गहर थे। अर्थों का सिक्को की तरह सभी के लिए एक जैसा होना शायद जरूरी नहीं, सम्भव भी नहीं

खामोशी का गीत

टॉलसटाय की कब्र पर से लाये गये कुछ पत्ते अब भी मेरे सामने पड़े हैं। इन का हलका पीला रंग एक धीमे से स्वर की तरह है। मैं अब भी मन को एकाग्र करूँ तो यह स्वर धीमे धीमे मेरे कानों में गूँजने लगता है।

मास्को से दो सौ किलोमीटर का लम्बा रास्ता लम्बे पेड़ों में घिरा हुआ था। यह अक्तूबर का महीना था। पेड़ों के पत्ते सुनहरे पीले सोने के चौड़े पत्तों की तरह पेड़ों से झूलने लगते थे। कई जगह पेड़ों के तने सफ़ेद थे—चाँदी की तरह। और आँखों को एक परी की कहानी का भ्रम होता था जैसे चाँदी के पेड़ों पर सोने के पत्ते उगे हों।

टॉलसटाय की निजी ज़मीन की सीमा लाँघते ही परी कहानी का सारा रूप बदल गया। हवा तेज़ हो गयी थी और कई एकड़ तक धरती पर उगे हुए ऊँचे पेड़ों से पत्ते इस तरह झर रहे थे जैसे तालबद्ध किसी आकाश गीत के स्वर धरती के कानों में गुंजरित हो रहे हों।

टॉलसटाय के घर का हर कमरा उसी तरह है, जैसे १९१० में टॉलसटाय के आखिरी दिनों में था। माँ के उस काले दीवान से लेकर जहाँ टॉलसटाय का जन्म हुआ था, बाईस हज़ार किताबों की लायब्रेरी और उस के साथ लगा हुआ वह कमरा, जिस में उस की मेज़ भी है, कलम का कलम ही पड़ा है जहाँ टॉलसटाय ने 'वार एण्ड पीस' लिखा था। सोने के कमरे में पलंग के पास टॉलसटाय की सफ़ेद कमीज़ टँगी हुई है। एक कँपकँपी की तरह मुझे याद है कि मैं इस कमीज़ के पास खड़ी हुई थी टॉलसटाय के पलंग की पट्टी पर एक हाथ रखकर—खिड़की में से हल्की-सी हवा आयी और कमीज़ की बाँहें हिलकर मेरी बाँह को छू गयीं। एक पल के लिए समय की आगे चलती सुइयाँ पीछे पलट पड़ी थीं इतनी तेज़ी से कि १९६६ अपनी पलक झपककर १९१० बन गया था और मैं ने देखा कि गले में सफ़ेद कमीज़ पहनकर अपने पलंग की पट्टी पर हाथ रखकर टॉलसटाय खड़ा है।

यह पल देखा जा सकता था पकड़ा नहीं जा सकता था। और यह इतना अकेला पल था कि और कोई पल इस के साथ मिलाया नहीं जा सकता था। खून की हरकत मेरे माथे की कनपटियों में बज रही थी। पर सामने समय के अँधेरे का एक दरिया बह रहा था और यह पल उस दरिया में एक छोटे-से दीये की तरह अभी-अभी दीखा था और अभी ही गुम हो गया था। खून की हरकत ने मेरे माथे की कनपटी में

से गुजरकर मेरी आँगा पर यन्न जार डाला पर अब मेरा आँगा म आग गिर ठा' और मटमल अपर था एक वन्न दरिया वह रहा था। फिर मर गन था हरदा ने गान्त होकर दरा—यमर में कोई नहीं था और गामने दीवार पर पत्थर की पट्टी के पास गिफ एक नमाज टंगी था।

जितनी हा पगडण्डियाँ पन्न की घना गुफाओं में जाती ह। गर गुफा में टागगाय थी यन्न ह। चारा तरफ गामाना थी, पर लगता था यन्न की खामानी इ' गिद की गामानी स टूटा हुआ एक टुकडा था। अपनआप म पूरा और किसा भी आवाज के अस्तित्व स बनियाज—पेग म गन्ग पीले पत्ता की आवाज ग भी।

मैं इस गिन का गामानी का हिस्सा था। मगर हरक साँस पेडा म हारते हुए पत्ता का तरह झर रहा था। मेरा पग्मा साँमा में भी एक गीत था—गायन एक कारलाना का

बडी दूर बठे कुछ लडके पत्ता का गिरा गिराकर गिर म सुनहरी ताज बना रह थ। लडकियाँ पत्तो का पन्नियाँ बनाकर अपनी कमर में बाँध रहा थी। व सार पत्ते टाँगटाय की कितावा के वरक (पन्ने) लगने लगे जा पडा स गिरकर धरती की आर धरती के गागा की गाला में गिरन धरती का जरखज करत और फिर पेडा पर नये गिर स उगन।

यह मरन और उगने का गीत था जा मैं ने उस गामानी में सुना था—गामानी का किसा भा तरह तोडता या ढाता नही पत्ता म पत्ता के रग की तरह बसा हुआ खामानी का अपना हिस्सा।

चुप की बन्द गली

मन बहुत अच्छी रौ में था, पंजाबी टप्पे की लय पर एक टप्पा मुँह से निकल रहा था—

सुक्का पत्ता वे तम्बाकू दा
वही वग्या दी हाई वावला
मेरे हुस्ना दा रंग सावला

कल आगरिद से मसडोनिया की राजधानी स्कोपिया जाते हुए रास्ते में जितने भी गाँव आये थे, सब घरों के आगे तम्बाकू के पत्ते सूखने के लिए डाल रखे थे। पत्तों का रंग सूरज की धूप पी-पीकर ताँबे जैसा हो रहा था। धरती के इस टुकड़े को स्वतन्त्र हुए कोई बीस बरस हुए हैं और स्वतन्त्रता बीस बरसों की युवती की तरह पहाड़ों की हरियाली में, मक्का की सुनहरी बालियों में, और मेवों व आड़ुओं से लदी टहनियों में घूमती दिखती है। सिरों पर लाल पटके बाँधे कई लड़कियाँ सड़क के किनारे सुर्ख तरबूज़ बेच रही थीं। इस सारी वादी का नाम भी इस के बादल के नाम पर है—'टाटो वगेंस'। उसी सुबह हम ने जाना की आरामगाहें देखकर आयी थी—छोटे छोटे टापुओं में बनी आरामगाहें। प्यारा सा रश्क भी कर रही थी और खुशी भी।

उसी सुबह सुना था कि आज के लेखक मिलकर एक छोटा-सा शहर बनाना चाह रहे हैं—अन्तर्राष्ट्रीय लेखक शहर। एक पत्र प्रेरक मुझ से पूछ रहा था कि यह शहर कैसा बनाना चाहिए? जवाब दिया था—पत्थरों और फूलों के सुमेल से। पत्थर ज़िन्दगी की हकीकत की नुमाइन्दगी करेंगे, और फूल मनुष्य की कल्पना की।

मन की उसी रौ में था कि एक बहुत बड़े सरकारी अफ़सर ने हँसकर मुझे कहा था, 'आप ने अपने देश में एक औरत को प्रधान मन्त्री चुनकर हम मर्दों की मर्दानगी का एक इन्कार दिया है।' और मैं ने हँसकर जवाब दिया था 'मैं खुश हूँ कि हम ने आप को ईर्ष्या का कोई मौका दिया है।'

मेरे पास आगरिद से बेलग्रेड पहुँचने के लिए हवाई जहाज़ का टिकट था—टिकट पर तारीख और हवाई जहाज़ के चलने का वक्त लिखा हुआ था, पर यह पता नहीं कि टिकट देते समय किस ने और किस तरह यह लिख दिया था क्योंकि उस दिन आगरिद से कोई जहाज़ बेलग्रेड नहीं जाता था। आखिर आगरिद से स्कोपिया पहुँचने के लिए कार का इन्तज़ाम हुआ और फिर अगली सुबह स्कोपिया से हवाई जहाज़ से बेलग्रेड पहुँचना था। यूगोस्लाविया का एक शायर अवरम ज़्वेरा और यूगोस्लाविया

का प्रिंस महातेमा सल्लामी कार में मेरे साथी थे।

'नज्मा का मेला तुम्हें कैसा लगा ?' यूथापिया का शायर मुझे पूछ रहा था, और मैं कह रही था, किसी भी जबान की कोई नज्म मुझ तक नही पहुँची, पर मेरे लिए इस मेले की तीन रातें इस तरह थी जसे मैं इस शहर में एक नही दो झीलें देख रही हूँ। एक नीले पानी से लबालब और दूसरी इनसानी आवाजों और मानवीय जज्बातों से छलकती

और वह हँस रहा था कि इनसानी दिल कई बार कस एक-सा सोचते है। उस ने उस रात एक नज्म लिखी थी जिस का भाव था कि दरिया के पुल पर खड़े होकर जब कई देशों के शायर नज्में पढ़ रहे थे तो उसे लगा था कि एक दरिया पुल के नीचे बह रहा था और एक दरिया पुल के ऊपर!

इस बड़ी सारी खुशगवार रौ में हम सब थे और कार का ड्राइवर भी। उस ने सिर पर एक सफेद टोपी पहन ली और मुझे कहने लगा, "आज मैं गान्धी टोपी पहनकर कार चलाऊँगा। हिन्दुस्तान को मेरा सलाम!" और उस ने अपनी जबान में एक गीत गाया, जिस का भाव था मेरे सूरज! मेरे महबूब! मेरी रूह की ताकत के लिए मुझे थोड़ी-सी धूप दे दे

कार का मालिक एक मेहरबान दोस्त भी था और अल्बानिया जबान का विद्वान भी। मसेडानिया की छाती में एक दर्द है कि उस का हिस्सा बल्गारिया के अधीन है और एक हिस्सा अल्बानिया के अधीन। अल्बानिया से एक लम्बी अदावत चली आती है। वहा बसते कुछ मसेडानियन लोग अब भी वहा है पर कुछ इस ओर आ गये है। यह हमारा अल्बानिया जबान का दोस्त कोई बीस साल हुए इस ओर आ गया था पर इस के मा-बाप अब भी वहा है और उन्हें देखे इसे बीस साल हो गये है। जाने अब वे कितने बूढ़े हो गये होंगे उस ने कहा और सब के मन की रौ एक मोड पलट गयी।

यूथापिया के प्रिंस ने अभी तक अपने बारे में कुछ नही बताया था। रास्ते में एक जगह खड़े होकर बीयर का एक-एक गिलास पीते हुए उस के होठ छलक पड़े तुम शायर लोग बड़े खुशनसीब हो। हकीकत की दुनिया नही बसती तो कल्पना की दुनिया बसा लेते हो मैं बीस साल वायलिन बजाता रहा हूँ साज के तारों से मुझे इश्क है। पर जंग के दिनों में मेरी दायीं बाँह पर गोली लग गयी। अब उस हाथ से मैं वायलिन नहीं बजा सकता मैं किसी कन्सर्ट (गोष्ठी) में नहीं जाता क्योंकि वहा किसी वायलिन की आवाज सुनकर मुझ से अपना आप सहन नहीं होता सगात मेरी छाती में जमा हुआ है

सगात के आशिक हाथों को गोलिया क्यों लगती है ? इस का जवाब किसी के पास नही। तवारीख चुप है। हम भी चुप थे। और मन की रौ चुप की एक बन्द गली की ओर मुड गयी

एक गीत का जन्म
एक अवस्था का जन्म

ख़लील जिबरान ने एक दिन अपने हाथ में पकड़ा हुआ जाम अपने माथे से भी ऊपर उठाया और फिर मेरे नाम पर उस ने जाम में से एक लम्बा घूँट भरा। जानती हूँ कि मेरी इस बात से अभिमान की गन्ध आती है पर वास्तव में यह स्वाभिमान के रस में भरे हुए अंगूरों की ख़ुशबू है, जो पक-पककर शराब की घूँट की सी तीखी गन्ध बन गयी है।

ख़लील जिबरान ने अपने जाम में से यह घूंट भरते हुए कहा था, मैं अपने हाथ का जाम अपने सिर से भी ऊपर उठाता हूँ, और फिर होंठों से लगाकर एक लम्बा घूँट उन के लिए भरता हूँ जो अपना ज़िन्दगी के जाम को अकेले पीते हैं। सो उस ने यह घूंट मेरे नाम पर पिया था, आप के नाम पर पिया था—आप सब, जो अपने ज़िन्दगी के जाम को अकेले पी रहे हैं।

मुझ में इस अपनी प्यास के लिए हज़ार शिक्वे जागे होंगे आप ने अपनी इस प्यास को हज़ार बार कोसा होगा, पर ख़लील जिबरान मुझ से और आप से इसी लिए कहता है कि वह इस प्यास का शुक्र कर सका। अपने जाम को अकेले ही पीना, भले ही आप को इस में से अपने ख़ून का और आंसुओं का स्वाद आये। और प्यास की इस सौगात के लिए ज़िन्दगी का शुक्र करना। क्योंकि इस प्यास के बिना आप का दिल उस सूखे हुए समुद्र का किनारा बन जाता था जिस में न कोई गीत होता है, न कोई लहर।

यह समय ज़िन्दगी के बहुत-से रास्तों से गुज़रने के बाद आता है। आप की और मेरी तरह ख़लील जिबरान ने व पहले वक्त भी देखे थे 'कभी वह समय था जब मैं ने मनुष्यों का साथ चाहा था उन के साथ मिलकर दावतें सजायी थीं, और फिर उन के जाम से अपने जाम को टकराया था पर वह शराब मेरे माथे की नाड़ियों में नहीं पहुँची। वह शराब मेरी छाती में नहीं लहरायी। वह केवल मेरे पैरों तक ही उतर सकी थी। मेरी प्रतिभा भूखी रह गयी थी। मेरा मन ढका रह गया था।

जिस के पास दिल की दौलत होती है, उस दौलत के न ख़र्चे जाने का दर्द केवल वही जान सकते हैं। ख़लील जिबरान के इस दर्द ने कहा था, 'मेरी आत्मा अपने ही पके हुए फल के भार में झुकी हुई है। क्या ऐसा कोई नहीं जिसे बड़ी भूख

लगी हो वह आये, अपना व्रत तोड दे इस फल का चख ले और मुझे इस भार से हलका कर दे।'

इस दर्द की जो जलन मैं ने और पाल पाटस ने देखी है उसे पढते हुए लगता है कि लिखनेवाले ने तो क्या, अगर पढनेवाले ने भी इस आग का कड़वा धुआं अपने अंग संग न रखा हो तो वह इस की पहली लपट से ही झुलस जाये। यह रोशनी की वह दीवानी तलाश जिस के अंधे मोडों से हज़ारों के पैर टकराये हैं और वे निराशा की, शिकायतों की, सनक की या मौत की गहरी खाइयों में जा पडे हैं। यह केवल कभी कभी ही होता है कि एक बीमार और रोऊं रोऊं करता बालक बडा होकर राजेन्द्रसिंह बेदी बन जाता है, मां की ममता के लिए तरसा हुआ एक बच्चा बाल्ज़ाक बन जाता है, गरीबी और यातना के झकझोरे खाता हुआ एक लडका गोर्की बन जाता है। यह दर्द जब सृजनात्मक हो जाता है तो करामाती बन जाता है और स्वयं को पहचानते पहचानते इनसान पाल पाटस बन जाता है, खलील जिबरान बन जाता है।

पाल पाटस ने जिस औरत से मुहब्बत की उस ने पाल को पहचाना नहीं था। न पहचाने जाने के दर्द ने पाल को एक जुनून दे दिया कि वह अपने मन की खूबसूरती को ऐसे शिखरों की ओर ले जाय कि जब कभी वह औरत जाने या अनजाने ही उस खूबसूरती की ओर देखे तो उस के अन्दर पाल के दर्द जैसा ही एक दर्द जाग उठे, कि उस ने ऐसे आदमी को पहचाना नहीं था। परन्तु ये रास्ते बाबकर पाल सारी उम्र उस शिखर की ओर चलता रहा और चलते चलते वह जो कुछ अपने से बात करता रहा आज वही बातें दुनिया भर के आशिकों का वेद बन गया है, कुरान बन गयी है

"जब तुम ने मेरे प्यार को स्वीकारने से
इनकार कर दिया
मैं ने चौखट से गुज़रे बिना
तुम्हारे सोने के कमरे का दरवाज़ा भिड़का दिया।
और अपने हाथ में पकड़ी हुई विवाह की अंगूठी को
बाहर सड़क पर खड़े हुए—
एक भिखारी के पात्र में डाल दिया।"

उस दिन हमारी भाषा के शब्द भी
कराह रहे थे
जिस दिन मैं ने तुम्हें अलविदा कही।

जैसे हमारी तवारीख दो हिस्सों में बँटी हुई है
ईसा के जन्म से पहले, और ईसा के जन्म के बाद

मेरी जिन्दगी भी दो हिस्सों में बँटी हुई है
तुम्हें देखने से पहले, और तुम्हें देखने के बाद।

एक दिन मैं ने गली में मौत को देखा था।
वह बिल्कुल इस जिन्दगी जैसी है,
जो जिन्दगी मैं तुम्हारे बिना जी रहा हूँ।

ईश्वर! लोग तुझे करामाती कहते हैं
क्या तुम इतना नहीं कर सकते
कि मेरे दिल की खूबसूरती में से

एक चुटकी भर निकाल लो
और वह चुटकी मेरे जिस्म में डाल दो।

तुम्हें फिर से देखना ऐसे होगा
जैसे अन्धा होने के बाद कोई आँखों को पा ले।

अगर तू मेरे साथ चलती
मैं सारी उम्र अपने मन की अमराइयों में
तुम्हारा हाथ पकड़कर चलता रहता।

माइकेल ऐंजेलो जब किसी खूबसूरत पत्थर को देखा करता था तो उस की आँखों में बैठी हुई तसवीर आँखों में से उतरकर सामने पत्थर पर जा बैठती थी और जिस की ओर देखते-देखते उस के हाथों में पकड़ी हुई छेनी उतावली हो उठती कि वह इस तसवीर के आस-पास लगा हुआ पत्थर छील दे ताकि वह प्रत्यक्ष होकर सब को दिखाई देने लगे। इस तरह के इश्क से माइकेल ऐंजेलो पत्थरों को गढ़ा करता था, पाल पौन्स ने इस तरह के इश्क से अपना शाबसियन को गढ़ा।

एक बड़ी छोटी-सी बात है। जिन दिनों जंग छिड़ी हुई थी, दियासलाई की डब्बियाँ नहीं मिलती थीं। पाल ने एक दुकानवाले को कुछ पैसे पेशगी देकर कुछ डब्बियाँ सुरक्षित करवा ली थीं। एक दिन जब वह अपनी डब्बियाँ लेकर लौटने लगा तो एक औरत बड़ी जल्दी से आयी और दुकानवाले से एक डब्बी माँगने लगी। दुकानवाले के पास सचमुच ही और डब्बी नहीं बची थी। औरत का मुँह उतर गया। पाल ने अपनी जेब से एक डब्बी निकाली और उस औरत को दे दी। औरत जवान थी, खूबसूरत थी पर जब वह डब्बी लेकर लौट पड़ी तो पौन्स ने उस लौटती औरत की पीठ की ओर भी न देखा ताकि जाने या अनजाने उस औरत की खूबसूरती को सराहता वह अपनी डब्बी की क़ीमत न वसूल कर रहा हो। यह एक छोटी-सी बात है

पर इतना बारीक खयाल एक बड़े कलाकार का ही आ सकता है ताकि उस के व्यक्तित्व के बुत में ज़रा-सी कसर भी न रह जाये।

एक वह समय था जब मैं ने 'कम्पन' नज़्म लिखी थी

धरती को आज व्रत तोड़ना है
दिल का थाल कैसे परसूँ
गीता का धान कूटते हुए
कांपने लगी ओखली।
किस्मत ने है रुई पिंजाई
ज्यों-ज्यों चरखा गूँज सुनाये
कांप रही है प्राण जुलाहिन
कांप रही है तकली।

आज गगन की सीढ़ी कांपे
तारे उतरें एक एक कर
मन के किन महलों में सहसा
मची हुई है खलबली।

किस पापी ने तीर चलाया
इश्क़ का जंगल सहम गया है
डरती और कांपती हुई भाग गयी है
यादों की मृगावली।

मुझे याद है कि इस कम्पन से घबराकर मैं उस रात खलील जिबरान पढ़ने लग गयी थी, पर खलील जिबरान का कोई भी बाल मुझ तक नहीं पहुँचा था। और मैं हारकर किताब को जब बन्द करने लगी तो खलील जिबरान ने कहा था 'अगर मेरे अक्षर आज तुम तक नहीं पहुँच रहे तो कोई बात नहीं—कभी फिर सही। मैं शिकवे की हालत में थी। मुझे किसी से कोई शिकवा नहीं था, अपनी प्यास से शिकवा था।

दो वर्ष बीत गये, मन की हालत कुछ इस तरह ही रही

रात जैसे पीतल की कटोरी है
चांद की सफ़ेद कलई उतर गयी

आज कल्पना कसैली गयी है
और सपना कड़वा गया है।

इश्क़ की देह ठिठुराती जाये
गीत का कुरता कैसे सीयें

खयालों का टाँका खुल गया है
कलम की सुई टूट गयी है।

आत्म-परिचय का यह वही लम्बा रास्ता था जिसे पाल पॉटम भी काट रहा था

तू ने इसलिए यह शराब न पी
कि गिलास सुन्दर नहीं था।

उस औरत की उपस्थिति में
जिसे तुम प्यार करते हो
ईश्वर इस धरती पर विराजा लगता है
पर अगर वह औरत कभी तुम्हें प्यार करती हो
तो क्या होता है, यह मुझे पता नहीं—
क्योंकि मेरे साथ कभी यह घटा नहीं।

शहर की गलियों में अकेले घूमते
मैं कई बार गलियों के नुक्कड़ों पर
उसी औरत को देखता हूँ—
जिसे मैं प्यार करता हूँ
वह भी अकेली होती है, नितान्त अकेली
और उस आदमी को खोज रही होती है—

हम भरे समुद्र में
उन दो जहाजों की तरह होते हैं
जो अपने अनचाहे दिलों के झण्डे
एक पल के लिए एक-दूसरे के आगे झुकाते हैं—
और फिर एक-दूसरे के पास से गुजर जाते हैं।
इस तरह एक दूसरे के पास से गुजरते जहाज
एक दूसरे के बन्दरगाह नहीं बन सकते।

किसी उस से प्यार करना
जो तुम्हें प्यार न करता हो
किसी उस देश का नुमाइन्दा बनना है
जिस मुल्क का अस्तित्व ही कोई न हो।

कभी गुजरा तो शायद इसी राह से ही होगा, पर अब खलील जिबरान बहुत आगे पहुँच चुका था दिखाई नहीं देता था। दूर कहीं से उस की आवाज आयी "मैं तुम्हें इनकार की राह नहीं पकड़ने दूँगा। पूर्ति की राह की ओर आओ। थकान तुम्हें नहीं रास आयगी। इस थाह को पाना पड़ेगा। और वह भी हँसते होठों से।" यह

विराट् अन्तर का आवाज थी, इसलिए निक्वे की आँखें नीचे झुक गयी। वह थक भी बहुत गया था रास्ते में ही रह गया। मैं उस से मुक्त होकर आगे चल पड़ी। और देखा, पाल पाटस भी आगे चल रहा था।

पाल कह रहा था

अगर तुम किसी उस औरत से प्यार करते हो
जो औरत तुम्हें प्यार न करती हो
उस समय एक ही ईमानदार बात हो सकती है
कि तुम दूर चले जाओ
दूसरे शहर में, दूसरे देश में दूसरी दुनिया में
कहीं भी चले जाओ।

पर जिन्दगी का वास्ता है चले जाओ।
तुम चाहे पूरी तरह लुट जाओ
पर उस से यह देखने देना।
वह तुम्हें एक भिखारी बना क्या देखे
वह जो तुम में एक बादशाह देख सकती थी।

अगर मुझे अपनी सारी जिन्दगी का
एक शब्द में वर्णन करना हो
तो मैं कहूँगा एकाकीपन
और फिर इस शब्द का दोहरा दूँगा।

अपने अगले रास्ते के गीत को मैं इसी लिए एक गीत का जन्म नहीं कहती एक अवस्था का जन्म कहती हूँ जिस अवस्था में एक आशिक उस चारपाई पर भी निश्चिन्त होकर सो सकता है जिस के चारों पाये हादसों के बने हों, और जिस चारपाई को पीड़ाओं की मूज ने बुना हो और इस चारपाई पर सोनेवाला मुहब्बत की आग का हुक्के की पालतू आग की तरह अपने सिरहाने रखकर सो सकता है।

इस अवस्था की देन है कि एक दिन जब मैं ने सामने देखा खलील जिब्रान ने अपने हाथ में पकड़ा हुआ जाम अपने माथे से भी ऊपर उठाया और फिर एक लम्बा घूँट भरा, मेरे नाम पर, पाल पाटस के नाम पर, और आप सब के नाम पर जो अपनी जिन्दगी के जाम को अकेले पी रहे हैं।

मुझे अपने जाम से अपने खून का और अपने आसुओं का स्वाद आता है इसी तरह, जैसे आप को अपने जाम से अपने खून का और आसुओं का स्वाद आता होगा। पर आज मैं प्यास की इस सौगात के लिए जिन्दगी का शुक्र कर सकती हूँ अपनी ओर से भी और आप की ओर से भी, क्योंकि इस प्यास के बिना मेरा या आप का दिल उस सूखे हुए समुद्र का किनारा बन जाता जिस में न कोई गीत होता है और न कोई लहर।

दुब्रोवनिक (छब्बीस थियेटरों का शहर)

शायद हल्की-सी धुंध का जादू था कि रोम से यूगोस्लाविया जाते हुए राह का सागर और आसमान, एक दूसरे में अपना रंग मिलाकर कुछ पलों के लिए एक हो गये लगते थे, अहसास होता था कि आधा आसमान पैरों के नीचे है आधा सिर के ऊपर। या आधा सागर के नीचे बह रहा है और आधा सिर के ऊपर।

हेनरी मिलर के लिए उस के एक समालोचक ने कहा था कि वह किसी पारदर्शी ह्वेल मछली के पेट में पड़े हुए उस इनसान की तरह है जो अपनी जगह से हिल नहीं सकता, पर मछली के पेट से बाहर जो कुछ घटित हो रहा है उसे देख जरूर सकता है। देख सकता है और लिख सकता है। यह केवल हेनरी मिलर का नहीं, हर लेखक के भीतर के हेनरी मिलर का भुगता हुआ अहसास है। चिह्नात्मक मछली के पेट में पड़े होने का अहसास हम सब जानते हैं, पर जिन पलों की यह बात कह रही हूँ, वे पल फिज़ा की गन्ध से सिर्फ अन्दर की ही नहीं, बाहर की हकीकत भी बने हुए थे।

आँखों के सामने सिर्फ अपना अस्तित्व था—जिस्म के हाथ सिर्फ इसी तक पहुँच सकते थे, पर सोच के हाथ बहुत लम्बे होते हैं, वह इस अस्तित्व का दुनिया के उस सब कुछ से अपना सम्बन्ध ढूँढ रहे थे, जो 'सब कुछ' इनसान की पकड़ में आ सकनेवाली बहुत खूबसूरत घटनाओं की शक्ल में भी घटित होता है, और भयानक घटनाओं की शक्ल में भी।

सागर की हरी नीलाहट कितनी शायराना है, पर मैं क्या करूँ मेरी आँखें इस पतली कोमल और झिलमिलाती सतह के नीचे जाकर उस सतह के नीचे पड़े हुए मगरमच्छ भी देख लेती हैं—मेरे हाथ के पास पड़ी हुई सार्त्र की एक किताब का एक पात्र सोच रहा था, और मेरे साथ की सीट पर बैठा हुआ एक बुजुर्ग चेहरा मुझे कह रहा था, मैं इज़राइली हूँ, हम ने पीढ़ी दर पीढ़ी जीने की जद्दोजेहद की है, पर अभी अभी हुई अरब लोगों के साथ हमारी लड़ाई बड़ा उदास हादिसा है। हम जीना चाहते हैं—मरना और मारना नहीं चाहते, पर इस 'पर' के पीछे जो कुछ है यह कहने की जरूरत नहीं थी। पिछले दिनों मैं ने एक नज़्म लिखी थी—"इज़राइल की ताज़ी मिट्टी और अरब की पुरानी रेत जब खून में भीगती हैं तो उस की गन्ध ख्वाहमख्वाह शहादत के जाम में डूब जाती है।"—वह इज़राइली भी एक खामोश-सा ज़िक्र इसी 'ख्वाहमख्वाह' का कर रहा था। इज़राइली लोगों की मेहनत और अक्लमन्दी में किसी को शक नहीं, पर लोगों की धरती छीनकर, अरबवासियों को हमेशा के लिए उन के

विद्यार्थी बना देना वह 'पर' है जो सागर की हरी और नीली सतह के नीचे एक मगरमच्छ की तरह पड़ा हुआ है

हलकी धुंध का जादू था या रंगों की साज़िश, या मेरी अपनी नज़र का कुछ। पल लम्बे होते गये। किसी ह्वेल मछली के पेट में पड़े होने का अहसास तीखा होता गया। बाहर जो कुछ हो रहा था भयानक घटनाओं की शक्ल में भी दिखता रहा और खूबसूरत घटनाओं की शक्ल में भी। कल हिन्दुस्तान से आते समय एक अखबार के नुमाइन्दे ने एक सवाल पूछा था 'इस पन्द्रह अगस्त को हम ने पिछले बीस सालों की समालोचना करनी है इन बीस सालों में हम ने क्या कुछ पाया, और क्या कुछ पाने से रह गया? तुम्हारा क्या जवाब है?' जवाब दिया था सब से बड़कर जो कुछ पाया है वह इसी सवाल का अस्तित्व है। यह सवाल एक लेखक से आज़ाद देश में ही पूछा जा सकता है। लिखने की बोलने की और सोचने की स्वतन्त्रता हम ने पायी है। जो नहीं पाया वह यह है कि इस के काबिल उतरनेवाला अमला नहीं पाया। मौके विशाल हुए थे हैं पर इन्हें इस्तेमाल करनेवाले हाथ देश की समूची कमाई के लिए मिलकर आगे नहीं हुए बल्कि जल्दी में उन्हें अपने अपने दायरे में समेटने के लिए सिकुड़ गये हैं, जिस का नतीजा है दिन पर दिन बढ़ती हुई कीमतें, और दिन पर दिन निरुत्साह होती हुई ज़िन्दगी। पर इस सब कुछ में भी यह आस बची है कि शायद यही सब कुछ किसी दिन लल्कार बन जायगा और आज भी सोच रही थी—हिन्दुस्तान का परदेशी मुल्कों से सांस्कृतिक आदान प्रदान केवल इसी आज़ादी की देन है। हम अपने मुल्क की सख्त लफ़्ज़ों में आलोचना करते हैं क्योंकि हमारे सपने उस के साथ जुड़े हुए हैं—सिर्फ उसी के साथ जुड़े हुए हैं और वह हमारी आलोचना को सहता है क्योंकि यह अपनत्व का तकाज़ा है। यही अपनत्व हमारी कमाई है

फ्राम इण्डिया?' दुब्रावनिक के एयरपोर्ट पर जब मेरे मेज़बानों ने पूछा, तो सब से पहला गुरूर मेरा ज़िन्दगी के साथ यही था कि आज मेरा मुल्क आज़ाद है, और मैं एक आज़ाद मुल्क के लेखक की हैसियत से यहां खड़ी हूं।

दुब्रावनिक बिल्कुल सागर के किनारे सरू और चीड़ के पेड़ों से लदी एक वादी है। शहर का घेरा सिर्फ दो किलोमीटर है पर इस दो किलोमीटर का चौगिरदा मीलों तक सरू के पेड़ों से फैला हुआ है। यूगोस्लाविया छह रिपब्लिक्स में बँटा हुआ है यह दुब्रावनिक क्रोएशिया रिपब्लिक की हद में है। इस के उत्तर और पूर्व में पहाड़ हैं दक्षिण और पश्चिम में सागर।

शहर को घेर में लेनेवाली पुरातन दीवारें २१२१ गज लम्बी हैं और इन दीवारों का भीतरी हिस्सा १७७२९९ गज है। ये सब कोई बत्तीस गांव हैं। और कुल आबादी साठ हज़ार है। लेकिन तेईस हज़ार की शहरी आबादी में से कोई छह हज़ार लोग पुरातन दीवारों के भीतरी हिस्से में रहते हैं बाकी साथ लगती बस्तियों में।

इस शहर की जहाज़ी तिजारत बहुत पुरानी है। कोलम्बस के नये ढूंढे अमरीका

में सब से पहले इसी शहर ने तिजारती जहाज भेजे थे। इस शहर की बढ़ती अमीरी के साथ जहां इस के लोगों को अपना शहर दुनिया के बहुत खूबसूरत शहरों की तरह बनाने का वलवला पैदा हुआ वहां जिन्दगी की अमीरी को मनाने के लिए उन्होंने नाच, नग्मे और नाटक भी बड़े उत्साह से अपनी जिन्दगी में शामिल किये। कोई बता रहा था, "दुब्रावनिक के ताले दुनिया में बहुत मशहूर हैं। और मैं हँस रही थी, 'ताले भी और नाटक भी। ताले कमायी हुई दौलत को सम्भालने के लिए और नाटक जिन्दगी के बन्द भेदों को खोलने के लिए।' कहा जाता है कि पुराने वक्तों में भी कोई मेला या ब्याह नाच और नाटक के बिना नहीं हो सकता था। इस समय इस शहर में छ्यालीस ओपन एयर थियेटर हैं। हर साल नाटकों का एक समर फेस्टीवल मनाया जाता है। वैसे भी इस शहर की कमाई को शुरू से समन्दरी राज्ञी कहा जाता है। तिजारती जहाजों की कमाई के अलावा, इस के किनारे जो अमरीकन फ्रांसीसी, इतालवी और जरमन लोग गरमी की छुट्टियां मनाने आते हैं, उन से हुई कमाई भी इस की 'समन्दरी राज्ञी' में शामिल है। हर साल लोकगीतों और नाटकों का मेला भी परदेसियों के लिए आकर्षण का एक कारण है। यह मेला कोई डेढ़ महीना लगातार मनाया जाता है।

मेला के प्रबन्धकों की तरफ से दिया गया सुनहरी बैज 'लिबरतास' अपनी कमीज से टांगकर, इस लफ्ज़ स्वतन्त्रता के साथ धरती के इस टुकड़े का पुराना इश्क भी देख सकती थी। जब नेपोलियन ने इस को अपनी जीत में शामिल कर लिया था और फिर नेपोलियन की मौत के कुछ समय बाद आस्ट्रिया ने तो इस के निहत्थे हुए नौजवान अमीरों ने एक सौगन्ध ली थी कि वह बिन-ब्याहे मर जायेंगे ताकि उन की औलाद को गुलामी न देखनी पड़े

शहर के मुख्य दरवाजे के साथ लगते भीतरी दरवाजे पर एक सतर खुदी हुई है "दुनिया भर के सोने के माल पर भी स्वतन्त्रता बेची नहीं जा सकती।' यह सतर इस दरवाजे की पांच सौ साला वरसी मनाते हुए सन १९२२ में लिखी गयी थी।

'हमारे पास छह रिपब्लिक्स हैं, पांच क़ौमें, चार जबानें, तीन मजहब, दो लिपियां और एक लालसा हमेशा स्वतन्त्र रहने की'—यूगोस्लाव लोग यह मुहावरा अक्सर दोहराते हैं। यह ठीक है कि यह सब कुछ यूगोस्लाविया का अपना है, पर इस सब कुछ को मुहावरेबन्द पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने किया था, और इस के लिए वे नेहरू के शुक्रगुजार हैं

पुरातन दीवारों के घेरे में शहर बिल्कुल नयी इमारतें हैं—पहाड़ों के इर्द गिर्द मीलों तक फैली सीढ़ियों के दरवाजोंवाली और जिन दरवाजों के सामने देग-देग की कारें पंक्तियाँ बांध खड़ी हैं—पर तवारीखी शहर की गलियाँ तवारीख के भारी कदमों में मगरूर आज भी केवल पैदल चलते पैरों के लिए खुली हैं। कभी कभी के पहलू से निकलती छोटी गलियों के सिरे चुपचाप उस सागर की ओर तकते रहते हैं,

पानियों को चीरकर इस शहर में कभी दौलत भी आया करती थी और ा की तलवारें भी

एक खम्भे के पास बनी व तीन सीढ़िया आज बहुत थकी हुई लगती ह जहा ही फरमान सुनाये जाते थे—पहली सीढी पर खडे होकर शहरवासिया पर लगें टैक्स का फरमान दूसरी सीढी पर खड होकर कोई उस से अहम मामले या जाता फरमान और सब से ऊपरी तीसरी सीढी पर खडे होकर सब स बडी ग के एलान जसी—के बारे में सुनाया जाता था। आज इन सीढ़िया के ती चुप में जो सरसराहट ह लगता ह वह उन लाखा और कराडा सासा में ई ह जो गरम साँस कभी इन फरमाना का सुनते हुए लाखा और कराडो निकले थे

चच के आगनो की छाया उदासी हुई ह। जाने कितने हाथा की प्रायना इस ने इस का छाया में उनीद-स कबूतर हर वक्त बठे रहते ह—शायद लोगा के जुडे चिह्न बनकर बठे रहते ह।

इन पुरानी तवारीखी इमारतो क दरीचे और उन क खँडहर और किला की रियाँ नाच और नाटक खलने के लिए अजाब साजगार ह। पत्थरा और की आट से निकलते नाटका के पात्र, और पुराने पहाडा वशा में—फूलदार चाले मोहरा के हार और लाल-वाली कुरतियाँ पहने और सिरा पर पटके निकलती नाचिया, वतमान का हाथ पकडकर उसे बीते समय क घर बुलावा ती ह।

इस समय शहर में इसा शहर की सोलहवी सदी म हुए एक शायर और र, मारिन दरयिच के समय की धूल में ढक गये नाटका का झाड-पाछकर पढने और उन पर बहस करने के लिए एक सभा बनी ह। अमरीका से भी हित्य विमानी आये हुए ह यह बहस एक हफ्ता रहेगी। इस लखक के दा नाटक म शहर में खेले जा रहे ह। एक नाटक परी-कहानी ह। इसे खलने क लिए किनारे एक पहाडी स्थान चुना गया ह। पेडा का बहुत बडा एक घेरा ह में स निकलते ऊँचे-नीचे कितने ही रास्ते ह। परिया के अलोप हाने क लिए क्ष होने के लिए और पेडों पर चढ़ने के लिए, या उन पर पडे हुरे पत्ता के ने क लिए, अजीब कुदरती माहौल ह।

शेक्सपीयर के नाटक भी बहुत मकबूल ह। एक पुराना किला इन नाटको का क लिए इतना याग्य स्थान बन गया ह कि वह सिफ शेक्सपीयर के नाटका के रक्षित रख लिया गया ह।

ऑथेलो और हमलेट के पात्र किले की लम्बी और अँधेरी सीढिया में स झरोखो से लालटेनें लेकर झाकते, मुडरा पर मशालें लेकर चलते और लकडी बने पुरातन दरवाजा के ताले खोलते और बन्द करते अपनी पूरी भयानकता स

लोगों का मोह जाते ।

समूची वादी के एक ओर जल थल करता सागर है और दूसरी ओर मरे सागर (डेड सी) की जीती पसली पहाड़ों में खुदी हुई है। वादी का एक हाथ खुली हथेली की तरह लगता है, जिस पर कुदरत की खूबसूरती जगमग करती लगती है और वादी का एक हाथ बन्द मुट्ठी की तरह लगता है जिसे सिर्फ बहुत हौले-हौले खोला और जाना जा सकता है। इतिहास की जद्दोजेहद इस मुट्ठी में बन्द है

इस बार किसी देश को देखने का मेरा तजरबा बिल्कुल अलग किस्म का है। दुभाषिये की जरूरत नहीं, उस के बिना शहर में चल जाता है। होटल शहर के दरवाज़े से बाहर है, बिल्कुल सागर के किनारे। मेज़बानों ने कमरा ले दिया है पर रोटी खुद खरीदनी है। उस के लिए वह ७,५०० दीनार रोज के मेहमान को देते हैं पर साथ यह कहकर, "हमें मालूम है, यह काफी नहीं होंगे, बड़े होटल में इस से रोटी नहीं खरीदी जायेगी, पर अगर एक वक्त रोटी किसी सस्ती जगह से खा ली जाये "

और शहर में सस्ता जगह ढूंढने के लिए पलातसा के बाजार में और उस में से दायें-बायें निकली पथरीली गलियों में घूमते हुए लोगों से सीधा वास्ता पड़ता है। नये दीनार चालू हो गये हैं (सौ पुराने दीनार एक नये दीनार के बराबर) पर अभी तक पुराने दीनारों में गिनती करनी लोगों को आसान लगती है। वे इसी में कीमत बताते और पूछते हैं।

अभी एक बड़ी उम्र की औरत ने बांह पकड़ ली थी कि मैं उस से घास का बना एक छोटा-सा बैग जरूर खरीदूं। कीमत पूछी, पता चला पांच हजार दीनार। पास कोई लाल धागों के कसीदेदार थैले बेच रहा था। उस का तकाज़ा था कि मैं एक थैला जरूर खरीदूं। कीमत पूछी छह हजार दीनार। सुबह-सुबह चाय के प्याले की ज़रूरत थी बाज़ार बहुत दूर था, वहां भी वहां चाय नहीं मिलती। इसलिए होटल में ही चाय पीनी पड़ी जिस का बिल १ ४४० दीनार था

रोज समर समारोह में किसी नाटक का टिकट मुझे मेज़बान भेज देते हैं बस उस टिकट की कीमत पांच हज़ार दीनार है सिर्फ एक शो का।

देख रही हूं—सामने चर्च में माथे से, छाती से और घुटनों से रिसते खूनवाली ईसा की पेंटिंग लगी हुई है। बाहर दीवार के साथ पीठ टिकाये आज के आर्टिस्ट अपनी पेंटिंग्स फर्श पर रखकर बेचने के लिए बैठे हैं। गिन्सबर्ग की नज़्म याद आ रही है— दुआ कर सिर्फ मर्द और औरत के लिए, जो अहसासों के बादशाह होते हैं और अपनी जीती हड्डियों के ईसा "

शहर की पुरातन पथरीली दीवार पर चढ़कर सारे शहर के गिर्द घूमना एक अजीब तजरबा है—दीवार से ज़रा नीचे पर बिल्कुल पास लगते घरों का यह एक खलल जरूर लगता होगा क्योंकि उन के कमरों में बिछे बिस्तर मेज़ों पर पड़ी रोटियां और आंगनों में सूखने डाले गये कपड़ों की कतारें दर्शकों की आंखों के सामने बिछी

आग के फूल   आग की लकीर

सागर के किनारे सूप डूबता नहीं लगता, आग का एक लपट पानी में बुझती लगती है। और फिर सागर उस कटोरे के पानी की तरह काला-नीला हो जाता है जिस में बहुत-से कोयले बुझाये हों। पर अम्बरी आग बुझती नहीं। कुछ घड़ियाँ ही गुजरती हैं कि आग का वह टुकड़ा मल मलकर पानी में नहाया हुआ, और आगे से भी ज्यादा चमका हुआ, फिर पानी में से निकल आता है। आज कुछ सतरें अनायास होंठों पर फड़कने लगीं—

"आग का टुकड़ा मैं ने अभी पानी में बुझाया था
और फिर अभी जलता हुआ पानी में से निकल आया है
शायद तेरा इश्क भी अम्बर की आग है
कि जिसे बुझाने के लिए आज कोई सागर भी काफी नहीं।

सोच रही थी—नज़्में आग के फूल होती हैं। ये मनुष्य की छाती में खिलती हैं, माथे में खिलती हैं और यहाँ तक कि रीढ़ की हड्डी पर भी इन के फूल पड़ जाते हैं। और वह मनुष्य एक अमानुषिक हद तक मनुष्य हो जाता है पर मनुष्य-जाति से बिछुड़ जाता है। यह बिछुड़न उस पर कहर भी करती है और करम भी। वह बाहें पसारकर सारी धरती को गले से लगाना चाहता है पर धरती की चकलता फैला ने नहीं बहलता वह ताकत के और जग के ढोल खेला से बहलती है। और उस की बाँहें खिलाव में फैल रह जाती हैं और फूल एक एक कर के जिन्दगी की अर्थहीनता की काली खाई में गिरते रहते हैं

"जो कभी आजकल हमारी वैमना पास्न यहा होती। वह हमारी बहुत बड़ी शायरा है। दुबावनिर का एक शायर लुका पालीऐतक अभी मुझे कह रहा था 'पर धरती का कोई टुकड़ा भी उस के पैरों को थाम नहीं सकता। वह कभी किसी गाँव में होता है, कभी किसी शहर, कभी किसी ट्रेन में। सारी जिन्दगी उस ने अकेले गुजारी है इसी तरह पैरों में सफर के छाले पहनकर

और पालीऐतक ने उस के खयालों में खोकर उस की एक नज़्म की कुछ पंक्तियाँ पढ़ीं

'आज मैं ने अपनेआप से कहा कि वह मेरी बात सुने।
मुझे वहाँ ले जाये—जहाँ कुछ जाना-पहचाना न हो
सिर्फ पार का वास्ता सुबह-सवेरे रास्ता दिखाये

और रात का चाद मेरा पहरन बुने
आज मैं ने अपनेआप से कहा कि वह मेरी बात सुने !"

पर कार्ड सिफ तब ही तो नही होता, जब दिखता ह । वैमना पारन वहां थी, मेरे पास बेंच पर बठी हुई । पालाऐतक उस की नज्में पढ रहा था

जिस्म सागर के बहुत गहरे पानी की तरह होता है,
इस में सिफ कुछ मछलियां होती ह—
जो बुलबुलाती ह और चमक जाती ह
मेरा दुख गुफा में से निकलते पानी की तरह ह—
कौन जाने वह कहा से आया और कहा पहुचेगा !
अभी अभी रोशनी का पर एक पवत से फिसल गया
और पत्ते जो मेरी छाती से उगे, अब छाती पर झर रहे
वह जो इस राह कभी नही आया
मैं उसे एक चुप अदद भेज जाऊँगी
और आज मैं एक वर्जित पीडा गान गाऊँगा ।

इस जिन्दगी का कोई क्या करे जहा सिफ खुशियाँ वर्जित नही होती पीडा भी वर्जित होती ह । कल रात तो मेल्विाव के पेश किये हुए लोक-नृत्य देखे थे जिस में मसेडोनिया का एक लोक गीत था

हो मारे सुन्दरी ! हो मारे सुन्दरी ! मैं कासद बनकर आया
मखमल दे दे, धागा दे दे, मुझे अभी लौटकर जाना
मालिक मेरा विरागी बठा तेरा पहरन सीता
कहा से आया कासिद बन्दा कौन ह मालिक तेरा ?
मैं ने कभी आख न देखा नाम न जाने मेरा
ओ मोरे सु दरी ! ओ मोरे सुन्दरी ! यही तो कहना मेरा
उस ने तेरी परछाइ देखा, नाम जानता तेरा

कहते ह बारह दासिया के घेर में कोई सुन्दरी हमाम की ओर जा रही थी कि एक कपडा के कारीगर ने उस की परछाइ देख ली बुत खयालों म बस गया था, इसलिए नाप की जरूरत नही रह गयी थी, उस ने अपने एक शागिद को सुन्दरी के पास भेजा था कि उसे सिफ कपडा चाहिए नाप नही चाहिए। परछाइयो को भी इश्क करनेवाले लोगों का कोई क्या कर ? एस लोगा का और कुछ नहीं बनता सिफ गीत बनते रहे ह

एक और नाच का गीत था—

'ऊँचे झरोखे खडी सुन्दरी तरकीब बना
गज-गज लम्बे बाल काट के एक रस्सी लटका

एक बार तेरा हाथ चूम लूँ
एक बार मैं मुझ तक पहुँचूँ
फिर चाहे मर जाऊँ"

आज, सिर्फ आज, बस एक घड़ी जीने की तमन्ना करता गीत था रात तो मल्लिआद ने बताया था कि वह शायद इस साल के आखिर में अपने लोक-नाच लेकर हिंदुस्तान आयेगा। वह अपनी नाची लड़कियों को किसी पंजाबी या हिन्दी-गीत की एक दो पंक्तियाँ सिखलाना चाहता था। पंजाब की एक बोली मैं ने उसे याद करवा दी—

"दो दिन घट जिअना पर जिअना मटक दे नाल"
वह खुश था कि जीने के फल्सफे से भरी हुई यह सतर उस के किसी लोक-नृत्य में खूब उतरेगी

और आज इन गीतों की बात करते, और वमना पारुन की नज्में पढ़ते हुए पालीऐतक ने अपनी नज्मों के कुछ वर्क पलटे—

"आज की रात बहुत भारी है
तेरा बदन—सागर के पानी की तरह सिल्की और सलेटी
शायद माँ ने सागर की सेज पर तुझे कोख में डाला था
मैं ने तेरे हुस्न का एक घूँट पिया है और दर्द चखे हैं
और इस नज्म का जन्म पीड़ा की गुफा में हुआ है
एक मासूम बच्चे की तरह इस ने धरती पर पाँव रखे हैं"
"मैं—कोई आधे साल से—
तेरे आँगन में पेड़ की परिक्रमा में खड़ा हूँ
और मेरी जन्महारी, सब कुछ जानती, एक गहरी साँस भर रही
और पिछली कोठरी में बैठी चुपचाप प्रार्थना कर रही
आज की रात बहुत भारी है
रात की छाती में एक सितारी आत्मा
और मेरे सीने में तेरे इश्क की दौलत
और एक गीत आज दबे पाँव आसमान में चल रहा
प्रभात अभी बिल्कुल क्वारी है
कि अभी उस ने वासना नहीं सूँघी
और तेरा बदन कवियों की तरह मेरे बदन पर बरस रहा
चरनों की कमर में पानी का लहँगा है
और मेरी पलकों पर तेरे हुस्न के साये
और तेरा बदन संगीत की तरह मेरे बदन से ऊपर रहा
सितारे आँगन की बेल पर अंगूरों की तरह लगे हैं

एक बैठक एक दुपहर

एअर रेड की आवाज थी, फिर गिरते हुए बम्ब की, और फिर उस की आग की चमक देखकर, हरानी से मस्त हुए बच्चा की आवाजें मम्मी ! नाम बम्ब, डैडी ! क्रीम बम्ब।' और फिर बम्ब के फटने की आवाज, और बच्चा की वे आवाजें जो मुरदा मा, और मुरदा बाप के सीने से लिपटकर रो रही थी, मम्मी ! आई डोण्ट लाइक क्रीम बम्ब, डडी ! आई डाण्ट लाइक क्रीम बम्ब।

कमरे म वह टेप लगा हुआ था जिस में कुछ दर पहले, एक अमरीकन शायर माइकल ने मेरे घर आकर वियतनाम पर लिखी अपनी नज़्म गायी थी।

शिव के हाथ म स चाय का प्याला गिरते गिरते बचा। हलवे की भरा हुई प्लेट को एक तरफ सरकाते हुए कहने लगा 'दीदी ! कुछ भी गले से नीचे नही उतरता, यह नज़्म सुनकर कुछ भी नही खाया जायेगा।

सब के गले में इस नज़्म का धुआ था। और सासें कडवी होती चली गयी अब टेप पर एक अमरीकन लम्की जौनबेज गा रही थी, 'हम मरे हुआ की गिनती नही करते जब खुदा हमारी तरफ ह' जौनबेज की आवाज़ हमार कानो म चुभ रही थी दिलो को टीस रही था। उस का व्यग्य तेज़ छुरी की तरह मार कर रहा था

मैं जिस देश म रहती हू खुदा उस की तरफ ह
तारीख बतायेगी—खून बतायेगा
कि घोडो के दस्त भागते हुए गुजर
औ रेड इण्डियन कुचले गय
फिर घरेलू जग औ शहीदो क नाम मुझ जबानी याद करने पडे

हाथ म बन्दूकें साथ खुदा खडा हुआ
पहली जग आयी गुज़र गया,
औ जग क कारण का मुझे आज तक पता नही चला।
पर मैं न उसे स्वीकारना सीख लिया ह,
वह भी गरूर से
मरे हुआ की गिनती नही करते जब खुदा हमारी तरह ह
फिर दूसरी जग भी आया, औ गुजर गयी

हम ने जरमनों को माफ कर दिया, और उन्हें दोस्त कहा
भले ही उन्होंने साठ लाख लोग क़त्ल किये थे
अब जरमन भी हमारे साथ है,
और खुदा उन की तरफ है
मैं ने महान् रूसियों से नफरत करना सीखा
और यह भी कि हमें उन से जरूर लड़ना है
अब हमारे पास बड़े हथियार हैं, हम उन पर चलायेंगे
आप सवाल मत पूछें, पूछ नहीं सकते।
मैं ने क्यों यह बात सोची है
ईसा मसीह रोया, तो हम ने एक चुम्बन से उसे दगा दे दिया
मैं कुछ नहीं कहती, आप सोचें!—खुद सोचें
मैं बेहद थक गयी हूँ—
मैं ने, जो दुविधाएँ जानी हैं
वक्त उन का पता नहीं दे सकता
दाग़ मेरे मस्तक में जमा होते हैं,
और फिर जमीन पर पिघल जाते हैं
मगर खुदा मेरी तरफ है—तो जंग नहीं होगी नहीं होगी

शिव ने हवा में बाजू फहराया, "ऐसी आवाज कभी नहीं सुनी, कभी नहीं सुना, मैं मर गया" जोनबेज की आवाज में सीना काले लिपटे हुए प्रतीत होते थे—काल, जो लोगों के खून में भीगता रहा। काल, जो लोगों के खून में भीग रहा है। और काल, जो लोगों के लहू में भीगता रहेगा, तब तक, जब तक खुदा सचमुच इस आवाज की बग़ल में आकर नहीं खड़ा हो जाता, और हर उस आवाज के पहलू में नहीं खड़ा हो जाता, जो जिन्दगी के लिए तड़प रही है

मेरा बेटा एक टेप उतार रहा था, एक लगा रहा था। वह किंग लूथर के दिन का गीत सुनाना चाहता था "यह आज हमारा नहीं पर कल हमारा होगा।" टेप में से आवाज आने में देर लगी तो शिव का सब्र काबू में न रहा। उसे बताया गया कि टेप उल्टा है, थोड़ा देर लगेगी, शिव ने हैरान होकर टेप की तरफ़ देखा, "अभी यह सीधा था, अभी उल्टा कैसे हो गया?"

मेरा बेटा हँस पड़ा—"अंकल! यह तकनीकी बात है।"

"इसी तकनीक का तो मुझे पता नहीं चल सका," शिव मन की आग से पिघला हुआ था। कहने लगा "मैं मुहब्बत को हमेशा सीधी रखता रहा, पर वह हर बार न जाने किस वक़्त उल्ट जाती थी अच्छी भली आवाज न जाने कहाँ गुम जाती थी फिर मैं बजाता कुछ था, बजता कुछ था।"

टेप में किंग लूथर के दश का गीत अभी नही मिल पाया था—कि अमरीकन मछुआ का गीत बज उठा, "मद का जन्म मेहनत करने के लिए हुआ ह, औरत का रोने के लिए"—गीत के मछुए समुद्र में डूब जाते ह, और किनारे पर उन की औरतें राती ह

'दीदी ! हम सब इस गीत की तरह, आधे समुद्र में डूब जाते ह, और आधे किनारे पर बठे रोते रहते हैं," शिव की आवाज दार्शनिक हो उठी, "शायर के दिल में मद भी हाता है, औरत भी। वह मद की तरह मेहनत करने के लिए जन्म लेता ह, और औरत की तरह रोने के लिए "

सामने मेज पर 'अफरो एशियन राईटिंग्ज' का नया अक पडा हुआ था। शिव कभी अपनी कापती हुई उँगलियों में दबे हुए सिगरेट को जलाता और कभी सामने पडे अक के पन्ने पलटता सँभलने को कोशिश में था कि अचानक बोल उठा, 'थान हे मिल गयी वियतनामी शायरा थान हे की नये अक म तसवीर भी थी और नज्म भी।

'सुना दीदी !' शिव ने थान हे की नरम पन्नी शुरू की, "सन्तरे के पेडो पर मैं जब चिडिया की चहक सुनती हू, तुम याद आते हो और मेरे हाथ म से चरखे की हत्थी छूट जाती ह। मैं इस तरह तुम्हारा इन्तजार कर रही हू, जसे सन्तरे का पेड फल लगने का इन्तजार करता ह

थान हे के हाथ म से चरखे की हत्थी फिसली ता शिव के हाथ म से उस का अपनाआप फिसल गया। उस की आवाज पहले गले में काँपी फिर दीवारो से टकरायी, मैं और सूरज फिर घर के पीछे चले जाते ह, उसे घर की मरी हुई घूप दिखाता ह '

पाकिस्तान की रेशमा ने जसे शिव की बात का साथ दिया टेप म से उस की आवाज बिलख पडी 'हाय आए रब्बा ! नहीओ लगदा दिल मेरा ' (हाय खुदाया ! मरा दिल नही लगता)

देखो दीदी। रेशमा की धूप भी मरी हुई ह, थान हे का घूप भी मरी हुई ह जौनबेज की धूप भी मरी हुई ह, माइकल की धूप भी और दीदी ! तुम्हारी धूप भी मरी हुई ह। तुम ने जब लिखा था—मैं थी रात थी, खयालो की शराब थी, और बडे दोस्त पर एक कोई वह था जा बहुत बार बुलाने पर भी नही आया था " और शिव ने कापकर पूछा, "यह जो एक होता ह वह कहाँ होता ह ?

इसी एक की ता सारी बात ह शिव ?" मैं ने शिव को गरम चाय का प्याला दिया और कहा 'यह एक अपनाआप भी ह अपना महबूब भी, और जगह-जगह पर व्यथ मर रहे लागो की साँस भी "

शिव को डेढ बजे की गाडी पकडनी थी, डेढ बज चुका था, गाडी जा चुकी

थी। वक्त अपनी रफ्तार चला आ रहा था, सिर्फ शिव मरी हुई धूप के पास बैठा हुआ था और रेशमा उस लाश के सिरहाने थी याल है बेहद उदास थी माइकल बहुत चुप था और जोनवेज, उस लाश के पास खड़ी व्यग्य से कह रही थी, "हम मरे हुओं की गिनता नहीं करते "

और मैं—हम सब—इंतजार कर रहे थे कि खुदा सचमुच कब हमारी तरफ होगा ? ?

इतालवी धरती

वैसे तो हर देश एक नज़्म की तरह होता है, जिस के कुछ अक्षर सुनहरे रंग के हो जाते हैं और उस की आबरू बन जाते हैं। कुछ अक्षर उस के लाल हो जाते हैं, उस की अपनी या बेगानी बन्दूकों से लहू लुहान होकर। और कुछ अक्षर उस की हरियाली की तरह हमेशा हरे रहते हैं जिन में से उस के भविष्य के नये पत्ते फूटते हैं और इस तरह हर देश एक अधूरी नज़्म सरीखा होता है। पर इतालवी धरती को छुआ तो लगा—जैसे एक नज़्म के पूरे या अधूरे होने के अमल का बड़ा प्रत्यक्ष देख रही हूँ। इस धरती के चप्पे चप्पे पर संगमरमर के बुत ऐसे लगते हैं जैसे इस धरती में से बुत उगते हों। लगा—नज़्म के जो अक्षर खानों में गिर गये वे संगमरमर बन गये, और जो अक्षर धरती में बीजों की तरह पड़ गये वे माइकल ऐंजलो के तथा और कलाकारों के हाथ बनकर उग पड़े और इन सफ़ेद अक्षरों के इतिहास से लाल खून से रँगे अक्षरों का इतिहास भी बहुत लम्बा है—जब स्पार्टेकस जैसे हज़ारों गुलाम शासक रोमनों की तमाशबीनी के लिए एक दूसरे की जान पर खेलते थे

और इस नज़्म के अक्षर पीले भी हैं—ख़ौफ़ज़दा—पोप के वेटीकन शहर की ऊँची दीवारों से टकराते और गुच्छा होकर ख़ुद ही अपने अंगों में सिकुड़ जाते। इतालवी धरती एक ऐसी होनी की धरती है जहाँ कई अक्षर उस के हरे जंगलों की तरह भविष्य की शाखाएँ भी बन गये हैं—और कई अक्षर हमेशा के लिए खो भी गये हैं—शायद पहली बार तब खोये थे जब 'डिवाइन कामेडी' का दान्ते जलावतन हुआ था और उस के साथ वे भी जलावतन हो गये थे

और इस नज़्म के कुछ अक्षर वे भी हैं जो किसी सैलानी से नहीं पढ़े जा सकते—वह सिर्फ़ लिनार्दोडिविन्सी की मोनालिसा की तरह मुसकराते हैं—रहस्य भरी मुसकान।

●

विश्व प्रसिद्ध उपन्यासो के



पात्र

दुनिया के कुछ नॉवेलों के वे पात्र जिन से अभिन्न हो,
लगा, मैंने किसी घड़ी बहुत पास से छूकर देखा है,
सिर्फ छूकर नहीं उनके वजूद में से गुज़रकर भी
उनकी कुछ साँसें अपनी छाती में डालकर
और उनके होठों की बात अपने होठों पर रखकर।

—अमृता प्रीतम

मै राशेल[1]

विनसट। एक दिन तुम ने अपने मन की सारी पीडा को एक वाक्य म समेट कहा था—अगर तुम अपनी बनायी तसवीरो को कभी खुद ही खरीद सकते—तुम्हें मालूम ह इस जसे किसी एक वाक्य के पीछे बहुत बडा इतिहास होता है। इस इतिहास में वे सब सपने होते ह जो हमारे अधूरेपन को हमेशा एक शीशे के सामने बिठा देते ह। इस इतिहास में वे सब हादसे होते ह जिन से बंधे हुए हमारे पाव हमेशा अपनी उँगलियो पर से लहू पोछते रहते ह। और इस इतिहास में हमारा वह सारा अस्तित्व होता ह जो स्वय में पूर्ण होने के लिए बिलखता रहता ह—मेरा अस्तित्व भी अपने इतिहास को समेटे हुए ऐसा ही एक वाक्य बना हुआ ह कि अगर मैं अपने होठो में रुकी हुई बात अपने ही कानो को सुना सकती—पर जिस तरह अपने बनाये हुए चित्र कोई खुद नही खरीद सकता, अपने होठो की बात कोई अपने कानो को नही सुना सकता।

बात सुनने के लिए कान किसी दूसरे के चाहिए, पर कान ही तो नही ह। तुम्हारे पास कितने प्यारे कान थे, छोटे-से गोल से। मेरी उंगलियाँ सदा तुम्हारे कानो स खेलती रहती थी। तुम ने मुझे कहा था कि मेरी उँगलियाँ गुटर गूँ करती थी। और जब तुम्हारे कानो को छूती थी वे गुटर गूँ गुटर गूँ करती थी। और इसलिए तुम ने मेरा नाम कबूतरी रख दिया था। मैं तुम्हारी वही कबूतरी हूँ तुम्हारी राशेल।

तुम अपने जिस्म की जिस जरूरत को लेकर मेरे पास आये थे, उस जरूरत को पूरा करने की कीमत सिर्फ पाच फ्रंक थी। तुम ने पाच फ्रंक सराय के मालिक को दिये और घडी भर के लिए मुझे खरीद लिया। तुम ने लाल शराब की एक बोतल भी खरीदी थी। मैं भी शराब की तरह एक वस्तु थी। तुम ने अपने होठो से शराब का घूट भी भरा और मेरे जिस्म की गध का भी।

पर औरत जब वस्तु बनती ह, उस का कितना-कुछ ऐसा भी बाकी रह जाता ह जो कि वस्तु नही बनता। मैं तुम्हें रोज चाहिए थी पर तुम्हारे पास रोज पाच फ्रंक नही होते थे, इसलिए तुम उदास हो जाते थे। मैं तुम्हें कहा करती थी—तुम रोज मुझे पाँच फ्रंक न दिया करो, उन के स्थान पर मुझे अपने कानो से खेल लेने दिया करो। वस्तु को सिर्फ पाँच फ्रंक चाहिए थे, पर यह बात वस्तु ने नही कहा था उस कितने कुछ ने कही थी जो वस्तु बनने से बचा रह गया था। यह वही कितना-कुछ था जो मेरे

[1] इर्विंग स्टोन के उपन्यास 'लस्ट फॉर लाइफ' में डच चित्रकार विन्सेंट वानगाग की एक प्रेमिका राशेल।

होठों से निकलकर तुम्हारे कानों तक पहुंचना चाहता था।

मुझे मालूम था तुम ने शुरू से ही मुझे एक वस्तु की तरह आंका था। तुम ने सराय के मालिक को पांच फ्रैंक देने से पहले मुझे देखना चाहा था। मैं तुम्हें छोटी सी बच्ची लगी थी—पर मैं ने तुम्हें विश्वास दिलाया था कि मैं सोलह वर्ष से कम नहीं था। गैस की पीली रोशनी मेरी पीठ की ओर थी मैं पीछे दीवार की तरफ सरक गयी थी और गैस की बत्ती को ऊंचा कर मैं ने उस की रोशनी अपने चेहरे पर पड़ने दी, ताकि तुम मुझे अच्छी तरह से देख सको। तुम कितनी ही देर मेरी नीली आंखों में देखते रहे और फिर अपनी आंखों से मेरी गरदन और छाती को मापते रहे, और फिर तुम ने फैसला कर लिया कि मैं बहुत सुन्दर हूं।

'मैं तुम्हें कैसा लगता हूं?' तुम ने मुझ से पूछा था।

मैं तुम्हें रोज गली में से गुजरते हुए देखा करती थी। तुम अपनी पीठ पर एक बड़ा-सा थैला लिये हुए होते थे। तुम सिर पर हैट नहीं लगाते थे और मैं रोज सोचती थी कि तुम्हारे सिर को बड़ी धूप लगती होगी। धूप के कारण तुम्हारी आंखों में लाल डोरे खिंचे हुए होते थे। तुम मुझे बड़े अच्छे लगते थे। लोग तुम्हें दीवाना कहते थे और तुम्हें मजाक में 'फाऊ राऊ' कहकर बुलाते थे।

तुम जब मेरे छोटे-से कमरे में आकर मेरी चारपाई पर बैठ गये तो मैं ने दीवार से टंगी हुई अपनी दोनों गुड़ियों को उतारकर तुम्हारी बांहों में डाल दिया। सराय में आने से पहले मैं अपने गांव में इन गुड़ियों के साथ खेला करती थी अपनी सहेलियों के साथ 'घर घर' खेला करती थी सराय में 'घर घर' नहीं खेला जाता। जो भी आदमी पांच फ्रैंक देकर आता है वह सराय में आते समय घर का सपना अपने साथ लेकर नहीं आता। पर तुम्हें देखकर मेरा 'घर घर' खेलने का मन हुआ था।

तुम मेरी दोनों गुड़ियों को दोनों हाथों में पकड़कर हंसने लगे तो मैं ने तुम्हें कहा था—"मैं इन गुड़ियों की मां हूं, तुम इन गुड़ियों के पिता। मेरी बात तुम्हारे कानों में से गुजर तुम्हारे दिल में उतर जाये इसलिए यह बात कहते हुए मैं ने तुम्हारे कानों को चूम लिया था। मेरा दीवाना मेरा फाऊ राऊ मैं तुम्हारे कान चूमते हुए तुम्हारे कानों में कहती रही थी।

तुम्हें याद है जब तुम ने पीली कोठी के आधे भाग को किराये पर ले उस में अपना स्टूडियो बनाया था, और पहले दिन छोटा-सा स्टोव खरीद तुम ने उस पर अपने लिए खाना बनाया था तो तुम्हारे पास चम्मच कोई नहीं था। रोटी खाते समय तुम ने माम की तश्तरी में से मांस का टुकड़ा निकालने के लिए अपने ब्रश को उल्टा कर, उस की डण्डी को चम्मच बना लिया था। उस दिन तुम्हें अपनी रोटी में से अपने रंगों की खुशबू आती रही थी।—पर तुम्हें यह मालूम नहीं कि तुम जब शाम को मेरे कमरे में आ मुझे अपनी बांहों में भींच लेते थे तो मेरा अन्दर-बाहर तुम्हारे रंगों की खुशबू से भर जाता था। तुम चले जाते थे तो मुझे सारी रात अपने शरीर में से तुम्हारे रंगों

की खुशबू आती रहती थी। मैं सोचती थी, तुम्हें किसी दिन अपना वह सपना भी सुनाऊँगी जिस म से, जब मैं सो जाती थी, तो तुम्हारे रंगों की खुशबू आती थी।

और जब तुम्हारा चित्रकार दोस्त पाल गोगां तुम्हारे पास रहने के लिए आया था, एक रात उस ने भी तुम्हारे साथ उस सराय म आना चाहा था तो मुझे मालूम ह कि तुम ने उसे सख्त ताकीद की थी—'तुम सराय की कोई लडकी चुन लेना, पर राशेल को नही चुनना। राशेल सिर्फ मेरे लिए ह" तो मैं ने समझा कि मेरे मन की बात तुम्हारे कानो तक पहुँच गयी थी। और मैं अपनी गुडिया की तरह इस पटाने अपनी बात के साथ भी खेलने लगी कि मैं सिर्फ तुम्हारे लिए थी।

"अब तुम मुझे प्यार नही करते" मैं ने एक अधिकार से तुम्हे उलाहना दिया।

"तुम यह कसे कह सकती हो, मेरी कबूतरी।' तुम ने मेरी गरदन पर अपने होठ रख मुझ से पूछा था।

"तुम कितने दिन मुझे मिलने नही आये, तुम ने मुझे भुला दिया ह। मैं ने बड लाड से तुम्ह ताना मारा।

'मैं अपने दोस्त के लिए घर सजा रहा था। उस के स्टूडियो मे फूल लगाता रहा, बाहरली दीवार को मैं फिर पीला रग करता रहा—पर तुम्हें मैं हमेशा याद करता रहा हूँ' तुम ने मुझे बताया।

"तब भी जब तुम मुझ से दूर थे?' मैं ने इठलाते हुए पूछा।

"तब भी' तुम ने मुझे विश्वास दिलाया।

'यह अपना कान मुझे दे दो' मैं ने हौले से कहा और मेरी उँगलियाँ मेरे होठो की तरह तुम्हारे कानो के पास गुटर-गूँ, गुटर गूँ करने लगी।

और फिर एक दिन दोपहर का समय था। जाने कसा सूरज चढ़ा था, कण कण झुलसा जा रहा था। तुम सिर पर तौलिया बाँधे आये और मेरे हाथो में कागज की एक पोटली पकडा कहने लगे—'मैं तुम्हारे लिए एक चीज लाया हूँ।"

मैं ने उस चीज के गिर्द लिपटा हुआ अखबार का कागज़ खोला। उस के अन्दर एक ड्राइग-पेपर था, उस के अन्दर एक और और उस के अन्दर तुम्हारा कटा हुआ कान पडा हुआ था—आगे मुझे कुछ मालूम नही। जब मुझे होश आया, मैं ने देखा कि मैं सीढ़ियो के नीचेवाले पत्थर पर गिरी पडी थी।

तुम मेरे पास स ?ा चुके थे। पहले अस्पताल तक दूर, फिर पागलखाने तक दूर, फिर इस दुनिया स भी दूर। मैं अपने मन की बात का क्या करूँ? वर्षो पर वर्ष बीतते गये ह। मैं जिंदा नही पर वह बात जिन्दा ह।—मैं सराय की वह लडकी थी, जिस की एक रात की कीमत सिर्फ पाँच फ्रक थी पर मेरे अन्दर जो कुछ वस्तु नही बन सकता था उस कुछ की बात सुनने के लिए समय के पास कान नही थे। उसी कुछ की बात सुनाने के लिए मैं ने तुम से तुम्हारा कान माँगा था जो तुम ने मुझ दे दिया पर विनसट मैं ने तुम्हारा कान इस तरह नही माँगा था खुदा जानता ह, इस तरह नही।

मैं लिडिया[1]

चालें। तुम मुझे उस लकीर पर खड़े होकर मिले, जो इस दुनिया को दो हिस्सों में बाँटती है—

लकीर के एक ओर सपनों पर रंग चढ़ता है, दूसरी ओर सपनों पर चढ़ा हुआ रंग बेरंग हो जाता है—

एक ओर हर समय जीवन को गरमाये रखनेवाली सुरक्षा होती है, दूसरी ओर जीवन पर हर समय छाया रहनेवाला ठण्डा सहमने का भाव।

अच्छाई दोनों ओर हावी है, पर एक ओर वह गोल छोटे पत्थर की तरह तुम्हारे हाथों में खेलती रहती है और दूसरी ओर वह तुम्हारी मुट्ठी में पकड़े हुए उस नुकीले पत्थर की तरह हो जाती है, जिस की नोक हर समय तुम्हारी हथेली में चुभती रहती है, तुम्हारे मन में चुभती रहती है, तुम्हारे दिमाग में चुभती रहती है।

तुम ने फ्रांस के एक होटल में जब मुझे देखा था, तुम ने पाया था कि मेरे जिस्म का रंग शहद जैसा था। पर इस शहद में मेरे मन की मक्खी भी बैठी हुई थी। तुम्हारे कोमल से मन ने इस मक्खी के डंक को छू लिया—इस के कारण चुभनेवाली साज़िश का तुम्हें पता नहीं था।

तुम तेईस साल की उमर में अपने अमीर बाप से पैसे लेकर फ्रांस देखने के लिए आये थे—फ्रांस की जवानी देखने के लिए, अपनी जवानी के जशन के लिए। और तुम फ्रांस की कला देखने के लिए आये थे। आर्ट गैलरियों में खड़े हो जब तुम ने रंगों की, लकीरों की और उन के सन्तुलन की बातें कीं, मैं बिलख उठी। यह कला तुम्हारे जैसे खूबसूरत जवान और अमीर लड़के के लिए रंगों और रेखाओं का सन्तुलन थी, पर मुझ जैसी अकेली, साधारण और गरीब लड़की के लिए ज़िन्दगी का साथ था, ज़िन्दगी की शक्ति थी, ज़िन्दगी की पनाह थी।

मैं एक तसवीर के सामने खड़ी, तसवीर की तरह जड़ हो गयी थी। रोटी का टुकड़ा और शराब का एक प्याला, तुम ने उस तसवीर की सराहना की थी। पर जैसे हर तसवीर की एक ज़बान होती है, मेरी भी एक ज़बान थी, मैं तुम्हारे कानों में बिलख पड़ी, यह हमारी ज़िन्दगी की एक तमन्ना है। तन की भूख के लिए रोटी का एक टुकड़ा और मन की प्यास के लिए मुहब्बत के कुछ कतरे। हम दुख और भूख

१ सामरसेट माम के उपन्यास 'क्रिसमस हॉलीडे' की पात्र लिडिया।

के मारे हुए लोगो की तमन्ना ! पर यह इतना-सा भी हमारी किस्मत में कहा ? चार्ल्स ! यह तसवीर हमारी एक चीख है

मैं ने जब पहली बार यह चीख सुनी थी इस की पीडा से मेरे जिस्म का आधा हिस्सा मारा गया था । वेश्या बनना ऐसा इनसान बनना है जिस के जिस्म का आधा हिस्सा मारा गया हो ।

मेरी छाती में एसा दिल है जो कुछ दिनो के लिए या कुछ वर्षों के लिए किसी से मुहब्बत नही कर सकता, उस की मुहब्बत उस की उमर जितनी ही हो सकती है । इस तरह के मन को अपनी छाती में रखे, रोज अपना तन किसी को बेचना, क्या जिस्म के आधे हिस्से के मारे जाने का सबूत नही ?

तुम ने जब यह चीख सुनी, इस की पीडा से तुम्हारे जिस्म का आधा हिस्सा मारा गया । चिन्तक बनना भी ऐसा इनसान बनना है, जिस के जिस्म का आधा हिस्सा मारा गया हो—

मैं पाँच दिन तुम्हारे होटल के कमरे में रही । तुम अपनी जवानी का जश्न मनाने के लिए फ्रास आये थे, पर मुझ से बातें करते हुए तुम्हें अपनी जवानी की बात विस्मृत हो गयी । अगो में जवानी की चमक और जेब में हजारो के नोट पा, चुपचाप बैठ रहना, देखते जाना और सोचते जाना भी क्या जिस्म के आधे हिस्से के मारे जाने का सबूत नही ?

मेरा बाप रूस का एक अमनपसन्द शहरी था । समय की उथल-पुथल ने उसे गलत समझा और मरवा दिया । मैं घर से बेघर हुई और जुबान से बेजुबान । जिन्दा रहने के लिए रोटी का एक टुकडा चाहिए था और मुहब्बत के कुछ क्षण ।

मैं ने फ्रास मे एक बहुत ही खूबसूरत आदमी से प्यार किया, पर वह कत्ल के इल्जाम में पकडा गया और अब पन्द्रह साल के लिए जेल में पडा हुआ है । मैं उस के वापस आने का इन्तजार कर रही हूँ और मैं वेश्या हूँ

मैं, जिस ने सपने में भी पराये मर्द का अग नही छुआ

चार्ल्स ! तुम्हारे पास सब कुछ है तुम्हारा देश, तुम्हारी जुबान, पर चिन्ता के कारण तुम्हारा रग हल्का-सा पीला हो गया है । तुम जब मुझ से मिलकर अपने माँ-बाप के पास वापस इगलैण्ड गये, तो उन्होंने समझा कि फ्रास की किसी लडकी ने तुम्हें कोई बुरी बीमारी दे दी थी । वे डॉक्टरो को बुलाने की फिक्र करने लगे थे । तुम, जिस ने एक पल के लिए भी किसी लडकी के अग का स्पर्श नही किया था

चार्ल्स ! इनसान के जिस्म का यह आधा हिस्सा क्यो मारा जाता है ? मैं वेश्या हूँ इस प्रश्न का उत्तर नही ढूँढ सकती, पर तुम चिन्तक हो, तुम इस प्रश्न का उत्तर जरूर ढूँढना—

मैं त्रिदिया

मैं मारिया[1]

आप ने कई बार उस मैदान के बारे में देखा-सुना होगा जहां कोई घमासान युद्ध हो रहा हो। मुझे सिर्फ यह कहना है कि जंग का मैदान सिर्फ धरती का टुकड़ा नहीं होता, इनसान का सीना भी हो सकता है।

मेरी छाती में सारी उम्र दो फौजें तनकर बैठी रहीं। गले में जंग की वरदी पहने हाथों में हथियार पकड़े, और दिल में एक खौफ लिये—यह खौफ बड़ा अजीब चीज़ होती है यह जिस के दिल में आकर बैठ जाये वह आदमी खौफनाक भी होता है और खौफज़दा भी। सो एक ही समय में दोनों फौजें एक दूसरी को डरा भी रही थीं और एक दूसरी से डर भी रही थीं। अगर इस तरह कहूं—कि ये दोनों ताकतें दो धड़ थे, लाज़िमी था फिर दोनों का नसीब नहीं हुआ था। यह मुझे मालूम था कि किसी दिन मेरे साथ मुहब्बत जैसी घटना घटेगी, इस घटना के स्वाग की मैं कई बार कल्पना किया करती थी पर अपनी आत्मा-दशा अपनी मां की मौत के कारण मुझे यह भी पता था कि इस घटना में एक ऐसा दर्द होगा—दोज़ख जैसा दर्द—जिस में से मुझे उमर भर गुज़रना होगा।

यही वह तकदीर थी जहां खड़े होकर मेरी छाती में जंग शुरू हुई थी और, फलिक्स! तुम्हें देखना और मिलना ऐसे था जैसे मेरे दोनों हाथ एक स्वाग की पकड़न के लिए उठ गये हों और मेरे दोनों पांव एक दोज़ख की आग में जल रहे हों

पहला डिफ़ेंस मैंने यह लिया था कि मैंने तुम्हें भाई कहकर बुलाया था। पर डिफ़ेंस खाली फ़ायर जैसा था जिस से न तुम डरे थे न मैं।

दूसरा डिफ़ेंस मैंने यह लिया था कि तुम्हारे पास जितने पैसे थे मैंने वह खर्च करवा लिये ताकि तुम घबराकर लन्दन से जरमनी वापस चले जाओ। पर यह डिफ़ेंस भी निशाने से चूक गये गोले जैसा था जिसे हवा में से गुज़रते देख तुम हंस दिये थे।

तुम्हें याद होगा कि एक दिन तुम ने मेरे साथ चलते हुए किसी खूबसूरत औरत को ऐसे देखा था कि मेरे भीतर की प्रेमिका की सारी ईर्ष्या एक ही बार में जागकर मेरी नाड़ियों में लहू भर गया था। यह सब कुछ हथियार थे जो तुम ने मेरे भीतर छिड़े युद्ध को बढ़ावा देने के लिए उस दिन भेज दिये थे।

---

१ सिर्फ [illegible] गुर के उपन्यास 'दिवाऊ दिलावर' की पात्र मारिया।

इस का बाहरी रूप भी भयावह था। मैं तुम्हें जो कुछ मेरे हाथ में आया उस से पीटने लगी थी और नोचने लगी थी, जिस का अन्त इस से कम कुछ नहीं हो सकता था कि मैं अपने जिस्म के होठों से तुम्हारे जिस्म को एक ही साँस में पी लूँ। नरक में जल रहे भावों के साथ भी मैं सारे स्वर्ग को अपनी बाँहों में भर लेना चाहती थी— मैं ने वह इकरारनामा फाड़ दिया, जिस से मुझे स्टेज पर गाने के दो हजार गिनी मिलते थे। और मैं ने लन्दन की शोहरत को, दौलत को और शायद हलाल-हराम को भी अलविदा कहकर एक गाँव में वह ऐतिहासिक महल किराये पर ले लिया, जिस में इंग्लैंड की मलिका कभी रह चुकी थी।

यह किराया चुकाने के लिए मैं ने अपना हर कीमती जेवर बेच दिया था पर फिर भी मुझे इस में रहना सस्ता लगा (मैं छोटी होती जब नंगे पाँव इटली में फूल बेचा करती थी, तो उस गरीबी में मैं ने इस महल का सपना देखा था। तुम से मिलकर मुझ लगा था कि उस सपने को सच करनेवाली घड़ी आ गयी थी, और सारी उमर का सपना जब सच होने लगे तो उस घड़ी उस की हर कीमत सस्ती लगती है)।

स्वर्ग मेरी बाहों में था पर मेरे पाँव हवा में लटक रहे थे। पाँव धरती पर रखती थी तो धरती पर दोजख की आग जलती हुई महसूस होती थी—मैं जान गयी थी कि मैं तुम्हें मजा देती थी पर खुशी नहीं। कुएँ में से पानी निकालती और कपड़ों को धोती जब मैं गाती थी तो तुम मेरी आवाज से ऊबने लगे थे। उस आवाज से— जिसे सुनने के लिए लोग दो हजार गिनियाँ देते थे—और मुझे लगा, तुम्हारे मन के सूनेपन को भरनेवाली मैं वस्तु नहीं थी सिर्फ उस सूनेपन को ढकनेवाला एक ढकना था।

इस लिए एक दिन तुम्हें सोता हुआ छोड़कर मैं तुम से दूर चली गयी—

तुम्हारी नजरों में भी मैं देनदार हूँ फलिक्स। और लगता है मेरी इस कहानी को पढ़नेवाले हर पाठक की नजरों में भी मैं देनदार हूँ। पर किसी को पता नहीं कि मेरे अन्दर कैसा घमासान युद्ध छिड़ा हुआ था। यह किसी एक तरफ की हार या जीत का प्रश्न नहीं था—जो भी हारता वह मेरा ही एक हिस्सा होता था—पर, फलिक्स, तुम से दूर जाना सिर्फ ऐसे था जैसे जंग के मैदान को और उस के रक्तपात को तुम से दूर ले जाना। उन ताकतों को दूर ले जाना, जिन्हें सिर्फ धड़ नसीब हुए थे पर सिर नहीं नसीब हुए थे।

/

मै बलाश[1]

एक स्टराव्ह के स्टूडियो में मैं दीवार की ओर मुँह किये खड़ी थी। किसी के सीढ़िया चढ़ने की आवाज़ आयी

फिर मैं ने सुना—कमरे के दरवाज़े के पास खड़ा होकर कोई कमरे का लगे हुए ताले में एक चाबी घुमा रहा था

चाबी की आवाज़ सुन मेरे शरीर की सब रेखाएँ काँप उठी फिर दरवाज़ा खोलकर जब कोई कमरे के अन्दर आ गया तो मुझे लगा मेरी पीठ पर उस ने अपनी दोनो आँखें गडा दी थी

घबरायी हुई आँखो के भार को पीठ पर उठा सकना मेरे लिए बडा कठिन था। मैं जल्दी वहा से कही चले जाना चाहती थी पर मेरे सामने ईटो की एक बहुत बडी दीवार खडी थी मैं कही नही जा सकती थी

कमरे में आनेवाले ने दीवार म मुह छिपाने का मेरा अधिकार भी छीन लिया और खिडकिया के आगे टगे हुए मोटे परदा को सरकाकर कमरे में आ रहे प्रकाश की सहायता से वह मेरे मुह की ओर देखने लगा

मेरा सारा बदन नगा था उस ने मेरे एक एक अग को देखा और फिर पटक कर मुझे जमीन पर गिरा दिया

मैं जाने कितनी देर औंधे मुँह जमीन पर पडी रही फिर पता नही उसे क्या खयाल आया उस ने मुझे ज़मीन से उठाकर दीवार पर टाग दिया। इस बार वह अपने हाथ में एक चाकू पकडे हुए था

मेरे अग नग थे, और उन के सामने हवा में एक चाकू लहरा रहा था

हवा में लहराता हुआ चाकू मैं ने पहले भी एक बार देखा था। एक रोमन शहज़ादे के घर में मैं नवरतन थी। घर की हर चीज़ बडी कीमती थी। रोमन शहज़ादे ने मुझे बडी कीमती चीज़ें दी। इन चीज़ो में से एक चीज़ कीमती गलतफहमी भी था—मैं ने सोचा, वह मुझ से विवाह कर लेगा। पर जिस वक्त उस ने अपना बच्चा मुझे दे दिया तो वह खुशफहमी मुझ से वापस ले ली

मेरा मास का बुत गली में बेचारा-सा बना खडा था और मेरे सामने हवा म ज़िन्दगी के खौफ का चाकू लहरा रहा था

---

१ सामरसेट माम के उपन्यास 'द मून एण्ड सिक्स पैन्स' का एक पन्टिंग 'बल्गाश'।

इस चाकू से बचने के लिए मैं ने डर्क स्टराएव से विवाह कर लिया। वह जल्द ही मुझे मान ले गया, और मैं ने उस के घर की दीवारों को इस तरह अपने गिर्द लपेट लिया कि हवा में लहराता हुआ चाकू किसी तरह भी मुझ तक न पहुँच सके

स्टराएव एक सीधा-सादा आदमी था, पर उस के बनाये हुए चित्र बिक जाया करते थे, उसे पैसों की कमी नहीं रहती थी। मुझे उस से मुहब्बत नहीं थी, न उस की कला से ही, पर मैं उस के लिए रोटी बनाकर खुश थी, उस के कपड़े सीकर खुश थी, उस के बनाये चित्रों को दीवारों पर सजाकर खुश थी।

एक दिन स्टराएव ने मुझे बताया कि वह अपने एक बीमार दोस्त को अपने घर लाकर रखना चाहता था। इस दोस्त को मैं ने देख रखा था। वह उस समय का एक बहुत बड़ा चित्रकार था। मैं ने स्टराएव की अब तक हर बात मानी थी, पर यह नहीं मानी। एक नहीं हजार मिन्नतें कर यह बात मानने से इनकार कर दिया। पता नहीं क्या मुझे ऐसा लगा कि जब मैं लाल बालों और विलासी होठोंवाले चार्ल्स स्ट्रिकलैंड के लिए घर का दरवाजा खोलूंगी तो हवा में लहराता हुआ चाकू दरवाजे में से लांघ कर मेरे कमरे में आ जायेगा

स्टराएव ने जिद्द पकड़ ली। अब सोचती हूँ—उस ने नहीं वह तो बड़ा अच्छा था, मेरी हर बात मान लेता था हवा में लहराते हुए चाकू ने जिद्द पकड़ ली थी। स्टराएव अपने दोस्त को घर ले आया। मैं ने अपना सिर झुका दिया और मरजी भी। मुझ से जितनी सेवा हो सकती थी, मैं ने हाजिर कर दी।

स्ट्रिकलैंड का जब बुखार उतर गया उस ने हाथ के इशारे से बांधकर मुझे सामने बिठा लिया। जैसे-जैसे वह मेरे जिस्म को कनवैस पर उतारता जा रहा था, मुझे लग रहा था, मेरा जिस्म मुझ पर से उतरता जा रहा था और कनवस पर चढ़ता जा रहा था

मैं ने अपने जिस्म पर से जब कपड़े उतारे थे, मुझे अपनी तकदीर का पता नहीं चल सका था। पर जब मैं ने अपने मन पर से अपना जिस्म उतार दिया मुझे अपनी तकदीर का पता चल गया। मैं स्ट्रिकलैंड से मुहब्बत करने लगी थी

"मेरे पास मुहब्बत करने के लिए बिल्कुल वक्त नहीं। तुम्हारा जिस्म बहुत खूबसूरत है। मैं कुछ दिन इस की ओर देखता रहूँगा कितनी ही बार इसे कनवस पर उतारूँगा, पर इस से अधिक समय मेरे पास नहीं" स्ट्रिकलैंड ने मुझ से कहा।

"पर मैं अपने समय का क्या करूँ ?" मैं ने उस से पूछा।

उत्तर उस के पास भी कोई नहीं था, मेरे पास भी कोई नहीं पर उत्तर का होना ही तो प्रश्न के अस्तित्व का प्रमाण नहीं होता!

स्टराएव को पता लगा उस ने अपना स्टूडियो मुझे दे लिया, उस ने मुझे स्ट्रिकलैंड के सहारे छोड़ दिया

स्ट्रिकलैंड ने हवा के सहारे

और हवा ने अपने चाकू के सहारे

मुश्किल से तीन महीने गुजरे थे कि हवा में लहराता हुआ चाकू मेरे प्याले में आकर बैठ गया और फिर पिघलकर एक एसिड बन गया। मैं ने उस एसिड को पी लिया। कुछ दिन अस्पताल में तड़पना पड़ा, पर स्वयं के चाकू से मुक्त हो गयी।

मैं भूल गयी—मेरा अस्तित्व केवल मेरा मांस का बुत नहीं था, रंगों और रेखाओं का एक वह बुत भी था, जो सट्रिकलैंड ने कनवस पर बनाया था। वह बुत अभी बाकी है

पता नहीं मैं ने अपने मांस के बुत को जब एसिड का एक प्याला पीने को दिया था, तो कनवस के बुत को भी एक प्याला देने का खयाल मुझे क्यों न आया। मैं अस्पताल में थी जिस समय मुझे लगा कि एसिड से झुलसे और काले हुए मेरे मांस के होंठ जब जिन्दगी से मिलनेवाली पीड़ा से हँस रहे थे तब कनवास और रंग मेरे कनवस के होंठ जिन्दगी से मिलनेवाली सजा से रो रहे थे

स्टरोएव के मन को समझ सकती हूँ—उस की ईर्ष्या को भी, उस के गुस्से को भी, उस के तरस को भी, उस की निराशा को भी। वह जब अस्पताल में से मेरी लाश को लेकर और दफनाकर वापस अपने स्टूडियो में आया, मैं दीवार की ओर मुँह किये खड़ी हुई थी। उस ने दीवार में मुँह छिपाने का अधिकार मुझ से छीन लिया। मैं ने जब उस की ओर देखा, उस की मुट्ठी तनी हुई थी। फिर उस ने मुट्ठी में एक चाकू पकड़ लिया और चाकू हवा में लहरा रहा था—

तुम्हारा अस्तित्व मुझ से सहन नहीं हो पा रहा, एक पल के लिए भी
नहीं और स्टरोएव की चीख जैसी आवाज मेरे कानों में भर गया।

मेरा अंग-अंग निरस्त्र था, न मैं स्टरोएव का हाथ पकड़ सकती थी, न उस की आवाज से बचने के लिए अपने कान बन्द कर सकती थी। न उसे देखने से अपनी आँखें बन्द कर सकती थी और न मुँह से कुछ बोलकर उस से क्षमा माँग सकती थी

फिर मैं ने देखा उस का हाथ ढीला पड़ गया। उस का मुँह खुले का खुला रह गया। उस की नीली आँखें देखता-का-देखती रह गयीं। उस की छाती ने धड़ककर उस से कहा—यह हुनर का शाहकार है, तुम इसे नहीं मिटा सकते

स्टरोएव ने चाकू दूर फेंक दिया। आँख दूसरी ओर कर ली। पर मैं देख सकती थी—चाकू अभी भी हवा में लहरा रहा था

मैं उस दीवार पर से उतरकर एक दूसरी दीवार पर टंग गयी। दूसरी दीवार पर से उतर एक अन्य दीवार पर

मैं ने एक चाकू का एसिड बनाकर पी लिया था। पर इस दूसरे चाकू का कुछ नहीं कर सकती। मेरा कनवस का बुत सदा कांपता रहता है, चाकू अभी भी हवा में लहरा रहा है

मैं गैबी[1]

कोई इनसान जब अपनी आँखों में एक चमकता हुआ ख़याल पा लेता है, तो नींद से लेकर जागने तक और जागने से लेकर नींद तक उस की मंज़िल की तरफ़ चलता, और रास्ते में खड़ी मुख़ालफ़त से टकराता, आख़िर जब मुख़ालफ़त की गाड़ी हुई सूली पर चढ़ जाता है, तो उसे शहीद कहा जाता है। पर जो कोई अपनी आँखों में एक चमकता हुआ ख़याल भी पा ले, फिर नींद से लेकर जागने तक, और जागने से लेकर नींद तक, उस की मंज़िल की तरफ़ भी चलता रहे, पर फिर ख़ुद ही अपना मुख़ालिफ़ बन अपने रास्ते में खड़ा हो जाये, और फिर ख़ुद ही एक सूली गाड़ उस पर चढ़ जाये, तो पता नहीं उसे क्या कहना चाहिए। उसे शहीद नहीं कहा जा सकता। मैं मानती हूँ। पर उसे गबी ज़रूर कहा जा सकता है। मैं ने इन दोनों नामों को एक ही स्थान पर रखने के लिए यह बात नहीं कही। अपने बदनसीब नाम की क़सम, मैं शहीद शब्द का दर्जा बहुत बड़ा समझती हूँ, और उस शब्द के पाँवों में खड़ी होने के लिए मैं ने दुनिया का सब से छोटा दर्जा चुना है—गबी। सच कहती हूँ, मुझे अपने नाम से छोटा दर्जा और कोई नहीं मिला।

क्लाड! मेरी आँखों में तुम्हारी मुहब्बत की सिर्फ़ चमक नहीं पड़ी थी, सारे का सारा सूरज ही पड़ गया था। और मेरी ज़िन्दगी में कभी वह दिन नहीं आया जब मैं ने इस सूरज की ताब न झेली हो। अँधेरा कहीं दिखाई नहीं दे रहा था, पर मैं तो घर से अँधेरा ख़रीदने के लिए निकली थी—मैं ने सोचा था मैं अपना हुस्न सिर्फ़ उसे दूँगी जो महल जैसे घर से, सोने की तारों जैसे कपड़ों से और राजाओं के दस्तरख़्वानों जैसी रोटी से उस की क़ीमत चुका सके।

तुम्हें याद होगा मैं तुम्हें अक्सर कहा करती थी—तुम अपना सूरज किसी और को दे दो। अगर मैं ने तुम्हारी रोटी पकाते, तुम्हारे मैले कपड़े धोते, और तुम्हारे चेहरे की तरफ़ देखते इस सूरज के साथ खेलते-खेलते अपनी जवानी गुज़ार दी तो फिर मैं अँधेरा कब ख़रीदूँगी? अँधेरा तो सिर्फ़ जवानी में ख़रीदा जा सकता है। तुम्हारा क़ुसूर नहीं। मेरे अपने ही होंठ मेरे शब्दों का कहना नहीं मानते थे। मेरे होंठ जब तुम्हारी साँसों को छूते थे, वे अपने शब्दों के सामने झूठे पड़ जाते थे और अँधेरे की

---

१ पियरे ला म्यूर के उपन्यास 'क्लेयर डि ल्यून' में फ्रांस के एक संगीतकार क्लाड डेब्यूसी की प्रेमिका गैबी।

धात भूल जाने थे। म कई बार उन्हें जबरदस्ती अंधेरा पिलाया करती था कि मैं ने एक गरीबी क मार हुए कलाकार से मुहब्बत नही करनी, मुझे कारोलिन की तरह वह हसीना बनना ह जिस से तीस मिनट मांगने के लिए किसी को एक हजार दो सौ पचास पौण्ड देने पडते थे पर तुम जब मेरी तरफ देखते थे तो अंधेरे का प्याला मेरे हाथों से छूट जाता था। और इस का मतलब था कि मैं ने वे सब पौंड तुम पर निछावर कर देने थे जो बर्षों से मेरे खयालों म छनक रहे थे।

खुद से नाराज होकर मैं तुम्हारे कमरे की उस छत की ओर देखने लगती थी, जो जब भी वर्षा होती थी चूने लगती थी, और जिसे मकान मालकिन कभी भी ठीक नही करवाकर देती थी क्योंकि तुम कभी भी उसे पूरा किराया नही दे पाते थे। और फिर जब म इस छत के नीचे से भाग जाने के लिए उठती थी, तो मेरी रीढ की हड्डी मेरी पीठ म रोने लगती थी।

तुम्हें याद होगा हम छुट्टियों में एक खेल खेला करते थ। मैं जब दूसरे-तीसरे दिन बाजार से सब्जियां लाकर तुम्हारे लिए रोटी पकाती थी तो रोटी खाते हुए तुम पूछा करते थे—

तुम रोटी बड़ा स्वादिष्ट बनाती हो कल हम होटल में रोटी नही खायेंगे तुम घर रोटी पकाओगी ?'

'पका दूँगा, पर कल यह रोटी तुम्हें बहुत महँगी पड़ेगी।

'कितनी महगी ?

तुम्हें एक हजार चुम्बन देने पडेंगे।

'एक हजार बहुत ज्यादा ह सात सौ।'

"नही।'

'अच्छा आठ सौ।"

"पूरे एक हजार।'

अच्छा नौ सौ पचास।

एक हजार से एक भी कम नही।'

'अच्छा, पर यह बिल्कुल डाका ह।'

यह दीवाना खेल हम अक्सर खेला करते थे। पर खुशी किसी भी दीवानगी से शर्मिन्दा नही होती।

एक बार मैं ने खुद से इकरार किया कि सितम्बर तक मैं ये छुट्टियाँ मनाऊँगी, इस से अधिक नही। सितम्बर के आने म अभी तीन महीने बाकी थे। और मैं ने सोचा था कि मैं ने खुद को तीन महीने देकर, खुद पर बडा एहसान किया था। पर मेरा यह अपनापन न जाने कैसा था, कैसा नाशुक्रगुजार जब सितम्बर आया तो यह मेरी ओर इस तरह घूरकर देखने लगा जैसे मैं इस के पास से कुछ चुराने लगी था। यह और दिन मांगता था, मैं ने इसे और दिन दे दिये पर मैं इस से नाराज हो गयी।—फिर

इस ने और दिन माँगे, पर मैं इस में और अधिक नाराज हो गया।

इस अपनआप को झूठा साबित करने के लिए मैं ने धीरे धीरे शक का सहारा लिया कि क्लाड जब देर से घर आता था तो जरूर किसी दूसरी औरत से मिलकर आता था। और क्लाड ! इस शक का सहारा ले मैं रोज तुम से लड़ने लगा।

तुम मुझे कुछ नहीं कहते थे पर मुझे मालूम है कि तुम्हारे प्यार में कभी गुस्सा मिलने लगा था, कभी तरस, कभी एहसान, कभी घबराहट, और फिर कभी बेवफाई भी। ये चीजें भी सहारे के लिए बड़ी अच्छी थीं।

पर ये सहारे बड़े खतरनाक थे। इन्होंने मेरे हाथ में एक दिन पिस्तौल पकड़ा दी। पता नहीं, इस से मैं तुम्हें मार देना चाहता था कि खुद को, यह मेरे हाथ से चल गया। मैं इस की आवाज से डरकर बेहोश हो गयी। पर इस की गोली न तुम्हारे जिस्म से छुई थी न मेरे जिस्म से, दोनों जिस्म सही-सलामत थे, पर कुछ दिनों में ही मुझे पता चल गया कि मेरे होश सलामत नहीं थे। उन में कोई सुराख जरूर हो गया था।

यही एक सुराख था जिस में मैं कैसी सूली गाड़ सकती थी जमीं, पर चढ़कर लोग शहीद होते हैं। शहीद होने का दर्जा मेरे हिस्से में नहीं आया, पर सूली पर चढ़ना मुझे नसीब हो गया।

मैं ने खुद को अंधेरे का व्यापार करने के लिए मना लिया। महल जैसा घर चाहती थी, मेरे हुस्न ने मुझे खरीद दिया। मोती की तारों जैसे लिबास चाहती थी, मेरी जवानी ने मुझे खरीद दिये

पर क्लाड !—वर्षों बाद जब तुम बिस्तर से मर रहे थे तुम्हारी बीवी तुम्हारे सिरहाने बैठी हुई थी, तुम्हारी बच्ची तुम्हारे दरवाजे के पास खेल रही थी, उस वक्त तुम्हारे घर के दरवाजे के आगे आकर कोई फूल रख गया था। तुम्हारी बच्ची ने वे फूल देखे थे और ले जाकर तुम्हारे सिरहाने रख दिये थे। तुम ने फूलों को सूँघा था, पर तुम्हें यह पता नहीं लगा था कि ये फूल वहाँ कौन रख गया था। क्लाड ! वे फूल मैं ने रखे थे, तुम्हारी गैबी ने, जो मरकर भी नहीं मरी थी। तुम्हें पता है जो सूलियों पर चढ़ते हैं वे मरकर भी नहीं मरते !

मैं गैबी

मैं लैनी[1]

वैसे तो पैदा होने से लेकर मरने तक मेरी कहानी सिर्फ एक फिकरा है—"वर्षों में वर्ष जमा होने चले गये पर मैं उतने का उतना ही रहा।" जैसे एक बचपन था जो लम्बा होता गया और एक ऊँचे लम्बे आदमी की नजर में फैलता गया—पानी के किनारे खड़ा होकर मैं अपना हुलिया देखता था—लेट कद, ढलके हुए कन्धे, कन्धों पर थापा हुआ चेहरा और चेहरे पर दो मोटी और पीली आँखें कढ़े।

ठहरा हुआ पानी नहीं पिया करते। तुम्हें प्यास लगी हुई हो तो तुम पूरे का पूरा जोहड़ भी डकार जाते हो। जार्ज मुझे कहा करता था पर मुझे जवाब नहीं सूझता था। दुनिया में अगर हर जगह बहता हुआ पानी न मिले तो मैं इस बात का क्या जवाब दे सकता था।

तुम ने जेब में मरा हुआ चूहा क्या डाल रखा है? जार्ज मुझ से झिड़कते हुए पूछा करता था। पर मैं क्या कह सकता था। अगर वह जिन्दा मेरी जेब में नहीं ठहरता था तो इस में मेरा क्या दोष था। मैं तो केवल जेब में हाथ डालकर उस की मुलायम सी पीठ को अपनी हथेली से छूकर देखना चाहता था।

और जार्ज मुझ से नाराज़ होता था कि मरे हुए चूहे को जेब में से निकाल फेंकता क्यों नहीं था। पता नहीं क्या वह मुझ पर बिगड़ता था, हालाँकि मैं ने उसे बताया था कि वह मुझे सड़क पर पड़ा मिल गया था, मैं ने किसी के पास से उसे चुराया नहीं था। मेरी फूफी ने मुझे रबड़ का चूहा दिया था, पर कोई रबड़, किसी जीवित मास की तरह कैसे हो सकता था।

'तुम्हारे कारण मेरी नौकरी भी छूट जाती है, तुम हर जगह कोई गलत काम कर देते हो, और फिर हम कितने ही दिन मारे मारे घूमते रहते हैं।' जार्ज मुझ से शिकायत करता था, हालाँकि उसे पता था कि मैं कभी बुरी बात नहीं करता था। उसे मालूम था कि पिछली नौकरी छूटने से पहले मैं ने एक छोटी सी लड़की के फ्राक को इसलिए हाथ लगाया था क्योंकि वह बहुत मुलायम था। मैं उसे चूहे की पीठ की तरह छूकर देखने लगा था, पर वह लम्बी चीखें मारने लगी थी।

जार्ज को दुखी कर मैं दुखी हो जाता था, इसलिए मैं उस से कहता था कि मेरे कारण अगर तुम पर मुसीबत आती है तो तुम मुझे छोड़ दो।

---

१ स्टेन के उपन्यास 'ऑफ़ माइस एण्ड मैन' का मुख्य पात्र लैनी।

'तुम अकेले कहाँ जाओगे ?' जाज मुझ से पूछता था।

'किसी पहाड़ में कोई कन्दरा ढूढ लूँगा।' मैं कहता था।

फिर वहाँ क्या करोगे ?' जाज सोच में पड जाता था।

'कुछ नही, सारा दिन धूप सकूँगा। वहा मैं अकेला नही होऊँगा, एक चूहा ढूढ लूँगा और फिर खेलता रहूँगा। मैं सच कहता हूँ मुझे इस से अधिक कुछ नही चाहिए था कि कोई ऐसी जगह हो जहाँ मुझे कोई न सताये और मुझ से मेरी चीज न छीने।

जाज ने मुझ से वह चूहा छीनकर फेंक दिया था और उस की जगह मुझ से इकरार किया था कि किसी दिन वह मुझे जिन्दा चूहा ले देगा। चूहे बहुत छोटे होते है। उन्हें हाथ मे प्यार करो तो वे हथेली पर पड़े-पड़े मर जाते हैं। जाज ने मुझ से इकरार किया था कि वह एक चूहा नही मुझे एक छोटा-सा पिल्ला ले देगा। पिल्ला शायद जल्दी नहीं मरेगा और जाज ने कहा था कि भले ही घर-बार और बीवी-बच्चे हम लोगो की तकदीर नही होते पर फिर भी जब हम मजदूरी कर बहुत पैसे कमा लेंगे तो हम एक छोटा सा घर बनायेंगे, और घर म एक गाय रखेंगे और कुछ सुअर पालेंगे। हम खरगोश भी रखेंगे। और हम रोटी बनाने के लिए एक चूल्हा खरीदेंगे और फिर दूध पर बनी गाढ़ी मलाई आयेगी

और फिर जब हम मजदूरी कर रहे थे ,एक दिन छुट्टीवाले दिन मैं भूसे के ढेर म बठकर एक पिल्ले को प्यार कर रहा था कि उस की गरदन मुड गयी। पिल्ला चूहे की तरह छोटा नही था। पता नही वह इतनी जल्दी क्या मर गया। मैं मरे हुए पिल्ले से बातें कर रहा था कि मनेजर की बीवी आ गयी और मुझ से बातें करने लगी। मैं ने उस से साफ कह दिया था कि मुझे उस से बातें नहा करनी क्योकि जाज ने मुझे किसी भी औरत से बातें करने से मना किया हुआ था। पर वह फिर भी मुझ से बातें करती रही और फिर मुझ से नाराज हो गयी कि मैं हर वक्त पिल्ला और खरगोशों की बातें क्यों करता था और कहने लगी कि उस के बाल खरगोश और पिल्ला से भी मुलायम थे और मैं उस के बालो को हाथ से छूकर क्या नहीं देखता था।

और फिर वह जोर-जोर से हँसने लगी। मैं डर गया था कि उस की हँसी की आवाज अगर कही जाज ने सुन ली तो वह मुझ पर खूब बिगडेगा। इसलिए उस की हँसी को रोकने की खातिर मैं ने उस का मुह अपने हाथ से बन्द कर दिया। मैं उस का मुह अपने हाथ से बन्द किये रहा ताकि उस की आवाज जाज तक न पहुँच जाये और फिर जब वह चुप हो गयी तो मैं ने अपना हाथ अलग कर लिया। मुझे क्या पता था कि वह पिल्ले की तरह इतनी जल्दी मर जायेगी।

मुझे नही पता था कि अब लोगो ने मुझे बन्दूक से मार देना था। शायद जाज को पता था, इसलिए वह मुझे वहा ले गया उस पानी के किनारे, जहा बठकर एक दिन उस ने मुझ से कहा था कि हम इस नदी के पार एक दिन एक घर बनायेंगे, उस घर म हम एक गाय रखेंगे और

मैं नदी के किनारे बैठकर उस पार की ज़मीन की तरफ़ देखता रहा, जहाँ हमें घर बनाना था और जार्ज मेरे पीछे खड़ा था। कितनी ही देर मुझ से उस घर की बातें करता रहा। मैं ने सोचा था कि जार्ज मुझ से बड़ा नाराज़ होगा पर मैं बड़ा खुश था कि वह मुझ से नाराज़ नहीं था बल्कि मुझ से इकरार कर रहा था कि हम उस घर में सूझ भी ज़रूर रहेंगे।

यह सारा सपना मेरी आँखों के आगे हिल रहा था—गाय का मुलायम-मुलायम जिस्म, खरगोशों के सफ़ेद-सफ़ेद बाल, चूज़ों के छोटे छोटे पंख—और फिर मुझे लगा कि वह हिलता हिलता मेरी आँखों में आकर ठहर गया था। अब मैं आँखें नहीं झपक सकता था। आँखें भी एक जगह पर ठहर गयी थीं और उन में पड़ा हुआ सपना भी एक ही जगह पर ठहर गया था।

जार्ज मेरे दोस्त! मैं कैसे तुम्हारा शुक्रिया अदा करूँ कि तुम ने मुझे ऐसी सुन्दर और शान्त मौत मरने दिया। अगर तुम एक घड़ी और चूक जाते तो मुझे ढूँढ़ रहे लोगों की निर्दयी भीड़ ने बहुत बुरी मौत मारना था। अगर मैं उन के हाथों मरता तो इस सपने की जगह एक बड़ा भयानक खौफ़ मेरी आँखों में समा जाना था, और फिर सदा के लिए उस ने मेरी आँखों में बैठ जाना था।

पर जार्ज! इस दुनिया में मैं एक लेनी नहीं मैं लेनियों की वह बड़ी भीड़ हूँ अकेलापन जिस की तक़दीर होता है और हम सब ज़िन्दगी की सुन्दर चीज़ों को कभी हाथ से छूकर देखने के लिए तरस रहे हैं। ख़ूबसूरत चीज़ें नसीब नहीं होतीं और तरसते हुए हाथ जब भी किसी चीज़ को छूते हैं वह मर जाती है और फिर ज़ालिम लोग उस के पीछे भागने लगते हैं और उन लोगों के आगे-आगे भागता हुआ हर लेनी ख़ौफ़ज़दा है।

मैं तुम से एक बात पूछता हूँ जार्ज! अगर इस दुनिया में लेनी इतने अधिक हैं तो जार्ज इतने अधिक क्यों नहीं, ताकि हर लेनी जब मरने लगे तो कोई मेहरबान जार्ज उसे मिल जाये और उस से सपने की बातें करता रहे और फिर उस की आँखों के आगे सदा हिलता रहनेवाला सपना उस की आँखों में रुक अपना ठिकाना ढूँढ़ ले। फिर भले ही आँखें कभी न झपक सकें। आँखें भी एक ही जगह ठहरी रहें और उन में समाया हुआ सपना भी एक ही स्थान पर खड़ा रहे।

मैं कैथरीन[1]

चार्ल्स ! तुम्हारी मौत की खबर सुनकर आज मलिका विक्टोरिया ने मुझे अफसोस का तार भेजा है—मुझे मिसिज चार्ल्स डिकन्ज को—अगर मलिका विक्टोरिया तुम्हारे जीवित रहते मुझे 'बरोनेट' की पदवी दे देती, जैसा कि हवा में यह खबर थी तो मैं लेडी डिकन्ज भी कहलवा सकती थी पर कुछ भी कहने से या कहलवाने से क्या होता है मैं जानती हूँ चार्ल्स ! मेरा विवाह कभी तुम से नहीं हुआ था। मैं गिरजे के उस पादरी को झुठलाती नहीं जिस ने विवाह की रस्म निबाही थी, मैं केवल यह कहना चाहती हूँ कि मेरा विवाह सिर्फ तुम्हारे एक हाथ की तीसरी उँगली से हुआ था

तुम्हारे हाथ की तीसरी उँगली जिस पर सारी उमर वह अगूठी पड़ी रही, जो मेरी बहन मेरी ने मरते समय तुम्हें दी थी। मर चुकी बहन के जिन्दा इश्क को मैं ने अपना लिया था और तुम्हारी तीसरी उँगली का समेत उस अगूठी के अपनी जिन्दगी का साथी मान, मैं ने अपनी कोख में से दस बच्चों को जन्म दिया छोटे छोटे डिकन्ज छोटे छोटे ब्याज

हर ब्याज का कोई मूलधन होता है। यह मूलधन अगर मर्द और औरत के आपसी प्रेम का हो, तो वर्षों इस्तेमाल करने से भी खत्म नहीं होता। पर यह धन अगर किसी के एकपक्षीय प्रेम का हो ? मैं यह नहीं कहती कि तुम ने मेरे सवाली प्रेम का जवाब नहीं दिया था, तुम्हारे प्यारे-प्यारे खत अभी तक मेरे पास सँभाल कर रखे हुए हैं पर उन खतों में जो जवाब था, वह मेरे प्यार का जवाब नहीं था, वही मेरी सोयी-सोयी आँखों और अभी-अभी जागी जवानी को लिखा हुआ जवाब था—पर जब जवानी सो जाती है तो आँखें पूरी तरह जाग पड़ती है। और अपनी सो रही जवानी के वक्त मैं ने पूरी तरह जाग रही आँखों से देखा कि जिस मूलधन का ब्याज मैं हर नये वर्ष अपनी गोद में खिलाती थी, वह धन केवल मेरा एकपक्षीय प्रेम था और इस धन में तुम ने अपनी मरजी का जो धन मिलाया था वह मेरी खत्म हो रही जवानी के साथ ही खत्म हो गया था और अब तुम्हारे खयाल में मेरा किसी ब्याज पर भी कोई अधिकार नहीं रह गया था—मेरा अपने बच्चे पर भी कोई अधिकार नहीं रह गया था

---

[1] चार्ल्स डिकन्ज की पत्नी कैथरीन का आखिरी खत।

चार्ल्स ! अब तुम्हारे पास जमाने भर की शोहरत थी, मेरे पास मेरी गुमनामी थी। तुम्हारे पास अब दुनिया भर के साथ की रौनक थी मेरे पास मेरा अकेलापन था। तुम्हारे पास अब हजारों पौण्ड की वह आमदनी थी, जो खर्च किये खत्म नहीं होती थी, मेरे पास मेरे एकपक्षीय प्रेम का वह सिक्का था जो तुम्हारी दुनिया में चल नहीं सकता था। इसलिए मेरा कोई बच्चा अगर तुम से आंख बचा मुझे मिलने आ जाता था तो मैं खुद ही उसे मना कर देती थी—मैं नहीं चाहती थी कि मेरी गुमनामी, मेरे अकेलेपन और मेरे प्यार का खोटा सिक्का मेरे किसी बच्चे की किस्मत बन जाये अगर किसी बच्चे ने तुम्हारी विरासत संभालनी थी—तुम्हारी दौलत, तुम्हारी शोहरत और तुम्हारा अपनत्व—तो उस के लिए तुम्हारा यही आना थी।

चार्ल्स ! जब तक तुम जीवित रहे मेरा यह विश्वास भी जीवित रहा कि भले ही मेरा विवाह तुम्हारे समूचे अस्तित्व से नहीं हुआ था पर तुम्हारी तीसरी उँगली से तो अवश्य हुआ था, इसलिए कल जब तुम्हारी मौत की खबर मुझे मिली, मैं ने काला लिबास पहन लिया। डीन की आज्ञा से तुम्हारी कब्र कुछ दिनों के लिए तुम्हारे दर्शकों के लिए खुली रखी गयी है और जब मैं आखिरी बार तुम्हें देखने के लिए रात को तुम्हारी कब्र पर गयी तो तुम्हारी तीसरी उँगली की विधवा होने के नाते मैं ने चाहा कि तुम्हारी उँगली में पड़ी हुई अंगूठी अब मैं अपनी उंगली में पहन लूँ। पर फिर मुझे पता चला कि मेरी सब से छोटी बहन जारजीना ने मेरे आने से पहले ही वह अंगूठी अपनी उँगली में पहन ली थी, और मुझे पता चला कि यह केवल जारजीना की मरजी नहीं थी यह तुम्हारी भी मरजी थी।

कब्र से वापस आकर मैं ने यह काला लिबास अपने गले में से उतार दिया है। मुझे तीसरी उँगली की विधवा होने का अधिकार भी नहीं मिला इसलिए मैं काला वेश पहनने का अधिकार भी नहीं लेना चाहती। मैं ने कभी भी वह नहीं लेना चाहा, जो तुम ने मुझे देना नहीं चाहा। चार्ल्स ! मैं ने सब गलतफहमियाँ तुम्हारे जिन्दा रहते दूर कर ली थीं सिर्फ यही एक गलतफहमी रख छोड़ी थी पर आज मरते वक्त तुम ने मेरी यह गलतफहमी भी दूर कर दी। तुम ने बड़ा अच्छा किया क्योंकि जो लोग देवताओं के पास से एकपक्षीय प्रेम की आग चुराकर लाते हैं उन के अंगों पर कोई गलतफहमी शोभा नहीं देता, उन के अंगों की नग्नता ही उन की पवित्रता होती है।

चार्ल्स ! तुम्हें एक बात बताऊँ ? जिस उपेक्षित कुटिया में मैं रहती हूँ उस की दीवार पर दो तसवीरें लगी हुई हैं—एक तुम्हारी और एक मेरी—जिस डनियल की चित्रकला के तुम कायल थे, ये उसी डनियल की बनायी हुई तसवीरें हैं और इन तसवीरों में वह समय, वह घड़ी वह पल, वहीं के वहीं ठहरे हुए हैं, जब तुम्हें मैं ने पहली बार देखा था और तुम ने मुझे पहली बार समय को रोक सकने का बल या तो किसी चित्रकार में होता है या किसी आशिक में। डनियल के बनाये हुए चित्र में

और मेरी कल्पना म, तुम—अपनी झिलमिल करती हुई जवानीवाले तुम—सदा कायम रहे हो, सदा कायम रहोगे। और मैं जब भी इस दीवार को ओर देखती हूँ मुझे तुम्हारा चित्र बडे अभिमान के साथ इस दीवार पर बैठा हुआ दिखाई देता है। पर मेरा अपना चित्र ? देख सकती थी—डेनियल की कला ने इस का सब कुछ कायम रखा हुआ था, जो समय ने कायम नही रखा, और यह चित्र इस बात से शर्मसार मुझे सदा इस दीवार पर से उतरने के लिए उतावला दिखाई देता था पर इस समय मोमबत्ती की कापती रोशनी में बैठकर मैं जब तुम्हे खत लिखने लगी, तो मेरा यह चित्र दीवार पर स उतरकर मेरे पास आ गया, और फिर मुझे लगा कि वह मेरे हाथ में स कलम लेकर तुम्हें खत लिखने लगा। नभी मुझे गलतफहमी नही हुई, वहाँ मेरे ये खुरदरे और बूढे हाथ और कहा उस के मुलायम और जवान हाथ उस ने जल्दी-जल्दी यह पत्र लिखा और फिर अपने कान के पास झूल आये काले सिमाह बालो का गुच्छा हाथ से परे कर उस ने मेरी ओर देखा, और फिर मुसकराकर वह सामने दीवार पर चला गया। और अब मैं देख रही हूँ कि वह इस दीवार पर, तुम्हारे चित्र के बिल्कुल पास होकर बडे अभिमान से बैठ गया है। ऐसे, जसे उस ने अपनी मुस्तकिल जवानी का कोई भेद ढूंढ लिया है—तन की जवानी का नही पर शायद मन की जवानी का।

कभी समय था, चार्ल्स ! जब मैं तुम से किसी अधिकार का परदा चाहती थी, और तुम्हारी किसी मेहरबानी का सहारा माग लेती थी और अपने अकेलेपन की ठिठुरन से घबराकर तुम्हारे साथ गुजारी किसी अच्छी घडी की धूप के नीचे खडी हो जाती थी और आज तक मैं ने तुम्हे जितने भी पत्र लिखे थे वह किसी गलत फहमी की रगीन सियाही स लिखे थे, पर आज अपना यह आखिरी पत्र मैं तुम्हें सफेद सियाही से लिख रही हूँ—अपने मन जसी सफेद, जिस में कोई रंग नज़र नही आता, पर जिस म सभी रंग समाये हुए ह। और इस पत्र में मैं सस्कारों के सब परदे उतार तुम्हें एक बात लिख रही हू कि मैं ने आज अपने अस्तित्व की नग्नता को चूम लिया हू।

अब जब मैं यह पत्र तुम्हारी कब्र में रखने के लिए आयी हूँ, तो मैं ने काला नही, सफेद लिबास पहन रखा ह और चार्ल्स ! आज मैं कह सकती हूँ कि मेरा विवाह कभी तुम्हारे साथ नही हुआ था। तुम्हारी तीसरी उँगली के साथ भी नही। मेरा विवाह मेरे एकपक्षीय प्रेम के साथ हुआ था, और वह अब भी जीवित ह, तुम्हारी मौत क बाद भी जीवित है इसलिए उस के जीवित रहते हुए मैं काला लिबास नही पहन सकती।

लोग मरते वक्त हिचकियां लेते हैं पर, मेरे महबूब! कई मुझ-जैसे भी होते हैं, जो मौत की दहलीज पर पांव रखते समय नहीं, जिन्दगी की दहलीज पर पाँव रखते समय ही ये हिचकियाँ लेने लगते हैं।

एक छोटी-सी बच्ची का इस दुनिया में अनाथ हो जाना और आँखें फाड़ फाड़कर कभी ज़मीन की तरफ़ देखना और कभी आसमान की तरफ़—यह अकेलापन मेरी पहली हिचकी थी, जो मैं ने जिन्दगी ख़त्म करते हुए नहीं, जिन्दगी शुरू करते हुए ली थी।

जिस घर में भी पनाह लेती भले ही उस के बहुतेरे काम करती, पर रोटी का हर निवाला निगलते समय गले में फँस जाता, जैसे उस रोटी का आटा पानी में नहीं शरम में गूँधा गया हो। यह बेचारगी मेरी दूसरी हिचकी थी।

अकेली और जवान औरत की आबरू इस दुनिया में उस कच्चे रंग की तरह होती है जो राह-चलते हुओं की नज़र से उड़ता रहता है। इस दुनिया का दिया हुआ यह कच्चा रंग मेरी तीसरी हिचकी थी।

तुम्हारा इश्क़, मेरी नज़रों में मेरी रूह की नेकनामी था पर बाकी सब की नज़रों में मेरी बदनामी। छोटे-से स्कूल की नौकरी मेरी रोटी का सहारा मुझ से छीन ली गयी क्योंकि मैं नेकनाम औरत नहीं थी। यह भी मेरी एक हिचकी थी, भले ही यह हिचकी मैं ने रोकर नहीं भरी, हँसकर भरी, क्योंकि इस का सम्बन्ध तुम्हारे इश्क़ से था।

और सूने दिनों और वीरान रातों में तुम्हारे इन्तज़ार की हिचकी, तुम्हारे विरह की हिचकी और उस सहम की हिचकी कि तुम इस समय न जाने कहाँ होगे, और तुम्हारे पीछे बन्दूकें लिये दौड़ते हुए दुश्मनों ने पता नहीं तुम्हारे साथ क्या सलूक किया होगा और फिर बन्दूक की गोली से तड़पते मेरी एक आख़िरी हिचकी—पर मेरे महबूब! इन सब हिचकियों से मुझे कोई उलाहना नहीं, बल्कि जो हिचकी बन्दूक की गोली से तड़पते हुए मैं ने ली उस की मैं देनदार हूँ। तुम्हारे गिर्द दुश्मनों का घेरा पड़ जाने पर जिस समय तुम्हारी मौत यक़ीनी हो चुकी थी अगर उस समय

---

१ बल्गारियन लेखक हान वाजोव के उपन्यास 'अण्डर दि योक' के मुख्य पात्र ओगन्यानोव की प्रेमिका राधा।

मैं तुम्हारे हाथों में न मर जाती तो जो जिन्दगी मुझे गुजारनी पड़ती, उस सोचकर सिर्फ औरत ही नहीं काँप उठती, यह धरती भी काँप उठती है।

पर मेरी एक और हिचकी है, मेरे महबूब! मेरे गले में रुकी हुई एक हिचकी। मैं राधा, एक औरत शायद तुम्हें क्षमा भी कर दूँ, पर मैं औरतजात, तुम्हें क्षमा नहीं कर सकती। तुम जिस ने गुलामी की लानत से इतनी नफरत की कि देश को स्वतन्त्र करवाने की सब से पहली कसम तुम ने खायी। फिर, जिस ने वनों और जंगलों में भटकते हुए उमर गुज़ार दी पर जिस का विश्वास एक पल भी न डोला। और तुम, जो सिर्फ एक बहादुर आदमी नहीं थे, बहादुरी की कहावत बन गये थे तुम ने अपनी गैरहाज़िरी में अपने एक दोस्त का मेरे पास आया सुनकर मुझ पर इस तरह शक किया कि मेरी कोई भी मिन्नत तुम्हारा विश्वास न बन सकी यह सिर्फ एक इत्तफाक था कि मुद्दत बाद तुम्हारे एक दूसरे दोस्त ने उस दोस्त का मुँह लिया एक ऐसा मासूम खत तुम्हें दिया कि तुम्हें फिर मुझ पर विश्वास आ गया। पर मेरे महबूब! यह कैसा विश्वास था जो एक बेगाने के मुँह से सुनी बात पर टूट सकता था और जिस में मैं कुछ भी नहीं थी। मैं जमे हुई, न हुई हुई, न हुई

मे मैलरी

मैं मल्री एक मनुष्य नहीं एक रोष हू दुनिया की हर खूबसूरती का जिबह करने वाली हर छुरी के खिलाफ एक रोष । यह खूबसूरती चाहे एक बुत की शक्ल में हो और चाहे एक सोच की शक्ल म और यह छुरी चाहे ताकत के नाजायज इस्तेमाल की शक्ल में हो और चाहे चुप की साजिश की शक्ल में ।

मैं ने 'एल्स वथ टूह नामक एक आदमी को गाली नही मारी थी चुप की साजिश को गाली मारी थी । इस के लिए कुछ महीने जेल में रहने का मुझे कोई गम नही था, क्योकि जिस समाज में मुझे रहना पडा था उस की बनावट भी इसी कद का दूसरा रूप था । सलाखें लोहे की हो या कला की पहचान से इनकारी होनेवाली नजरो की इस स काई फक नही पडता ।

यह आक्रोश अगर किसी और चीज़ स समझौता नही कर सकता तो गरीबी से गुमनामी से जिन्दगी की अथहीनता से और खुद को शराब के प्याले म धीरे धीरे घुला देनेवाली आत्महत्या से अवश्य समझौता कर सकता ह । यह समझौता मैं ने कर लिया था । पर एक दिन मर इस अधर में एक नगी किरण जमा आदमी मुझे मिलने के लिए आया । उस की मुलाकात का एक-एक शब्द मैं आप का बताता हूँ ।

'मैं ने तुम्हें खत लिखा था बुलाया था तुम आये क्या नही मल्री ?'

"मैं नही आ सका, पर तुम्हारा यहा मुझ घर आकर ढूँढ़ना, बिल्कुल गलत तरीका ह । ऐसा दुनिया में नही हाता । तुम्हें चाहिए था—तुम मुझे अपने दफ्तर आने के लिए मजबूर करते और पहली बार जब मैं आता, तुम उस दिन दफ्तर स नदारद होते । दूसरी बार तुम मुझ स डेढ घण्टे अपने बाहरवाले कमरे में इन्तजार करवाते और फिर डेढ घण्टे बाद तेजी स आकर मुझ से हाथ मिलाते और कहते कि आज तुम्हे कुछ जरूरी काम था और तुम्हें अफसोस था कि आज तुम मुझ स काई बात नही कर सकाग । और फिर इसा तरह हम बात को दा महीन लटकाये रखते । फिर दो महीने बाद तुम मुझे काम देते और जब मैं यह काम तयार कर तुम्हारी मेज पर रख देता, तो तुम माथे पर बल डाल उस काम को घूरते और फिर उसे रद्द कर देते—हमेशा ऐसा ही होता ह, इस बार क्यो नही ?

नही, इस बार नही ।

---

१ आन रैण्ड के नावल 'फाउण्टेन हैड' का एक पात्र मलरी ।

"तुम हावर्ड रोर्क ! तुम बड़ी खूबसूरत इमारतें बनाते हो, मैं तुम्हें सच बताऊँ मैं इसी लिए तुम से मिलने नहीं आया। मिलने पर—वह आदमी, वह आदमी नहीं निकलता, जो अपनी कला की खूबसूरती के समकक्ष ठहरता हो "

"अगर मैं आदमी के तौर पर भी उस पे पूरा उतरता होऊँ—फिर "

"ऐसा कभी नहीं होगा।'

"मैं एक नयी इमारत बना रहा हूँ, मैं चाहता हूँ तुम उस के लिए एक बुत बना दो। मैं अभी एक कागज पर लिख देता हूँ कि अगर मैं तुम्हारा बनाया हुआ बुत इस्तेमाल में न लाऊँ, तो उस के लिए दस हजार डालर हरजाना दूँगा।"

'मैं ने शराब नहीं पी हुई इसलिए मेरे होश-हवास कायम हैं, तुम मेरे साथ होश हवास की बातें करो—तुम से एक बात पूछूँ ? यही कि इस काम के लिए तुम ने मुझे क्या चुना है ?"

'क्योंकि तुम एक बहुत अच्छे कलाकार हो।'

"यह सच नहीं।

"क्या यह सच नहीं कि तुम एक बहुत बड़े कलाकार हो।"

'मेरा मतलब है कि तुम्हारे चुनाव का यह कारण सच नहीं। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि मुझे काम देने के लिए तुम से किस ने कहा है ?"

"किसी ने नहीं।'

"किसी उस औरत ने कहा होगा, जिस के साथ मैं कभी '

'मैं किसी ऐसी औरत को नहीं जानता।

"फिर तुम्हारे पास पैसे कम होंगे शायद इसलिए '

"इस काम के लिए बहुत बड़ी रकम है।

मैं ने एक बार एक समालोचक को गोली मारी थी, कैद हुआ था, यह बात शायद तुम्हारी इश्तहारबाजी के काम आ सकती है '

ऐसी बिल्कुल कोई बात नहीं।'

'फिर तुम मुझे बताते क्यों नहीं ?'

तुम ऐसे ही फिजूल कारण सोचते हो सीधा क्यों नहीं सोचते कि मुझे तुम्हारा काम पसन्द है।'

"कहने का यही फिकरा सब से पहले कहा जाता है कहा जाना भी चाहिए पर तुम मुझे असली कारण क्या नहीं बताते ?'

'यही कि मुझे तुम्हारा काम पसन्द है।'

तुम्हारा मतलब है कि तुम ने मेरी वे सारी कलाकृतियाँ—सारे बुत देखे हैं जो मैं ने कभी बनाये थे ? और तुम्हें वे पसन्द आ गये बगैर किसी के यह बताये कि तुम्हें वे पसन्द करने चाहिए ? और सिर्फ इसी बात ने तुम्हारी आत्मा में मेरी कदर भर दी ?

"हाँ।"

रारक द्वारा की हुई यह 'हाँ' मेरे लिए बहुत बड़ा सदमा थी। एक आश्चर्य का सदमा। मैं ने गरीबी और गुमनामी की एक अँधेरी कोठरी में रहते हुए जिस चीज़ की अस्तित्वहीनता से मुश्किल से समझौता किया था, उस चीज़ के अस्तित्व का आश्चर्य मेरी सहन शक्ति से बाहर की बात थी।

"तुम! बेवकूफ मैल्री! तुम्हें कोई हक नहीं कि तुम मेरी या किसी और की राय की परवा करो। तुम हम से बहुत ऊँचे हो। तुम्हारे जैसा कलाकार हमारे पास कोई दूसरा नहीं। कला में जो सम्भव हो सकता है, तुम ने उसे सम्भव बनाया है—" रारक मेरे सामने खड़ा कह रहा था और मैं जिस ने अँधेरे के साथ जीने की आदत डाल ली थी, नंगी किरण-से इस आत्मा को देखकर रो पड़ा।

मैं रारक के प्रति बहुत शुक्रगुज़ार हो उठा। इसलिए नहीं कि उस ने मुझे एक बहुत बड़ा काम दिया था, और इसलिए भी नहीं कि वह खुद चलकर मेरी कोठरी में आया था, बल्कि सिर्फ इसलिए कि वह 'है'—इस दुनिया में वह 'है'।

मैं कह रहा था कि मैं मैल्री एक आदमी नहीं, एक आक्रोश हूँ, गुस्से की एक लहर हूँ। जिन बेचारों को कला की पहचान नहीं उन के लिए मेरे मन में कोई गुस्सा नहीं। गुस्सा सिर्फ उन के लिए है जिन्हें पहचान भी होती है और वे फिर भी चुप रहते हैं। चुप की छुरी हाथ में लेकर वे कलाकार को धीरे धीरे ज़िबह करते हैं। कलाकार के ज़िबह हो जाने में भयानकता नहीं, भयानकता यह है कि कलाकार की गरदन में से बहता खून हर किसी को दिखाई देता है, पर उस गरदन पर चलती छुरी किसी को दिखाई नहीं देती।

रारक मुझ से सहमत है, पर वह मुसका रहा है। भयानकता का खौफ सोच रहा हूँ एक बीमारी की तरह है और हर बीमारी की तरह इस के भी जर्म्स होते हैं। जर्म्स उसी जिस्म में असर कर सकते हैं जो जिस्म कहीं से कुछ बहुत तगड़ा नहीं होता। रोरक को मुसकराते हुए देखकर मैं यह नहीं कह सकता कि उसे भयानकता का पता नहीं या उस ने यह भयानकता भोगी नहीं, सिर्फ यह कह सकता हूँ कि रारक एक खालिस सेहत है, इतना कि वह हर खौफ के हर जर्म से बेअसर है और चुप की किसी साज़िश का भी मारने से बे-परवा।

मैं ने गोली मारने की परवा की थी, रोरक को देखने से पहले। देखने के बाद—सोचता हूँ इस परवा की ज़रूरत थी तो गरीबी के, गुमनामी के, ज़िन्दगी की अर्थहीनता के, और खुद को शराब के प्याले में धीरे धीरे घुला देनेवाली आत्महत्या के अँधेरे में, किसी नंगी किरण के अस्तित्व को देखने की ज़रूरत थी—और इस अस्तित्व की भी कहीं बाहर से इन्तज़ार करने की ज़रूरत नहीं थी, ऐसा बनने की ज़रूरत थी।

मैं ऐरना[1]

माँ! मैं ऐरना बोल रहा हूँ

मेरे गले में कोई आवाज़ नहीं, बे-आवाज़ बोल रही हूँ

तू था ओ सालीवान—पूरा आयरिश—अमरीकन।

मैं ऐरना कुरनर—पूरी की पूरी जरमन।

पर हम सिर्फ यह नहीं। कितना कुछ तुझ से उतारनेवाला है, कितना कुछ मुझ से। यह जो पास्पोर्ट या लाग-ब्लोट फाड़ दें—तो तू माँ और मैं ऐरना—बन जाते हैं।

हाय! मैं ने यह नहीं कहा कि रह जाते हैं, मैं ने कहा है—बन जाते हैं

बस यह रह जाने और बन जाने के बीच का अन्तर है—एक फासला—जिस का पार करना बहुत मुश्किल है

नहीं मुश्किल है, नहीं कहना चाहिए, या कहना चाहिए

है तो सब समयों के लिए हो जायगा। मैं उन सब समयों के लिए नहीं बनाना चाहती। यह का सम्बन्ध सिर्फ हमारे समय से है। हम अपने बदनसीब समय को आनेवाले समय के साथ न जोड़ें। हमारे समय की बदनसीब परछाई, मैं चाहता हूँ कि आनेवाले समय पर न पड़े। माँ! नफरत का लफ्ज़ कहाँ खत्म होता है और मुहब्बत का लफ्ज़ कहाँ शुरू होता है। हम दोनों ने यह जगह देखी थी—उस दिन जिस दिन हम दोनों पहली बार हमबिस्तर हुए थे। तू अपने अंगों से मेरे अंग अंग को चीर देना चाहता था। अपनी नफरत के ज़ोर से। और मुहब्बत की उस झिलमिलाहट को पकड़ लेना चाहता था जो हर अंग से परे थी

और हम ने अपने अंगों को तोड़-तोड़कर देखा था

और हम कितनी देर तक उस जगह पर खड़े रहे थे, जहाँ नफरत का लफ्ज़ खत्म होता है, और मुहब्बत का लफ्ज़ शुरू होता है

एक लफ्ज़ में कितनी राहें शामिल होती हैं, यह तू भी जानता था, मैं भी और यह भी कि यह राह सिर्फ लम्बी नहीं थी, भयानक भी थी। इस में वह जरमन बन्दूकों की गोलियाँ भी शामिल थीं जो तेरे बड़े खूबसूरत और बड़े प्यार के भाइयों की छाती में लगी थीं, और दो कब्रों की मिट्टी तेरे आँसुओं से भी, तेरी माँ के आँसुओं से भी, तेरे बाप के आँसुओं से भी रोज़ गीली हो जाती थी। और कब्रों की उस गीली

१ लियान यूरिस के उपन्यास 'आरमैगेडॉन' की एक पात्र ऐरनैस्टाइन।

मिट्टी में से, जरमनी की हर चीज के लिए नफ़रत की एक तीखी गंध उठती थी और मैं तेरे अंगों से लिपटी हुई—एक जरमन लड़की की और मुझे पता था कि जब तू मेरे होंठ चूम रहा होता था नफ़रत की गंध को भी चूम रहा होता था

नफ़रत की इस गंध में उस कानसण्ट्रेशन कम्प की लाशों की गंध भी थी जो तू ने, सिर्फ़ तू ने पहली बार ढूंढी थी। और मीलों तक फैली उस की दुर्गन्ध तेरे मन में नफ़रत की दुर्गन्ध बन गयी था। और तू ने उस शहर के एक-एक जरमन को ललकार के पूछा था उधर की ओर से जब हवा आती थी तुझे यह दुर्गंध नहीं आती थी?

और जाने के लिए लरजते हर जरमन ने एक वाक्य था। वे सब कहते थे, 'आती थी, पर हम ने सोचा कि सिर्फ चमड़े की फैक्टरी की गंध है।'

और तू ने चीखकर कहा था 'मौत की इस फैक्टरी की गंध तुम सब ने सूँघी, पर चुप रहे। तुम सब खूनी हो'

'और तू ने हरेक जरमन का राशन कार्ड रोक लिया और हुक्म दिया कि जब तक हरेक जरमन उस कम्प में जाकर सब लाशों को नहीं देखता तब तक उस को राशन कार्ड नहीं मिलेगा'—

और—हां! मैं जानती थी कि हर एक जरमन में से हां एक मैं थी—

मैं—तेरी महबूबा—तेरी ऐरना

मेरी नफ़रत की उमर भी बड़ी लम्बी थी—तुम अमरीकन जब रोज़ मेरी धरती पर बम फेंकते थे मेरे लोगों के हसीन जिस्म खून, मास और चरबी बनकर गलियों में बहते थे

हमारे सिर की छतें, इंट और पत्थर बनकर हमारे सिरों पर गिरती थीं और मर हुओं से भी बदतर जो हम जीते रह गये थे—अन्न के दाने-दाने के लिए तरस गये थे

और अछूती कुँआरी हमारी लड़कियां रोज गलियों में तुम्हारी एलायड फार्सेज—अमरीकन फ़ौजी, बरतानवी और फ्रांसीसी फौजियों के हाथों रेप हो रही थीं और हमारा जरमन गर्व रोज रोटी के एक-एक टुकड़े पर बिकता था

पर हां! इन सब से परे भी कुछ होता है—वह जगह जहां दुर्गन्ध खत्म होती है, जहां सुगन्ध शुरू होती है

तू और मैं अचानक मिले और पता नहीं कब और किस तरह उस जगह पर पहुँच गये, जहाँ अनहोनियाँ होनियाँ बनती हैं

तू अपनेआप से लड़ा मैं अपनेआप से लड़ी और हम दोनों ने अपने-अपने जिस्म से रिसते लहू को पोंछकर एक-दूसरे को नफरत के साथ गले से लगा लिया।

हम दोनों कभी समय से बलवान हो जाते, कभी समय हम से बलवान हो जाता

मैं एरना

कुछेक पडाव थे, जिन से हम आगे लाघ गये थे—

तेरी जिन्दगी का एक पडाव था जब कि तू लन्दन में पोस्टेड था। वहा तुझे एक वह औरत मिली थी जिस से जुदा होते हुए तेरे जिस्म का मास रो उठा था। पर तू ने अपनेआप को जुदा होने का हुक्म द दिया था, क्योकि दूर कही उस का खाविन्द भी था, और दूर कहा उन के बच्चे भी थे। और तुझे लगा था कि उस स बिछुडकर भी तू सारी उम्र उस पडाव पर खडा रहेगा। कई बरस खडा रहा। पर जब तुझे मैं मिली, तू मुसकराकर उस पडाव से आगे चल पडा

और हा ! मेरा भी एक पडाव था जहाँ मैं बचपन से खडी हुई थी। मेरे बचपन का दोस्त डीटरिक्शर बहद खूबसूरत लडका था। उस का मुह गम्भीर था, मेहरबान भी। और फिर वह नाजी यूथ का मेम्बर बन गया था। जब कोई लेक्चर सुनकर आता था तो मैं कहती थी, 'चल नाव चलायें!' तो वह हँसकर कहा करता था, 'इस रोमाण्टिक बात का आज के लेक्चर से जोड नही बैठता। पर उस का सख्त सख्त हुआ मुह मेरे साथ नाव में बैठकर फिर नरम-नरम हो जाता था। पर कुछ दिन बाद उस का मुह इस तरह सख्त हो गया था कि पिघलने में भी नही आता था। और फिर वह हमलावर फौज में शामिल हो गया था। वह दूर चला गया था, पर मैं उस का इन्तजार करती रही थी। मुझे यकीन था वह जब वापस आ जायेगा उस का मुह मेरे दिल के सेंक से पिघल जायेगा। पर वह कभी वापस न आया। जरमन फौज ने जब रूस पर हमला किया था वहा बर्फ में जान तोड-तोडकर मरनेवालो में एक वह भी था। मुझे उस का सिर्फ मौत की घडी लिखा खत मिला था—बेहद उदास, और हिटलर की उस बेवफाई स भरा हुआ जिस के लिए कभी किसी जरमन के होठ नहा हिले थे। और एक पश्चात्ताप भरा हुआ उन जुल्मो के पश्चात्ताप से, जिन के लिए अब 'खुदा' लफ्ज के पास भी कोई पनाह नही थी।

और मुझे लगा था—अब मैं कभी किसी मुह को प्यार करने लायक नही रह गयी थी। और मैं एकाकीपन के एक पडाव पर खडी हो गयी थी। कई बरस खडी रही। पर हाँ! जब मैं तुझे मिली—नही मिली नही जब मैं ने तुझे जाना—तो मुसकराकर उस पडाव से आगे चल पडी थी

हम दोनो चल दिये थे पता नही, किस मजिल की ओर पर चल दिये थे

और एक दर्द भी हमारे साथ-साथ चल पडा था

हाँ! मेरा इकलौता भाई तेरे देश म कैद था—जगी कैदी। मैं उस का भी इन्तजार किया करती थी। पर वह जब कैद म से छूटकर घर आया, तो जितना नाजी वह जाते वक्त था उतना ही आते वक्त था। वह कडवाहट से भर गया कि मैं एक जरमन आदमी की जगह, एक अमरीकन का मुहब्बत कर रही थी

और उस घडी लगा—वह दर्द जो मेरे साथ-साथ चला था मैं पाछे रह गयी थी और वह आगे बढने लगा था

पर मैंने वह घनी सँभाल ली। मैंने तेरी तरफ—अपने इश्क की तरफ—और तीखे पैर उठाये और उस दद से आगे बढ़ गयी—

और फिर एक भयानक मोड़ आ गया। तेरे हाथों में एक वह फाइल आ गयी, जिस में मेरे बाप के नाजी होने का पूरा सबूत था। और पूरा सबूत था कि वह कई हजारों पोलिश लोग गुलाम मजदूरों की शक्ल में जरमनी लाया था।

मैं अपनेआप को भी कुसूरवार समझती हूँ कि मेरे बाप पर मेरा विश्वास कितने गहन अँधियारे जैसा था कि मुझे कभी भी कुछ नजर नहीं आया था। एक बार यह विश्वास कुछ डालने का था मैं अपने बाप से कुछ पूछने को थी कि माँ ने धमकाकर कहा था, 'कोई अच्छी बेटी अपने बाप से सवाल नहीं करती।' और मैं अपनेआप को अच्छी बेटी समझती थी, इसलिए फिर कोई सवाल जबान पर तो क्या मन में भी नहीं आने दिया था।

पर शा! तू ने जान-बूझ कर कुसूर किया है—मेरे बाप की फ़ाइल को अपनी मेज की दराज में छिपा दिया। तेरा यह कुसूर किसी की नजर में नहीं था पर तेरी अपनी आत्मा से नहीं छिप सकता था? तेरा अपनाआपा तेरी अपनी आत्मा में कुसूरवार हो गया था।

तू ने मुझे कुछ न बताया। पर उस दिन के बाद तू ने जब भी मुझे चूमा, अपने होंठों में एक नफरत भरकर चूमा। जैसे तू मुझे नहीं एक नफरत को चूम रहा हो।

हमारे पैरों के नीचे कोई जमीन नहीं थी। हम एक नदी में तर रहे थे—लगातार। और इस नदी के दो किनारे—नफ़रत और मुहब्बत के किनारे थे। हम कभी नफ़रत के किनारे से भागकर मुहब्बत के किनारे जा लगते और कभी मुहब्बत के किनारे से भागकर नफरत के किनारे जा लगते

एक दिन मैं ने इस नदी के पानी में गोते-से खाती हुई तुझ से तेरे मन का भयानक भेद पूछ लिया। तू ने वह छिपायी हुई फाइल मेरे सामने रख दी

उस दिन माँ! मैं ने तेरी मुहब्बत की थाह पा ली—यह मुहब्बत गहरी थी। इतनी गहरी कि तू अपनेआप को भी उस में डुबाने के लिए तैयार हो गया था।

उस दिन मैं ने तुझे डूबने से बचाया था। तेरा—डूबते हुए का हाथ पकड़ा था। कहा था, 'तेरी प्यारी जिन्दगी मैं एक नाजी पर नहीं वार सकती।'

और उस दिन वह फाइल तू ने अपने अफ़सर के हवाले कर दी थी

उस दिन हम ने अपनी जिंदगी के आनेवाले दिनों की कल्पना कर के देखा थी—हम सारा एक-दूसरे के गले लगकर सोये हुए और अपनी-अपनी नींद में बड़बड़ाते रहे—तू जरमन हमलावरों के हाथों अपने मरे भाइयों के नाम ले-लेकर रो रहा और मैं अमरीकी कैद में पड़े बाप की पीठ को और जरमन शहरों पर जान वारती अपनी माँ के चेहरे को देख-देख रो रही